उपजीव्य ग्रन्थों के सन्दर्भ में केशव की मौलिकता

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि के लिए प्रस्तुत)

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्री :

कु० ज्ञानमंजरी मिश्रा

एम० ए०, एल० टी०

निर्देशक :

डा० किशोरी लाल

अवकाश प्राप्त वरिष्ठ प्राध्यापक

हिन्दी-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

अक्टूबर, १९९२

विषयानुक्रमणिका

खण्ड : एक

खण्ड : दो

पृ० सं०

प्राक्कथन

मध्ययुग के महाकवि एवं आचार्य केशवदास पर अब तक अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं— (१) केशव की काव्यकला (कृष्णशंकर शुक्ल), (२) केशवदास एक अध्ययन (रामरतन भटनागर), (३) आचार्य केशवदास (डा० हीरालाल दीक्षित), (४) केशवदास (चन्द्रबली पाण्डेय), (५) केशव और उनका साहित्य (डा० विजयपाल सिंह) (६) केशव का आचार्यत्व (डा० विजयपाल सिंह), (७) केशव काव्य सुधा (कुन्दनलाल उप्रेती), (८) केशव की काव्य चेतना (डा० विजयपाल सिंह) इनके अतिरिक्त 'हिन्दी नवरत्न,' हिन्दी के इतिहास-ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं में भी केशवदास-सम्बन्धी आलोचनाएं हुई हैं, किन्तु आचार्य केशवदास की कृतियों का महत्व और उनके व्यक्तित्व की गरिमा इतनी विशाल है कि उपर्युक्त रचनाओं के रहते हुए भी बहुत कुछ अवशिष्ट रह जाता है। उपर्युक्त आलोचनात्मक ग्रन्थों में केशव द्वारा ग्रहण किये गये कुछ प्रभावों तथा कुछ उनकी मौलिकताओं का उल्लेख किया गया है। इन ग्रन्थों के होते हुए भी केशव द्वारा ग्रहण किए गये कुछ अन्य प्रभावों तथा उनकी कुछ मौलिकताओं का उल्लेख शेष रह गया था। इस बात को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत ग्रन्थ में केशवदास द्वारा ग्रहण किए गए शेष प्रभावों तथा मौलिकताओं का उल्लेख करने का प्रयत्न किया गया है।

आधुनिक युग के कुछ आलोचकों ने केशवदास को कठिन काव्य का प्रेत, हृदयहीन तथा नीरस कहने के साथ-साथ केशव को मौलिक कवि के रूप में मान्यता देने से इन्कार किया है। इस प्रकार के कथन को अतिरंजना से पूर्ण मानकर प्रस्तुत प्रबन्ध में एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जिससे यह

स्पष्ट हो कि कि केशव के काव्य के प्रति ऐसी अनुदार धारणाएं प्रकट करना कवि के साथ अन्याय करना है। हिन्दी के अनेक आलोचकों ने केशव को संस्कृत के विभिन्न आचार्यों से प्रभावित सिद्ध करने की कोशिश की है और इतने पर भी वे इस निश्चय की स्थिति पर पहुंचने में असमर्थ दिखाई देते हैं कि वास्तव में केशव संस्कृत के किन-किन आचार्यों से प्रभावित हैं। `कविप्रिया` और `रसिकप्रिया` में वर्णित विषयों पर भिन्न-भिन्न संस्कृत ग्रन्थों में लिए उदाहरण प्रायः परस्पर मिलते हैं। ऐसी स्थिति में केशव को संस्कृत के सभी आचार्यों से प्रभाव ग्रहण करते हुए सिद्ध करना केशव के प्रति सरासर अन्याय है। इसके अतिरिक्त `रामचन्द्रिका` और `विज्ञानगीता` में भी ऐसे अनेक प्रसंग एवं घटनाओं का वर्णन है जो केशव की निजी कल्पना से उद्भूत हुए हैं। यद्यपि `रामचन्द्रिका` और `विज्ञानगीता` में अनेक ऐसे स्थल हैं जहां केशव ने अनुवाद शैली का प्रयोग किया है, फिर भी उस अनुवाद को छन्दोबद्ध करके कविता के रूप में प्रस्तुत करने में केशव की प्रतिभा को नकारा नहीं जा सकता।

केशवदास का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। केशव आचार्य हैं, महाकवि हैं और इतिहासकार हैं। रीतिकाव्य-ग्रन्थों में केशव के दर्शन आचार्य एवं कवि दोनों ही रूपों में होते हैं। आचार्य-रूप में केशवदास हिन्दी के सबसे पहले आचार्य हैं जिन्होंने संस्कृत रीतिशास्त्र को हिन्दी में अवतरित करते हुए अलंकार और रस दोनों सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा की और इस प्रकार काव्यशास्त्र के विविध अंगों का विस्तृत विवेचन कर हिन्दी साहित्य में रीति-परम्परा का निर्बाध मार्ग खोल दिया। यद्यपि केशव द्वारा निर्दिष्ट रीति-पद्धति का हिन्दी आचार्यों ने अनुसरण नहीं किया, फिर

भी उन्होंने कवियों का ध्यान एक विशिष्ट दिशा की ओर अवश्य आकृष्ट कर दिया। कवि के रूप में केशव को रीतिकाव्य- ग्रन्थों - मुक्तक ग्रन्थों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। मुक्तक कवि के रूप में भावव्यंजना के क्षेत्र में रीतिकालीन प्रायः सभी कवियों ने केशव को आदर्श के रूप में ग्रहण किया है। प्रबन्ध-काव्य के क्षेत्र में भी केशव के संवाद उनके मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण के परिचायक हैं। संवादों से इतर स्थलों पर भी कवि ने विभिन्न मनभ - भावों की सुन्दर व्यंजना की है। उनके ग्रन्थों में उल्लिखित सामग्री से ओड़छा राज्य का सच्चा और विस्तृत इतिहास जाना जा सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध नौ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय के अन्तर्गत केशव से पूर्व प्रचलित काव्य परम्पराओं तथा प्रवृत्तियों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए केशव द्वारा लिखा गई प्रबन्धात्मक तथा काव्यशास्त्रीय रचनाओं का वर्गीकरण करते हुए संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

दूसरे अध्याय में मौलिकता के अर्थ एवं स्वरूप का विस्तृत विवेचन है। इस अध्याय के अन्तर्गत राजशेखर ने किस प्रकार के कवियों को मौलिक कवि स्वीकार किया है तथा पाश्चात्य समीक्षकों के मौलिकता के विषय में क्या दृष्टिकोण है आदि बातों का उल्लेख करते हुए रीति साहित्य की मौलिकता के सम्बन्ध में हिन्दी समीक्षकों के विचार भी दिए गए हैं।

तीसरे अध्याय में आचार्य केशव के पौराणिक ज्ञान को दर्शाया गया है। इसके अन्तर्गत केशव द्वारा ग्रहण की गई पौराणिक कथाओं का उल्लेख करते हुए विभिन्नपुराणों का केशव पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन किया गया है।

चौथे अध्याय में केशव पर पड़ने वाले काव्यात्मक प्रभाव का वर्णन है। इसके अन्तर्गत केशव की भाषा, छन्द, अलंकारयोजना, उक्तिगत चमत्कार, भावव्यंजना का उत्कर्ष संवादयोजना आदि पर संस्कृत के प्रभाव तथा केशव की मौलिकता का उल्लेख है।

पांचवें प्रभाव में केशव के दार्शनिक विचारों का विवेचन करते हुए प्रबोधचन्द्रोदय तथा विज्ञानगीता के साम्य रखने वाले स्थलों का उल्लेख किया गया है। साथ ही विज्ञानगीता तथा योगवाशिष्ठ के समान स्थल भी उद्धृत किये गये हैं।

व्यावहारिक जीवन का प्रभाव नामक छठें अध्याय में केशव द्वारा अपने ग्रन्थों में वर्णित विभिन्न लोकाचारों का उल्लेख करते हुए केशव द्वारा प्रयुक्त विभिन्न लोकोक्तियों तथा मुहावरों का वर्णन है।

सातवें अध्याय में केशव की रामचन्द्रिका से साम्य रखने वाले हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव तथा वाल्मीकि रामायण एवं अनर्घराघव के स्थलों का उल्लेख करते हुए रामचन्द्रिका में केशव की मौलिकता का विवेचन है।

आठवें अध्याय में केशव की रसिकप्रिया में वर्णित नायक- नायिका भेद, रस तथा वृत्तियों आदि के वर्णन में विभिन्न आचार्यों के प्रभाव का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत शृंगारतिलक, रसमंजरी, दशरूपक, नाट्यशास्त्र, कामसूत्र तथा अनंगरंग नामक ग्रन्थों के रसिकप्रिया से साम्य रखने वाले स्थलों का भी उल्लेख है।

नवें अध्याय में कविप्रिया पर पड़ने वाले संस्कृत के अलंकार ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए काव्यादर्श, काव्यालंकार, काव्यप्रकाश, कुवलयानन्द, अलंकारशेखर तथा काव्यकल्पलतावृत्ति के कविप्रिया से साम्य रखने वाले वर्णनों

का विवेचन है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्त में आचार्य केशव की रचनाओं में प्राप्त मौलिकता का मूल्यांकन किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अवकाश प्राप्त प्रवक्ता पूज्य डा० किशोरीलाल जी के सुयोग्य निर्देशन में लिखा गया है। पूज्य डा० किशोरीलाल जी ने यथास्थल अपने सत्परामर्शों से मुझे लाभान्वित ही नहीं किया अपितु अनेक दुर्लभ संस्कृत ग्रन्थ भी पढ़ने को दिए। मैं उनके पास जब भी गई उन्होंने अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन से समय निकाल कर मेरी बातें सुनीं और बड़ी प्रसन्नता के साथ मेरा मार्गदर्शन किया। उनकी इस उम्र में इतनी व्यस्तता सदैव मेरे लिए प्रेरणा के रूप में कार्य करती रही। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि यदि श्रद्धेय किशोरीलाल जी के उत्तम स्नेह और वात्सल्य का सम्बल मेरे अनुसंधान - पथ में सहायक न होता और अनुसंधित्सा की अपार ज्योति उन्होंने न प्राप्त की होती तो मैं शोध प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत कर सकती, इसमें पूर्ण सन्देह है।

श्रद्धेय किशोरीलाल जी ने अपने व्यस्त जीवन में जिस उदारता के साथ मेरी बातें सुनीं और मेरे मानस में ज्ञान की जो रश्मियाँ समय-समय पर देदीप्यमान कीं तदर्थ उनके चरणों में श्रद्धा के दो सुमनों को अर्पित करने के अतिरिक्त और दे ही क्या सकती हूं। अतः केवल औपचारिक धन्यवाद देने की धृष्टता का साहस मैं नहीं कर सकती।

जो कुछ भी यह प्रयास बन पड़ा है वह पूज्यपाद पिता श्री रामकृष्ण जी मिश्र एवं माता श्रीमती मोहिनी मिश्र की इच्छाओं का पालन मात्र है।

माता- पिता के द्वारा सन्तान के प्रति की गई शुभचिन्ताओं एवं कर्मों के प्रति कोई भी संतान आभार व्यक्त नहीं कर सकती वह उनकी चिरऋणी ही रहेगी ।

मैं अपने बहनोई डा० नागेन्द्रनाथ जी पाण्डेय, प्रवक्ता- वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान तथा उनके अनुज डा० विजयकुमार जी पाण्डेय की हृदय से आभारी हूं जिन्होंने प्रस्तुत प्रबन्ध को यथाशीघ्र समाप्त करने की प्रेरणा दी है। डा० विजयकुमार जी पाण्डेय ने न केवल प्रेरणा दी अपितु अपने अथक प्रयासों से संस्कृत के अनेक दुर्लभ ग्रन्थों को यथासमय और शीघ्रता से उपलब्ध कराया। मैं अपने सभी भाइयों एवं बहनों की भी आभारी हूं जिन्होंने अपने अथक सहयोग से मुझे यथासमय प्रोत्साहित किया है। मैं अपने अग्रज श्री रघुनाथ जी मिश्र की भी हृदय से आभारी हूं जिनके अमूल्य सहयोग ने प्रबन्ध को यथाशीघ्र समाप्त करने में सहायता प्रदान की है।

इस क्रम में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय, प्रयाग स्थित भारतीभवन पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के अधिकारीगण भी साधुवादाई हैं, जिन्होंने समय- समय पर संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों तथा केशव की रचनाओं को पढ़ने की अनुमति प्रदान की ।

अन्त में मैं अपने अनेक गुरुजनों, शुभचिन्तकों की चिरऋणी हूं, जिनकी शुभकामनायें मेरे साथ रहीं ।

ज्ञानमंजरी मिश्रा
(ज्ञानमंजरी मिश्रा)

खण्ड – १

अध्याय : एक

केशव और रीति प्रस्तावना काल का वर्ण्य विषय तथा विषयानुसार वर्गीकरण

केशव और रीति प्रस्तावना काल का वर्ण्य विषय तथा विषयानुसार वर्गीकरण

केशव पूर्व रीति काव्य की परम्परा में विद्यापति का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भाषा की दृष्टि से भले ही वे ब्रजभाषा रीति काव्य के मेल में न हों किन्तु रीति तत्व की दृष्टि से उनका महत्व अक्षुण्ण है। उनकी पदावली में श्रृंगारिक तत्व इतनी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं कि उन्हें भक्ति की कोटि में बैठाने वाले आलोचक भी कभी-कभी चौंक उठते हैं। इनकी रचनाओं को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनमें न जाने कितने कल्पना प्रसूत चित्रों की अवतारणा कवि ने की है। श्रृंगाररसान्तर्गत एक चित्रात्मक सौन्दर्य का नमूना इस प्रकार है—

आध बदन ससि बिहंसि देखा ओलि आध पीहलि निअबाहू।
किछु एक भाग बलाहक झांपल किछुक गरासल राहू[1] ।।

विद्यापति के गीतों में ऐन्द्रिक सौन्दर्य की जैसी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है, उससे लगता है कि उनकी श्रृंगारिक तन्मयता अधिक हृदयग्राही एवं प्रभविष्णु थी। उनके चित्रों में मान, अभिसार, मानभंग, सखी शिक्षा आदि अधिक भावात्मक एवं सरस हैं।

विद्यापति के पूर्व 'पृथ्वीराज रासो' आदि ग्रन्थों में भी रीतिकाव्य के आलोचकों ने रीतितत्व खोजने का प्रयास किया है, किन्तु उनका यह प्रयास अधिक महत्व नहीं रखता, क्योंकि केवल प्रबन्धगत रूप चित्रण और नखशिख वर्णन के आधार पर उसके रचयिता को सच्चे अर्थों में रीति कवि नहीं घोषित किया जा सकता। 'रासो' आदि प्रबन्ध ग्रन्थों में नख-शिख एवं रूप-चित्रण की

---

१ - विद्यापति : टी० कुंवर सूर्यबली सिंह, पद - १८, पृ० - १४८

योजना प्रसंगवश ही हुई है, वैसे कवि का मूल लक्ष्य नखशिख वर्णन करना नहीं है ।

विद्यापति के पश्चात् आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ` शिवसिंह सरोज ` एवं ` मिश्रबन्धु विनोद ` के आधार पर कुछ ऐसे श्रृंगारिक एवं आलंकारिक कवियों का उल्लेख किया है, जिनकी कृतियां सम्प्रति उपलब्ध नहीं हैं । उन कृतियों में चरखारी के मोहनलाल मिश्र का श्रृंगार सागर[1] तथा नरहरि कवि के साथी करनेस कवि के ` कर्णाभरण `, ` श्रुतिभूषण ` तथा ` भूपभूषण ` नामक ग्रन्थ मुख्य हैं । ` श्रृंगार सागर ` में श्रृंगार रस का और ` कर्णाभरण `, श्रुतिभूषण तथा ` भूपभूषण ` नामक ग्रन्थों में अलंकारों का विवेचन हुआ है[2]। मिश्र बन्धुओं ने मोहनलाल के ` श्रृंगारसागर ` को एक साधारण श्रेणी का रीति ग्रन्थ बतलाया है[3]। करनेस बन्दीजन के सम्बन्ध में भी किसी महत्वपूर्ण सूचना का पता नहीं चलता[4]। ठाकुर शिवसिंह ने भी करनेस के बारे में विशेष उल्लेखनीय चर्चा नहीं की है । केवल तीन ग्रन्थों का उल्लेख करने के बाद उनके दो छन्दों को उद्धृत किया है[5]।

केशव के पूर्व रीतिकवियों में कृपाराम का नाम इसलिए लिया जाता है कि इनकी ` हिततरंगिणी ` (सं० १५९८) से यह स्पष्ट आभास मिलता है कि इनसे पहले या इनके समसामयिक कवि श्रृंगार रस का वर्णन विस्तारपूर्वक करते थे । इसी कारण उन्होंने दोहे जैसे छोटे छन्द में श्रृंगाररस का निरूपण संक्षिप्त

---

१ - मोहनलाल मिश्र के ` श्रृंगार सागर ` को सम्पादित करके डा० भालचन्द्र राव तैलंग ने प्रकाशित करवा दिया, किन्तु इसकी प्राचीनता अब संदिग्ध हो गयी है और इसे १९वीं शताब्दी की रचना माना गया है ।

२ - हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० -२३२

३ - मिश्रबन्धु विनोद : प्रथम भाग, पृ० -२६३, पंचम संस्करण

४ - वही, पृ० - २८१

५ - शिवसिंह सरोज : पृ० - ३४, सप्तम संस्करण

शैली में किया। कदाचित संदिग्ध शैली को स्मरण साध्य के लिए ही इन्होंने अपनाया होगा[1]। सम्प्रति ' हिततरंगिणी ' की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों को सन्देह है। सर्वप्रथम पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने अपने ' केशवदास ' ग्रन्थ में ' हिततरंगिणी ' के रचना-काल से सम्बन्धित दोहे के आधार पर इसे परवर्ती रचना माना है[2]। ' हिततरंगिणी ' का रचना-काल विषयक दोहा इस प्रकार है :

सिधि निधि शिव मुख चन्द्र लखि माघ शुक्ल तृतियासु।
हिततरंगिणी हौं रची, कविहित, परम प्रकास[3] ।।

आचार्य पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने इस दोहे में पाठान्तर माना है और तदनुसार इसका रचनाकाल सं० १७६८ निर्धारित किया है। इसकी अप्रमाणिकता के सम्बन्ध में दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि इसमें दिन का उल्लेख नहीं है, पर दिन के उल्लेख न होने से किसी कृति की रचना-विषयक प्रमाणिकता संदिग्ध नहीं मानी जा सकती। यह तर्क इसकी अप्रमाणिकता का विशेष पुष्ट आधार नहीं है। ब्रजभाषा साहित्य के ऐसे बहुत से ग्रन्थ हैं, जिनमें तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। क्या इस आधार पर उन्हें अप्रामाणिक माना जा सकता है, प्रताप साहि कृत प्रसिद्ध रीति ग्रन्थ ' व्यंग्यार्थ कौमुदी ' के अन्त में रचना-काल विषयक जो दोहा दिया गया है, उसमें भी तिथि का उल्लेख नहीं है। क्या इस आधार पर विद्वान् उसे भी परवर्ती रचना मानते हैं[4]? ' हिततरंगिणी '

---

१ - बरनत कवि श्रृंगाररस, छन्द बड़े विस्तारि।
मैं बरन्यौ दोहान बिच, याते सुघर विचार ।।
'हिततरंगिणी' : कृपाराम, सं० जगन्नाथदास रत्नाकर, सन् १९५२

२ - केशवदास : आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, पृ० - ४०८, प्रथम संस्करण

३ - हिततरंगिणी : छं० - २०६

४ - संवत ससि बसु सु द्वै, गनि अषाढ़ को मास।
किय व्यंग्यारथ कौमुदी, सुकवि प्रताप प्रकास ।।

के सम्बन्ध में डा० हजारी[1]प्रसाद द्विवेदी और आचार्य पं० विश्वनाथ[2] प्रसाद मिश्र भी उसे परवर्ती रचना मानने के पक्ष में हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इसकी अप्रमाणिकता पर विशेष विचार नहीं कर सके, लगता है पाण्डेय जी के तर्क से वे अधिक सहमत नहीं हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पाण्डेय जी के तर्कों के आधार पर ही इसे परवर्ती काल की रचना स्वीकार करते हैं। जो भी हो, इसकी अप्रमाणिकता भी विशेष असंदिग्ध नहीं है। इसकी भाषा इतनी परिष्कृत है और नायिका भेद का विवेचन इतनी प्रौढ़ शैली में किया गया है, जिसके कारण उसकी प्रामाणिकता में सन्देह होना स्वाभाविक है। निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि पूर्ववर्ती रीति ग्रन्थों की परम्परा में इसका महत्व निश्चय पूर्वक अत्यधिक है।

सूरदास का ' साहित्य लहरी ' और ' सूरसागर ' के कुछ पद रीतिबद्ध श्रृंगारिक रचनाओं के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ' साहित्य लहरी ' में रीतिबद्धता की प्रवृत्ति इतनी अधिक मुखरित है कि उसके कारण सूर साहित्य के कुछ विद्वान् इसे सूर कृत रचना कहने में पर्याप्त सन्देह प्रकट करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ' सूरसागर ' और ' साहित्य लहरी ' में काव्यगत प्रवृत्ति की दृष्टि से इतना अधिक साम्य है कि इसे बहुत शीघ्र अप्रमाणिक रचना भी नहीं माना जा सकता। ' साहित्य लहरी ' में नानाविध अलंकारों और नायिकाओं का निरूपण कूट शैली में किया गया है। अतिशय चमत्कार एवं अलंकरणप्रियता के कारण इसकी सहज सरसता प्राय: क्षीण हो गयी है। सूर में जो केशव का अर्थगाम्भीर्य कहा जाता है, वह इसमें भलीभांति देखा जा सकता है। इसके अर्थ में इतनी अधिक दुरूहता आ गयी है कि बिना टीका के अर्थ की गहराई में उतरना आसान नहीं।

---

१ - हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, १६२

२ - हिन्दी साहित्य का अतीत : द्वितीय भाग, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ३६८

इसमें रीति तत्व इतने स्पष्टरूपेण दृष्टिगत होते हैं कि यह रचना किसी रीतिकार की प्रतीत होती है। 'सूक्ष्मालंकार' के अन्तर्गत एक क्रियाविदग्ध नायिका का उदाहरण लें—

> देखत हूं वृषभानु दुलारी ।
> नंद नंदन आवत बृज बीथिन भीर संग ले भारी ।
> सिव आनन लिखि चंद बिन्दु दैकर निज कुचन मिलाए[1]।

इस रचना से लक्षण ग्रन्थ लिखने वाले कवियों को निश्चय ही सीधी प्रेरणा मिली होगी। आश्चर्य है, सूरसागर में भी खण्डिता एवं विपरीत रति से सम्बन्धित कई पद मिले हैं। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास की बरवै रामायण के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि गोस्वामी जी ने यह रचना रहीम के 'बरवै नायिका-भेद' की प्रेरणा से लिखी है। इसी से स्थल-स्थल पर रीतिकाव्य की शृंगारिकता और अतिशय अलंकरणप्रियता दोनों एक साथ झलकती हैं। इसमें प्रयुक्त अलंकारों को देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि मानो कवि ने अलंकारों के लक्षण देखकर इसे रचा हो। रहीम कृत 'बरवै नायिका-भेद' निश्चय ही शृंगारिक परम्परा का एक उत्कृष्ट रीति-ग्रन्थ है। यद्यपि इसकी भाषा अवधी है, फिर भी नायिका भेद का ऐसा सरल एवं मधुर चित्रण अन्य ग्रन्थों में कम दृष्टिगत होता है। 'बरवै नायिका-भेद' लक्षण लक्ष्य बद्ध काव्य न होकर मात्र लक्ष्यबद्ध काव्य के अन्तर्गत आता है। इसमें जो लक्षण दिए गए हैं, वे रहीम के न होकर मतिराम कृत हैं। पर उदाहरण इतने मधुर और रससिक्त हैं कि पाठकों का हृदय उसमें सहज ही तन्मय हो जाता है। 'नगर शोभा' के अन्तर्गत रहीम ने नाना जाति की स्त्रियों का शृंगारिक ढंग से वर्णन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि देव कवि को 'रस विलास' और

---

1 - साहित्य लहरी : सूरदास कृत, भारतेन्दु द्वारा संग्रहीत, पृ० - १२-१३, प्रथम संस्करण १६८२

' जाति विलास ' के लिखने में इस ग्रन्थ से बहुत बड़ी प्रेरणा मिली होगी । ' नगर शोभा ' की अपेक्षा ' बरवै नायिका भेद ' में रीतितत्व का समावेश अधिक हुआ है । इस छोटे से छन्द में प्राप्त हृदय की रसार्द्रता का एक चित्र इस प्रकार है—

> रहत नयन के कोरवा, चितवन छाय ।
> चलत न पग पैजनियां, मग ठहराय[१] ।।

नन्ददास की ' रसमंजरी ' में नायिका भेद का विवेचन अपने उदाहरणों की सरलता के लिए इतना प्रसिद्ध नहीं है जितना लक्षणों की प्रांजलता के लिए । इसमें भानुदत्त कृत ' संस्कृत रसमंजरी ' का आधार ग्रहण किया गया है और बहुत स्थलों पर भानु की ' रसमंजरी ' का अक्षरशः अनुवाद भी कर डाला गया है । ऐसे शृंगारिक ग्रन्थ की रचना नन्ददास ने अपने एक ऐसे मित्र के आग्रह से की थी, जिसने कभी नायक-नायिका भेद नहीं सुना था[२]। इसमें नायिका भेद के साथ ही हाव-भाव हेला आदि का विश्लेषण बड़ी निष्ठापूर्वक किया गया है । कृपाराम के साथ ही लक्षण ग्रन्थ लिखने वाले लेखकों में नन्ददास की भी गणना होती है । जब कृपाराम की ' हिततरंगिणी ' निश्चय रूप से अप्रमाणित रचना मान ली जाएगी, उस समय नन्ददास कृत ' रसमंजरी ' का स्थान स्वभावतया केशव पूर्व रीति ग्रन्थों में सर्वोपरि होगा, इसमें दो मत नहीं है ।

कृपाराम की ' हिततरंगिणी ' की रचना के समय तक हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य में रीति-निरूपण के लिए अपेक्षित प्रौढ़ता ही नहीं आ गयी थी, उसके उपयुक्त वातावरण भी उपस्थित हो गया था । इस समय तक वैष्णव धर्म के व्यापक प्रभाव और प्रसार के परिणामस्वरूप निर्गुणब्रह्मवादियों

---

१ - रहीम रत्नावली ? सं० पं० मायाशंकर याज्ञिक, पृ०-४०, तृतीय संस्करण
२ - नन्ददास ग्रन्थावली : सं० ब्रजरत्नदास, पृ० - १४४

द्वारा निरूपित जटिल दार्शनिक सिद्धान्तों तथा कठोर साधना की अपेक्षा भक्ति की सरल पद्धति के प्रति लोग अधिक आकृष्ट होने लगे थे और इसे समझने-समझाने का प्रयत्न बराबर हो रहा था। यही कारण है कि वैष्णव भक्त रूपगोस्वामी ने भक्ति के स्वरूप और माहात्म्य को स्थापित करने के लिए संस्कृत में 'भक्ति रसामृतसिन्धु' जैसे मौलिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की तथा माधुर्य भक्ति के अंगरूप शृंगार रस और नायक-नायिका-भेद समेत उसके विभिन्न पक्षों की व्याख्या के निमित्त 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक एक और ग्रन्थ की रचना की। बाद में जब लोकभाषा-ब्रजभाषा के माध्यम से इस विषय को समझाये जाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी तो कृपाराम, सूर और नन्ददास-जैसे भक्तों ने प्रयत्न आरम्भ कर दिया। हमारी धारणा है कि कृपाराम ने 'हिततरंगिणी' की रचना मुख्य रूप से भक्तों द्वारा प्रयुक्त स्वकीया-परकीया-भाव को स्पष्ट करने के उद्देश्य से ही की होगी, यही कारण है कि उन्होंने इसमें सामान्या का वर्णन बहुत ही चलते ढंग से किया है; इसके भेदों का यथास्थान वर्णन करते हुए भी मनोयोग प्रदर्शित नहीं किया।

काव्यशास्त्र के साथ इस प्रकार से सम्पर्क होने के परिणामस्वरूप ये लोग सम्भवत: इतर काव्यांगों से भी परिचित हुए और अब तक मात्र भक्ति का माध्यम समझी जाने वाली कविता का इन्हें साहित्यिक महत्व भी ज्ञात हुआ। फलत: कविता के स्वरूपविधायक विभिन्न पक्षों के प्रति सचेष्ट होकर रचना करने का प्रयत्न ही नहीं हुआ, उनके विषय में चर्चा भी होने लगी। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा 'मानस' के प्रथम सोपान में विभिन्न रूपकों तथा विनम्रता-प्रदर्शन के व्याज से यह सहज ही प्रकट कर दिया गया है कि काव्यशास्त्र का उन्हें केवल ज्ञान ही नहीं था, उसके विभिन्न पक्षों के प्रति उनका निश्चित दृष्टिकोण भी था। सूरदास द्वारा 'साहित्य लहरी' में शृंगार रस की सामग्री के अतिरिक्त क्रमश: विभिन्न अलंकारों का निर्वाह भी इसी ओर इंगित करता है।

इस काल के अन्तिम चरण में कविता का प्रवेश राजदरबारों में भी दृष्टिगत होता है, जहां इसे साहित्य से ऊपर उठकर कला के रूप में ग्रहण किया गया। अतएव अब कवियों का कर्म कविता करने की अपेक्षा आश्रयदाताओं और उनके सामन्तों आदि के लिए अभिव्यक्ति के सौन्दर्यवर्द्धक उपकरणों का ज्ञान उपलब्ध कराना अधिक आवश्यक हो गया; जिससे कि वे लोग दरबारों में होने वाली काव्य- गोष्ठियों में पढ़ी जाने वाली कविताओं के गुण-दोषों की चर्चा कर अपने काव्यकला- ज्ञान का, अथवा कतिपय छन्दों की रचना कर अपनी सहृदयता का, परिचय दे सकें।

इस प्रकार रीति- निरूपण की यह प्रवृत्ति यद्यपि भक्ति के प्रखर प्रवाह की तुलना में अत्यन्त क्षीण रही- भक्ति की पूरक होकर ही आविर्भूत हुई और उसके सहारे से ही आगे बढ़ती रही, तथापि शनैः - शनैः राजदरबारों में प्रवेश करते ही यह भक्ति के अवलम्बन को छोड़कर स्वतन्त्र प्रवृत्ति का रूप धारण कर उत्तरोत्तर पुष्ट होती गयी। रीतिकाल में इसी का पुष्ट रूप दृष्टिगत होता है।

भक्तिकाल के इतर रीति- निरूपकों की तुलना में व्यापक विवेचन- क्षेत्र को ग्रहण करते हुए प्रखर पाण्डित्य, आचार्यत्व के गाम्भीर्य, स्वतन्त्र चिन्तन एवं असाधारण प्रतिभा द्वारा परवर्ती कवियों को प्रभावित करने तथा उनसे उचित सम्मान प्राप्त करने के कारण आचार्य केशव ' रीतिकाल का प्रवर्तक ' कहलाने के सहज अधिकारी कहे जा सकते हैं। केशव द्वारा रचित ग्रन्थ हैं— रसिकप्रिया (१५६१), रामचन्द्रिका (१६०१), कविप्रिया (१६०१), रतनबावनी (१६०७ ई० के लगभग), वीरसिंह देव चरित (१६०७), विज्ञानगीता(१६१०) जहांगीरजसचन्द्रिका (१६१२), नखशिख और छन्दमाला।

केशव के पूर्व ' प्रबन्ध ' तथा ' मुक्तक ' दोनों क्षेत्रों में रचनाएं हो चुकी थीं। केशवदास ने ' प्रबन्ध ' तथा ' मुक्तक ' दोनों में अपनी काव्य

रचनाएं कीं, परन्तु केशव का प्रमुख क्षेत्र ' प्रबन्ध ' ही प्रतीत होता है। उनका मुक्तक-काव्य उनके आचार्यत्व की साधना का अंग बन गया। वैसे तो केशव के प्रबन्धों पर भी रीति या परिपाटी का बहुत घना प्रभाव दिखलाई पड़ता है, सारा वस्तु-वर्णन परम्परा-मुक्त है। पर, मुक्तक तो किसी-न-किसी रीति-सिद्धान्त के उदाहरण ही हैं। वे तो शास्त्रीय अनुशासन से मुक्त नहीं हो सकते। ' रसिकप्रिया ' के मुक्तकों में से अधिकांश कृष्णकाव्य-धारा के मुक्तकों की परम्परा में आते हैं। उनमें नवरसमय घनश्याम की व्याप्ति है और राधा के प्रति भक्ति-भाव प्रकट हुआ है। ' कविप्रिया ' के मुक्तकों में विषय का वैविध्य है; कुछ प्रशस्तिपरक हैं, कुछ राम से सम्बन्धित हैं, कृष्ण से सम्बन्धित भी हैं, नीति, राजनीति, शृंगार आदि भी कुछ में हैं। इन मुक्तकों में से कुछ को केशव के प्रबन्धों में भी स्थान मिला है।

मुक्तकों की प्रेरणा यदि इन्द्रजीतसिंह और उनके रसिक परिवार से प्राप्त हुई, तो प्रबन्धों की रचना के सन्दर्भ में वीरसिंह का व्यक्तित्व केन्द्रित है। यदि प्रबन्धों में धर्म, इतिहास, राजनीति एवं साहित्यिकता का संगम है, तो मुक्तकों में रसिकवृत्ति ही कवि की कल्पना को संचालित करती मिलती है। इस प्रकार केशव के प्रबन्ध और मुक्तक, केशव के व्यक्तित्व की दो दिशाओं और युग की दो रुचियों के परिचायक हैं। केशव की रचनाओं को विषयानुसार दो भागों में विभाजित किया जा सकता है— (अ) प्रबन्धात्मक रचनाएं और (ब) काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ।

(अ) प्रबन्धात्मक रचनाएं :

आचार्यत्व के समान कवित्व की दृष्टि से भी केशव का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है। भक्तिकालीन कवियों में सम्भवतः ये पहले कवि हैं जिन्होंने ब्रजभाषा में मुक्तकों के साथ-साथ प्रबन्धकाव्य की रचना का सूत्रपात

किया है। आचार्य केशव के शुद्ध कवि-कर्म का परिचय, उनके प्रबन्धों से मिलता है। संस्कृतनिष्ठ कवि होने के नाते उनकी वृत्ति प्रबन्ध-रचना में ही विशेष रमी है। प्रबन्धों की दो धाराएं आरम्भ से चली आ रही थी : चरित काव्यधारा एवं महाकाव्यधारा। चरितकाव्य संस्कृत में भी मिलते हैं, जैसे `हर्षचरित`। पर इस धारा को अपभ्रंश या परवर्ती काल में विशेष प्रश्रय मिला। धार्मिक या राजनीतिक क्षेत्र के किसी विशिष्ट चरित्र का चित्रण ही इसमें रहता है। महाकाव्य की भांति शास्त्रीय अनुशासन का अक्षरश: पालन इसमें इतना अनिवार्य नहीं माना जाता है। `महाकाव्य` प्रबन्ध के क्षेत्र की उच्चतम उपलब्धि कही जा सकती है। इसकी रचना में कवि-प्रतिभा शास्त्रीय अनुज्ञाओं का उल्लंघन नहीं कर पाती। केशव, ने चरित और महाकाव्य दोनों ही लिखे हैं। केशव के महाकाव्यों का विषय धार्मिक है। अत: विषयानुसार केशव के प्रबन्ध काव्यों को पुन: दो भागों—(क) धार्मिक, (ख) ऐतिहासिक में विभाजित किया जा सकता है।

(क) धार्मिक रचनाएं :

आचार्य केशव द्वारा विरचित `रामचन्द्रिका` तथा `विज्ञानगीता` धार्मिक रचनाओं के अन्तर्गत परिगणित होते हैं। `रामचन्द्रिका` में रामकथा का प्रबन्धात्मक वर्णन है। `विज्ञानगीता` में प्रतीक-शैली में अध्यात्मिक विषय को प्रस्तुत किया गया है।

(१) रामचन्द्रिका :

रामचन्द्रिका रामकथा-सम्बन्धी काव्य ग्रन्थ है। पूर्वार्द्ध का कथानक व्यापक रूप से वाल्मीकि रामायण तथा तुलसीदास जी के रामचरितमानस के ही समान है किन्तु ब्यौरों में अन्तर है। प्रगाढ़ पाण्डित्य की छाप इस ग्रन्थ में

प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है। भाषा, भाव एवं अलंकार आदि सभी दृष्टियों से यह रचना उत्कृष्ट है। ग्रन्थारम्भ में गणेश-सरस्वती-वन्दना के उपरान्त कवि ने श्री रामचन्द्र जी की वन्दना की है। वंश-परिचय, रचना-काल तथा रचना का कारण स्पष्ट करके कथा का प्रारम्भ किया है। रामचन्द्र जी की उत्पत्ति के उपरान्त शैशवावस्था का चित्रण नहीं किया। महर्षि विश्वामित्र अयोध्या में आते हैं और राम एवं लक्ष्मण को साथ में ले आते हैं। वहां ताड़का का वध होता है। धनुष-यज्ञ का समाचार पाकर राम एवं लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र जी जनकपुर पहुंचते हैं। राम धनुष तोड़ते हैं और सीता जी उन्हें वरमाला पहना देती हैं। जनक की लगन-पत्रिका पाकर राजा दशरथ बारात सजाकर मिथिला में आ पहुंचते हैं और बड़े समारोह के साथ राम का विवाह हो जाता है। इस ग्रन्थ के बीच-बीच में प्रासंगिक वस्तुएं 'हनुमन्नाटक', 'प्रसन्नराघव', 'वाल्मीकि रामायण,' 'कादम्बरी' आदि से ली गई हैं। शैली में भी संस्कृत के ग्रन्थों का आश्रय लिया गया है। यदि कहीं कादम्बरी जैसी उक्तियों की झड़ी लग रही है तो अन्यत्र माघ की भाव-छाया परिलक्षित होती है। ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में कवि ने अपनी उर्वर कल्पना से अधिक काम लिया है। इसका अधिकांश कवि की उद्भावना है। उत्तरार्द्ध में दो प्रकार के प्रकरण हैं—एक तो रामकथा से सम्बद्ध और दूसरे राम-कथा से असम्बद्ध। राम-भरत-मिलाप, अवध-प्रवेश, तिलकोत्सव, राम-राज्य-वर्णन, शम्बूक-वध, सीता-वनवास, कुश-लव-जन्म, लवणासुर-वध, लव-लक्ष्मण-युद्ध, राम-सीता-मिलन, रामकृत राज्य श्री निन्दा, राम-नाम की महत्ता, चौगान, अयोध्या की रोशनी, शयनागार, छप्पन प्रकार के भोजन, वसन्त, चन्द्र, शिखनख, कृत्रिम सरिता, जलाशय, स्नान, संन्यासी, मथुरा-माहात्म्य तथा 'रामचन्द्रिका' का माहात्म्य आदि आते हैं। निश्चित रूप से केशवदास ने पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध में अधिक मौलिकता का परिचय दिया है। इस ग्रन्थ में सर्वत्र केशवदास जी

की पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। भाषा,छन्द, अलंकार सभी पर केशव का पूर्ण अधिकार है। जितने अधिक छन्दों का प्रयोग केशवदास ने इस ग्रन्थ में किया है,कदाचित् ही हिन्दी भाषा के किसी ग्रन्थ में मिलें।

रामकथा-सम्बन्धी ग्रन्थ का माहात्म्य रामकथा का ही माहात्म्य है, अतएव ग्रन्थ के अन्त में केशवदास जी ने निम्नलिखित शब्दों में `रामचन्द्रिका` के पाठ का माहात्म्य वर्णन किया है--

अशेष पुन्य पाप कलाप आपने बहाय।
विदेह राज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाय।।
लहे सुभुक्ति लोक लोक अंत मुक्त होहि ताहि।
कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचंद्र चंद्रिकाहि[१] ।।

विज्ञानगीता :

यह दार्शनिक विषय-सम्बन्धी ग्रन्थ है। अन्तस्साक्ष्य के अनुसार ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा केशवदास जी को ओड़छाधीश वीरसिंहदेव द्वारा प्राप्त हुई थी। इस ग्रन्थ में इक्कीस प्रभाव हैं। प्रथम बारह प्रभावों में विस्तारपूर्वक विवेक तथा महामोह का युद्ध वर्णित है और शेष नव प्रभावों में शिखिध्वज, प्रह्लाद तथा राजा बलि आदि के चरित्र-द्वारा ज्ञान-कथन किया गया है। यह ग्रन्थ एक रूपक के रूप में लिखा गया है। महामोह और विवेक दो राजा हैं। मिथ्यादृष्टि, महामोह की रानी है और दुराशा, तृष्णा, चिन्ता, निन्दा आदि उसकी दासियां हैं। क्रोध-कामादि महामोह के दलपति, बलात्कारी और मित्र हैं। आलस्य और रोग उसके योद्धा हैं और छल, कपट आदि दूत। दूसरी ओर बुद्धि विवेकराज की पटरानी तथा श्रद्धा, करुणा आदि अन्य रानियां हैं। दान, अनुराग, शील, सन्तोष, सम, दम आदि उसके

१- रामचन्द्रिका : उन्तालीसवां प्रभाव, पृ०- २८५, छं०- ३६

कुटुम्बी हैं। विजय, सत्संग और राजधर्म, विवेकराज के मंत्री तथा सभासद हैं, और धैर्य उसका दूत है। महामोह, विवेक का नाश करने के लिए कमरकस चुका है, अतएव दोनों में युद्ध ठनता है। काशी विवेक का प्रधान गढ़ है, जिसको जीतने के लिए महामोह दल-बल सहित प्रस्थान करता है। छल, कपट, दम्भ आदि दूतों को उसने पहले से ही काशी भेज दिया था जहां उन्होंने बहुत से लोगों को अपनी ओर कर लिया है। महामोह के विस्तृत प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए उसके द्वारा सातों द्वीपों और भारत के प्रमुख स्थानों को जीत लेने का विस्तृत वर्णन है। अन्त में वह काशी पहुंचता है, जहां दोनों सेनाओं की मुठभेड़ और घमासान युद्ध होता है। अन्त में महामोह की हार होती है और विवेक जय-श्री लाभ करता है।

इस प्रकार केशव ने एक दार्शनिक विषय को सरल बनाने का प्रयत्न किया है। यह ग्रन्थ केशव के दार्शनिक विचारों तथा किसी अंश में तत्कालीन सामाजिक स्थिति की जानकारी के लिए विशेष उपयोगी है।

(ख) ऐतिहासिक रचनाएं :

केशवदास जी के ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने हिन्दी-साहित्य के प्रत्येक काल का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रत्येक कोटि के पाठक के लिए पाठ-सामग्री प्रस्तुत की है। 'जहांगीर-जस-चन्द्रिका,' 'रतनबावनी' तथा 'वीरसिंह देव-चरित' ग्रन्थों के रूप में चारणकाल की स्मृति है।

(१) वीरसिंहदेवचरित :

यह रचना दान, लोभ और ओड़छा नगर की प्रसिद्ध विन्ध्यवासिनी देवी के संवाद के रूप में लिखी गई है। इसके द्वारा केशवदास ने अपने आश्रयदाता

वीरसिंह देव के चरित का गुण-गान किया है। ग्रन्थ में तेंतीस प्रकाश हैं। प्रथम और द्वितीय प्रकाश में दान और लोभ का विवाद वर्णित है, जिसमें दोनों अपने को महानतर सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। दूसरे प्रकाश के अन्त में ओड़छा-नरेशों के वंश का वर्णन है। तीसरे प्रकाश से चौदहवें प्रकाश तक ओड़छाधीश मधुकरशाह के पुत्रों में आपस में शक्ति बढ़ाने की स्पर्धा और भारत-सम्राट अकबर की सेनाओं से वीरसिंह देव के अनेक युद्धों का वर्णन है। अन्त में अकबर की मृत्यु और जहांगीर के सिंहासनासीन होने पर उसके द्वारा वीरसिंह देव को समस्त ओड़छा राज्य का उत्तराधिकारी बनाए जाने का उल्लेख है। पन्द्रहवें प्रकाश से तेंतीसवें प्रकाश तक वीरसिंह देव के ऐश्वर्य तथा दिनचर्या का वर्णन है, जिसके अन्तर्गत नगर, सरोवर, वाटिका, राजमहल, शयनागार, नखशिख तथा वीरसिंह देव के चौगान आदि का विस्तृत वर्णन है। ग्रन्थ के अन्तिम प्रकाशों में दान और राजा के कर्तव्य तथा राजनीति का वर्णन है। इस प्रकार यह 'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध का परिवर्धित रूप प्रतीत होते हैं।

'वीरसिंहदेव-चरित' मुख्य-रूप से वीररस-सम्बन्धी ग्रन्थ है। किन्तु प्रसंग-वश वीर से इतर रसों का भी उल्लेख हो गया है। काव्य की दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्व नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से अवश्य यह रचना महत्वपूर्ण है।

(२) जहांगीर-जस-चन्द्रिका :

यह रचना उद्यम और भाग्य के कथोपकथन के रूप में लिखी गई है। उद्यम और भाग्य दोनों ही अपने को एक दूसरे से बड़ा सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं और अन्त में विवाद-निर्णय के लिए दोनों शिव जी के पास जाते हैं। शिव जी उन्हें सम्राट जहांगीर के पास भेजते हैं। इस प्रकार दोनों आगरे जाते

हैं । इस बहाने राजधानी का वर्णन किया गया है । राजधानी देखते हुए दोनों सभा में पहुंचते हैं । इस अवसर पर जहांगीर, उसके सभासद तथा अन्य उपस्थित अधीनस्थ राजा-महाराजाओं का वर्णन किया गया है । अन्त में उद्यम और भाग्य के अपना रूप प्रकट करने पर, सम्राट दोनों का आदर-सत्कार करता है और आने का कारण जानकर निर्णय देता है कि उद्यम और भाग्य में कोई छोटा-बड़ा नहीं, दोनों ही का स्थान बराबर है । इसके बाद उद्यम, भाग्य, काजी तथा केशवदास आदि जहांगीर की प्रशंसा में छन्द पढ़ते और उसे आशीर्वाद देते हैं । यहीं ग्रन्थ समाप्त हो जाता है । रचना साधारणकोटि की है ।

(ब) काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ :

कवि-शिक्षक आचार्य के रूप में केशव सर्वांग-निरूपक आचार्य थे । साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से वे अलंकारवादी थे, और रस के क्षेत्र में वे श्रृंगारवाद के समर्थक थे । केशव के आचार्यत्व का यही सैद्धान्तिक त्रिकोण है । आचार्य केशव का कविकर्म और आचार्यकर्म, उनके साहित्य का उदाहरणांश और लक्ष्यांश इसी त्रिकोणात्मक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है । 'रीति' की दृष्टि से उन्होंने 'रसरीति' और 'काव्यरीति' के मार्गों का रूप निर्धारित किया । सर्वांग-निरूपक आचार्य के रूप में केशव का क्षेत्र-निर्वाचन उनकी और युग की अभिरुचि से नियंत्रित है । युगरुचि के साथ तत्कालीन कवियश: प्रार्थी युवकों की आवश्यकता भी केशव के आचार्यत्व को प्रभावित करती है । सामंतीय रुचि कामुक श्रृंगार-चित्रण और अलंकृत रूप-रचना की ओर थी । समस्त रीतिकालीन आचार्यत्व श्रृंगार और अलंकार के आधार-स्तम्भों पर आधारित है । अन्य विषय या तो उपेक्षित रहे या गौण रूप से

स्वीकृत । केशव के शृंगारगत आचार्यत्व पर मधुर भक्ति और शृंगार के रसराजत्व की परम्परा का प्रभाव रहा और अलंकार सम्बन्धी आचार्यत्व पर प्राचीन आचार्यों का । शृंगार-निरूपण के समय शृंगार-रीतिसिद्ध कृष्णभक्त कवियों का प्रचुर लक्ष्य साहित्य उनकी दृष्टि में था । साथ ही जो शृंगार प्रतीक इस मिली-जुली परम्परा में विकसित हुए थे, उनको स्वीकृत करना आचार्य केशव ने श्रेयस्कर समझा । केशव के व्यक्तित्व का यही सैद्धान्तिक पक्ष है । संस्कृत के व्याख्याकार आचार्यों में अन्य रीतिकालीन आचार्यों की भांति केशव का कविशिक्षक रूप नहीं उलझा । पर रस के क्षेत्र में उनको उत्तरकालीन आचार्यत्व ने उन्हें आकर्षित किया । एक प्रकार से शृंगार-रीति पर उन्होंने एक मिश्रित शास्त्र की रचना को अपना लक्ष्य बनाया । कवि-शिक्षक के रूप में सभी काव्यांगों पर उन्होंने इस महत्वाकांक्षा के साथ नहीं लिखा । काव्यशास्त्र की कृतियां तो प्रथम बार केशव की लेखनी से व्यवस्थित रूप में निःसृत हुईं । कृतियों के संक्षिप्त पर्यवेक्षण से इतना स्पष्ट हो जाता है कि सत्रहवीं शताब्दी में आचार्य केशव ने अपने शास्त्रीय पाण्डित्य और अभिरुचि से साहित्य की पुनर्योजना की ।

जहां केशव ने 'रसिकप्रिया' की रचना रसिकों को रसरीति का परिज्ञान कराने के उद्देश्य से की (रसिकन को रसिकप्रिया कीनी केसवदास) वहां 'कविप्रिया' कविशिक्षा का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ का महत्व इस बात में है कि इससे ही हिन्दी के आचार्यत्व का शुद्ध रूप में सूत्रपात हुआ । छन्द वैविध्य की दृष्टि से केशव की रामचन्द्रिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जितने अधिक छन्दों का प्रयोग केशव ने इस ग्रन्थ में किया है, कदाचित् ही हिन्दी भाषा के किसी ग्रन्थ में मिलें । कवियों को नखशिख की शिक्षा देने के लिए

केशव ने ` नखशिख ` नामक ग्रन्थ की रचना की थी ।

(क) रस विवेचन तथा नायिका भेद निरूपण-रसिकप्रिया के आधार पर :

केशव के आचार्यत्व का प्रतिष्ठापक दूसरा ग्रन्थ (रसिकप्रिया) है । इसमें मुख्य रूप से श्रृंगाररस के विभिन्न अंगों, वृत्ति तथा काव्य-दोषों का वर्णन है । ग्रन्थ में सोलह प्रकाश हैं । प्रथम प्रकाश में गणेश-वन्दना के बाद, ओड़छा-नगर वर्णन, `रसिकप्रिया ` लिखने का कारण, ग्रन्थ प्रणयन-काल आदि देने के पश्चात् नवरसों के वर्णन के साथ मुख्य विषय का आरम्भ किया गया है । नव रसों का वर्णन करते हुए केशव ने क्रमश: श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त रसों का उल्लेख किया है[1]। भरतमुनि के `नाट्यशास्त्र ` में भी नवरसों का उल्लेख इसी क्रम से किया गया है[2]। इसके बाद केशव ने ` श्रृंगार रस का लक्षण दिया है जो रुद्रभट्ट कृत श्रृंगार-तिलक के अनुसार है और संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये लक्षण से नहीं मिलता । श्रृंगार रस के भेदों संयोग और वियोग का उल्लेख-मात्र है, लक्षण नहीं दिया गया है । संयोग और वियोग के भी दो-दो उपभेद ` प्रच्छन्न ` और `प्रकाश` किये गये हैं । इन सबका आधार श्रृंगारतिलक है । इसी प्रकार विभिन्न नायकों, स्वयंदूतत्व, दर्शन के भेदों, अवस्थानुसार अष्टनायिकाओं के वर्णन, वियोग की दस दशाओं, संचारी भावों तथा मान आदि के वर्णन में भी प्रत्येक के ` प्रच्छन्न ` और ` प्रकाश ` दो भेद किए गये हैं । इन उपभेदों का उल्लेख संस्कृत के किसी आचार्य के ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में नहीं मिलता । भोजदेव ने ` श्रृंगार-प्रकाश ` नामक ग्रन्थ में ` अनुराग ` के चौसठ भेदों के अन्तर्गत दो भेद

---

१ - प्रथम श्रृंगार सुहास्यरस, करुणा रुद्र सुवीर ।
भय वीभत्स बखानिये, अद्भुत शान्त सुधीर ।। —रसिकप्रिया :छं० -१५, पृ० - ५८

२ - श्रृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानका: ।
वीभत्साद्भुत इत्यष्टौ रसा: शान्तस्तथा मत: ।। १८२ ।। नाट्यशास्त्र, पृ० - २१८

' प्रकाश अनुराग ' और ' प्रच्छन्न अनुराग ' बतलाए हैं[1]। शृंगारतिलक में संयोग एवं वियोग के प्रच्छन्न और प्रकाश भेद किए गये हैं। सम्भव है केशव को प्रच्छन्न और प्रकाश भेदों की उद्भावना के लिए इन्हीं ग्रन्थों से प्रेरणा मिली हो। विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र के अनुसार यह भेद तात्त्विक दृष्टि से कोई मूल्य नहीं रखते[2]।

केशव ने ' रसिकप्रिया ' के दूसरे प्रभाव में नायक का सामान्य लक्षण देकर उसके चार भेद बतलाए हैं, अनुकूल दक्षिण, शठ तथा धृष्ट। केशव के अनुसार अभिमानी, त्यागी, तरुण, कोक-कलाओं में प्रवीण, भव्य, क्षमी, सुन्दर, धनी, शुचि-रुचि तथा कुलीन पुरुष नायक होता है[3]। साहित्यदर्पणकार के अनुसार नायक को दाता, कृतज्ञ, पण्डित, कुलीन, क्षमावान, लोगों के अनुकरण का पात्र, रूप, यौवन और उत्साह से युक्त, तेजस्वी, चतुर और सुशील होना चाहिए[4]। भूपाल के अनुसार शालीनता, उदारता, स्थिरता, दक्षता, औज्ज्वल्य, धार्मिकता, कुलीनता, वाग्मिता, कृतज्ञता, नयज्ञता, शुचिता, मानशीलता, तेजस्विता, कलाविज्ञता, कलाविज्ञता, प्रजारंजकता आदि नायकों के साधारण गुण हैं[5]। भोज ने कुलीनता, उदारता, भाग्यशालीनता, कृतज्ञता,

---

१ - शृंगार प्रकाश : प्रकाश २२, पृ० - १३

२ - केशव की काव्यकला : उपक्रम, पृ० - ३

३ - ' अभिमानी त्यागी तरुण कोककलान प्रवीन।
भव्य क्षमी सुन्दर धनी, शुचिरुचि सदा कुलीन।।
— रसिकप्रिया : प्रकाश २, पृ० -२०, छं० -१

४ - त्यागी कृती कुलीनः सुश्री को रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता।। — साहित्यदर्पण : पृ० -८०

५ - आलम्बनं मतं तत्र नायको गुणवान पुमान्।
तद्गुणास्तु महाभाग्यमौदार्यं स्थैर्यदक्षते।। ६१।।
औज्ज्वल्यं धार्मिकत्वं च कुलीनत्वं च वाग्मिता।
कृतज्ञत्वं नयज्ञत्वं शुचिता मानशालिता।। ६२।।
तेजस्विता कलावत्वं प्रजारञ्जकतादयः।
एते साधारणाः प्रोक्ता नायकस्य गुणाः बुधैः।। ६३।।
— रसार्णव-सुधाकर, पृ० -६

रूप, यौवन, विदग्धता, शील, गर्व, सम्मान, उदारवाणी, दरिद्रानुरागिता आदि नायकों के गुण बतलाये हैं।[1] संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये गये लक्षणों से केशव के लक्षण की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि केशव ने शृंगारतिलक ग्रन्थ के आधार पर अपना लक्षण लिखा है। पूरा का पूरा लक्षण शृंगारतिलक से मिलता है। केशव के लक्षण की अधिकांश बातें साहित्यदर्पणकार के अनुसार भी हैं यथा—नायक का त्यागी, तरुण, सुन्दर, धनी, शुचिरुचि अर्थात् सुशील और कुलीन होना। कोक-कलाओं में प्रवीणता का उल्लेख साहित्य-दर्पणकार ने नहीं किया है।

` रसिकप्रिया ` के तीसरे प्रकाश में नायिकाओं के भेद बतलाए गये हैं। सबसे पहले केशव ने जाति के अनुसार नायिकाओं के चार भेद किये हैं। पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी। इन भेदों का उल्लेख संस्कृत भाषा के किसी आचार्य के ग्रन्थ में नहीं मिलता। कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में अवश्य इन भेदों का वर्णन मिलता है। अतएव स्पष्ट है कि यह भेद केशव ने उन्हीं ग्रन्थों से लिए हैं। इन चारों प्रकार की नायिकाओं के जो लक्षण आचार्य केशव ने दिए हैं वे अधिकतर ` अनंगरंग ` में दिए गये लक्षणों से मिलते हैं।

इसके बाद केशव ने नायिकाओं का विभाजन स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अन्तर्गत किया है। केशव के अनुसार स्वकीया नायिका वह है जो सम्पत्ति में, विपत्ति में तथा मरण में नायक के प्रति मन, वचन तथा कर्म से समान व्यवहार करती है।[2] केशव का यह लक्षण भूपाल के ` रसार्णव-सुधाकर `

१- महाकुलीनतौदार्यमहाभाग्यं कृतज्ञता।
रूपयौवन वैदग्ध्यशील सौभाग्य सम्पद:।। २२१ ।।
मानितौदारवाक्यत्वम् दरिद्रानुरागिता।
द्वादशेति गुणानाहुर्नायकस्याभिगामिकान्।।२३ ।।

२- सम्पति विपति जो मरण हूं, सदा एक अनुहार।
ताको स्वकीया जानिये, मन, क्रम, वचन विचार।।

तथा रुद्रभट्ट के शृंगारतिलक नामक ग्रन्थों के लक्षणों से साम्य रखता है[1]।

केशव ने स्वकीया के तीन भेद बतलाए हैं, मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा। नायिका-भेद पर लिखने वाले सभी आचार्यों ने यह भेद किए हैं। केशव ने इनका लक्षण नहीं दिया है। इसके बाद `मुग्धा` के चार उपभेद किए गये हैं, `मुग्धा` नववधू, नवयौवनाभूषिता मुग्धा, मुग्धा नवलअनंगा तथा लज्जाप्रायरति मुग्धा। इन उपभेदों के पृथक-पृथक लक्षण भी दिए गये हैं।

विश्वनाथ ने मुग्धा के पांच भेद बतलाए हैं, प्रथमावतीर्णयौवना, प्रथमावतीर्णमदनविकारा, रतिवामा, मानमृदु तथा समधिक लज्जावती[2]। विश्वनाथ ने इन भेदों के लक्षण नहीं दिये हैं किन्तु लक्षण नामों से ही प्रकट हैं। विश्वनाथ की प्रथमावतीर्णयौवना तथा केशव की नवयौवनाभूषिता एक ही है। केशव के लक्षण तथा विश्वनाथ के उदाहरण में पूर्ण साम्य है। केशव की नवलअनंगा और विश्वनाथ की प्रथमावतीर्णमदनविकारा में नाम-साम्य है किन्तु विश्वनाथ के उदाहरण से ज्ञात होता है कि दोनों लक्षण भिन्न समझते हैं। केशव का लज्जाप्रायरति तथा विश्वनाथ की समधिक लज्जावती प्राय: एक ही है। केशवदास ने विश्वनाथ के रतिवामा और मानमृदु भेदों का उल्लेख नहीं किया है किन्तु, उन्होंने मुग्धा की सुरति तथा मान का पृथक् वर्णन किया है और उनके लक्षण विश्वनाथ के भेदों `रतिवामा` तथा `मानमृदु` नामों के अनुकूल हैं। केशव के मुग्धा के भेद तथा लक्षण शृंगारतिलक से आचार्य केशव की नववधू का उल्लेख विश्वनाथ तथा रुद्रभट्ट ने नहीं किया है।

१- सम्पत्काले विपत्काले या न मुञ्चति वल्लभम्।
शीलार्जवगुणोपेता सा स्वीया कथिता बुधै:॥
— रसार्णवसुधाकर : पृ०- २१

२- प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा॥ ७१॥
—साहित्य-दर्पण, चतुर्थ संस्करण, पृ०- १०७

भूपाल ने मुग्धा के छ: भेद बतलाए हैं, नववयसा, नवकामा, रतौवामा, मृदुकोपा, सव्रीड़सुरतप्रयत्ना तथा क्रोधाद्भाषणरुदती[1]। आचार्य केशव के भेदों नवलवधू, नवलअनंगा, तथा लज्जाप्रायरति का भूपाल के भेदों नववयसा, नवकामा तथा सव्रीड़सुरतप्रयत्ना से क्रमश: नाम साम्य है। केशव के मुग्धा के सुरति तथा मान के लक्षण भूपाल के भेदों रतौवामा तथा मृदुकोपा के अनुकूल हैं।

आचार्य केशव ने ' मध्या ' नायिका चार प्रकार की बताई है, मध्यारूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा तथा विचित्र-सुरता। आचार्य विश्वनाथ ने ' मध्या ' नायिका के पांच भेद बतलाए हैं। विचित्र-सुरता, प्ररूढ़स्मरा, प्ररूढ़यौवना, ईषत्प्रगल्भवचना तथा मध्यमव्रीड़िता[2]। केशव तथा विश्वनाथ की ' सुरतिविचित्रा ' एक ही है। दोनों के उदाहरणों में भाव साम्य है। आचार्य केशव की आरूढ़- यौवना, विश्वनाथ की प्ररूढ़यौवना है। इसी प्रकार के अन्य दो भेद प्रगल्भवचना तथा प्रादुर्भूतमनोभवा क्रमश: विश्वनाथ द्वारा बतलाये भेदों ईषत्प्रगल्भवचना तथा प्ररूढ़स्मरा के अनुकूल हैं। विश्वनाथ की मध्यमव्रीड़िता का केशव ने उल्लेख नहीं किया है। भूपाल ने मध्या के तीन ही उपभेद बतलाए हैं, समान लज्जामदना, प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी तथा मोहान्त-सुरतक्षमा[3] थे, केशव के उपभेदों का आधार रुद्रभट्ट का शृंगारतिलक है।

१- मुग्धा नववय: कामा रतौवामा मृदु: क्रुधि ।
यतते रतचेष्टायांगूढ़ लज्जा मनोहरम् ।।
कृतापराधे दयिते वीक्षते रुदती सती ।
अप्रियं वा प्रियं वापि न किञ्चिदपि भाषते ।।
— रसार्णव सुधाकर, पृ०- २२

२- मध्या विचित्र सुरता प्ररूढ़ स्मरयौवना ।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीड़िता ।।— साहित्य-दर्पण, पृ०- ६६

३- समान लज्जामदना प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी ॥
मध्याकामयते कान्तं मोहान्तसुरतक्षमा। —रसार्णव सुधाकर : पृ०- २३

धैर्य गुण के आधार पर मध्या नायिका के तीन भेद – धीरा, अधीरा तथा धीरा-धीरा भी किए गये हैं। आचार्य केशव की धीरा तथा अधीरा के लक्षण विश्वनाथ के लक्षणों के अनुकूल हैं[1]। किन्तु धीरा-धीरा का केशव का लक्षण विश्वनाथ, रुद्रभट्ट अथवा भूपाल किसी से नहीं मिलता।

केशवदास ने प्रगल्भा नायिका के चार भेद बतलाये हैं, समस्तरसकोविदा, विचित्रविभ्रमा, अक्रामति नायिका तथा लब्धापति। ये भेद शृंगारतिलक के अनुसार है। केशवदास की 'समस्तरसकोविदा' का लक्षण स्पष्ट नहीं है। उदाहरण से भी लक्षण स्पष्ट नहीं होता। भूपाल ने प्रौढ़ा के केवल दो ही भेद बतलाए हैं, सम्पूर्णयौवनोन्मत्ता तथा रूढ़ मन्मथा। विश्वनाथ ने प्रगल्भा के छः भेद किए हैं, स्मरान्धा, गाढ़तारुण्या, समस्तरसकोविदा, 'भावोन्नता,' दरव्रीडा तथा आक्रांतनायका[2]। आचार्य विश्वनाथ ने लक्षण नहीं दिये हैं। केशव की समस्तरसकोविदा तथा अक्रामति नायिका का विश्वनाथ के भेदों से क्रमशः समस्तरसकोविदा तथा आक्रांतनायका से नाम-साम्य है। केशव की विचित्रविभ्रमा तथा विश्वनाथ की भावोन्नता के उदाहरण का प्रायः एक ही भाव है। केशव की लब्धापति नायिका का विश्वनाथ के किसी भेद से साम्य नहीं है।

साहित्याचार्यों ने प्रगल्भा के तीन भेद धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भी किए हैं। आचार्य केशव तथा आचार्य विश्वनाथ तथा रुद्रभट्ट के धीरा तथा धीराधीरा के लक्षणों में साम्य है[2]। स्वकीया नायिका के भेदों तथा उपभेदों का वर्णन करने के बाद केशव ने परकीया नायिका के दो भेद उन्ढ़ा (विवाहिता) और अनूढ़ा (अविवाहिता) किए गये हैं। संस्कृत के

१- प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्याधीरा दहेद्रुषा।
   धीराधीरा तु रुदितैरधीरा परुषोक्तिभिः ।। – साहित्यदर्पण : पृ० ११४

२- स्मरान्धा गाढ़तारुण्या समस्तरत कोविदा
   भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भा क्रान्तनायका – ६०
                    — साहित्यदर्पण : पृ० – ६०

सभी साहित्याचार्यों ने इन भेदों का वर्णन किया है। आचार्य केशवदास ने सामान्या अथवा कुलटा का वर्णन नहीं किया है।

'रसिकप्रिया' के चौथे प्रकाश में चार प्रकार के दर्शन का वर्णन किया गया है। साहित्याचार्यों ने विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद बतलाए हैं, पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण। सौन्दर्यादि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक तथा नायिका की समागम से पूर्व की अवस्था 'पूर्वराग' कही गई है[1]। भूपाल ने 'रसार्णव-सुधाकर' नामक ग्रन्थ में 'पूर्वानुराग' का वर्णन करते हुए श्रवण, प्रत्यक्ष दर्शन, चित्र तथा स्वप्न-दर्शन का उल्लेख किया है। आचार्य केशव ने भूपाल का ही अनुसरण करते हुए इन्हीं चार का उल्लेख किया है, इन्द्रजाल सम्बन्धी दर्शन का वर्णन नहीं किया है। आचार्य केशव ने 'श्रवण' को भी 'दर्शन' के ही अन्तर्गत माना है, जो उचित नहीं प्रतीत होता[2]।

'रसिकप्रिया' का पांचवां प्रकाश दम्पति-चेष्टा-वर्णन से आरम्भ होता है। नायिका, नायक के प्रति अपना प्रेम अनेक प्रकार से प्रकट करती है। केशव ने लिखा है कि जब नायक किसी दूसरी ओर देखता है, उस समय वह निशङ्क भाव से देखती है। जब वह उसकी ओर देखता होता है, उस समय वह अपनी सखी का आलिंगन करती है। इसी प्रकार कभी वह कान खुजलाती है, कभी आलस्य से अंगड़ाई लेती है और कभी बार-बार जमुहाई लेती है। सखी से बातें करते हुए वह बार-बार हंसती है और बहाने से नायक को अपने अंग दिखलाती है[3]।

१- श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।
दशा विशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते।। १८८, साहित्यदर्पण, पृ०-१४०

२- एक जु नीके देखिये, दूजो दर्शन चित्र। —रसिकप्रिया : पृ०- ६०
तीजे सपनो जानिये, चौथो श्रवण सुमित्र।।

३- रसिकप्रिया : पांचवां प्रभाव, छं०- ५-६

नायिका की प्रेमप्रकाशन की चेष्टाओं का वर्णन ` साहित्यदर्पण,` `कामसूत्र` तथा ` अनंगरंग ` नामक ग्रन्थों में किया गया है। केशव द्वारा बताई हुई सब चेष्टाएं इन ग्रन्थों में मिल जाती हैं। किन्तु विश्वनाथ, वात्स्यायन तथा कल्याणमल्ल ने केशव की अपेक्षा अधिक चेष्टाओं का उल्लेख किया है।

चेष्टा वर्णन के पश्चात् केशव ने नायक-नायिका के ` स्वयंदूतत्व ` का वर्णन किया है। रसार्णव सुधाकर, शृंगार-प्रकाश आदि ग्रन्थों में ` स्वयंदूतत्व ` का कोई उल्लेख नहीं है। आचार्य विश्वनाथ ने अवश्य अपने ` साहित्यदर्पण ` में दूतियों का वर्णन करते हुए स्वयंदूतत्व का भी उदाहरण दिया है[1]।

आचार्य केशव ने इसी प्रकाश में नायक-नायिका के ` प्रथम मिलन-स्थानों ` का भी वर्णन किया है। केशव ने दासी, सखी तथा धाय का घर, कोई अन्य सूना घर, भय, उत्सव व्याधि के बहाने, तथा निमंत्रण के अवसर पर अथवा वन-विहार में नायक-नायिका के मिलन का उल्लेख ` प्रथम मिलन-स्थान ` के अन्तर्गत किया है[2]। स्पष्ट ही भय, उत्सव अथवा व्याधि के बहाने तथा निमंत्रण में, नायिका-नायक का समागम विभिन्न अवसरों का समागम है और मिलन-स्थानों के अन्तर्गत नहीं आता। भूपाल तथा भोज देव ने मिलन-स्थानों का वर्णन नहीं किया है। विश्वनाथ ने अभिसारिका नायिका का वर्णन करते हुए ` अभिसरण ` (मिलन) स्थानों का वर्णन किया है। उन्होंने खेत,

---

१- साहित्य - दर्पण : पृ०- १४८, चतुर्थ संस्करण

२- जना सखी धाइ घर सूनेघर निसंचार।
अतिभय उत्सव व्याधि मिस न्यौतो वनविहार ।। २५ ।।
इनहीं ठौरन होत है, प्रथम मिलन संसार।
केशव राजा राइ को रचि राख्यो करतार ।। २६ ।।
—रसिकप्रिया : पृ०- ८२

बावली, श्मशान, देवालय, दूतीगृह, बन, नदी आदि का तट तथा मार्ग से दूर आश्रम आदि[1] स्थान बतलाये हैं किन्तु केशव द्वारा बतलाए अधिकांश स्थान आचार्य विश्वनाथ द्वारा बतलाए स्थानों से भिन्न हैं।

' रसिकप्रिया ' के छठे प्रभाव में केशव ने भावों तथा हावों का लक्षण बड़ी स्वतन्त्रता के साथ किया है। मुख नेत्र तथा वचनों से जो मन की बात प्रगट होती है वही भाव है[2]। भाव का यह लक्षण भरत के नाट्यशास्त्र से मिलता है[3]।

केशव के अनुसार विभाव वे होते हैं जिनसे संसार में अनायास ही अनेक रस प्रकट होते हैं। विभाव के दो प्रकार होते हैं आलम्बन और उद्दीपन[4]। सभी संस्कृत के आचार्यों ने केशव द्वारा बतलाए ' विभाव ' के इन भेदों को माना है। रस ' अतन ' है, वह जिसका सहारा लेता है उसे आलम्बन और जिससे उद्दीप्त होता है उसे ' उद्दीपन ' विभाव कहते हैं[5]। केशव का यह लक्षण अपने ही ढंग का है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर केशव के आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव के लक्षणों का वही भाव निकलता है जो विश्वनाथ के लक्षणों[6] का है।

१- धौत्रेंकटी भग्नदेवालयो दूतीगृहं वनम्।
गालापंथश्मशानं च नद्यादीनां तटी तथा ।। ८० ।।
एवं कृताभिसाराणां पुंश्चलीनां विनोदने।
स्थानान्यष्टौ तथा ध्वान्तिछन्ने कुत्रचिदाश्रमे ।।८३।।— साहित्यदर्पण : पृ १०५

२- आनन लोचन वचन मग, प्रगटत मन की बात।
ताहीं सों सब कहत हैं, भाव कविन के तात ।। —रसिकप्रिया : पृ० ६, छं० १

३- वागङ्गमुखरागैश्च सत्वेनाभिनयेन च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते ।। — नाट्यशास्त्रम् : चतुर्विंशोऽध्याय, श्लोक ८

४- रसिकप्रिया : पृ० - ६, छं० - ४

५- वही, छं० - ५

६- आलम्बनो नायिकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्
—साहित्यदर्पण : परि०३, कारिका सं० - १६४

विश्वनाथ के ` विभाव ` के सामान्य लक्षण का भी भाव केशव से मिलता है[१]।

आलम्बन और उद्दीपन के जो अनुकरण हैं, उन्हें केशव ` अनुभाव ` कहते हैं[२]। केशवदास का यह लक्षण स्पष्ट नहीं है। उन्होंने इसका उदाहरण भी नहीं दिया है जिससे कुछ पता चल सकता। यह लक्षण किसी भी संस्कृत के आचार्य से नहीं मिलता।

केशव ने स्थायीभावों के नाम ही गिनाए हैं, उनका लक्षण नहीं दिया है। वे आठ स्थायीभाव मानते हैं—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, निन्दा तथा विस्मय[३]। भरत ने भी इन्हीं आठों का इसी क्रम से उल्लेख किया है[४]।

केशव द्वारा स्वीकृत सात्त्विक भावों की संख्या आठ है—जिनके नाम हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, सुरभंग, कंप,वैवर्ण, अश्रु तथा प्रलाप[५]।

भरत, विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने सात्त्विक भावों की संख्या आठ ही मानी है,परन्तु उन्होंने केशव के ` प्रलाप ` के स्थान पर ` प्रलय ` का उल्लेख किया है।

केशव के मतानुसार जो भाव सभी रसों में बिना किसी नियम के उत्पन्न होते हैं, व्यभिचारी कहलाते हैं[६]। सभी आचार्यों ने ३३ व्यभिचारियों का

१- उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।
रत्याद्युद्बोधका लोके विभावा: काव्यनाट्ययो:
—साहित्यदर्पण ; परि०३, का० ६३

२- रसिकप्रिया : प्रभाव ६, छं०- ७

३- वही, छं०- ६

४- रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा। —नाट्यशास्त्रम् :अ० ६,पृ० ६१
जुगुप्साविस्मयश्चेति स्थायिभावा: प्रकीर्तिता: ।।

५- रसिकप्रिया : प्रभाव ६, छं०- १०

६- वही, छं०- ११

निरूपण किया है। केशव ने इनकी संख्या ३४ स्वीकार की है। संस्कृत आचार्यों द्वारा दिए अमर्ष, अवहित्था, असूया, सुप्ति, वितर्क और त्रास के स्थान पर केशव ने क्रमश: क्रोध, विषाद, निन्दा, स्वप्न, आशंका और भय शब्दों का प्रयोग किया है। संस्कृत आचार्यों ने ३४वें व्यभिचारी ` आधि ` का उल्लेख नहीं किया है यह केशव की निजी कल्पना है।

केशव के हाव का लक्षण स्पष्ट नहीं है। उनके विचार से शृंगार की उत्पत्ति प्रेम से होती है और शृंगार से ही हाव उत्पन्न होते हैं[1]। भरत, विश्वनाथ, धनंजय आदि से यह लक्षण नहीं मिलता। केशव ने हाव की संख्या १३ स्वीकार करते हुए हेला को भी ` हाव ` का ही भेद माना है और अयत्नज अलंकारों को छोड़ दिया है। केशव के ` मद ` और ` बोध ` का भरत और धनंजय दोनों ने ही उल्लेख नहीं किया है। आचार्य विश्वनाथ ने अठारह सात्विक अलंकारों का वर्णन किया है, जिनमें ` मद ` भी एक है। किन्तु `बोध ` का उल्लेख विश्वनाथ ने भी नहीं किया है। केशव के ` हेला ` का लक्षण भरत, धनंजय, विश्वनाथ आदि किसी आचार्य से नहीं मिलता। केशव के शेष लक्षणों का प्राय: वही भाव है जो भरत, धनंजय तथा विश्वनाथ के लक्षणों का है।

` रसिकप्रिया ` के सातवें प्रकाश में अवस्था के अनुसार नायिकाओं का वर्णन किया गया है। केशव ने अवस्थानुसार आठ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है। भानुदत्त को छोड़कर, जिन्होंने ` प्रवत्स्यत्पतिका ` नामक एक नया भेद और माना है[2] संस्कृत के भरत धनंजय, विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने अवस्थानुसार इन्हीं आठ भेदों का वर्णन किया है। इनके द्वारा दिए गये प्रत्येक भेद के लक्षणों का भी प्राय: आपस में साम्य है। केशव ने `अभिसारिका`

१- रसिकप्रिया : प्रभाव ६, छं०- १५

२- प्रवत्स्यत्पतिकाऽपि नवमी नायिका भवितुमर्हति।
—रसमंजरी : पृ०- १५१

का विवरण देते हुए स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अभिसार का लक्षण अलग-अलग दिया है। इसका वर्णन भरत, रुद्रभट्ट तथा विश्वनाथ को छोड़कर किसी आचार्य ने नहीं किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि केशव की अष्टनायिकाओं के वर्णन का आधार नाट्यशास्त्र ही है। परन्तु स्वकीया के अभिसार का लक्षण शृंगारतिलक के अनुसार है, परन्तु परकीया के अभिसार का लक्षण केशव का अपना है। वे भरत तथा विश्वनाथ द्वारा दिए लक्षणों से नहीं मिलते।

केशव ने गुणों के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद उत्तमा, मध्यमा और अधमा बतलाए हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र में इसका वर्णन किया है परन्तु उनके लक्षण केशव से भिन्न हैं। भोज, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि ने उत्तमा, मध्यमा, अधमा का केवल उल्लेख ही किया है, उनके लक्षण नहीं दिए हैं। केशव के लक्षण रुद्रभट्ट के शृंगारतिलक के अनुसार है। इस प्रकार केशव ने नायिकाओं के ३६० भेद स्वीकार किए हैं।

सातवें प्रभाव के अन्त में केशव ने अगम्या स्त्रियों का वर्णन किया है। अगम्या का वर्णन संस्कृत के आचार्यों के ग्रन्थों में नहीं मिलता। केशव ने अगम्या-वर्णन के लिए कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों को ही अपना आधार बनाया है।

' रसिकप्रिया ' के आठवें प्रकाश में विप्रलम्भ शृंगार के सामान्य लक्षण का परिचय देकर केशव ने विप्रलम्भ शृंगार के चार भेदों, पूर्वानुराग, करुण, मान और प्रवास का उल्लेख किया है। इसका आधार रुद्रभट्ट का शृंगारतिलक है। केशव का मत है कि देखने अथवा सुनने से नायक-नायिका एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर हो जाते हैं और फिर मिलाप न हो सकने पर दस दशाओं को प्राप्त होते हैं। इन दस दशाओं के नाम तथा लक्षण भरत तथा रुद्रभट्ट के अनुसार ही हैं।

नवें प्रभाव में विप्रलम्भ के द्वितीय भेद मान तथा उसके तीन भेदों— गुरु, लघु तथा मध्यम का विवेचन है। इसका आधार रुद्रभट्ट का शृंगारतिलक है। केशव ने नायक में भी ` मान ` का होना स्वीकार किया है और उसके अलग से लक्षण भी दिए हैं जबकि रुद्रभट्ट ने केवल नायिका के मान का वर्णन किया है।

दसवें प्रभाव में मान-मोचन के उपायों तथा मान की रीति का विवरण दिया गया है। यह पूरा प्रभाव शृंगारतिलक के आधार पर वर्णित है।

ग्यारहवें प्रभाव में करुण तथा प्रवास विप्रलम्भ का निरूपण किया गया है इसका आधार भी शृंगारतिलक ही है। ` रसिकप्रिया ` के बारहवें प्रभाव में सखी- निरूपण है। इसका उल्लेख आचार्य विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण तथा कामशास्त्र- सम्बन्धी ग्रन्थों में दूती के प्रसंग में मिलता है। केशव ने सखियों के कुछ भेद तो शृंगारतिलक से तथा कुछ ` अनंगरंग ` से लिए हैं[1]।

रसिकप्रिया के तेरहवें प्रकाश में सखी- जन कर्म का निरूपण है। इस वर्णन का आधार भी शृंगारतिलक ही है। परन्तु केशव ने प्रत्येक कर्म के उदाहरण भी दिए हैं जो उनका अपना है।

चौदहवें प्रकाश में हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स,

१- मालाकारवधू: सखी च विधवा धात्री नटी शिल्पिनी,
सैरन्ध्री प्रतिवेशिकाऽथ रजकी दासी च सम्बन्धिनी ।
बाला प्रव्रजिता च भिक्षुवनिता तक्रस्य विक्रेतिका,
मान्या कारुवधूर्विदग्धपुरुषै: प्रेष्या इमा दूतिका: ।।
—अनंगरंग, श्लोक १६, पृ० - ४५

अद्भुत तथा सम (शान्त) नामक रसों का वर्णन है।

पन्द्रहवें प्रभाव में वृत्तियों का वर्णन है। इनका आधार शृंगारतिलक है।

सोलहवें प्रभाव में अनरस (रस-दोष) का वर्णन है। केशव ने अनरस के पांच प्रकार- प्रत्यनीक, नीरस, विरस, दुःसंधान तथा पात्रादुष्ट माने हैं। इन पांचों का उल्लेख रुद्रभट्ट ने शृंगारतिलक में किया है। इन पांचों के केशव ने लक्षण और उदाहरण दिए हैं जबकि रुद्रभट्ट ने " विरस " को छोड़कर शेष सभी के केवल उदाहरण दिए हैं।

अध्याय : दो

मौलिकता अर्थ एवं स्वरूप- विवेचन

मौलिकता : अर्थ एवं स्वरूप-विवेचन

प्रसिद्ध संस्कृत कोशकार वी० एस० आप्टे ने अपने कोश में मौलिक शब्द का अर्थ 'तत्स्वरूप' 'मुख्य एवं अनुत्तम' माना है। प्रकारान्तर से मौनियर विलियम्स ने मौलिक शब्द 'मूलोत्पादक,' 'वंशादि मूल से गृहीत' आदि अर्थों में ग्रहण किया है। किन्तु इधर सन् १९४२ में अमेरिका के प्रकाशित वेब्स्टर कृत प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश में मौलिकता का अर्थ उपर्युक्त दोनों कोशों से बहुत कुछ भिन्न है। वेब्स्टर महोदय के अनुसार मौलिक शब्द का अर्थ 'विचार में स्वतन्त्र एवं सृजनात्मक' तथा एक सामान्य रीति होता है[१]। बृहद् अंग्रेजी कोश में मौलिक शब्द का अर्थ रूप और शैली में भव्य तथा सर्वथा नवीन दिया गया है[२]। वस्तुतः कोशकारों का यह अर्थ समष्टि रूपेण विज्ञान एवं साहित्य दोनों की मौलिकता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। किन्तु विज्ञान एवं साहित्य के क्षेत्र में सदैव मौलिकता का अर्थ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न अर्थ में ग्रहण किया जाता रहा। विज्ञान में जहाँ मौलिकता से अभिप्राय केवल नवीन उद्भावना का ही है, वहाँ साहित्य में दृष्टिकोण एवं विवेचन की नवीनता ही उसके लिए अपेक्षित रहती है[३]।

(क) भाव सादृश्य एवं अर्थापहरण :

संस्कृत साहित्य के मान्य आचार्यों ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में काव्य की

१- न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी : वेब्स्टर, द्वितीय भाग

२- अंग्रेजी हिन्दी कोश : डा० हरदेव बाहरी, प्रथम संस्करण, पृ०-९८३

३- रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता : डा० नगेन्द्र, पृ०-२७७

मौलिकता की बड़ी सूक्ष्म एवं गम्भीर विवेचना की है। शताब्दियों पूर्व आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त और राजशेखर आदि द्वारा विवेचित, आलोचित एवं प्रतिपादित मौलिकता विषयक सुदृढ़ सिद्धान्त आज भी सुग्राह्य एवं मान्य है। मौलिकता के सन्दर्भ में आनन्दवर्धन ने अपने `ध्वन्यालोक` ग्रन्थ में `भाव साम्य` का विश्लेषण करते समय कई महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया है, जिनसे हिन्दी रीतिकाव्य की मौलिकता विषयक फैली हुई भ्रान्तियों का सम्यक् निराकरण हो सकता है। उन्होंने स्पष्ट उद्घोषणा की है— जहां नवीन स्फुरण होने वाले काव्यार्थ (काव्य वस्तु) में पुरानी (प्राचीन कवि निबद्ध कोई) वस्तु आदि की रचना के समान निबद्ध की जाती है, वह निश्चित रूप से दूषित नहीं होती, यह स्पष्ट ही है[1]। इसी प्रकार जो प्राचीन भाव को अपनी निराली नूतनता द्वारा चमत्कृत कर दे, उन्हें भी आनन्दवर्धन मौलिक कवि की कोटि में रखना चाहते हैं—

> यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किंचित
> स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते।
> अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्
> सुकविरूपनिबध्नन्निन्द्यतां नोपयाति[2]।।

अर्थात् जहां लोगों को (सहृदयों को) यह कोई नई सूझ (स्फुरण) है, इस प्रकार की अनुभूति होती है (नई या पुरानी) जो भी हो, वही वस्तु रम्य (कहलाती) है। पूर्व छाया से युक्त होने पर भी उसी प्रकार की वस्तु का वर्णन करने वाला कवि निन्दनीयता को प्राप्त नहीं होता। राजशेखर ने `काव्यमीमांसा` नामक ग्रन्थ में `पुरानी उक्तियों` के संस्कार पर पर्याप्त बल दिया है। उनके

१- ध्वन्यालोक चतुर्थ उद्योत : टी० आचार्य विश्वेश्वर, पृ०- ३६१

२- वही, पृ०- ३६२

अनुसार प्राचीन कवियों ने कुछ अछूता नहीं छोड़ा, अत: नवीन कवियों को पुरानी उक्तियों का संस्कार करना चाहिए[1]।

आचार्य अभिनव गुप्त ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा स्थापित सिद्धान्तों की मूल प्रतिष्ठा तथा उनकी प्रकृत विवेचना में भी मौलिक सिद्धान्तों की स्थापना जैसा फल माना है—

पूर्व प्रतिष्ठापितयोजनासु मूल प्रतिष्ठाफलमामनन्ति

इस दृष्टि से केवल शास्त्रया काव्य के वे ही आचार्य उद्भावक आचार्य नहीं माने जा सकते, जिन्होंने नवीन सिद्धान्तों को जन्म दिया, अपितु पूर्व विवेचित विषयों का अपने ढंग से आख्यान तथा पुनराख्यान करने वाले गम्भीर विचारक आचार्य भी इसी कोटि में आते हैं[2]।

आनन्दवर्धन और राजशेखर द्वारा विवेचित मौलिकता विषयक सिद्धान्त की श्लाघा आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र ने भी की है,उनके अनुसार—इस परिष्कार को भी, आनन्दवर्धन तथा राजशेखर ने कवि प्रतिभा के रूप में स्वीकृत किया है। शब्द भी वे ही रहते हैं, अर्थ विभूति या काव्य विषय भी वही रहता है, अन्तर केवल कहने के ढंग में हो जाता है[3]।

१- पुराणकविक्षुण्णो वर्त्मनि दुरापमस्पृष्टं वस्तु, ततश्च सदैव संस्कर्तुम प्रयतेत—
   काव्य मीमांसा, द्वादशोध्याय:; टी० डा० गंगासागर राय, पृ०- १५६

२- रसमीमांसा : डा० नगेन्द्र, पृ०- १७०

३- त एव पदविन्यासास्ता एवार्थ विभूतय:। तथापि नव्य भवति काव्यं ग्रन्थ
   कौशलता—बिहारी से उद्धृत; आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र; पृ०- ६८

(ख) राजशेखर के अनुसार मौलिक कवि :

रचना की मौलिकता की दृष्टि से राजशेखर ने चार प्रकार के मौलिक कवि माने हैं— (१) उत्पादक कवि, (२) परिवर्तक कवि, (३) आच्छादक कवि (४) संवर्गक कवि[१]। उत्पादक कवि वह है जो अपनी प्रतिभा के बल से काव्य में नूतन अर्थवत्ता का समावेश करता है। परिवर्तक कवि प्राचीन कवि के भावों में परिवर्तन करके अपना बना लेता है। आच्छादक कवि उसे कहते हैं जो दूसरे की उक्ति छिपाकर तत्सदृश्य उक्ति द्वारा अपनी रचना का प्रचार करता है और संवर्गक कवि राजशेखर की दृष्टि में अत्यन्त हीन माना गया है। यह चोर एवं क्रीत सदृश होता है। मौलिकता की दृष्टि से उत्पादक कवि ही श्रेष्ठ माना गया है। अन्य तीनों प्रकार के कवियों में मौलिकता का अंश अधिक नहीं होता। इसी प्रकार राजशेखर ने अर्थापहरण से सम्बन्ध रखने वाले कवियों का भी विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है।

वास्तव में भाव सादृश्य एवं अर्थापहरण यदि काव्यगत उक्ति के सौन्दर्यवर्धन में योग देता है तो वह मौलिकता की कोटि में रखा जा सकता है। भाव साम्य के औचित्य के सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र के विचार अधिक तर्कपुष्ट हैं। उनके अनुसार भाव साम्य तीन प्रकार से होता है— (१) समान मानसिक परिस्थितियां, संस्कार, विचार पद्धति एवं सामाजिक वातावरण के कारण, (२) दो या दो से अधिक कवियों द्वारा पूर्ववर्ती भावों को ग्रहण किए जाने के कारण, (३) पूर्ववर्ती साहित्य के गम्भीर अध्ययन द्वारा संस्कार ग्रहण करने के कारण[२]।

१-उत्पादक: कवि: कश्चित्कश्चिच्च परिवर्तक:।
आच्छादकस्तथा चान्यस्तथा संवर्गको पर: ।।
काव्यमीमांसा : राजशेखर; टी० डा० गंगासागर राय, पृ०-१५८

२- रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता : डा० नगेन्द्र, पृ०-२७८

समान मनःस्थिति के सम्बन्ध में बाबू राधाकृष्ण दास ने भारतेन्दु बाबू द्वारा रचित एक ऐसे श्रृंगारिक कवित्त की चर्चा की है, जिसका भाव किसी प्राचीन कवि के कवित्त से मिलता था,[1] पर उत्तरवर्ती कवि ने पूर्ववर्ती कवि की रचना देखी है, इसमें फिर भी पूर्ण सन्देह है। तथ्यतः समान मनःस्थिति के कारण कभी-कभी बहुत सी समानान्तर प्रतीत होने वाली रचनाओं में एक ही प्रयास और एक ही अन्तः प्रेरणा लक्षित होती है। किन्तु इधर भाव सादृश्य अथवा दो कवियों द्वारा पूर्ववर्ती भावों के ग्रहण किए जाने के सम्बन्ध में प्रसिद्ध आलोचक पण्डित कृष्णबिहारी मिश्र ने बहुत उत्तम ढंग से विचार किया है। उन्होंने भाव सादृश्य को तीन कोटियों में विभाजित किया है— (१) सौन्दर्य सुधार, (२) सौन्दर्य रक्षा, (३) सौन्दर्य संहार[2]। प्रथम दो को साहित्य मर्मज्ञों ने अच्छा बतलाया है। इन दोनों में भी सौन्दर्य-सुधार की भूरिशः श्लाघा होती है और अन्तिम अर्थात् ' सौन्दर्य संहार ' को ही साहित्यिक चोर बतलाया गया है। पण्डित कृष्णबिहारी मिश्र का यह विभाजन नया नहीं है, वरन् यहां आनन्दवर्धन और राजशेखर के ही विचारों का प्रकारान्तर से उल्लेख किया गया है। रीति युग की काव्यगत मौलिक चेतना से असहमति व्यक्त करने वाले आलोचकों ने रीति कवियों पर भाव साम्य और अर्थापहरण का बुरी तरह से दोषारोपण किया है। उनके ऐसे दोषारोपण का उत्तर पण्डित पद्म सिंह शर्मा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ' बिहारी की सतसई ' में बहुत पहले दे दिया है। वस्तुतः भावसादृश्य, अर्थापहरण और मौलिक उद्भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए समग्र रीतिकाव्य का विवेचन तीन दृष्टियों से करना अधिक तर्क संगत होगा—

१- राधाकृष्ण ग्रन्थावली : सम्पा० - डा० श्यामसुन्दर दास, पृ० - ३४७

२- देव और बिहारी : पं० कृष्णबिहारी मिश्र, चतुर्थ संस्करण, पृ० - ६७

(१) रीति कवियों की काव्यशास्त्रीय विवेचनगत नवीन उद्भावनाएं
(२) रीति कवियों द्वारा प्रस्तुत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं फारसी - उर्दू की उक्तियों के अनुवाद एवं भावानुवाद
(३) रीति कवियों द्वारा नये- नये सन्दर्भों में विन्यस्त परम्परागत समस्त काव्य रूढ़ियां

इस प्रकार रीति काव्य के स्वरूप का विवेचन अधिक सन्तुलित एवं व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत हो सकेगा । यद्यपि यह सत्य है कि पूर्ववर्ती उक्तियों का अविकल अनुवाद या भावानुवाद रीति कवियों की मौलिकता के समक्ष एक प्रश्नवाचक चिह्न लगा देता है, पर पुरानी उक्तियों में अपनी सहज रसग्राहिता का समावेश करते हुए इन रीति कवियों ने रस- चयन में सजग उस मधु-मक्खी की कुशलता व्यक्त की है,जिसके कारण स्वाद एवं गुण दोनों में अप्रतिम और पूर्व आकलित पुष्परस से भिन्न मधु जैसी रसात्मकता सहज ही आ गई है । इस तथ्य को हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है ।

(ग) प्रतिभा एवं मौलिकता :

भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने प्रतिभा को एक लोकोत्तर शक्ति के रूप में अभिहित किया है[१] और कवि प्रतिभा के आधार पर ही उन्होंने किसी रचना की मौलिकता के न्यूनाधिक्य अंश का पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है । यह कहना अधिक असंगत न होगा कि काव्य की मौलिक चेतना का प्रादुर्भाव एक विशिष्ट जन्म नक्षत्र में होता है,[२] जिस नक्षत्र में जन्म लेकर कवि या कलाकार अपनी सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा लोकप्रियता प्राप्त करता है । भारतीय मनीषियों ने प्रतिभा

१- वक्रोक्ति जीवितम् : स० एस०के० डे० : अंग्रेजी भूमिका से, पृ०- १३,द्वि०सं०
२- सक्ति कवित्त बनाइबेकी, जिन जन्म- नक्षत्र में दीनीं विधातें ।
काव्य निर्णय : आचार्य भिखारीदास, सं० पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी,पृ०-६,द्वि०सं०

का कारण इस जन्म के संस्कार के साथ ही पूर्व जन्म का संस्कार भी माना है। संस्कृत काव्यशास्त्र में स्वयं कुंतक ने पूर्व जन्म के संस्कार और इस जन्म के संस्कार को ही प्रतिभा का मूल कारण बतलाया है[1]। इसके अतिरिक्त भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट, भट्टतौत ने प्रतिभा को नये- नये अर्थों के उन्मेष में समर्थ होने वाली प्रज्ञा के रूप में माना है[2]। नये- नये अर्थों से उनका अभिप्राय मौलिकता ही है, यह पूर्णतया स्पष्ट है। पुन: काव्य- सृजन की प्रेरणा प्रतिभा के अभाव में कथमपि सम्भव नहीं। प्रतिभा अन्त:करण का वह लोकोत्तर आलोक है, जिसके कारण समस्त रचना मौलिकता के सौन्दर्य से जगमगा उठती है। भारतीय काव्यशास्त्रियों में रुद्रट की व्याख्या अधिक प्रांजल और सुबोध है। उन्होंने प्रतिभा को एक ऐसी शक्ति माना है, जिससे चित्त के समाहित होने पर अभिधेय अर्थ अनेक प्रकार से स्फुरित होता है और कमनीय पदों द्वारा वह अभिव्यक्त होता है[3]।

अंग्रेज आलोचक ग्रियर्सन ने प्रतिभा शक्ति के अभाव में मौलिकता को स्वीकार नहीं किया। उनके विचार से यदि कवि प्रतिभाशाली है और उसमें मौलिक रचना की शक्ति है तो उसे अधिकार है कि वह दूसरों की रचना का उपयोग कर ले— साहित्य में यह एक नियम- सा हो गया है कि यदि कवि यह दिखा सके कि उसमें मौलिक रचना की प्रतिभा है तो उसे अधिकार है कि वह औरों की रचनाओं को इच्छानुसार व्यवहार में लाए[4]।

१- प्राक्तनाद्यतन संस्कार परिपाक प्रौढ़ा
प्रतिभा काचिदेव कवि शक्ति।
वक्रोक्ति जीवितम् : सम्पा०- एस० के० डे, द्वि०सं०, पृ०- ४६

२- प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता
तदनु प्राणनाजीवद्वर्णना निपुण: कवि:।
काव्यानुशासन : हेमचन्द्र, पृ०- ३ पर उद्धृत

३- भारतीय साहित्यशास्त्र : आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्र०सं०, पृ०-३४०

४- देव और बिहारी : पं० कृष्णबिहारी मिश्र; पृ०- २८३ से उद्धृत

पाश्चात्य जगत के अन्य विद्वानों में कान्ट और कॉलरिज ने प्रतिभा को ` कल्पना ` (इमैजिनेशन) के रूप में ग्रहण किया है ।

(घ) मौलिकता विषयक पाश्चात्य दृष्टिकोण :

पश्चिम के आलोचकों ने भी मौलिक तत्व की पर्याप्त विवेचना की है, यह उनके आलोचनात्मक ग्रन्थों से स्पष्ट है । शास्त्रीयता एवं परम्परा का अनुगत भी टी० एस० ईलियट ने मौलिकता को परम्परा- सापेक्ष माना है । उनकी दृष्टि में परम्परा से विच्छिन्न मौलिकता का मूल्य सर्वथा नगण्य है । उसने अपने प्रसिद्ध निबन्ध ` परम्परा और वैयक्तिक प्रतिभा ` में दो तथ्यों की ओर स्पष्ट संकेत किया है—

(१) परम्परा रिक्थ रूप में नहीं मिलती, इसे श्रम पूर्वक अर्जित करना पड़ता है ।

(२) इस परम्परा के मूल में एक ऐतिहासिक चेतना (हिस्टोरिकल सेन्स) संग्रथित रहती है ।

कोई भी कलाकार परम्परा की समग्र मान्यताओं को आत्मसात् कर लेने के पश्चात् ही उसके रूढ़ि एवं गलित अंश को हटाकर मौलिकता की नवीन कड़ी जोड़ सकेगा । यही कारण है कि ईलियट ने परम्परा को अधिक महत्व दिया है और उसे एक व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है[१]। परम्परा का अर्जन एकनिष्ठ साधना द्वारा

१- Tradition is a matter of much wider significance. It can not be inherited, and if you want it you must obtain it by great labour. It involves, in the first place , the historical sense, which we may call nearly indespensable to any one who would continue to be a poet beyond his twenty fifth years - -'.

T. S. Eliot's Selected Essays Page 14.

परम्परा का अर्जन एकनिष्ठ साधना द्वारा ही सम्भव है और यही साधना एक ओर प्राचीनता के मोह और दूसरी ओर नवीनता की सजगता में उसे बांध रखती है— भूत और वर्तमान के सन्तुलन को बनाए रखती है। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डा० नगेन्द्र ने भी टी० एस० ईलियट की भांति अपने पारम्परिक मोह को उन्मुक्त भाव से व्यक्त किया है—

यद्यपि मौलिकता चिन्तन का सर्वाधिक स्पृहणीय गुण है, फिर भी विद्या के साधक को अन्य लोगों की भांति मौलिकता के लोभ को भी संयत करने का प्रयत्न करना चाहिए, उसे कभी न भूलना चाहिए कि मौलिकता की सिद्धि परम्परा की श्रद्धापूर्ण स्वीकृति के द्वारा ही सम्भव है[१]। जार्ज बर्नार्ड शा ने परम्पराविहीन मौलिकता को एक जन्तु विशेष की संज्ञा दी है[२]। जेम्स रसेल लावेल ने एक स्थल पर लिखा है कि जो कवि नितान्त मौलिक बनने की कल्पना करता है, उसकी रचना में सिवा विचित्रता के और कुछ न होगा[३]।

पश्चिम में कवि के सौन्दर्य- बोध और उसकी काव्य-चेतना के धरातल का मूल्यांकन करने के लिए वहां की प्राचीन परम्पराओं का ज्ञान ऐतिहासिक आलोचना की अपेक्षा सौन्दर्यवादी समीक्षा का एक सिद्धान्त समझा जाता है। टी० एस० ईलियट महोदय ने कवि की मौलिक चेतना एवं उसकी सौन्दर्यवादी दृष्टि के सम्यक् अनुशीलन के लिए इसको अधिक महत्व प्रदान किया है। उसकी दृष्टि में

१- हिन्दी अलंकार साहित्य : प्राक्कथन; डा० नगेन्द्र, पृ०- ६

२- बिहारी का नया मूल्यांकन : डा० बच्चन सिंह; पृ०- १६

३- If a poet resolves to be original, it will end commonly in his being merely peculier_____

— James Russel Lowell—On Wordsworth

किसी भी कवि अथवा कलाकार का पूर्ण महत्व अपने आप में कुछ भी नहीं है,उसका महत्व, उसकी विशेषता पूर्व कवियों और कलाकारों की सापेक्षिकता में ही आंकी जा सकती है। आप निरपेक्षत: उसका मूल्यांकन नहीं कर सकते। उसके वैषम्य एवं साम्य के पूर्ण परीक्षण के लिए आपको उसे पूर्व कवियों के मध्य रखना होगा। मैं इसे ऐतिहासिक ही नहीं, सौन्दर्यवादी समीक्षा के एक सिद्धान्त के रूप में मानता हूं[१]।

निष्कर्षत: पाश्चात्य साहित्य में मौलिकता का विवेचन प्राय: परम्परा के सन्दर्भ में किया गया है।

(ङ) रीति साहित्य की मौलिकता के सम्बन्ध में हिन्दी समीक्षकों के विचार

हिन्दी के आधुनिक आलोचकों में सर्वप्रथम पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने ही मिश्रबन्धुओं द्वारा निरूपित हिन्दी रीतिशास्त्र की मौलिकता को निराधार बतलाया। पर रीति काव्य के कलात्मक सौन्दर्य की मौलिकता को उन्होंने समस्त संस्कृत काव्य के लक्षण ग्रन्थों में बिखरे हुए उदाहरणों की तुलना में बहुत अधिक उत्तम माना[२]। शुक्ल जी की इस मान्यता को उनके पश्चात् आने वाले आलोचकों— आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और कृष्णशंकर शुक्ल ने दृढ़तापूर्वक अपनाया।

१- No poet ,no artist of any art hashis complete meaning alone, this significance, his appreciation is the appreciation of his relation to the dead poets and artists, you can not value him alone you must set him for contrast and comparision among the dead. I mean this as a parinciple of aesthetic, not merely as historical, criticism.

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ०-

आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी हिन्दी काव्यशास्त्रीय मौलिकता को कुछ विशेष स्थान नहीं देते। उनके विचार से काव्यनिरूपण का सच्चा स्वरूप कुछ बिगड़ सा चला। हिन्दी के रस निरूपण वाले ग्रन्थों में रचयिताओं ने अपने ही उदाहरणों से उसकी पूर्ति की, उन्होंने यह नहीं समझा कि लक्षण ग्रन्थों के लिए आधारभूत पूर्ववर्ती लक्ष्यग्रन्थ हुआ करते हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण हिन्दी में तर्कबद्ध शैली चली ही नहीं और इस ओर नई बात ढूंढ़ निकालने या प्रस्तुत विषय का विवेचन करने की रुचि ही नहीं हुई। संस्कृत से ही पका-पकाया माल मिल जाने के कारण भी उन्होंने अपना कवित्व मात्रदिखलाने का प्रयत्न किया, कोई नया मार्ग खोजने की चेष्टा नहीं की[१]। आचार्य मिश्र के इस कथन से दो मुख्य तथ्य हमारे समक्ष आते हैं—

(१) लक्षण ग्रन्थों के आधारभूत लक्ष्य ग्रन्थ होते हैं, जिनका हिन्दी रीति ग्रन्थों में पूर्ण अभाव है।

(२) हिन्दी में संस्कृत काव्यशास्त्र की भांति तर्कबद्ध शैली का प्रचलन नहीं हुआ।

आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र के पश्चात् पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल ने अपनी इसी प्रकार की धारणा 'केशव की काव्यकला' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार व्यक्त की है—

'रीति के अनुसार ग्रन्थ बनाने वाले कवियों ने हिन्दी साहित्य का अध्ययन कर तथा उसकी प्रकृति को परखकर ग्रन्थ बनाना प्रारम्भ नहीं किया। वे संस्कृत के किसी आचार्य का ग्रन्थ अपने सामने रख लेते थे और उसका अनुवाद अथवा भावानुवाद प्रस्तुत कर देते थे। हिन्दी में जितने रीति के अनुसार रचना करने वाले हुए सब एक प्रकार से अनुवादक थे। उनके ग्रन्थ, उनकी स्वातन्त्र्य उद्‌भावना

१- पद्माकर पंचामृत : आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र; पृ०- ५४

अथवा सूक्ष्म बुद्धि के फलस्वरूप न होते थे[1]। शुक्ल जी के इस गद्यांश से अधोलिखित तथ्य उपलब्ध होते हैं—

(१) रीति ग्रन्थों के रचयिताओं को हिन्दी की प्रकृति का ज्ञान नहीं था।

(२) वे संस्कृत के किसी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ को लेकर उसका अनुवाद अथवा भावानुवाद कर देते थे।

(३) उनके ग्रन्थ स्वतन्त्र उद्भावना एवं सूक्ष्म बुद्धि के परिणाम न थे।

पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल ने उपर्युक्त अंशों में रीति ग्रन्थों के शास्त्रीय पक्ष की नवीन उद्भावना पर ही विचार किया है। रीति ग्रन्थों की कवित्वगत मौलिकता के सम्बन्ध में इसमें कुछ भी विचार नहीं किया गया, यह पूर्णतया स्पष्ट है।

ब्रजभाषाविद् श्री प्रभुदयाल मीतल ने काव्यशास्त्रीय विवेचना की चर्चा तो नहीं की, किन्तु नायिका भेद की संकुचित परिधि में प्राप्त होने वाली मौलिकता का उल्लेख बड़ी निष्ठापूर्वक किया है। उनका यह विचार द्रष्टव्य है— 'मेरी दृष्टि में नायिका भेद का महत्व विशेषतया उसके काव्य सौन्दर्य के कारण है। इस दृष्टि से इस विषय पर विचार करने से ज्ञात होगा कि नायिका भेद पर कवियों ने जिन टकसाली मुक्तक छन्दों की रचना की है, उनमें काव्यकला के समस्त गुण विद्यमान हैं। उनके सरस कवित्व और काव्य-सौष्ठव की समता अन्यत्र मिलना कठिन है। संस्कृत साहित्य के कवि भी इस विषय में ब्रजभाषा कवियों से पीछे रह गये हैं। वास्तव में काव्यशास्त्र का यही एक ऐसा विषय है जिसके कथन में ब्रजभाषा के कलाकार अपने अग्रज संस्कृत कवियों को भी बहुत पीछे छोड़ गये हैं[2]।' मीतल जी के इस कथन से अधोलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

१- केशव की काव्यकला : पं० कृष्णशंकर शुक्ल, तृतीय संस्करण, पृ०-

२- ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद : श्री प्रभुदयाल मीतल; प्राक्कथन; द्वितीय संस्करण, पृ०- ३

(१) नायिका भेद का महत्व उसके काव्यगत सौन्दर्य के कारण है।

(२) इस रचना में काव्य-कला के समस्त गुण विद्यमान हैं।

(३) इस दिशा में ब्रजभाषा के कवि—अपने अग्रज संस्कृत कवियों से भी आगे बढ़ गये हैं।

डा० नगेन्द्र, डा० सत्यदेव चौधरी ने भी काव्यशास्त्रीय मौलिकता की अपेक्षा ब्रजभाषा के काव्यगत सौन्दर्य की ही मौलिकता को स्वीकार किया है। डा० नगेन्द्र का एतद्विषयक दृष्टिकोण का सारांश इस प्रकार है—

(१) इन समीक्षक कवियों ने रीति- विवेचन में कोई गम्भीर मौलिक योग नहीं दिया।

(२) संस्कृत का रीतिशास्त्र १७वीं शताब्दी तक इतना समृद्ध हो चुका था कि उसका और विस्तार सम्भव न था।

(३) युग की रुचि गम्भीर न थी, अतः काव्य मीमांसा की अपेक्षा लोग रसिकता को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देते थे।

(४) प्रौढ़ एवं काव्यशास्त्रीय विवेचन के उपयुक्त गद्य का अभाव था।

(५) उनके काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ इन्हीं कारणों से विवेचनात्मक होने के बजाय वर्णनात्मक हो गये हैं[१]।

डा० सत्यदेव चौधरी ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य' में हिन्दी काव्यशास्त्रीय पांच आचार्यों का बड़ा विशद अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र की तुलना में हिन्दी रीति काव्य के काव्यशास्त्रीय विवेचन का जो निष्कर्ष निकाला है, वह इस प्रकार है—

१- रीति काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता : डा० नगेन्द्र; पृ०-१६७, १६६

(१) चिन्तामणि आदि आचार्यों ने भारतीय काव्यशास्त्र के विकास में कोई योगदान नहीं किया,[१] फिर भी रीतिकाल के इन आचार्यों का महत्व नगण्य नहीं है।

(२) इनके ग्रन्थ प्राचीन काव्यशास्त्र और वर्तमान आलोचना-शास्त्र के बीच की कड़ी है।

(३) इन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा को हिन्दी में अवतरित करके लोगों में काव्यशास्त्रीय जिज्ञासा पैदा की।

डा० सत्यदेव चौधरी के उपर्युक्त निष्कर्षों से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि उन्होंने आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल की परम्परा के पोषक उन आचार्यों की तुलना में कवित्व की मौलिकता के साथ ही साथ हिन्दी की विशाल काव्यशास्त्रीय परम्परा का कियदंश में महत्व स्वीकार किया है। इसी क्रम में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और ग्रीव्ज़ महोदय के भी विचारों का उल्लेख कर देना असंगत न होगा।
डा० हजारीप्रसाद जी के हिन्दी रीतिकाव्य विषयक मौलिकता के विचार उनके दो ग्रन्थों — (१) `हिन्दी साहित्य की भूमिका` और (२) `हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास` में मिलते हैं। हिन्दी साहित्य की भूमिका में व्यक्त उनके विचारों का निष्कर्ष यों है—

(१) नायिका भेद की संकीर्ण सीमा में जितना लोक चित्र आ सकता था, उतना चित्र निश्चय[२] ही विश्वसनीय है।

(२) शास्त्रमत की प्रधानता ने इस काल के कवियों को अपनी स्वतन्त्र उद्भावना शक्ति के प्रति सावधान बना दिया।

१- हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य : डा० सत्यदेव चौधरी; पृ०- ७५०

२- हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ०- १२५
५वां संस्करण

(३) शास्त्रीय मत को श्रेष्ठ और अपने मत को गौण मान लेने के कारण उनमें स्वाधीन चिन्ता के प्रति एक अवज्ञा भाव आ गया है।

अपने दूसरे ग्रन्थ में डा० द्विवेदी ने बहुत अधिक महत्वपूर्ण विवेचन तो नहीं किया है, लेकिन इस दिशा में उनके ऐसे विचार भी महत्व के हैं— उनके विचारों का निष्कर्ष इस प्रकार है—

(१) रीति ग्रन्थों में जिन संस्कृत के उपजीव्य ग्रन्थों का उल्लेख है, उनका अनुवाद ठीक ढंग से नहीं हुआ है।

(२) कभी-कभी शृंगारी प्रसंगों में इन कवियों ने अधिक व्यौरेवार प्रसंगों का उत्थापन किया है।

(३) वस्तुतः इन ग्रन्थकारों के ग्रन्थ न पूर्ण रूप से अनुवादित हैं और न मौलिक।

(४) इन सबके बावजूद ये कवि पुराने कवियों की रस-रीति मन में रखकर कुछ नया कहने में संकोच नहीं करते थे[१]।

मिस्टर ग्रीव्ज महोदय ने बहुत पहले 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' के अपने एक अंग्रेजी लेख में हिन्दी रीतिकाव्य के शास्त्रीय पक्ष का विवेचन करते हुए स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि इनमें संस्कृत ग्रन्थों से तथ्य ग्रहण करने की क्षमता का पूर्ण अभाव था। इन्हीं कारणों से मौलिक सृजन की अपेक्षा संस्कृत अनुवाद के कार्यों में उन्होंने अपनी प्रतिभा को प्रायः नष्ट कर दिया[२]।

१- हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, द्वितीय संस्करण, पृ०-

२- Fre quently translation and adoption from sanskrit books rath than original production enlisted the energies of writers.

रीतिकाव्य के उक्त विद्वान समीक्षकों के विचारों के निष्कर्ष से यही प्रमाणित होता है कि इन रीति कवियों की काव्यशास्त्रीय मौलिकता प्राय: नगण्य है। इनकी प्रतिभा का सम्यक् स्फुरण शृंगार रस के अन्तर्गत नायिका भेद में ही हुआ है। इस दिशा में ये कलाकार अपने अग्रज संस्कृत कवियों को भी पीछे छोड़ गये हैं। किन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि रीति काव्य के शास्त्रीय विवेचन के लिए यदि संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों को सर्वत्र मूलाधार न बनाकर उनका मूल्यांकन हिन्दी काव्यशास्त्रीय विवेचन की प्रकृति को दृष्टि में रखकर किया जाय तो यह अधिक महत्वपूर्ण और उनकी मौलिक देन के स्वरूपांकन में अधिक सहायक सिद्ध हो सकेगा। दूसरे शब्दों में हिन्दी रीति आचार्यों ने सर्वत्र संस्कृत काव्य-शास्त्रीय परम्परा का ही अन्धानुसरण नहीं किया, अपितु यथावश्यक संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में जहां कहीं जटिलता देखी उसे त्याग कर सरलीकरण की पद्धति अपनायी और जहां कहीं अपनी संक्षिप्तता के कारण संस्कृत के दुर्बोध एवं अस्पष्ट लक्षणों का अनुभव किया, वहां विशदीकरण द्वारा इन्हें बोधगम्य बनाने का भी भरसक प्रयास किया। यही नहीं, जिन लक्षणों के नामकरण से वे सन्तुष्ट नहीं थे उनके स्थान पर नामान्तर की भी उद्‌भावना की।

जहां तक रीति कवियों की कवित्वगत मौलिकता का सम्बन्ध है, अभी तक हिन्दी आलोचकों ने रीति परम्परा के सन्दर्भ में बिहारी और घनानन्द की ही मौलिकता का अधिक ऊर्जस्वित स्वरों में उल्लेख किया है। यद्यपि हिन्दी रीति काव्य के वे रसिक कलाकार जिन्हें अधिकांश आधुनिक काव्य के आलोचकों द्वारा बहुल सहानुभूति नहीं मिल सकी, कुछ नवीन कहने का दावा सदैव करते थे। हां विषय की सीमा और शास्त्रीयता के कड़े अंकुश के कारण उनकी अन्तश्चेतना अधिक स्पन्दित नहीं हो पाती थी। फलत: भीतर ही भीतर उनकी प्रतिभा प्राय: कुण्ठित हो जाती थी। अस्तु इन्हें इतना अवकाश नहीं था कि वे सूर और तुलसी की भांति जीवन की विराटता का चित्र एक विशाल फलक पर अंकित कर सकते, क्योंकि शास्त्रीय जटिलता एवं तद्विषयक गूढ़ एवं गम्भीर ऊहापोह में फंसे रहने

के कारण वे अधिक खुलकर जीवन और जगत को नहीं देख पाते थे। फिर भी, अपनी लघु सीमा में आबद्ध रहकर भी शास्त्रीय निरूपण को नूतन ढंग से पुरस्सर करने का उनमें भाव नहीं था, ऐसा कथन अधिक औचित्यपूर्ण नहीं प्रतीत होता। इसकी पुष्टि रीति युग के प्रसिद्ध कलाकार देव कवि के साक्ष्यों के आधार पर सहज ही की जा सकती है। देव ने अपनी पूर्व परम्परा के आचार्य केशवदास के पाण्डित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और इन्होंने उनकी अगाध ज्ञान-राशि से लाभ भी उठाया है। किन्तु फिर भी वे सरस और 'अपूव' (मौलिक) ग्रन्थ रचना के लिए पर्याप्त व्यग्र हैं— यह उनकी पंक्तियों से स्पष्ट है—

केसव आदि महाकवि बरनि सौ बहु ग्रन्थ।
हौ हूं बरनत ताहि अब सरस अपुब पंथ[१]।।

ऐसा लगता है कि देव की दृष्टि में केशव की 'सरसता' और 'अपूर्वता' में कुछ न्यूनता रह गयी है, जिसकी पूर्ति वे अपने इस ग्रन्थ में कर देना चाहते हैं। यही नहीं एक ग्रन्थ के संक्षिप्त विषय को नवीन प्रकार (मौलिक ढंग) से वे विस्तारपूर्वक दूसरे ग्रन्थ में वर्णित करना चाहते हैं। इसी से देव ने अपने भाव-विलास में नायिका भेद निरूपण कर लेने के पश्चात् भी 'रसविलास' में उस विषय को नये ढंग से कहा। भले ही आज के कतिपय मान्य आलोचकों को देव द्वारा 'रस विलास' में वर्णित नायिका-भेद का यह आधार मान्य न हो—

रस विलास रचि ग्रन्थ सौ कहत दूसरी बार।
वही नायिका भेद सब सुनहु नवीन प्रकार[२]।।

१- रस विलास : देव, सम्पा० - बाबू रामकृष्ण वर्मा, प्रथम संस्करण १९००, पृ० - ४६; छ०सं० - ३८

२- वही, ,, ; छ०सं० - ४०

देव के इस कथन से पूर्णतया स्पष्ट है कि प्राचीन एवं पिष्टपेषित विषयों को प्रतिभा के बल पर नवीन भंगिमा से दीप्त किया जा सकता है। कदाचित् कुन्तक ने इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर कहा था— जो वस्तुओं में अन्तर्हित सूक्ष्म एवं सुन्दर तत्व को अपनी वाणी से खींच लाता है तथा जो वाणी द्वारा ही इस विश्व की बाह्यत: अभिव्यक्ति करता है, उन दोनों कवियों को नमस्कार करता हूं[1]।

-:o:-

१- लीनं वस्तुनि येन सूक्ष्म सुभग तत्वं गिरा कृष्यते
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं वाचैव यो वा वहि: ।
वन्दे द्वावपि तावहं कविवरौ वन्देतरां तं पुन
र्यो विज्ञातपरिश्रमोऽयमनयोर्भारावतारक्षम: ।। १०७ ।।

— वक्रोक्ति जीवितम् : द्वितीयोन्मेष; सम्पा०- एस०के० डे, पृ० -१२६

खण्ड – 2

अध्याय : तीन

केशव के काव्य पर संस्कृत के पूर्ववर्ती ग्रन्थों का प्रभाव

केशव के काव्य पर संस्कृत के पूर्ववर्ती ग्रन्थों का प्रभाव

आधार की दृष्टि से केशव की स्थिति विशिष्ट है। संस्कृत के आचार्यों को 'प्राचीन' और 'नवीन' वर्गों में विभाजित किया जा सकता है[1]। हिन्दी के आचार्यों के भी इसी आधार पर दो वर्ग हो जाते हैं : 'प्राचीनों' को आधार बनाकर चलने वाले आचार्य तथा 'नवीनों' से प्रेरणा लेने वाले आचार्य। प्राचीनों में संस्कृत के सम्प्रदाय-प्रवर्तक उद्भावक आचार्य आते हैं और नवीनों में व्याख्याता आचार्य। हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने 'नवीनों' को ही अपना आधार बनाया। केशव की दृष्टि 'प्राचीनों' पर ही विशेष रही। केशव ने भामह और दण्डी से अलंकार-निरूपण लिया। उनका नायिका-भेद रुद्रभट्ट के शृंगार-तिलक पर आधारित है[2]। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' तथा 'अनंगरंग' से भी उन्होंने इस प्रकरण की सामग्री ली है। रस-निरूपण में भी केशव ध्वनिवादियों से विशेष प्रभावित दिखलाई पड़ते हैं। केशव की रस-सम्बन्धी मान्यताओं का स्रोत भरत, ध्वनिकार तथा अभिनव गुप्त जैसे आचार्यों में मिलता है। इस प्रकार स्रोत-आधार की दृष्टि से केशव का वैशिष्ट्य सिद्ध हो जाता है।

पौराणिक प्रभाव :

केशवदास जी ने रामायण, महाभारत और पुराणों का गम्भीर अध्ययन किया था। पौराणिक वृत्ति केशव के कुल की जीविका ही थी। केशव ने अपने सभी ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर पुराण, रामायण तथा महाभारत आदि के आख्यानों तथा कथाओं का संकेत किया है। 'विज्ञानगीता' में पौराणिक प्रभाव को केशव ने स्वयं ही निम्न शब्दों में स्वीकार किया है—

१- अप्पयदीक्षित : कुवलयानन्द, पृ०- १६६

२- डा० बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ०- ६६

> बेद देखि ज्यौं सुमृति मर, सुमृतिनि देखि पुरान ।
> देखि पुराननि त्यौं करा गीता ज्ञान प्रमान[१] ।।

केशव के विभिन्न ग्रन्थों में उल्लिखित पौराणिक कथाओं का विवरण निम्नलिखित है ।

रामचन्द्रिका में :

रामचन्द्रिका के तीसरे प्रकाश में जब राम ताड़का को मारने के लिए तैयार नहीं होते तो ऋषि विश्वामित्र उन्हें पुराणों की वे कथाएं बताते हैं जिनमें पापिनी स्त्रियों का वध पुरुषों द्वारा किया गया है ।

> सुता विरोधन की हुती दीर्घ जिह्वा नाम ।
> सुरनायक सौं संहरा परम पापिनी बाम ।
> परम पापिनी बाम बहुरि उपजी कविमाता ।
> नारायण सौं हती चक्र चिन्तामणि दाता ।
> नारायण सौं हती सकल द्विज दूषण संयुत ।
> त्यौं अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सह सुत[२] ।।

बाणासुर ने पृथ्वी को उठा लिया था इस कथा का उल्लेख केशव ने निम्न छन्द में किया है—

> लै अपने भुजदंड अखंड करौ छितिमंडल छत्र प्रभा सी ।
> जाने को केशव केतिक बार मैं सेस के सीसन दीन्ह उदासी[३] ।।

इस प्रकार बाण अपने पिता की बड़ाई करते हुए अनेक पौराणिक आख्यानों का

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : प्रभाव प्रथम, पृ० - २७, छं० - १२

२ - रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ० - ३६, छं० - ८

३ - वही, चौथा प्रकाश, पृ० - ४७, छं० - १२

उल्लेख करता है।

> कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो जेइ मार्‌यो।
> लोक चतुर्दश रक्षक केशव पूरण वेद पुराण विचार्‌यो ।
> श्री कमला कुच कुंकुम मंडल पण्डित देव अदेव निहार्‌यो ।
> सो कर मांगन को बलि पै करतारहु को करतार पसार्‌यो[1]।

बाणासुर रावण से कहता है—

> हैहयराज करी सो कैसे[2]।

धनुष टूटने से हुए शब्द का वर्णन करते हुए केशव कहते हैं—

> बाधिबर स्वर्ग के साधि अपवर्ग, धनुभंग को शब्द गयो भेद ब्रह्मण्ड को[3]।।

छठें प्रकाश में राजा जनक राजा दशरथ की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

> जिनके पुरिषा भव गंगहि लाये। नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधाये[4]।

रामचन्द्रिका के छठें प्रकाश में जेवनार के समय केशव ने जो गालों का वर्णन किया है उसमें अनेक पौराणिक कथाओं का उल्लेख मिलता है। (छं०-३२-३६) यथा—

> वह हरी हठि हिरनाच्छ दैयत देखि सुन्दर देह सों।
> बर बीर यज्ञ वराह बरहों लई छीन सनेह सों।
> ह्वै गई बिह्वल अंग पृथु फिर सजे सकल सिंगार जू।
> पुनि कछुक दिन बस भई ताके लियो सरबसु सार जू[5]।

इसी प्रकार सातवें प्रकाश में परशुराम जी अपने कुठार से कहते हैं—

> बांधि कै बांध्यो जु बालि बली पलना लै सुत के हित ठाटे।
> हैहयराज लियो गहि केशव आयो हो चाढ़ जु छिद्रहि डाटे[6]।।

१- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ४८, छं०- १५
२- वही, पृ०- ५१, छं०- २२
३- वही, पांचवां प्रकाश, पृ०- ७१, छं०- ४३
४- वही, छठवां प्रकाश, पृ०- ७८, छं०- १६
५- वही, पृ०- ८४, छं०- ३२
६- वही, सातवां प्रकाश, पृ०- ६६, छं०- ६

राम, परशुराम जी की बड़ाई करते हुए कहते हैं—

जब हयो हैहयराज इन बिन छत्र छिति मंडल कर्यो ।
गिरि बेध षट्मुख जीति तारकनन्द को जब ज्यों हर्यो ।।
सुत में न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनन्दिनी ।
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जग बन्दिनी[1] ।।

पुराणों में यह भी वर्णित है कि परशुराम जी ने अपनी माता का वध कर दिया था । इस आख्यान का उल्लेख करते हुए लक्ष्मण जी कहते हैं—

तौ इनको गुरु दोष नहीं अब एक रती ।
जो अपनी जननी तुम ही सुख पाय हती[2] ।।

रामचन्द्रिका के नौवें प्रकाश में राम कौशल्या को पातिव्रत धर्म की शिक्षा देते हुए सती और वृन्दा की कथाओं का उल्लेख करते हैं ।

पति हित पितु पर तनु, सती साखि दै देव ।
लोक लोक पूजित भई, तुलसी पति की सेवै[3] ।।

केशव ने रामचन्द्रिका में नृसिंह और प्रह्लाद की कथा की भी चर्चा की है ।

श्री नृसिंह प्रह्लाद की, बेद जो गावत गाथ ।
गये मास दिन आसु ही झूठी ह्वै है नाथ[4] ।।

केशव ने रामचन्द्रिका में उस कथा का भी उल्लेख किया है जिसमें शुक्राचार्य ने बलि के हित के लिए अपनी आंखें गवां दी थीं ।

एक राज के काज आपने काज बिगारत ।
जैसे लोचन हानि सही कवि बलिहि निवारत[5] ।।

१- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १०८, छं०- २६
२- वही, पृ०- ११२, छं०- ३६
३- वही, नवां प्रकाश, पृ०- १३४, छं०- २०
४- वही, चौदहवां प्रकाश, पृ०- २४४, छं०- ३०
५- वही, सत्रहवां प्रकाश, पृ०- २८७, छं०- २५

रावण के दूत ने जब राम से परशुराम जी का परशु माँगा तो राम ने इस प्रकार उत्तर दिया—

> भूमि दई भूदेवन को भृगुनन्दन भूपन सों बर लै कै ।
> वामन स्वर्ग दियो मघवै सो बली बलि बाँधि पताल पठै कै ।
> संधि को बालन को प्रतिउत्तर आपुन ही कहिए हित कै कै ।
> दीन्ही है लंक विभीषण को अब दैहि कहा तुमको वह दै कै[1] ।।

रामचन्द्रिका के बीसवें प्रकाश में ब्रह्मा ने राम की स्तुति की है । इस स्तुति के द्वारा केशव ने राम के अनेक अवतारों की कथा का उल्लेख किया है ।

> तुमही धर कच्छप-वेष धरो जू । तुम मीन ह्वै वेदन को उधरो जू ।
> तुमही जग यज्ञ-बराह भये जू । छिति छीन लई हिरनाक्ष हये जू ।
> तुमही नरसिंह को रूप संवारो । प्रह्लाद को दारुण दुख विदारो ।
> तुमही बलि बामन-वेष छलो जू । भृगुनन्दन ह्वै छिति छत्र दलो जू[2] ।।

नल-दमयन्ती आख्यान का वर्णन केशव ने निम्न छन्द में किया है ।

> राजकुमार, नल नैषधि दयौ । छल बल छीनि सबै तिन लयौ ।
> जब ताको सब राज बिचारि । नल दमयंती दियो निकारि[3] ।।

पुराणों में त्रिशंकु की कथा का वर्णन मिलता है जिसकी चर्चा केशव ने भी की है ।

> छोड़ि पितर त्रिशंकु है बिपरीत यद्यपि देह ।
> अपध केशव जात शूकर स्वान स्वर्ग सदेह[4] ।।

पुराणों में यह कथा वर्णित है कि पार्वती के शाप से कुबेर कुरूप हो गये थे ।

१- रामचन्द्रिका : उन्नीसवां प्रकाश, पृ०- ३१७, छं०- २१
२- वही, बीसवां प्रकाश, पृ०- ३३७, छं०- २०, २१
३- वही, तेईसवां प्रकाश, छं०- १६
४- वही, सत्ताइसवां प्रकाश, छं०- २४

जूमहि में कलह कलह प्रिय नारदै ।

कुरूप है कुबेर लोभ सबके चयन को[1]।

केशव ने मठधारियों का स्पर्श करना भी निन्दनीय माना है ।

लोक करयो अपवित्र वहि लोक नरक को बास ।

छिये जु कोऊ मठपतिहिं ताको पुन्य विनास[2]।।

मठधारियों की इस प्रकार की निन्दा रामायण, स्कन्धपुराण, पद्मपुराण और देवीपुराण में भी की गई है ।

रामायणे- ब्रह्मस्वं देवद्रव्यञ्च स्त्रीणां बालधनंचयत ।

दत्तं हरति यो मोहात्स पचेन्नरके ध्रुवम्[3]।।

अर्थात् ब्राह्मण का, देवता का, स्त्री का और बालक का, या अपना ही दिया हुआ धन जो भूल से भी हरण करता है वह निश्चय ही नरक में जलता है ।

स्कन्धपुराणे- हरस्य चान्यदेवस्य केशवस्य विशेषत: ।

मठपत्यञ्च य: कुर्यात्सर्वधर्मवहिष्कृत:[4]।।

महादेव के अन्य देव के और विशेषकर विष्णु के मंदिर का जो जन मठपति होता है वह सर्वधर्म रहित हो जाता है ।

पद्मपुराणे- पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च ।

योऽश्नाति स पचेद्घोरान्नरकानेकविंशति:[5]।।

इसी प्रकार देवी पुराण में भी निम्न शब्दों में मठधारियों की निन्दा की गई है-

---

१- रामचन्द्रिका : अट्ठाइसवां प्रकाश, छं०- १६

२- वही, चौंतीसवां प्रकाश, छं०- २५

३- वही,

४- वही,

५- वही,

अमाज्यं गठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्रं सवासा जलमाविशेत्[1] ।।

भृगुमुनि ने सोते समय नारायण को लात मारी थी उसी का वर्णन केशव ने किया है—

सोवत सीतानाथ के, भृगुमुनि दीन्ही लात ।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात[2] ।।

<u>विज्ञानगीता में :</u>

विज्ञानगीता के प्रथम प्रभाव में केशव ने लिखा है कि सहस्रार्जुन ने बेतवा नदी के प्रवाह को बढ़ाया है । यहाँ केशव पुराण से प्रभावित दिखाई देते हैं ।

औछी तरि तरंगिनि बेतवै ताहि तरै रिपु केशव को है ।
अर्जुन बाहु-प्रवाह-प्रबोधित रेवा ज्यों राजन की रज मोहै[3] ।

केशव ने लिखा है कि ब्रह्मा ने माया के संयोग से मन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ।

ईस माय बिलोकि कै उपजाइयो मन पूत ।
सुन्दरी तिहि द्वै करी- तिहिं ते त्रिलोक अभूत ।
एक नाम निवृत्ति है जग एक प्रवृत्ति सुजान ।
वंश द्वै ताते भयो यह लोक मानि प्रमानि[4] ।।

मन की उत्पत्ति के सन्दर्भ में केशव के इस छन्द का आधार योगवाशिष्ठ का निम्न श्लोक है—

चित्तं चेतो मनो माया प्राकृतश्चेतिनामभिः ।
परमस्मात्कारणाद्देव मनः प्रथम उच्यते[5] ।।

१- रामचन्द्रिका : चौतीसवाँ प्रकाश, छं०-
२- वही, सातवाँ प्रकाश, पृ० १२१, छं० - ५२
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : प्रथम प्रभाव, पृ० - २४, छं० - ४
४-५ वही, पृ० - ३६, छं०- १२, १३ क्रमशः

जिस समय विवेक अपने वंश के मोह में पड़कर उसे नष्ट करने में संकोच करता है उस समय राजधर्म उसे श्रीकृष्ण की भाँति समझाता है—

> जद्यपि हैं अति धर्म प्रबीने । युद्ध मरुत्त पिता सह कीने ।
> अर्जुन के सुत अर्जुन ही को । सीस हत्यो रन में अति नीको[1]।।

राजा मरुत ने अपने पिता के साथ युद्ध किया था । इतना ही नहीं, अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन ने रणस्थल में अर्जुन के ही मस्तक को भलीभाँति काट डाला था। यहाँ केशव गीता के निम्न श्लोक से प्रभावित हैं—

> न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
> किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन[2] ।।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण, न विजय की आकांक्षा है और न राज्य एवं सुख की । हे गोविन्द, (अपने वंशजों को मारकर, हमें (उस) राज्य से क्या प्रयोजन (लाभ) है, और भोग और जीवित रहने में क्या लाभ ?

कबीर के ` अंधा अंधन ठेलिया दोऊ कूप परन्त ` का स्पष्ट प्रभाव केशव के निम्न छन्द में देखा जा सकता है—

> अंध ज्यौं अंधनि साथ निरंध कुवां परिहूं न हिये पछितानो ।
> बंधु के भानत बंधन हारिन दीने विषो विष खात मिठानो ।
> केसव आपने दासन को फिरि दास भयो मन ज्यपिरानो ।
> भूलि गई प्रभुता ज्यौं जाव हि बंदि परै भले बंदिय खानो[3] ।।

केशव के शब्दों में ईश्वर ने इस संसार की प्रथमतः रूपरचना की (प्राणियों को बनाया) दूसरे शब्दों में ईश्वर ने जड़ रूप में संसार एवं समस्त प्राणियों को निर्मित किया, पुनः उसने स्वयं ही संसार के उन जड़ प्राणियों में चेतना (प्राणतत्व) को प्रतिष्ठित किया । इस प्रकार वह ईश्वर प्राणतत्व और

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : नवम् प्रकाश, पृ०-११५, छं०- ४०

२- वही, पृ० - ११३, छं० - ३२

३- वही, पृ०-११८, छं० - ४८

सत, रज, तम से निर्मित संसार का कारण हुआ और पुन: इस संसार रूपी वृक्ष से सुख और दु:ख रूप दो फल फले। उन दोनों फलों (सुख और दु:ख) को भोगने के लिए उसने जीव के मार्ग पर स्वर्ग और नरक लोक को रख दिया (सुख भोगने के लिए जीव को स्वर्ग जाना पड़ता है और दु:ख भोगने के लिए उसे नरक की यात्रा करनी पड़ती है। इस प्रकार जगदीश ने अतिशय झूठे संसार की रचना की, किन्तु ऐसी रचना करने से उसके हाथों क्या लगा (उसे क्या लाभ हुआ) संसार से तो प्राणियों ने मात्र सुख-दुख भोगने का लाभ उठाया।

रूप रचि यहि लोकहि केसव चेत को आपु प्रवेस कर्यौ।
चेतु भयौ गुन हैतु भयौ सुख दुख्ख सु तौ फल दोइ फर्यौ।
तिनके कहि केवल भोगनि को सुरलोक निरैपद पैंड धर्यौ।
इहि भाँति रच्यौ जग झूठो महा सु कहा जगदीश के हाथ पर्यौ[1]॥

कदाचित् केशव ने मुंडकोपनिषद् के निम्नलिखित अंश से इस छन्द में लाभ उठाया है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति[2]॥

तीर्थस्थानों में यदि कपट त्यागकर मनसा, वाचा और कर्मणा कोई व्यक्ति भगवान की सेवा करता है तो केशव के शब्दों में उसी को तीर्थवास का फल प्राप्त होता है।

तृष्णा बड़ो बड़आनलो धुवा, तिमिंगिल मद्र।
ऐसो को निकसै जु परि, उदर उदर समुद्र॥
मन बच कर्म जु कपट तजि, सेइ रहै नर कोय।
'केसव' तीरथ बास को, तीहों को फल होय[3]॥

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : नवम प्रकाश, पृ०- ११८, छं०- ४६

२- वही, पृ०- ११६

३- वही, तृतीय प्रकाश, पृ०- ५१, छं०- २०, ३१

केशव के इस छन्द का आधार योगवाशिष्ठ का निम्न श्लोक है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते[1] ।

अर्थात् जिस व्यक्ति के हाथ, पैर तथा मन संयत है और विद्या, तप एवं कीर्ति भी ठीक है (प्राप्त है) वही व्यक्ति तीर्थ फल प्राप्त करता है ।

चौथे प्रभाव में सप्त सागर, नदी, नवखण्ड, ईश्वर तथा सातों द्वीपों के प्रमाण वर्णन के साथ ही महामोह के युद्ध प्रस्थान का वर्णन है । सम्भवतः केशव का यह वर्णन पुराणों से प्रभावित माना जा सकता है—

साठि लाख चारि जोजनै प्रमान लेखिये ।
शुद्ध नीर को तहां प्रसिद्ध सिंधु माखिये ।
प्रलय के अशेष जंतु सेष साजहीं ।
मान घात लौं गिरीस, खण्ड द्वै विराजहीं[2] ।।

इस प्रकार के वर्णन गरुणपुराण में भी वर्णित हैं । शाल्मली द्वीप का वर्णन पुराणों में क्रौंच द्वीप का दुगना तथा चारों ओर से रस के समुद्र से घिरा हुआ वर्णित है । केशव ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

आठ लाख जोजन सबै, कुसद्वीप सुखदाय ।
शीतलजि सात्मलिद्वीप मैं, मिल्यो जग दुखदाय[3] ।।

केशवदास ने पुराणोक्त बहुत-सी नदियों का उल्लेख निम्न छन्द में किया है—

करतोया चर्मनिला, चर्मवती सुनिचारु ।
दृषद्वती, मंदाकिनी, बिदिसा कृष्ना चारु ।।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रभाव, पृ० - ५१, छ० - ३२
२ - वही, चतुर्थ प्रभाव, पृ० - ५३, छ० - ६
३ - वही, पृ० -५६, छ०- २१

वेदस्मृति प्रभावती वेनी रचा विरोचि ।
सरयू शिप्रासेन शुभ, हेमवती जुलेचि ।।
चित्रोत्पला पिशाचिका, कृष्णा विंध्या जानि ।
तमसा द्रोनी मंजुला, सुचितमती उर आनि ।
लूनी तापी अंगुली अमया हिरन बखान ।
निर्विन्ध्या सुबाहिनी, विमला वेना जान ।
उत्पलावती इक्षुका भमरथी सुमकारि ।
वितरनी अरु सुचितमा, वेलाचिनी निहारि ।
मंदाकिनी मंदगा, कावेरीहि बखानि ।
त्रिदिवा ताम्रपर्णिका, कुमुद्वती हि सुमानि ।।
कृतमालिका लांगला, वंसकरा रिषिकाहि ।
माहेन्द्री तर्पा सिवा, पुन्या को चित चाहि[1]।।

इससे केशव की बहुज्ञता का परिचय मिलता है। गंगा का जाह्नवी नाम क्यों पड़ा यह कथा भी पुराणों में मिलती है जिसका उल्लेख केशव ने 'विज्ञानगीता' में इस प्रकार किया है—

अरोष्ट सर्मदा विरोषा जीति नर्मदा लई ।
जगत्प्रकाश की सुता कृतान्तसोदरी गई ।।
सरस्वती पतिव्रता चिन्हाउ जोर आपने ।
लई जु जन्हु एकही चुरू अँचे सु को गने[2] ।।

रामायण की कथा का उल्लेख कहीं-कहीं केशव ने 'विज्ञानगीता' में भी किया है—

बंधु विरोध बड़ो मम मंत्री । बस्य करे सिगरे जनजंत्री ।
बानर बालि बली जिहि मार्यो । रावन के सिगरो कुल जार्यो[3] ।।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षष्ठम् प्रभाव, पृ० - ७०, छं० - १३ - १६
२-३ वही, पृ० - ७२ -७४ तथा छं० - २२, २८ क्रमशः

परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर दिया तथा ब्रह्मशाप के द्वारा यदुवंशियों का विनाश हो गया इन पौराणिक कथाओं का उल्लेख भी प्रसंगानुसार केशव ने अपनी " विज्ञानगीता " में निम्न छन्दों के द्वारा किया है—

ब्रह्मदीन महाबली सुत तें जन्यौ बलिबंड ।
क्षत्रहीन वसुंधरा बहुबार कीन्ह अखंड ।
संहर्यौ जदुबंश सो जिहि बांधियौ सुरनाथ ।
रुद्र जानत है प्रतापहि को बिवेक अनाथ[1] ।।

गंगा की महिमा का वर्णन केशव ने निम्न छन्दों में किया है—

वामन के पद को प्रिय पानी । जो तुम भागीरथी मनमानी ।
नांघ जहां बलिराज पधारे । ते जल क्यों न त्रिलोक सिधारे[2] ।।

रानी - वामन को चरनोदक ऐसो । माथे उमाधव बंदित कैसो ।
राजा - तासो कहा अब कूटहि जानौ । बांधि रहा शिव गंगहि मानौ[3] ।।

इसी प्रकार गंगा की महिमा का वर्णन बृहन्नारदीय पुराण में इस प्रकार है—

तस्माच्छृणुध्वं विप्रेन्द्रा गंगाया महिमोत्तम ।
ब्रह्म विष्णु शिवैश्चापि पारं गन्तुं न शक्यते[4] ।।

वाराणसी की मणिकर्णिका घाट की उत्पत्ति की कथा केशव ने इन शब्दों में वर्णित की है—

वाराणसी माहि बिश्नु एक समै कर्यौ तप आनि ।
जैसो कियौ अति उग्र सो हम पै न जाति बखानि ।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्ठम् प्रभाव, पृ० - ७६, छ० - ४०
२ - वही, पृ० - ७८, छ० - ४८
३ - वही, छ० - ५०
४ - वही, छ० - ५१

ताके तपोबल संभु को सिर कंपियो भुवपाल ।
भूमें गिरी छिन्न कनैसें मनिकनिका तेहि काल[1] ।।

'विज्ञानगीता' में आचार्य केशवदास ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के वर्णन के क्रम में यथास्थान रामायण के साथ-साथ महाभारत की कथाओं का भी उल्लेख किया है—

रघुनाथ की तरुनी हरी दसकंध, अंध लबार ।
अरु ज्यों पदै दुरजोधनैं गहि द्रौपदी करतार ।
निज जाति ज्यों कपटी न कर त्यों बढ़ऊ परिजाय ।
पुनि ये न कहा बिलोकिये बहुकाल जीवन पाय[2] ।।

'विज्ञानगीता' का 'जीव' विवेक से प्रश्न करता है कि ईश्वर अवतार धारण करके अपने बनाए जीवों को क्यों मारता है ?

धरि धरि क्यों अवतार प्रभु मारत अपने रूप ।
सिच्छत सासन भांति ते ज्यों पितु सुत को भूप[3] ।।

जीव के इस प्रश्न का उत्तर केशव ने ब्रह्मपुराण के निम्न श्लोक के द्वारा दिया है—

ब्रह्मपुराणे— अपि भ्राता सुतो बाला श्वसुरो मातुलोऽपि वा ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्मात्प्रचलिता प्रजा[4] ।।

'विज्ञानगीता' में वीरसिंह देव ने केशवदास जी से प्रश्न किया कि यह मोह और लोभमय जीव किस प्रकार अपने इस रूप और जंजाल (प्रपंच) को त्यागकर स्वर्ण कण (चिदंश) से कभी मिलेगा ?

जीव मोहमय लोभमय कनक ते कौन प्रकार ।
मिलिहै कबहूं आपनै रूपहि तजि जंजार[5] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षष्ठम् प्रभाव, पृ०- ८१, छं०- ५६
२- वही, सप्तम प्रभाव, पृ०- ६४, छं०- ८
३- वही, पंचदश प्रभाव, पृ०- २०२, छं०- १७
४- वही, छं०- १८
५- वही, पृ०- २०४, छं०- ३१

इस प्रश्न के उत्तर में केशव ने योगवाशिष्ठ का निम्न श्लोक सुनाया—

यथा सत्यमुपेत्य स्पर्शने विप्रा दुराशयः ।

अंगीकरोति शूद्रत्वं तथा जीवत्वमाश्वरात[1]।।

मृत्यु के सम्बन्ध में केशव का मत है कि मृत्यु से ब्रह्म, विष्णु और महेश भी छुटकारा नहीं पा सकते—

शेषधर नागधर नागमुख ब्रह्म विस्नु,

इनको कलेवर तौ काल को कवल है[2]।।

केशव अपने इस मत में योगवाशिष्ठ और पराशर से प्रभावित दिखाई देते हैं—

पराशरे यथा— कल्पे-कल्पे भायो त्पत्तिर्ब्रह्माविष्णु शिवस्य च ।

श्रुति स्मृति सदाचारः तस्य चेतिन्द्रिय आत्मनः[3]।।

योगवाशिष्ठे— न देवः पुण्डरीकाक्षो न देवः स्तु त्रिलोचनः ।

न देवः देहरूपो हि न देवश्चित रूप धृक[4]।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार ब्रह्म सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है—

अध उर्ध्वं चतुर्दिक्षु विदिक्षुश्च निरन्तर ।

ब्रह्मेन्द्र हरि रुद्रेश प्रमुख मण्डिमण्डिताः ।

इमां भूतप्रियां तस्य रोमावली प्रतिचिन्तयेदिति[5]।।

उपर्युक्त पंक्तियों का भावानुवाद केशव ने निम्न पंक्तियों में किया है—

देव अरूप अमेय है कहै निरीह प्रकास ।

एवं जाव मंडित कहौ कैसे ? केसवदास ? ।।

अद्भुत देवन जानिये ताके अमित प्रकार ।

सब तैं न्यारो सबन में हैं विधि बेद विचार[6]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : पंचदश प्रभाव, पृ०- २०४, छं०- ३२

२-३-४ वही, पृ०- २०६, २०७, २०७ एवं छं०- ४०, ४२, ४३ क्रमशः

५-६ वही, पृ०- २०६, २०८ तथा छं०- ५१, ४६- ५० क्रमशः

'विज्ञानगीता' में वर्णित राजा सिखीध्वज और चूडाला की कथा योगवाशिष्ठ से ली गई है—

सात अतीत मनु सुमति, आपर पूर्वप्रबेस
नृपति सिखीध्वज तव भए, केसव मालव देस
हो सुराष्ट्रदेसाधिपति, की चूडाला नाम
कन्या सकल कलावती, रूप सील दुति धाम[1]

'विज्ञानगीता' में राजा सिखिध्वज से चूडाला रानी कहती है कि नारियों के लिए एकमात्र शरण उसका पति है, और किसी भी परिस्थिति में उसका त्याग नहीं करना चाहिए—

राजा कछू दुराइयै, जावे मन कछु और ।
नारिनि पै एकै सरन, पति सुनियै नृप मौर ।।
कुलजि कलही कामिनी, कुटिल कृतघ्न कुरूप ।
सपनेहूं न तजै तरुनि, कोढ़ीहू पति भूप[2] ।।

अपने इस विचार में केशव श्रीमद्भागवत से प्रभावित दिखाई देते हैं—

दुःशीलो, दुर्भगो वृद्धो जड़ो रुग्णोऽधनोपि वा ।
स्त्रीभिः पतिन हातव्यो लोके नरकभीरुभिः[3] ।।

केशव के अनुसार पति- पत्नी दोनों एक दूसरे के अभाव में अपने वास्तविक रूप को खो बैठते हैं—

पत्नी पति बिनु दीन अति, पति पत्नि बिनु मंद ।
चंद बिना ज्यौं जामिनी, ज्यौं जामिनि बिनु चंद[4] ।।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रभाव, पृ० - २१२, छ० - ४,५
२ - वही, पृ० - २१५, छ० - १४,१५
३ - वही, छ० - १६
४ - वही, पृ० - २२०, छ० - ४०

अग्निजन्य दाह की पीड़ा विरहजन्य दाह की पीड़ा से अधिक नहीं होती —
श्री हर्ष- नैषधे: - दहनजा न पृथुर्दवथुव्यथा विरहजैव पृथुर्यदि नेदृशम् ।
दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रिय: प्रियमपासुमुपासितुमुद्धुरा:[1] ।।
केशव के अनुसार कोई भी कार्य सहसा न करके क्रमानुसार धीरे- धीरे करना चाहिए
क्योंकि सहसा प्राप्त ज्ञान- विज्ञान भी कभी - कभी घट जाता है ।

सहसा कर्म न कीजई, सहसा ज्ञान बिज्ञान ।
जब तब सहसा घटि परे, छाँड़ि देइ सब ध्यान[2] ।।

यहाँ केशव राजनीति से प्रभावित दिखाई देते हैं—
राजनीति यथा—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक: परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुण लुब्धा: स्वयमेव संपद:[3] ।।

केशवदास ने विज्ञानगीता में हिरण्यकश्यपु और प्रह्लाद की कथा का भी उल्लेख
किया है—

हिरनकस्यपु हति भए नरहरि अन्तर्ध्यान ।
उपज्यौ उर प्रह्लाद के सोक विचार प्रमान[4] ।।

आचार्य केशव के अनुसार ब्रह्मभक्ति से ही हरिभक्ति उत्पन्न होती है—

ब्रह्मभक्ति हरिभक्ति तहं प्रतिहारिनी दोइ ।
तिनकौं सेवहु सर्वदा तबहीं दर्शन होई ।।
ब्रह्मभक्ति की जै नृपति उपजि परै हरिभक्ति ।
तातें पहिले ही तुम्हें हौं सिखऊं द्विजभक्ति[5] ।।

---

१ - आचार्य केशवदास विज्ञानगीता : षोडष प्रभाव, पृ० - २२०, छं० - ४२
२ - ३ वही, पृ० - २२६, छं० - ७७ एवं २३०, छं० - ७८ क्रमश:
४ - वही, अष्टादश प्रभाव, पृ० - २५५, छं० - ३
५ - वही, एकोनविंश प्रभाव, पृ० - २७२, छं० - २३, २४

सम्भवत: यहाँ केशव स्कन्दपुराण के निम्न श्लोक से प्रभावित दिखाई देते हैं—

स्कन्दपुराणे—

ब्रह्मभक्तिर्विना सुभ्रु विष्णु भक्तिर्न जायते ।
तस्माद्विष्णोस्तु भक्त्यर्थं ब्रह्मभक्त्यैव समत्म्[1]।।

केशव ने ब्राह्मण की महिमा का वर्णन 'विज्ञानगीता' में निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

बिप्रनि की सब सीख सुनौ जू । ब्राह्मन ब्रह्म समान गुनौ जू ।
देहु सबै कछु दुख न दीजै । आसिष ज्यों चरनोदक लीजै ।।
छाँडि अकृति बिप्रनि पूजौ । भूतल मैं कछु देव न दूजौ[2] ।

यहाँ केशव निम्न पंक्तियों से प्रभावित दिखाई देते हैं—

धर्मशास्त्रेयथा— दैवाधीनं जगत्सर्वं मंत्राधीना च देवता ।
ते मन्त्रा: ब्राह्मणाधीनास्तस्मात् ब्राह्मण देवता[3] ।।

ब्राह्मणों की इस प्रकार की महिमा का वर्णन पद्मपुराण में भी मिलता है ।
सम्भव है केशव ने वहीं से आधार ग्रहण किया हो—

पद्मपुराणे— न यज्ञयोगेन तपोभिरुग्रैर्न मंत्रतीर्थैर्न च मार्जनेन ।
तथा हरिस्तुष्यति देवदेवो यथा महीदेव सुतोषणेन[4] ।।

केशव के अनुसार ब्राह्मण चाहे कैसा भी हो परन्तु वह पूजनीय ही होता है—

पंगु ब्राह्मन गुंग अंध अनाथ राज कि रंक ।
अज्ञ होंहि कि बिज्ञ भेद न मानिये करि संक ।।
पूजिये मन बचन कर्मनि प्रेमपुन्य प्रमान ।
सावधाननि सेइये सब बिप्र ब्रह्म-समान[5] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकोनविंश प्रभाव, पृ०- २७२, छ०- २५
२-३ वहीं, पृ०-२७३ छ०- २६-२७, २८ क्रमश:
४-५ वहीं, पृ०-२७४, छ०- ३०, ३१-३२ क्रमश:

यहाँ केशव गीता तथा पद्मपुराण के निम्न श्लोकों से प्रभावित हैं—

गीतायां यथाविष्णु- साचारो वा निराचार: साध्वसाधुरेव च ।
अविधो वा सविधो वा ब्राह्मणो मामको तनु:[१] ।।

धर्मशास्त्रे यथा- पतितोऽपि वरो विप्रो न च शूद्रो जितेन्द्रिय: ।
क: परित्यज्य गां दुष्टां खरीं शीलवतीं दुहेत्[२] ।।

वृद्धयाज्ञवल्क्ये- ब्राह्मणं साधुकं मान्यं अथ तो यो न पूजयेत ।
तस्य पुण्यक्षयो आशु पापे याति न संशय:[३] ।।

केशव ने ब्राह्मण महिमा की विस्तार से चर्चा करते हुए चार कर्मों से युक्त ब्राह्मण को श्रेष्ठ माना है तथा जो ब्राह्मण शास्त्र विहित कर्मों को नहीं करता वह सदा नरकगामी होता है ।

श्रुति स्मृति सास्त्रानि सुनि समुझि, कर्म करै प्रतिकूल ।
हरिपद विमुख जो बिप्र हैं नरकनि को अनुकूल ।।
पतित संग अपवित्र नृप तिनहूं को हित हेरि ।
श्रुति स्मृति सास्त्रानि करत हैं ताको निन्दा हेरि ।।
चारि कर्मजुत विप्रकुल जो कैसोई होय ।
सबही को गुरु सर्बदा सब तें पावन सोय[४] ।।

यहाँ केशव निम्न ग्रन्थों से प्रभावित दिखाई देते हैं—

पद्मपुराणे धर्मराज- पश्यन् हि भेदं न ध्यायेत ब्राह्मण: शंकर यत: ।
विरता विष्णु विधासु नरा निरयगामिन:[५] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकोनविंश प्रभाव, पृ०- २७४, छ०-३३

२-३ वही, पृ० २७६, २७६, छ०- ४४, ४५

४- वही, छ०- ४१, ४२, ४३

५- वही, पृ०- २७४, छ०- ३४

श्री भागवते यथा- विप्राद् द्विषड्गुणयुतारविन्दनाभ ।
पादारविन्द विमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्[1] ।।

केशव के मतानुसार वह ब्राह्मण जो हरिभक्त होता है वह सर्वश्रेष्ठ और पूजनीय है-

गायत्री - संजुक्त है सबै विप्र हरिभक्त ।
वेद पुराननि मैं कहे चारो विप्र अभक्त ।।
तिन्हें छाँड़ि संपूजिये ब्राह्मन ब्रह्म स्वरूप ।
कबहूं भेद न मानिये बिप्रा होत जुगरूप[2] ।।

यहाँ केशव निम्न पंक्तियों से प्रभावित दिखाई देते हैं-

पाराशर- युगे- युगे तु ये धर्माः ये द्विजा याश्च देवताः ।
तेषां न निन्दा कर्तव्या युगरूपाश्च देवताः[3] ।।

ब्रह्मनारदीय पुराणे- सन्निकृष्टं वाधीनं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ।
भोजनश्चैव दानेश्च दहत्यासप्तमं कुलं[4] ।।

केशव के अनुसार अभक्त ब्राह्मण को छोड़कर सभी ब्राह्मण पूजनीय है । और ये अभक्त ब्राह्मण चार प्रकार के माने गये हैं-

हरि कों हिय जानै नहीं द्विज द्रव्यनि अनुरक्त ।
जनक जननि को देत दुख मातापत्य अभक्त[5] ।।

अपने इन बातों की पुष्टि केशव ने निम्न पंक्तियों से की है-

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकोनविंश प्रभाव, पृ० - २७५, छ० - ३६
२ - वही, छ० - ३८, ३६
३ - वही, पृ० - २७६, छ० - ४०
४ - वही, पृ० - २७७, छ० - ४६
५ - वही, छ० - ४८

यथा श्री नारायण लक्ष्मी प्रति-

मद्भक्ता शंकरद्रोही मद्द्रोही शंकर प्रियः ।
तावुभौ नरकं यातो यावच्चन्द्र दिवाकरौ[१]।।

यथाग्निपुराणे- नजारजः पितृद्वेषी नाजारामतृवैरिणा ।
ना लम्पटोऽधिकारी स्यात् नाकामी मंजनप्रियः[२]।।

स्कन्दपुराणे- हरस्य चान्यदेवस्य केशवस्य विशेषतः ।
मठादिपत्यं यः कुर्यात् सर्वधर्म बहिष्कृतः[३]।।

देवी पुराणे- अभोज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणंचरेत ।
स्पृष्ट्वा मठपति विप्रं सवासा जलमाविशेत्[४] ।।

पद्मपुराणे- पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च ।
योऽश्नाति स पचेत् घोरे नरके चैकविशतिः[५]।।

वेदव्यास के मतानुसार जो व्यक्ति ब्राह्मण का धन ले लेता है उसके पुत्र पौत्रादिक सभी नष्ट हो जाते हैं—

वामनपुराणे— न विषं विषमित्याहुः विषं ब्रह्मस्वमुच्यते ।
विषमेकं दहत्येव ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकान्[६] ।।

रामायणे— ब्रह्मस्वं देवद्रव्यं च स्त्रीणां बान्धवं च यत् ।
द्रव्यं हरति यो मोहाद् दृष्टा सह पतत्यधः[७] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकोनविंश प्रभाव, पृ०- २७७, छं०- ४६

२-३ वही, पृ०- २७८, छं०- ५१, ५३ क्रमशः

४- वही, छं०- ५४

५- वही, पृ०- २७६, छं०- ५५

६- वही, पृ०- २७७, छं०- ५०

७- वही, पृ०- २७८, छं०- ५२

केशव के मतानुसार चार प्रकार के अभक्त ब्राह्मण को छोड़कर शेष ब्राह्मण पूजनीय हैं। इनकी भक्ति से हरिभक्ति की प्राप्ति होती है।

> इनकौं तौ नृप छाँडिऐ कीजै द्विज - आसक्ति।
> बिबिध पाप मिटि जाहिं उर उपजि परै हरिभक्ति।।
> अकल अविद्या- रहित है ब्रह्मजुत हरिभक्ति।
> पावौ नवधा अंग सौं तजि सब सौं आसक्ति।।
> नवरस मिश्रित साधि नृप नवधा भक्ति प्रमान।
> दानव मानव देवगन भक्त- कमल हरि- भानु[1]।।

उपर्युक्त छन्द में वर्णित नवधा भक्ति का वर्णन श्रीमद्भागवत में विस्तार से हुआ है—

भागवते यथा— श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं सख्यं दास्यमात्मनिवेदनम्[2] ।।

इसी प्रकार नवरसों का वर्णन आचार्य भरतमुनि ने किया है—

नाट्य वर्णने भरताचार्य—

> शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकः।
> बीभत्साद्भुत शान्ताश्च नव काव्यरसाः स्मृताः[3]।।

नवधा भक्ति को नवरस के माध्यम से किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है इसे केशव ने निम्न छन्द में वर्णित किया है—

> जो तहु अद्भुत श्रवन सौं, सुमिरन करुणा जानि।
> सहित जुगुप्सा दासता पाद- भजन भय मानि ।।
> बंदन बीर, सिंगार स्यौं अर्चन सख्य सहाय ।
> रौद्र कीरतन, सम सहित आत्मनिवेद प्रकास[4]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकोनविंश प्रभाव, पृ०- २७६, छं०- ५६, ५७, ५८
२-३-४ वही, पृ० - २८० , छं०- ५६, ६०, ६१-६२ क्रमशः

केशव ने अपने विचारों को नवधाभक्ति से ही पोषित किया है—

> काम क्रोधहिंसादि के मद लोभ मोह निवारु ।
> मित्र ज्यों हरि मग्न आनंद अधि सजि सिंगारु ।।
> रूप- पंवर रीझ त्यों बपु अर्पियौ अनयास ।
> पाय पूरन रूप को सम- भूमि केसवदास[1] ।।

यह नवधाभक्ति रसात्मिका है—

यथा मत्स्य पुराणे— मोक्षदात्री च संपूर्ण लोभ दम्भादि वर्जिता ।
जगदीशस्य नवधा भक्ति रसात्मिका[2] ।।

कविप्रिया में—

कविप्रिया मूलत: कविशिक्षा विषयक ग्रन्थ है । इसमें काव्य रचना से सम्बन्धित विषयों के लक्षण एवं उदाहरण दिए गये हैं । कविप्रिया में पौराणिक कथाओं का उल्लेख एकाध स्थलों पर ही हुआ है । अधिकतर पौराणिक आख्यानों का वर्णन रामायण पर आधारित है । रामकथा से सम्बन्धित जितने भी उदाहरण केशव ने कविप्रिया में दिए हैं वे सभी रामचन्द्रिका से लिए गये हैं । रामचन्द्रिका से इतर जिन पौराणिक कथाओं की चर्चा केशव ने कविप्रिया में की है वे इस प्रकार हैं—

> खात न अघात सब जगत खवावत है,
> द्रौपदी के सागपात खात ही अघाने हो ।
> केशोदास नृपति सुता के सतभाय भये,
> चोर ते चतुरभुज चहूंचक जाने हो ।।
> मांगनेऊ, द्वारपाल, दास, दूत, सूत, सुनो,
> काठमाहि कौन पाठ वेदन बखाने हो ।।

---

1 - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकोनविंश प्रभाव, पृ० - २८१, छं० - ६५
2 - वही, छं० - ६६

और हैं अनाथन के नाथ कोऊ रघुनाथ,

तुम तो अनाथन के हाथ हीं बिकाने हौ[1] ।।

कविप्रिया के आठवें प्रभाव में केशव ने मंत्रा वर्णन के उदाहरण में महाभारत की कथा का वर्णन किया है।

युद्ध जुरे दुर्योधन सों कहि को न करे अमलोक बसात्यो ।
कर्ण, कृपा, द्विज द्रोण, सो वैर के काल बंधे बल काजि प्रतीत्यो ।।
भीम कहा बपुरो अरु अर्जुन नारि नंग्यावत ह्वा बल रीत्यो ।
केशव केवल केशव के मत मूतल भारथ पारथ जीत्यो[2] ।।

इसी प्रकार हय वर्णन के उदाहरण में केशव ने पौराणिक कथाओं के माध्यम से रामचन्द्र द्वारा दान किए गये घोड़ों की विशेषता बताई है।

नाममनि हि द्रुपद जु नाप्यो नम ताहि कहा,
नापै पद धारि थिर होत यहि हेत हैं ।
छेकी छिति छीरनिधि छांड़ि छाप छत्र पर,
कुण्डली करत लोल चाके मोल लेत हैं ।।
मन कैसे मीत और बाहन समीर कैसे,
नैनन के नैना, नैन नेह के निकेत हैं ।
गुणगण बलित, ललित गति केशोदास,
ऐसे बाजि रामचन्द्र दीनन को देत हैं[3] ।।

इसी प्रकार ग्यारहवें प्रभाव में पौराणिक आख्यानों से युक्त निम्न छन्द मिलता है— कविप्रिया के छठें प्रभाव में केशव ने राजा बलि के दान का वर्णन निम्न छन्द में किया है—

---

१ - कविप्रियाप्रकाश (कविप्रिया) छठां प्रभाव, पृ० - ६०, छं० - ५१

२ - वही, आठवां प्रभाव, पृ० - ८०, छं० - १६

३ - वही, पृ० - ८२, छं० - २६

कैटभ सो, नरकासुर सो, पल में मधु सो, मुर सो जेहि मार्‌यो ।
लोक चतुर्दश रक्षक केशव पूरण वेद पुराण विचार्‌यो ।।
श्री कमला - कुच - कुंकुम मंडन पंडित, देव अदेव निहार्‌यो ।
सो कर मांगन को बलि पै करतारहू को करतार पसार्‌यो[1] ।।

निम्न छन्द में केशव ने नायक और नायिका के रूप में राम और सीता की सर्वश्रेष्ठता की पौराणिक आख्यानों के माध्यम से वकालत की है ।

काम के हैं आपने ही कामराते, काम साथ,
रति न रती की जी, कैसे ताहि मानिए ।
अधिक असाधु इन्द्र, इन्द्रानी अनेक इन्द्र,
भोगवती, केशोदास वेदन बखानिये ।।
विधिहू अविधि कीनी, सावित्रीहू शाप दीनी,
ऐसे सब पुरुष युवति अनुमानिये ।
राजा रामचन्द्र जू से राजत न अनुकूल,
सीता सी न पतिव्रता नारी उर आनिये[2] ।।

निम्न छन्द में केशव ने राम के शौर्य का परिचय राम द्वारा किए गये विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा दिया है-

हर को धनुष तोर्‌यो, रावण को बंश तोर्‌यो,
लंक तोरी, तोरें जैसे वृद्ध बंश बात हैं ।
शत्रुन के सेल शूल फूल तूल सहे राम,
सुनि केशोराय की सों हिये हहरात हैं[3] ।

ग्यारहवें प्रभाव में विभिन्न अवतारों की कथाओं का उल्लेख निम्न छन्द में मिलता है-

---

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) छठां प्रभाव, पृ० - ६८, छ० - ७४
२- वही, आठवां प्रभाव, पृ० - ८६, छ० - ८
३- वही, नवां प्रभाव, पृ० - ११२, छ० - ३१

धरत धरणि, ईश शीश चरणोदकनि,
गणपति चतुरमुख सब सुख दानिये।
कोमल अमल पद कमला कर कमल,
लालित, बलित गुण, क्यों न उर आनिये।।
हिरणकशिपु दारुकारी प्रह्लाद हित,
द्विज पद उरधारी बेदन बखानिये[1]।

वीर रसवृत के उदाहरण में भी केशव ने पौराणिक कथाओं का समावेश किया है।

जेहि सर मधु मद मर्दि महा मुर मर्दन कीनो।
मार्यो कर्कश नरक शंख हनि शंख सुलीनो।।
निष्कण्टक सुर कटक कर्यो कैटभ बपु खंड्यो।
खर दूषण त्रिशिरा कबन्ध तरु खंड विहंड्यो।।
कुम्भकरण जेहि मद हर्यो पल न प्रतिज्ञा ते टरौं।
तेहि बाण प्राण दसकंठ के कण्ठ दसौ खण्डित करौं[2]।।

इसी प्रकार रौद्र रसवृत के उदाहरण में भी केशव का पौराणिक ज्ञान प्रदर्शित होता है।

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गन्धर्व सर्व पसु।।
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउं इन्द्र अब।
विद्याधरन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब।।
लै करौं दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिट जाय जल।
सुनि सूरज सूरज उगत ही करौं असुर संसार बल[3]।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ०- १३५, छं० - ३०
२- वही, ग्यारहवां प्रभाव, पृ०- १५४, छं०- ५५
३- वही, छं०- ५६

निम्न छन्द में भी केशव पौराणिक कथाओं से प्रभावित हैं ।

केशोपदास बेद विधि व्यर्थ हीं बनाई विधि,
व्याघ शबरी को कौने संहिता पढ़ाई हीं ।
वेषधारी हरि बेष देख्यो है अशेष जग,
तारका कौने साख तारक सिखाई हीं ।।
आरानदा बारन कर्यो हौं बसौबास कब,
गनिका कबहिं मनिकनिका अन्हाई हीं ।
पतितन पावन करत जो न नन्ददूत,
पूतना कबहिं पति देवता कहाई हीं[1] ।।

नल दमयंती की कथा की चर्चा केशव ने निम्न छन्द में की है ।

बैठति है तिनमें हठि कै जिनकी तुमसों मति प्रेमपगी है ।
जानति हीं नल दमंती की दूत कथा रस-रंग रंगी है[2] ।।

दशरथ के घर पुत्र जन्म के अवसर पर देवताओं ने भी दुन्दुभी बजाई है ।

पूत भयौ दशरथ को केशव देवन के घर बाजी बधाई[3] ।

हजारों हाथियों के बल वाले दुःशासन द्रौपदी का तिलमात्र भी अंग न उघार सका

गर्व से दुष्ट ते पुष्ट हुते भट पाप औ कष्ट न शासन टारे ।
सोदर सैन कुयोधन से सब साथ समर्थ भुजा उसकारे ।।
हाथी हजारन को बल केशव ऐंचि थकौ पट को डर डारे ।
द्रौपदि को दुस्सासन पै तिल अंग तऊ उघर्यो न उघारे[4] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ग्यारहवां प्रभाव, पृ०- १५८, छ०- ६२

२- वही, छ०- ६३

३- वही, बारहवां प्रभाव, पृ०- १७१, छ०- ११

४- वही, पृ०- १७२, छ०- १५

निम्न छन्द में केशव ने उस घटना का वर्णन किया है जिसमें अर्जुन कृष्ण के परिवार की स्त्रियों को हस्तिनापुर लिए जा रहे थे, रास्ते में भीलों ने स्त्रियाँ छीन लीं और अर्जुन कुछ न कर सके।

बेई है अर्जुन आन नहीं जन में यश को जिन बेलि बई जू।
पेखत हीं तिनके तब कोलनि केकहिं नारि छिनाइ लई जू[1]।।

सहस्रार्जुन के दोष से अनेक क्षत्रिय मारे गये। हरिश्चन्द्र के पुण्य से सबने मुक्ति पाई। इस पौराणिक आख्यान का वर्णन भी केशव ने किया है—

मात के मोह पिता परितोषन केवल राम भरे रिस भारे।
औगुन एक ही अर्जुन को छितिमंडल के सब छत्रिय मारे ।।
देवपुरी कहं औधपुरी जन केशवदास बड़े अरु बारे।
सूकर स्वान समेत सबै हरिचन्द के सत्य सदेह सिधारे[2]।।

शंबर की कथा का उल्लेख भी केशव ने किया है—

ओढ़त न अंबरन डोलत दिगंबर सो,
शंबर ज्यों शंबरारि दुःख देह को दहै[3]।।

रसिकप्रिया में :

रसिकप्रिया में भी केशव ने एकाध ही ऐसे छन्द लिखे हैं जिसे देखकर यह कहा जा सकता है कि उन छन्दों में केशव पौराणिक कथाओं से प्रभावित हैं। वे छन्द निम्नलिखित हैं।

यह पौराणिक मत है कि काली को केतकी का फूल नहीं चढ़ता इसका

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : बारहवां प्रभाव; पृ०- १७३, छ०- १८
२- वही, तेरहवां प्रभाव, पृ०- १८२, छ० - ८
३- वही, चौदहवां प्रभाव, पृ०- १९९, छ० - २०

उल्लेख केशव ने निम्न छन्द में किया है।

> कमलाग्रजा ज्यों कमलनि तें उरति है।
> कालो ज्यों न केतकी के फूल रुचि, ताता जू ज्यों
> निशिचर-मुख तिन देखे ही जरति है।
> बदन उघारतहीं मदन-सुयोधनहीं,
> द्रौपदी ज्यों नाम मुख तेरो ही ररति है[1]।

केशव ने रसिकप्रिया के चौदहवें प्रभाव में नल दमयन्ती की कथा की चर्चा की है—

> जानति हौं नलराज दमंती की दूतकथा रस-रंग रंगी है।
> पूजिगी साध सबै सुख की बड़भाग की केशव ज्योति जगी है[2]।।

इस प्रकार केशव ने पुराणों की विभिन्न कथाओं का वर्णन यथास्थान अपने विभिन्न ग्रन्थों में किया है।

१- रसिकप्रिया : एकादश प्रभाव, पृ०- २१८, छं०- १६

२- वही, चतुर्दश प्रभाव, पृ०- २५३, छं०- ५

अध्याय चार

काव्यात्मक प्रभाव

काव्यात्मक प्रभाव

काव्यशिल्प :

भाव और कला काव्य का सम्पूर्ण रूप है। यदि भाव को काव्य की आत्मा माना जाय तो कला उसका शरीर है। जिस प्रकार किसी भी आत्मा की सत्ता के लिए शरीर का होना अनिवार्य है और शरीर की सजीवता के लिए आत्मा की सत्ता परम आवश्यक है, उसी प्रकार किसी भी काव्य की सफलता, उसका काव्यत्व, भाव और कला दोनों के समुचित सामंजस्य में ही निहित होता है। काव्य के प्रतिपाद्य को भाव पक्ष कहा जाता है। भावपक्ष चाहे जितना समृद्ध हो, यदि उसको व्यक्त करने वाला कलापक्ष दुर्बल है तो उसकी समृद्धि का कोई प्रभाव पाठकों अथवा श्रोताओं पर नहीं पड़ता। कलापक्ष के अन्तर्गत भाषा, गुण, अलंकार आदि आते हैं।

भाषा :

केशवदास का जन्म ऐसे कुल में हुआ था जिसके दास तक भी ' भाषा ' नहीं बोल सकते थे। इस कारण ' भाषा ' में लिखना वे अपने लिए हेय समझते थे। किन्तु फिर भी उन्होंने भाषा में रचना की। इसका कारण उनके अपने ही ग्रन्थ ' विज्ञानगीता ' में ढूंढा जा सकता है[1]। तर्क तो ठीक माना जा सकता है परन्तु तथ्य कुछ और ही है। वे स्वयं ही कहते भी हैं[2]।

१ - देव देव भाषा करैं, नाग नागभाषाणि।
नर हौ नरभाषा करौ, गीता ज्ञान प्रमाणि ।। आ०के०कृ०वि० ;प्र० १, छं० -७

२ - मूढ़ लहै जौ गूढ़मत, अमित अनंत अगाधु।
भाषा करि तातै कह्यौं, छामियो बुध अपराधु ।। वही, छं० - ८

फिर भी पण्डित-कुल की छाप स्थल-स्थल पर उनकी भाषा पर बहुल अलंकार-प्रयोग और संस्कृत-शब्दावली के रूप में दिखलाई देती है।

केशव के काव्य-क्षेत्र में पदार्पण करने के समय अवधी तथा ब्रज दोनों ही भाषाएं काव्य-भाषाओं के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। परन्तु केशव ने मुख्य रूप से ब्रज को ही अपनी काव्यभाषा बनाया। इसका प्रमुख कारण यह था कि केशव का निवास-स्थान बुन्देलखण्ड में था और बुन्देलखण्डी भाषा ब्रजभाषा से बहुत कुछ मिलती है, क्योंकि दोनों का मूलस्रोत एक ही भाषा शौरसेनी है। हां, थोड़े से शब्दों अथवा प्रयोगों में भेद अवश्य परिलक्षित होता है, किन्तु इससे ब्रजभाषा की प्रधानता में कोई अन्तर नहीं आता। व्यापकता की दृष्टि से ब्रज के पश्चात् अवधी का स्थान था, परन्तु उसमें ब्रज की सी मधुरता का अभाव था। इसके अतिरिक्त विदेशी भाषाओं के शब्दों को सांचे में ढालकर सर्वथा अपना ही अंग बना लेने की शक्ति ब्रज में अवधी की अपेक्षा कहीं बढ़ी-चढ़ी है। शब्दों को तोड़-मरोड़ कर छन्द की गति के अनुसार बना लेने की स्वतन्त्रता भी ब्रज में अवधी से अधिक रहती है। यही कारण है कि केशव ने अपने काव्य के लिए ब्रज को ही अपनाया। 'युक्तिविकर्ष', 'कारक-लोप', 'णकार', 'शकार', 'षकार' के स्थान पर 'न' 'स' और 'ख' का प्रयोग प्राकृत भाषा के प्राचीन शब्दों का व्यवहार, पंचम वर्ण के स्थान पर अधिकांश अनुस्वार का ग्रहण इत्यादि जितनी विशेष बातें ब्रजभाषा की हैं वे सब उनकी रचनाओं में पाई जाती हैं[1]। इस प्रकार के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास : अयोध्यासिंह उपाध्याय

जहं तहं श्रुति पढ़हीं विघन न बढ़हीं[१]। (युक्त-विकर्ष)

सम सब घर शोभे--- रिपुगण छोभें देखि सबै[२]।।

(` क्ष ` के स्थान पर ` छ ` का प्रयोग)

सिंह चढ़ी जनु चण्डिका मोहति मूढ़ अमूढ़[३]।

(वर्तमान कालिक क्रिया- स्त्रीलिंग)

शुभ मोतिन की दुलरी दे सुदेशा[४]।

(विभक्ति लगाने से पूर्व बहुवचन में ` न ` प्रत्यय का प्रयोग)

तौ परिपूरन यज्ञ करीजै[५]।

(ण के स्थान पर `न ` का प्रयोग और युक्तविकर्ष)

सुता विरोचन की हुती दीरघ जिह्वा नाम[६]।

(भूतकालिक क्रिया - स्त्रीलिंग)

सबै शृंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै। (अनुस्वार-प्रयोग तथा कारक लोप)
सबै सिंगार सदेह सकल सुख सुखमा मण्डित[७]।

(श तथा ष के स्थान पर क्रमशः ` स ` तथा ख का प्रयोग)

अन्न देइ सीस देइ राख लेइ प्राण जात[८]।

(देइ, लेइ आदि पूर्वकालिक कृदन्त तथा `जात` वर्तमानकालिक कृदन्त)

१- रामचन्द्रिका : पहला प्रकाश पृ० - १७, छ० - ४१

२- वही, पृ० - ४१ (प्रथम चरण)

३- वही, छ० - ४७ (द्वितीय चरण)

४ -८ तक वही, प्रकाश -६, छ० -५६; प्र० २, छ० - १५, प्र०३, छ० -८; प्र० १, छ० -४७ प्र० -६, छ० - ६ क्रमशः

पहिरे वकला सुजटा धरिकै । निज पायन पंथ चले अरिकै[1]।

(` कै ` के साथ पूर्वकालिक कृदन्त का प्रयोग)

खीज अब्दुल्लह आईयौ । मिलि मझौरिया सुख पाईयौ[2]।।

(भूतकालिकक्रिया)

कन्हर के सिर दीनौ मार[3]।

(कारक- लोप)

कीनौ हुतौ काज सबै सु कीन्हौ[4]।

(भूतकालिक क्रिया- पुलिंग)

केशव संस्कृत के पण्डित थे । अतएव उनके ग्रन्थों में संस्कृत के तत्सम रूप में प्रचुरता से पाया जाना स्वाभाविक ही है । उन्होंने संस्कृत के शब्दों का ही नहीं अपितु अनेक स्थलों पर नि:संकोच संस्कृत का ` सुबन्त ` और ` तिङन्त ` विभक्तियों का भी प्रयोग किया है । संस्कृत का सबसे अधिक प्रभाव उनके प्रबन्ध ` रामचन्द्रिका ` पर परिलक्षित होता है । इसका कारण यह है कि यह ग्रन्थ पाण्डित्य- प्रदर्शन के लिए रचा गया था । यही कारण है कि इस रचना में कई इस प्रकार के छन्द लिखे गये हैं जिनके दो- दो अर्थ निकलते हैं । संस्कृत भाषा के शब्दों के प्रयोग के बिना दो अर्थों का निकलना असम्भव था, क्योंकि यह गुण संस्कृत के ही शब्दों में है । रामचन्द्रिका के कुछ छन्दों की भाषा तो अधिकांश संस्कृत ही है-

---

१- रामचन्द्रिका : प्रभाव- १०, छ० - १३

२-वीरसिंह देव चरित : पृ० - ५५

३- वही, पृ० - ४८

४- रामचन्द्रिका : प्रकाश- १७, छ० - १६

सीता शोभन व्याह उत्सव सभा संभार संभावना ।
तत्कार्य समग्र व्यग्र मिथिलावासी जनाशोभना ।
राजाराजपुरोहितादि सुहृदा मंत्री महामंत्रदा ।
नाना देश समागता नृपगणा पूज्यापरा सर्वदा[1] ।

रामचन्द्रपदपद्मं, वृन्दारकवृन्दाभिवंदनीयम् ।
केशवमति भूतनया, लोचनं चंचरीकायते[2] ।।

अथवा-

अनंता सबै सर्वदा शस्ययुक्ता ।
समुद्रावधि: सप्त ईतिविमुक्ता[3] ।।

तथा-

त्रिदेव: त्रिकाल: त्रयीवेदकर्ता । त्रिश्रोता कृती सूत्रयी लोकमर्ता ।
कृपा कै कृपापात्र कीने निषाधो । प्रबोधो उदो देहि श्री बिन्दुमाधो[4]।।

अथवा-

शिरश्चन्द्र की चन्द्रिका चारु हाशे । महापातकी ध्वांत धाम प्रणाशे ।
फणी दुग्ध भावे अनंगारि अंगे । नमोदेवी गंगे नवो देवी गंगे[5] ।।

परन्तु इस प्रकार की संस्कृत गर्भित भाषा सर्वत्र नहीं मिलती है । संस्कृत की सुबन्त और तिङन्त विभक्तियों तथा प्रत्ययों का प्रयोग भी केशव ने स्वच्छन्दतापूर्वक किया है । इस प्रकार के प्रयोग विशेषत: रामचन्द्रिका में ही

१- रामचन्द्रिका : प्रकाश १७, छं० - १७

२- वही, प्रकाश १, छं० - १६

३- वही,

४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : प्रकाश- ११, छं० - ३६

५- वही, छं० - ४०

मिलते हैं, अन्य प्रबन्धों में तो वे कहीं - कहीं ही दिखाई देते हैं। नीचे उद्धृत किए गए छन्दों में रेखांकित अंश इसके प्रमाण हैं—

निजेच्छया भूतल देहधारी (रामचन्द्रिका प्र० १०, छ० -४१)

शिरसि जटा वाकल वपुधारी (,, प्र० १२, छ० -५३)

शोक विदूषित उरसि अब नहिं विवेक अवकाश।

(आ० के० कृ० वि० : प्रभाव-१३, छ० - १०)

अनन्ता सबै सर्वदा शस्ययुक्ता ।

समुद्रावधि: सप्तईतिर्विमुक्ता ।। (रामचन्द्रिका, प्रकाश २८, छ० -१)

लीलयैव हर को धनु साँध्या । (,, प्रकाश-५, छ० - ४१)

तदपि सृजति रागन की सृष्टि (,, ,, ८, छ०- १८)

हरति सुवचन चित्त की रीति। (वीरसिंह देव चरित, पृ० -१६१)

गुन गुन्वन्तनि आलिङ्गति नहीं ।(,, पृ० - १६२)

चतु: समुद्र मुद्रिकाभि मुद्रिका विच्छेदिनी (जहांगीर-जस-चन्द्रिका, छ० -१३२

प्रबोधो उदो देहि श्री बिन्दुमाधो (आ०के०कृ०वि०, प्र० -११, छ० -२१)

देखि देहीं सबै कोटिधा ।। (रामचन्द्रिका, प्र० -११, छ० -७)

अनेकधा पूजा अत्रि जू करयो। (,, प्र० -११, छ० -२)

आखण्डलाय वपु जो तनत्राण धारी(,, प्र० -१७, छ० - ३५)

मनसा वाचा करमना माँगि चित्त का बात(जहांगीर-जस-चन्द्रिका-छ० -१३८

पुनि तुम दीन्हीं कन्यका त्रिभुवन की सिरताज।

(रामचन्द्रिका, प्र०-६, छ० -२३)

सुद्ध देस परापरीषु सबै भए इहि बार (जहांगीर-जस-चन्द्रिका, छ० -१४१)

कहीं - कहीं संस्कृत की समास और सन्धि- पद्धति का भी आश्रय लिया गया है। नीचे लिखे उद्धरणों में रेखांकित शब्द इस बात के साक्षी हैं—

मलासुतविद्वेषिणनी सब को हो दुखदाइ (रामचन्द्रिका, प्र० -१० - छ० -५)

मोहित मूढ़ अमूढ़ देवसंगऽदिति ज्यों सोहै(,, प्र० -१, छ० -४७)

सौऽब कहा तुव लंक न तोरहि (,, प्र० -१५, छ० -७)

मनो सेषमय सोभिजै हरिणाधिष्ठित सेज ।।

(वीरसिंह देव चरित, पृ० - १३०)

केशवदास के ग्रन्थों में यत्र- तत्र बुन्देलखण्डी शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं। यह स्वाभाविक ही है। जिस प्रान्त के वे निवासी थे उस प्रान्त के शब्दों का उनकी रचनाओं में उपलब्ध होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनके ग्रन्थों में बहुत से बुन्देलखण्डी शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं—

मंत्रिनि स्यों बैठे सुख पाइ । (वीरसिंह देव चरित, पृ० - १२४)

बारौठे को चार करि कहि केशव अनुरूप (रामचन्द्रिका; प्र० -६, छ० - ५)

दुहिता समदी सुख पाय अबै । (,, प्र० -६, छ० -२)

कहूं भांड भांडयौ करैं मान पावैं । (,, प्र० -६, छ० -१३)

कहूं बोक बांके कहूं मेष सूरे । (,, प्र० -६, छ० - १४)

धनु है यह गौरमदाइन नाहीं । (,, प्र० -१३, छ० - १६)

किधौं उपदि बर्यो है। (,, प्र० -६, छ० - ३४)

छुनाई सी छूटी केसौदास आसमान में (,, प्र० -१३, छ० - ३८)

चंपकदल दुति के गेहुआ ।

कुसुम गुलाबन की गलसुई । (,, प्र० - ३०, छ० - १४)

फूलन के विविध हार, घोरिलन ओरमत उदार (,, प्र० -२६, छ० -२३)

ज्ञान कपीट जनु कूर्ची जनु बोलत । (,, प्र० -३२, छ० -३)

सिव सिर ससि श्री को राहु कैसे सु छीवै । (,, प्र० -१३, छ० -६२)

फूल सी औढ़ि लई है। (,, प्र० -१७, छ० -४०)

दियो काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको	(रामचन्द्रिका, प्र० -१६, छ० २५)
चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माहिं	(,, प्र० १२, छ० - २०)
गनि एक कोद सब पुन्य अरु एक कोद जौ दीजई	(वीरसिंह देव चरित, पृ० -९३)
मानिकमय कुटिला छवि मढ़े	(,, पृ० - १३३)
चन्द जू के चहूं कोद वेष परिवेश कैसो	(कविप्रिया, प्र० ७, छ० -२७)
खारिक खात न दारिम	(,, प्र० -६, छ० - ४६)
चौंकि चौंकि परें चारु चेटुवा मराल के	(रसिकप्रिया, प्र० -६, छ० -२३)
भौन भौंहरे हूं मारे भय अवरेखिये	(कविप्रिया, प्र० -६, छ० -१६)
कौबो कियो आंखिन के ऊपर खिलाइबो	(,, प्र०-१० ; छ० -८)
उरबसी उर मैं न आनिबो ।	
जानु जानिहौं जो जाहि केहूं पहिचानिबो ।	(रसिकप्रिया, प्र० -४, छ० -१८)
चंदन ज्यौं कंजनि क्योंहु छावैं	(,, प्र० -८, छ० -३४)
पायन को परिबो अपमान अनेक सो केशव मान मनैबो ।	(,, प्र० -६, छ० -२२)
नैननि को मिलिबो करिये	(,, प्र० -३, छ० -५०)
तेहि सखि समद संग थाके	(,, प्र० -८, छ० -२०)

बिछिया अनौट बांके घंघुरु जराय जरी ।
जेहरि छबीली छुद्र घंटिका की जालिका ।।
मुंदरी उदार पौंची कंकन वलय चूरी
कंठ कंठमाल हार पहिरे गुपालिका ।।
वैणीफूल शीशफूल कर्णफूल मांगफूल ।
कुटिला तिलक नकमोती सोहै बालिका ।

केशोदास नीलवासा ज्योति जगमगि रही,
देहधरे श्याम संग मानो दीपमालिका ।।

(कविप्रिया, मूल, नखशिख : छं० - ८८)

सी को दुष्ण के केसु छोवि (छन्दमाला, मालती का उदाहरण)
चोलि कैसो पान तोहिं करत समार बोई

(रसिकप्रिया, प्र० -७, छं० - ६)

केशव की रचनाओं में कहीं - कहीं अवधी भाषा के शब्द भी परिलक्षित होते हैं । ` वीरसिंहदेव-चरित ` में अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अवधी के शब्द अधिक मात्रा में पाए जाते हैं । सम्भवत: इसका कारण है कि यह ग्रन्थ दोहा-चौपाई छन्दों में लिखा गया है और इन छन्दों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त भाषा अवधी महाकवि तुलसीदास द्वारा प्रमाणित की जा चुकी थी । केशव ने इहां, उहां, दिखाउ, रिझाव, दीन, कीन आदि अनेक अवधी शब्दों का प्रयोग किया है । निम्नलिखित उद्धरणों मे रेखांकित शब्द इसके प्रमाण हैं—

एक इहां उत उहां अति दीन सुदेत दुहूं दिशि के जन गारी ।

(रामचन्द्रिका : प्र० - ६, छं० - २५)

प्रभाउ आपनो दिखाउ छोड़ि बाल भाइ कै ।
रिझाउ राजपुत्र मोहिं राम लै छुड़ाइ कै ।।

(रामचन्द्रिका : प्र० - ७, छं० - २३)

हंसि बंधु त्यों दृग दीन (,, प्र० - ११, छं० - ४०)

तिनको कछु बरनत चरित विधि समर सुकीन

(रतनबावनी, पृ० - १, छं० - ३)

देहि बलाइ जो मो बिन आन (वीरसिंह देव चरित, पृ० - ५)

हौं तोकौं सिखाऊं सिख एक ,, पृ० - १३

मो कहं देई नवाब बड़ौन (वीरसिंह देव चरित,पृ० -२४)

पवन पाई ज्यों पत्र अपार (,, पृ० -३०)

मैं तेरौं बलि बन्धु बंधायो बावन यह है (,, पृ० -६)

उठि चलिबे को आवति सौंह (,, पृ० - १४२)

राजा वीरसिंह लै आउ (,, पृ० - ६३)

आई गये घनश्याम बिहाने (रामचन्द्रिका

श्रुति नासिका बिनु कीन (,,

समुझि देखि हिय, लोम प्रवीन (वीरसिंहदेव चरित,पृ० -७)

पांइ परे मनुहार करै (रसिक प्रिया,प्र० -३,छ० -२७)

आधी सेज सोइ रही नन्दलाल (,, प्र० -५, छ० - २६)

छूटि गई लाज यहि भाइ कै (,, प्र० - ५, छ० - ३२)

डैरफो ज्यों नाऊं मुख तेरोई ररति है ।

(,, प्र० - ११, छ० - १६)

ऐसी ग्वारि लऊं काम की कुमारी सी (,, प्र० - १२, छ० - ४)

अरबी - फारसी आदि विदेशी भाषा के शब्दों का भी केशव ने बड़ी स्वतन्त्रता के साथ प्रयोग किया है । केशव का आविर्भाव अकबर और जहांगीर के समय में हुआ था जबकि हिन्दुओं और मुसलमानों में किसी प्रकार का वैमनस्य न रह गया था और वे एक दूसरे से बहुत कुछ घुल-मिल गए थे । दिल्ली के बादशाह के बीरबल, रहीम खानखाना आदि दरबारियों के सम्पर्क में भी केशव आते रहते थे अत: उनके प्रबन्धों में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग आश्चर्यजनक नहीं है । परन्तु कवि ने अरबी - फारसी आदि विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग अधिकांश तद्भव रूप में ही किया और इस प्रकार वे हिन्दी भाषा की प्रकृति

की रक्षा भी भली भांति कर सके हैं। विदेशी भाषा के शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से कवि का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ (वीरसिंह देव-चरित) है। केशव द्वारा प्रयुक्त कुछ विदेशी शब्द निम्नांकित हैं—

जुवा न खेलिये कहूं, जुबान वेद रक्षिये (रामचन्द्रिका,प्र०-३६,छ०-३०)

कपिपति सों तब ही गुदराने (,, प्र०-१५, छ०-१६)

वीरसिंह अति जोर मैं सनों साहि सिरताज

(वीरसिंह देव चरित, पृ० - १६)

जामवन्त हनुमन्त नल नील मरातिब साथ

(रामचन्द्रिका, प्र०- २६, छ०-२७)

करों साहि सों जाय फिराद (वीरसिंह देव चरित, पृ० - ५०)

सका मेघमाला शिखी पाककारी (रामचन्द्रिका,प्र०-१६,छ०-२३)

जमान मान सों दिवान कुंभकरण जाइयो(,, प्र०-१८, छ०-४)

कमान कैसो गोला हनुमान चल्यों लंक को(,, प्र०-१३,छ०-३८)

वृषाबाहन संग्रास सिद्धि संजुत सब लायक (वीरसिंह देव चरित,पृ०-१)

हौं गरीब तुम प्रगट हो सदा गरीबनिवाज(,, पृ० - ३६)

हैंग रैयत रावत पनी (,, पृ० - २६)

तेहो विच बहिंदी फर गये (,, पृ० - २७)

कै तसलीम गहे तब पाइ (,, पृ० - ३५)

वह गुलाम तूं साहिब ईस (,, पृ० - ३७)

अर्जे मेरी यह मानिये आज (,, पृ० - २१)

फेरि अकबर के फरमान (,, पृ० - ३२)

इन्द्रजीत हुजरत पै गयो (,, पृ० - ४८)

हमसे दानिनि दीनी दादि (,, पृ० - ५०)

करै नवाजिस बाकी जाइ (वीरसिंह देव चरित, पृ० - ५१)

तज्यौ नकारी जालमतोग (,, पृ० - ६०)

जहं तरन हुसम खसम बिन भए (,, पृ० - ६०)

माहीं महल मरातब साथ (,, पृ० - ६०)

लानौ खलक खजानौ लूटि (,, पृ० - ६०)

देखै तिपुर तमासौ जाय (,, पृ० - ६०)

मधुसाहि को तेग बढ्यौ दिनहीं दिन पानी

(आ० के० कृ० वि० गी० : प्र० -१, छ० - १७)

काम करैं बहु भांति फजीहति (,, प्र० -२, छ० - २५)

तब हो कूंच कियौ परमान (वीरसिंह देव चरित, पृ० - २६)

ता पीछैं असवार शूर केशव सब मोसन ।

चलत भई चकचौंध बांधि बखतर बर जौशन ।।

(रतनबावनी : छ० - २६, पृ० - ८)

खलनि के घालिबे कौं खलक के पालिबे कौं खानखाना ।

(ज० ज० च०, छ० - ५)

जग जहांगीर आलमपनाह सबल साहि अकबर सुतन ।

को गनै राजराजा जिते जीति लिये सब के वतन ।।

(ज० ज० च०, छ० - ३८)

केसौराय पीलवान राजत हैं राजनि से (,, छ० - १२४)

जाहि बड़ाई देत वे सोई बड़ौ जहान (,, छ० - ३६)

घूमत हो उजबक उलूक ज्वासे ज्यौं जरत हैं(,, छ० - ३२)

सुनत श्रवणाक्कसीस एक ईश की (कविप्रिया, पृ० -६, छ० - ६७)

निज दूत अभूत जरा के किधौं अफताली जुरा जनु लायक के ।

(कविप्रिया, प्र० - ५, छ० - १४)

रैन आक को सो फल है (कविप्रिया, प्र० - ६, छ० - २७)

कहि केशव मेद जवाद सो मांजि (,, प्र० - ६, छ० - १७)

न्यारो ह्वै गुमान मन मीननि के मानियत(वही, प्र० -१४, छ० - २८)

शेरशाह असलेम के उर सालो समसेर (वही, प्र० - १, छ० - २०)

मखतूल के भूल भुलावत केशव (रसिकप्रिया, प्र० -१, छ० - २०)

जानत सकल जहान (,, प्र० -१, छ० - ५)

जहां तहां शोर भारी (,, प्र० -५, छ० - ३२)

किधों महिराब मुख सुधाघर धाम को (शिखनख : छ० - ६)

गणपति सुखदायक,पशुपति लायक सूर सहायक कौन गने ।

(रामचन्द्रिका : प्र० - १, छ० - ४२)

देखि तिन्है तब दूरि ते गुदरानो प्रतिहार

(रामचन्द्रिका : प्र० - २, छ० - ७)

पुनि तुम दीन्ही कन्यका त्रिभुवन को सिरताज

(रामचन्द्रिका, प्र० - ६, छ० - २३)

मिले आगिलो फौज को परशुराम अकुलाय

(रामचन्द्रिका : प्र० -७, छ० - १)

कुकुर एक फिरादहिं आयो(,, उत्तरार्द्ध, पृ० - २५६)

शोर भयो सकुचे समुभै (रसिकप्रिया, पृ० - ११३)

बिरह विनोद फौल पेलियत पचि कै(,, पृ० - १५२)

सतरंज कैसी बाजी राखी रचिकै (,, प्र० -८, छ० - १७)

बूभिबे को जक लागी है कान्हहि (,, प्र० - ८, छ० - ३८)

नीकोई नकीब सम (,, प्र० -१५, छ० - ५)

शेरशाह असलेम के उर सालौ समसेर (कविप्रिया,प्र० -१, छं० -२०)

चक्र धरत चिंता करत नींद न भावत शोर (,, प्र० -२, छं० - ४)

निजदूत अभूत जरा के किधौं अफतालौ जुरा जनु लायक के ।

(कविप्रिया, प्र० -५, छं० - १४)

सुनत श्रवण बकसीस एक ईश की (वही , प्र० -६, छं० - ६७)

कूंच न कीजै राज अब आयौ वरषा काल

(आ० के० कृ० वि० गी०, प्र० - १०, छं० -४)

कहीं - कहीं ' बख्श ' से बकसाये, ' रुख ' से रुखाये आदि रूपों का भी प्रयोग दिखलाई देता है, जो इस बात का द्योतक है कि केशव विदेशी भाषा को भी भली भांति अपना बनाना जानते हैं --

कै विनती मिस कश्यप के तिन देव अदेव सब बकसाये

(रामचन्द्रिका : प्र० -१६, छं० - १६)

विभीषण तन कानन रुखाये जू (वहीं , प्र० -१६, छं० - २०)

दो - एक स्थलों पर संस्कृत तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों के मेल से भी केशव ने नये शब्द बनाये हैं, जैसे आलमपति (ज० ज० चं०, छं० - १६६), आलमनाथ (वी० दे० च०, पृ० - ४२) आदि ।

केशव ने कुछ स्थलों पर मात्रापूर्ति अथवा तुक के लिए, भाषा-विज्ञान के नियमों का भी कोई ध्यान न रखते हुए शब्दों का रूप इतना बदल दिया है कि वे सर्वथा नवीन शब्द ही जान पड़ते हैं । यहां तक कि उनका अर्थ निकालना भी कठिन- सा हो जाता है, जैसे 'साधु' के स्थान पर ' साध,' लायक के स्थान पर ' लायक,' ' वेश्या ' के स्थान पर ' विश्वा,' समाय के स्थान पर ' माइ ' परवाह के स्थान पर प्रवाह ।

अशेष शास्त्र विचारिकै, जिन जान्यौ मत साध[१]

वरणा फल फूलन लायक की[२]।

एते पर केशवदास तुम्हे न प्रवाह[३]।

उमग्यौ आनंद अंग न माइ[४]।

मदिरा पी विस्वा पहं जाइ[५]।

कहीं-कहीं तुक के लिए असाधारण प्रयोग भी हुए हैं, जैसे 'दत्त' का दलने के अर्थ में प्रयोग-- जहं तहं लसत महामद मत्त। बर बारन दत्त[६]। परन्तु ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं।

कहीं-कहीं केशव ने नए शब्द गढ़ भी लिए हैं, जैसे- बालकता, घालकता, मुचावन

अति कोमल केशव बालकता। बहु दस्कर राकस घालकता[७]।

मान मुचावन बात तजि, कहिये और प्रसंग[८]।

जो कहो देखै लौ दिखसाध[९]।

किन्तु ऐसे प्रयोग बहुत कम हैं। छन्द की गति अथवा मात्रापूर्ति के आग्रह से कभी तो कवि को शब्द विकृत करने पड़े हैं, जैसे कनै बस्यौ आदि और कभी फालतू शब्दों, सु, फिल आदि का प्रयोग भी करना पड़ा है।

१- रामचन्द्रिका : प्रकाश-१, छं०-४

२- वही, प्रकाश-८, छं०-१३

३- रसिकप्रिया : पृ०-२१६

४- वीरसिंहदेव-चरित, पृ०-३५

५- वही, पृ०-४

६- रामचन्द्रिका, प्रकाश-१, छं०-२८

७- वही, प्रकाश-२, छं०-१७

८-९ रसिकप्रिया प्रकाश-१०, एवं ८, छं०-२० तथा १२ सभी क्रमशः

भीम भांति ताड़का सुभंग लागि करै आइ[१]।

देवन गुण हर्य्यो, पुष्पन बर्य्यो, हर्य्यो अति सुरनाहु[२]।।

सुवानी गहि केश लंकेश रानी[३]।

के श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को[४]।

केशव पुराण-वृत्ति के जीव थे अत: उनकी भाषा में कथावाचकों के द्वारा प्रयुक्त ` जात भये `, ` होत भये, ` ` भये ` आदि पण्डिताऊ शब्दों का भी पाया जाना स्वाभाविक ही है।

अक्षकुमारहि मार के लंकहि जारि के नीकेहि जात भयो जू[५]।

होत भये तब सूर सुधाधर पावक शुभ्र सुधा रंगधारी[६]।

भूकम्प भये गिरिराज ढहे।

कत भांड भये उठि आसन ते[७]।

कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ[८]।

कुछ शब्द अप्रचलित अर्थ में भी प्रयुक्त हुये हैं, जैसे ` अन्त ` के अर्थ में ` विशेष ` ` शत्रुघ्न ` के लिए ` रघुनन्दन ` बाप के मारने वाले ` के अर्थ में ` बपमारो ` तथा मारणीय के अर्थ में ` मारने ` आदि। इस प्रकार के शब्द `रामचन्द्रिका` नामक ग्रन्थ में अधिक हैं।

१- रामचन्द्रिका : प्रभाव-३, छ०-५

२- वही, छ०-१०

३- वही, प्रभाव-१६, छ०-२६

४- वही, प्रभाव-५, छ०-१०

५-६ वही, प्रभाव-१६ एवं ५ तथा छ०-८ एवं २६ क्रमश:

७-८ वही, प्रभाव-७ एवं ३ तथा छ०-४८ एवं ३४ क्रमश:

अनंत मुख गावै विशेषहि न पावै[1]।

लीन्हों लवणासुर शूल जहां ।

मार्यो रघुनन्दन बाण तहां[2]।

अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपमारै[3]।

अरुदोष युत मारनै कहा तात कहा मात[4]।

भाषा को सजाने और आकर्षक बनाने के लिए कविगण लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग करते हैं। केशव की रचनाएं भी लोकोक्तियों और मुहावरों से भरी पड़ी हैं। मुहावरों का प्रयोग अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा `रसिकप्रिया` में अधिक हुआ है। भाषा में चमक लाने के साथ ही इनका प्रयोग कवि की व्यवहार-कुशलता, प्रयोग-नैपुण्य और सूक्ष्म-निरीक्षण का परिचायक है।

अलंकार-योजना :

भाव, रस, गुण आदि के उत्कर्ष के साधन `अलंकार` कहलाते हैं। अलंकार काव्य के बाह्यांग हैं, और रस, भाव आदि आत्मा। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर निष्प्राण है उसी प्रकार रस के बिना काव्य। अलंकार, रस, भाव आदि की अनुभूति में सहायक होकर काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं, परन्तु उसका स्थान नहीं ले सकते हैं। केशव के विचार में जिस प्रकार कामिनी की शोभा अलंकारों के बिना नहीं होती उसी प्रकार काव्य भी अलंकारों के बिना रमणीय नहीं होता[5]। परन्तु यह मत भ्रमात्मक

१- रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध, पृ०-७

२-३ वही, उत्तरार्द्ध, पृ०-२७६

४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता, पृ०-४५

५- जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न विराजई, कविता, वनिता, मित्त
—कविप्रिया : प्रभाव-५, छ०-१

है आभूषण भी यदि सच्चे सौन्दर्य के सामंजस्य का बिना ध्यान रखे पहने जाते हैं तो सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक होने के स्थान पर सौन्दर्योत्कर्ष में बाधक ही होते हैं और शरीर भारस्वरूप जान पड़ते हैं। आभूषण बिना धारण किए भी कामिनी का वास्तविक सौन्दर्य तो रहता ही है। इसी प्रकार उपयुक्त अलंकार-योजना काव्य की शोभा की वृद्धि करती है परन्तु अलंकार के लिए ही किया गया अलंकार-प्रयोग काव्य के लिए भार हो जाता है। अलंकार-योजना के अभाव में भी काव्य का भावगत सौन्दर्य अक्षुण्ण रहता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अलंकार काव्य के लिए आवश्यक नहीं है और उनके बिना भी सरस काव्य का निर्माण हो सकता है किन्तु अलंकारों के होने से काव्य की शोभा और बढ़ जाती है।

केशव ने 'रसिकप्रिया' में काव्य के लिए रस के सर्वोपरि महत्व को भी तो माना है[1]। परन्तु केशव स्वयं बहुत से स्थलों पर अपने इस सिद्धान्त का निर्वाह नहीं कर सके हैं। केशव के प्रबन्ध-ग्रन्थों में अनेक स्थल ऐसे हैं जहां कवि ने चमत्कार-प्रदर्शन एवं उक्ति-वैचित्र्य तथा दूरारूढ़ कल्पना के मोह में पड़कर काव्य के बहिरंग को ही सजाया और संवारा है एवं काव्य के अंतरंग को उपेक्षित किया है।

केशव के अलंकार-प्रयोग पर विचार करने पर कवि की कुछ रचनाओं में तो कतिपय प्रमुख अलंकारों का ही प्रयोग मिलता है और कुछ में अलंकारों के

१- ज्यौं बिनु डीठ न शोभिये, लोचन लोल विशाल।
   त्यौं ही केशव सकल कवि, बिन बाणी न रसाल।।
   ताते रुचि शुचि शोधि पचि, कीजै सरस कवित्त।
   केशव श्याम सुजान को, सुनत होइ वश चित्त।।
   —रसिकप्रिया, प्रभाव-१, छं० - १३-१४

प्रयोग के सम्बन्ध में कवि का विशेष आग्रह दिखलाई देता है। प्रथम कोटि की रचनाओं में नखशिख, रतनबावनी, विज्ञानगीता तथा जहांगीर जस-चन्द्रिका है और द्वितीय कोटि की रचनाओं में रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका तथा वीरसिंह देव चरित। `कविप्रिया` में विभिन्न अलंकारों का विवेचन करते हुए उनके उदाहरण प्रस्तुत किए गये हैं।

`रामचन्द्रिका` का प्रणयन प्रधानतया पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए हुआ था, अतएव केशव ने इस ग्रन्थ की अलंकार-योजना में भी अपना पाण्डित्य प्रदर्शन ही किया है किन्तु जब-जब वे आलंकारिक आवेश में नहीं रहे हैं तब-तब उन्होंने स्वाभाविक अलंकारों की भी योजना की है। ऐसे स्थल कम अवश्य हैं। अलंकार वैविध्य के प्रति जितना मोह इस ग्रन्थ में परिलक्षित होता है उतना कवि के किसी अन्य ग्रन्थ में देखने में नहीं आता। बहुत से स्थलों पर तो कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह आदि अलंकारों की झड़ी-सी बांध दी है। इस ग्रन्थ में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, सन्देह, अपह्नुति, विभावना, सहोक्ति, स्वभावोक्ति, श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास, निदर्शना तथा गूढ़ोत्तर आदि अलंकारों का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है। इनमें भी सबसे अधिक प्रयोग `उत्प्रेक्षा` का हुआ है। श्लेष, परिसंख्या एवं विरोधाभास आदि अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से पाठकों को चमत्कृत करने की दृष्टि से किया जाता है। भावव्यंजना में वे उतने सहायक नहीं होते हैं। केशव ने भी इसी भावना से प्रेरित होकर बहुत से स्थलों पर इन अलंकारों को प्रयुक्त किया है। श्लेष के सहारे जनकपुरी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

> तिन नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन।
> जलजहार शोभित न जहं प्रकट पयोधर पीन[1]।।

1- रामचन्द्रिका : प्रभाव- ५, छं० - १३

इस दोहे में श्लेष का प्रयोग बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है। इसी प्रकार दशरथ- राज्य के वर्णन के प्रसंग में भी 'श्लेष' का सुरुचिपूर्ण प्रयोग हुआ है।

> विधि के समान हैं विमानीकृत राजहंस, विविध बिबुध युत मेरु सो अचल हैं।
> दीपति दिपति अति सातो दीपि दीपियतु, दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा को बल है।।
> सागर उजागर का बहुबाहिनी को पति, छनदान प्रिय किधौं सूरज अमल है।
> सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ, भगीरथ-पथगामी गंगा कैसो जल है[1]।।

यहां केशव कादम्बरी के निम्न पंक्तियों से प्रभावित हैं—

> कमलयोनिरिव विमानीकृत - राजहंसमण्डल:
> गङ्गाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्त:[2]

रामचन्द्रिका में कुछ ऐसे स्थल भी दिखाई देते हैं जहां कवि 'श्लेष' के द्वारा प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत में कोई समानता न होते हुए भी अप्रस्तुत के गुण प्रस्तुत में ढूंढ निकालने की चेष्टा करता हुआ दिखलाई पड़ता है। उदाहरण-स्वरूप उनके दण्डकवन, प्रवर्षणादि और सागर के वर्णन प्रस्तुत किए जा सकते हैं। दण्डकवन का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं—

----

१ - रामचन्द्रिका : प्रकाश २, ७० - १०

२ - कादम्बरी शूद्रक वर्णन, पृ० - २७ - २८

शोभत दण्डक की रुचि बनी भांतिन भांतिन सुन्दर घनी ।
सेव बड़े नृप की जनु लसै श्रीफल भूरि भयो जहं बसै[1] ।।

सागर को एक नागरिक के रूप में चित्रित करते हुए केशव का कथन है—

भूति विभूति पियूषहु की विष ईश शरीर कि पाय बियो है ।
है किधौं केशव कश्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै ।।
संत हिया कै बसै हरि संतत शोभ अनंत कहं कवि कोहै ।
चन्दन नीर तरंग तरंगिन नागर कोउ कि सागर सोहै[2] ।।

इसी प्रकार ' श्लेष ' के सहारे ' वर्षा ' को कालिका के रूप में देखा है—

भौंहे सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर, भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है ।
दुरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन, अमल कमल दल दलित निकाई है
केसौदास प्रबल करेनुका गमनहर, मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है ।
अंबर वलित मति मोहै नीलकंठ जू की, कालिका कि वरषा हरषि
हिय आई है[3] ।।

फिर भी श्लेषालंकार का प्रयोग भाषा पर कवि के अधिकार का परिचायक है । दो अर्थों वाले छन्द ' रामचन्द्रिका ' में ही दिखाई देते हैं । ' कविप्रिया ' में कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनके तीन-तीन, चार-चार और पांच-पांच तक अर्थ निकलते हैं ।

' विरोधाभास ' अलंकार केशव को विशेष प्रिय जान पड़ता है । राजा दशरथ की वाटिका और गोदावरी नदी के वर्णन एवं ' शिव ' तथा

१- रामचन्द्रिका : प्रकाश ११, छन्द- १६
२- वही, प्रकाश- १४, छ० - ४१
३- वही, प्रकाश- १३, छ० - १६

'पितर' आदि देवताओं द्वारा राम की स्तुति के प्रसंग में इस अलंकार का प्रयोग बड़ा ही सुरुचिपूर्ण हुआ है। गोदावरी का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

विषमय यह गोदावरी अमृत के फल देति।
केशव जीवनहार को दुख अशेष हरि लेति[1]।।

इसी प्रकार का सुरुचिपूर्ण प्रयोग शिवजी द्वारा राम की स्तुति के प्रसंग में हुआ है—

अमल चरित तुम बैरिन मलिन करौ, साधु कहैं साधु परदार प्रिय अति हौ।
एक थल थित पै बसत जग जन मध्य, केशोदास द्विपद पै बहुपद-गति हौ।।
भूषण सकल युत शीश धरे भूमिधार, भूतल फिरत यों अभूत भुवपति हौ।
राखौ गाइ ब्राह्मणनि राजसिंह साथ चिरु, रामचन्द्र राज करौ अद्भुत गति हौ[2]।।

परिसंख्या अलंकार के प्रति भी केशव की विशेष अभिरुचि प्रतीत होती है। अवधपुरी, विश्वामित्र एवं भरद्वाज मुनि के आश्रम, देव-स्तुति तथा रामराज्य व्यवस्था आदि के वर्णन के प्रसंगों में 'परिसंख्या' अलंकार का अत्यन्त ही सफल प्रयोग हुआ है। इस प्रकार का वर्णन कादम्बरी में भी मिलता है। कादम्बरी के अनुसार—

१- रामचन्द्रिका : प्रभाव-११, छं०-२६

२- वही, प्रभाव-२७, छं०-२

यस्मिंश्च राजनि जितजगति परिपालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसङ्कराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढ़बन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः;[1]

केशव ने भी इस प्रकार का वर्णन रामचन्द्रिका के निम्न छन्द में किया है—

विचारमान ब्रह्म देव अर्चमान मानिये ।
अदीयमान दु:ख, सुख दीयमान जानिये ।
अदंड मान दीन, गर्व दंडमान भेदवै ।
अपठ्यमान पापग्रंथ पठ्यमान वेदवै[2] ।।

सादृश्यमूलक अलंकारों उपमा- उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग करते हुए केशवदास ने अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन की धुन में कुछ स्थलों पर ऐसा अप्रस्तुत- विधान किया है, जिससे प्रस्तुत का रूप तनिक भी स्पष्ट नहीं होता है तथा कुछ स्थलों पर अप्रस्तुत विधान बड़े अरुचिकर रूप में हुआ है । इस प्रकार के कुछ उदाहरण यहां उपस्थित किए जाते हैं । पंपासर में खिले हुए ` कमल ` का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की घुति को है ।
तापर भौंर भलो मनरोचन कोक विलोचन की रुचि रोहै ।
देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै ।
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै ।।

इसी प्रकार ` रामचन्द्रिका ` के उत्तरार्द्ध में राजमहल के वर्णन के प्रसंग में मण्डप का वर्णन करते हुए कवि उत्प्रेक्षा करता है—

१- कादम्बरी कथामुख शूद्रक वर्णन, पृ० - ३६

२- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ० - ३४, छं० - ३

३- वही, बारहवां प्रकाश, पृ० -१९६, छं० - ४६

मण्डप सेत लसै अति भारी । सोहत है छतुरी अति कारी ।

मानहु ईश्वर के सिर सोहै । मूरति राघव की मन मोहै[१]।।

प्रथम उत्प्रेक्षा में ब्रह्मा के शिर पर विष्णु के बैठने तथा दूसरी उत्प्रेक्षा में शंकर जी के मस्तक पर राम के शोभित होने की कल्पना नहीं की जा सकती । यह दोनों ही कल्पनाएं उपहासास्पद हैं । इसी प्रकार निम्नलिखित अवतरणों में भी अप्रस्तुत-विधान अरुचिकर रूप में हुआ है । सीता-रावण के संवाद के अन्तर्गत सीता की उपमा बाज पक्षी से दी गई है ।

बिलकन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै ।

शिवशिर शशि श्री को राहु कैसे सु छीवै[२]।।

इसी प्रकार हनुमान, राम की विरहावस्था का वर्णन करते हुए राम की उपमा 'उलूक' से देते हैं—

बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत[३]।

अग्नि की ज्वाला में जलते हुए राक्षसों का वर्णन करते हुए कवि ने राक्षसों की तुलना कामदेव से की है—

कहूं रैनचारी गहे ज्योति गाढ़े । मनो ईश रोषाग्नि में काम डाढ़े[४]।

निम्नलिखित अवतरण में धनशाला का प्रेक्षण करने जाते हुए राम की उपमा 'चोर' से दी गई है ।

चतुर चोर से शोभित भये । धरणीधर धनशाला गये[५]।

१- रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध : छं०- ३२, पृ०- १५०

२- वही, प्रभाव- १३, छं०- ६२

३- वही, प्रभाव- १३, छं०- ८८

४- वही, प्रभाव- १४, छं०- ८

५- वही उत्तरार्द्ध, पृ०- १५१

इसी प्रकार चन्द्रमा को आकाश में देखकर कवि उत्प्रेक्षा करता है—

फूलन की शुभ गेंद नई है। सूंघि शची जनु डारि दई है[1]।

इस प्रकार चन्द्रमा की गेंद की उपमा रुद्रभट्ट द्वारा विरचित श्रृंगार तिलक में भी दी गई है—

दृष्टा चन्द्रमसं मनोभवधूकेलिक्रियाकन्दुकं[2]

जहां कवि चमत्कार- प्रदर्शन अथवा दूरारूढ़ कल्पना के लोभ का संवरण कर सका है वहां अलंकारों का सुरुचिपूर्ण प्रयोग हुआ है, जो भावोत्कर्ष में सहायक है। इस प्रकार के कुछ छन्द यहां उपस्थित किए जाते हैं। भरत के ननिहाल से आने का समाचार पाकर सब माताएं छटपटाती हुई बड़ी उत्सुकता के साथ उनसे मिलने उसी प्रकार जाती हैं जिस प्रकार (सद्य:प्रसूता) गायें अपने बछड़ों को चाटने तथा दूध पिलाने के लिए छटपटाती हुई दौड़ती हैं।

मातु सबै मिलिबे कंह आई। ज्यों सुत को सुरभी सुलवाई[3]।।

इस उपमा के द्वारा केशव ने भरत के प्रति माताओं के प्रेम की सुन्दर व्यंजना की है। मां के ममत्व की उपमा गाय और बछड़े से देने की कवि परम्परा रही है। तुलसीदास ने भी अपने रामचरितमानस में राम के अयोध्या वापस आने पर कौशिल्या का इसी प्रकार वर्णन किया है।

कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं[4]।।

१- रामचन्द्रिका : प्रभाव ३०, छं० - ४१

२- श्रृंगार तिलक द्वितीय परिच्छेद : पृ० - ५५, श्लोक- ५६

३ - रामचन्द्रिका : प्रभाव १०, छं० - २८

४ - रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड दोहा-संख्या ६ से पूर्व की चौपाई, पृ० -४७५

निम्नांकित छन्द में कवि ने हनुमान के सुन्दर नामक पर्वत से उछलकर सुवेल नामक पर्वत की ओर उड़कर लंका को प्रस्थान करने का वर्णन करते हुए कई उपमाएं दी हैं, जो हनुमान की वेगशीलता और हनुमान द्वारा समुद्रोल्लंघन के कार्य के सम्पादन की शीघ्रता द्योतित करती हैं—

हरि कैसो वाहन कि विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक को ।
तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैधों,
लच्छन का बाण छूट्यो रावण निशंक को ।।
गिरिराज गंड ते उड़ान्यो सुवरन अलि,
सीता पद पंकज सदा कलंक रंक को ।
हवाई सी छूटि केशोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को[1]।।

दशरथ की मृत्यु के उपरान्त जब भरत महल में आते हैं तो वह माताओं को अकेली और निरालम्ब पाते हैं। कवि ने माताओं की वियोगजन्य विकलता का चित्रण बहुत ही उपयुक्त उपमा द्वारा किया है।

मंदिर मातु विलोकि अकेली । ज्यौं बिनु वृक्ष विराजति बेलि[2]।

इसी प्रकार 'उत्प्रेक्षा' अलंकार की भी योजना कई स्थलों पर बड़ी सुन्दर हुई है। हनुमान जी के द्वारा सीता की लाई हुई चूड़ामणि को पाकर राम के हृदय में होने वाले आनन्द की व्यंजना, उत्प्रेक्षा के सहारे कवि ने सफलता से की है।

---

१ - रामचन्द्रिका : प्रभाव - १३, छं० - ३८

२ - वही, प्रकाश-१०, छं० - २

श्री रघुनाथ जबै मणि देखी जा महं भाग दशा सम लेखी ।

फूलि उठ्यो मन ज्यों निधि पाई मानहु अंध सुडीठि सुहाई[1] ।।

लंका में आग लगी है । सोने की लंका का सोना द्रवित होकर समुद्र में जा रहा है । इसके लिए कवि मौलिक उत्प्रेक्षा करता है--

कंचन को पघिलो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी ह्वै ।

गंग हजार मुखी गुनि केशो गिरा मिली मानो अपार मुखी ह्वै[2] ।।

इन अलंकारों के अतिरिक्त केशव ने रूपक, अतिशयोक्ति, अपह्नुति, विभावना, स्वभावोक्ति आदि का भी सुन्दर प्रयोग किया है ।

रूपक : पुंज कुंजर शुभ्र स्यन्दन शोभिजै सुठि शूर ।

ठेलि ठेलि चलै गिराशनि पेलि श्रोणित पूर ।।

ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारुचर्म विशाल ।

चक्र सो रथचक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल ।।

केकरे कर बाहु मीन, गयंद शुण्ड भुजंग ।

चीर चौंर सुदेश केश शिवाल जानि सुरंग ।।

बालुका बहु भांति है मणिमालजाल प्रकाश ।

पैरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केशवदास[3] ।।

अथवा-

चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुन मुख ।

कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन[4] ।।

१- रामचन्द्रिका : प्रकाश १४, छ० - २४

२- वही, छ० - ११

३- वही, प्रकाश- ३७, छ० - २३

४- वही, प्रकाश ५, छ० - १३

अथवा-

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
बीस बिसे व्रत भंग भयौ सुकहौ अब केशव को धनु ताने ।
शोक की आग लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने ।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुण्य पुराने[1]।।

प्रतीप- कलित कलंक केतु केतु अरि सेत गात,
भोग योग को अयोग रोग ही को थल सो ।
पून्योई को पूरन पै प्रतिदिन दूनो दूनो,
छण-छण छीण होत छीलर को जल सो ।
चन्द्र सो जो बरणत रामचन्द्र की दोहाई,
सोई मतिमंद कवि केशव कुशल सो ।
सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति,
सीता जी को मुख सखि केवल कमल सो[2]।

अथवा-

को है दमयंती इन्दुमती रति राति दिन,
होहिं न छबीली छन छबि जो सिंगारिये ।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो विरूप सो निहारिये ।।
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूप के विचारियो ।।
सीता जी के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारिये[3]।।

१- रामचन्द्रिका : प्रकाश ५, छ०- १७
२- वही, प्रकाश ६, छ०- ४१
३- वही, प्रकाश-६, छ०- ५६

अपन्हुति- हिमांशु सूर सो लगै सो बात बज्र सी बहै ।
दिसा लगै कृसानु ज्यों विलेप अंग को दहै ।
विसेस कालिराति सौं कराल राति मानिये ।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये[1] ।।

अथवा- फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत । मोदत महामोद उपजावत ।
उड़त पराग न चित उड़ावत । भ्रमर भ्रमत नहीं जीव भ्रमावत[2] ।।

विभावना- रामचन्द्र कटि सौं पटु बांध्यौ । लीलयेव हरि को धनु सांध्यौ ।
नेकु ताहि कर पल्लव सो छुवै । फूल मूल जिमि टूक कर्यौ है[3] ।।

अथवा-

यद्यपि ईंधन जरि गये, अरिगण केशवदास ।
तदपि प्रतापानलन के पल पल बढ़त प्रकाश[4] ।।

अथवा- नाम वरण लघु वेश लघु कहत रीझि हनुमंत ।
इतो बड़ो विक्रम कियो, जीते युद्ध अनंत[5] ।।

अतिशयोक्ति- दशग्रीव को बंधु सुग्रीव पायो । चल्यो लंक लै कै भले अंक लायो
हनूमंत लातै रत्यो देह भूल्यो । छूट्यो कर्ण नासाहि लै इन्द्र फूल्यो ।
सभार्यो घरी एक दू में मरू कै । फिर्यो रामही सामुहे सो गदा लै ।
हनूमंत सो पूंछ सौं लाइ लीन्हां । न जान्यो कबै सिन्धु में डारि दीन्हों[6] ।

१-२ रामचन्द्रिका : प्रकाश १२ एवं १, छं० ४२ एवं ३१ क्रमशः
३-४ वही, प्रकाश ५ एवं २, छं० - ४१ एवं ११ क्रमशः
५- वही, उत्तरार्द्ध छं० -४, पृ० - ३१२
६- वही, प्रकाश- १८, छं० - २५-२६

अथवा- वरण वरण अंगिया उर धरे । मदन मनोहर के मन हरे ।।
अंचल अति चंचल रुचि रचैं, लोचन चल जिनके संग नचैं[१] ।।

सहोक्ति- प्रथम टंकोर भुकि भारि संसार मद,
चंड को दंड रह्यो मंडि नवखंड को ।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल,
पालि ऋषिराज के बचन परचण्ड को ।
सोधु दै ईश को बोध जगदीश को,
क्रोध उपजाइ भृगुनंद बरिबण्ड को ।
बांधि वर स्वर्ग को साधि अपवर्ग ।
धनुभंग को शव्द गयो भेदि ब्रह्मंड को[२] ।।

स्वभावोक्ति- कंपै उर बानि डौ बर डीठि त्वचाऽति कुचै सकुचै मति बेली ।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालक ते संग ही संग खेली ।
लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वारा की सहेली ।
भगै सब देह दशा, जिय साथ रहै दुरि दौरि दुराश अकेली[३] ।।

' विज्ञानगीता ' में कवि का अलंकारों के प्रति विशेष आग्रह दिखाई नहीं पड़ता है। उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा आदि कुछ ही अलंकारों का प्रयोग जहां-तहां देखने में आता है, प्राय: भाव-व्यंजना में सहायक है। केशव द्वारा प्रयुक्त कुछ अलंकारों के उदाहरण यहां प्रस्तुत किए जाते हैं। निम्नलिखित छन्द में मिथ्या संसार को सत्य मानने वाले जड़ जीवों की उपमा काठ के घोड़े पर चढ़कर खेलने वाले बालकों अथवा गुड्डे-गुड़ियों का खेल खेलने वाली बालिकाओं से देकर सांसारिक जीवों की जड़ता का स्पष्टीकरण बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है।

१- रामचन्द्रिका : प्रकाश ३१, छं० - ३६
२- वही, प्रकाश-५, छं० - ४३
३- वही, उत्तरार्द्ध, प्रकाश-११, पृ० - ५८

जैसे चढ़े बाल सब काठ के तुरंग पर तिनके सकल गुण आपुही में आने हैं ।
जैसे अति बालिका वे खेलति पुतरि अति पुत्र पौत्रादि मिलि विवाय विताने हैं ॥
आपनी जो भूलि जात लाज साज कुल धर्म जाति कर्मकादि कन हीं सो मनमाने हैं ।
ऐसे जड़ जीव सब जानत हौ केशोदास,अपनी सचाई जग सांचोई के जाने हैं[1] ।।

महाराज वीरसिंह देव की प्रशंसा करते हुए कवि ने अनेक उपयुक्त उपमाएं दी हैं—

दाननि में बलि से विराजमान जिनि पांहि मागिब को है गति
विक्रम तनक से ।
सेवत जगत प्रमुदितनि को मंडली में देखियत केशोदास सौनक शनक से ।।
जोधनि में भरत भगीरथ सुरथ पृथु विक्रम में विक्रम नरेश के बनक से ।
राजा मधुकरशाह सुत राजा वीरसिंह राजनि की मण्डली में राजत
जनक से[2] ।

' रूपक ' अलंकार के भी सफल प्रयोग कवि ने कई स्थलों पर किये हैं । एक स्थल पर कवि ने उदर का रूपक समुद्र से बांधा है । जैसे समुद्र में सब कुछ समा जाता है, वैसे ही मनुष्य का उदर भी बड़ा ही अथाह है । जिस प्रकार समुद्र में तिमिंगिल आदि भयंकर जन्तु रहते हैं और अनेक जीव-जन्तुओं का भक्षण करके भी उनकी क्षुधा-निवृत्ति नहीं होती, उसी प्रकार मनुष्य के उदर की क्षुधा भी कभी नहीं मिटती । इसी प्रकार जिस भांति समुद्र में बड़वाग्नि का निवास है, जिसकी प्यास निरन्तर समुद्र का जलपान करते हुए भी शान्त नहीं होती, उसी प्रकार मनुष्य की तृष्णा भी कभी नहीं मिटती ।

तृष्णा बड़ी बड़वानली, क्षुधा तिमिंगिल क्षुद्र ।
ऐसो को निकसै जु परि, उदर उदार समुद्र[3] ।।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : प्रभाव-९, छं० - ४४
२ - वही, प्रभाव - १, छं० - २२
३ - वही, प्रभाव ३, छं० - २९

एक और स्थल पर कवि ने तृष्णा का रूपक तरंगिणी से बांधा है। जैसे किसी नदी के, जिसका पाट खूब बढ़ा हुआ हो, दूसरे पार जाना दुष्कर है, वैसे ही तृष्णा का पार पाना कठिन है। कवि कहता है—

> कौन गनै इनि लोकनि रीति विलोकि विलोकि जहाजनि बोरे।
> लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालनि तोरे ॥
> वंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक तृष्णा ।
> पाटु बढ़ी कहुं घाट न केशव क्यों तरि जाइ तरंगिनि तृष्णा[1] ॥

कवि ने अन्य स्थल पर रणभूमि और नदी के सांग रूपक का भी विधान बहुत ही सुचारु रूप से किया है।

> पुंज कुंजर शुभ्र स्यन्दन शोभिये अतिशूर।
> ठेलि ठेलि चले गिरीशनि पेलि शोणित पूर ॥
> ग्राह तुंग तरंग कच्छप चारु चमर विशाल ।
> चक्र से रथ चक्र पैरत गृद्ध वृद्ध मराल[2] ॥

इसी प्रकार 'उत्प्रेक्षा' का प्रयोग भी भावव्यंजना में सहायक हुआ है। महामोह के अपने दल-बल के साथ प्रस्थान करने पर धूलि पृथ्वी से उठकर आकाश में व्याप्त हो गई है। इसके लिए कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो पृथ्वी, इन्द्र को शोध देने जा रही है। इस उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने महामोह की सेना की विशालता का भान कराया है। कवि का कथन है—

> रथ राजि साजि बजाइ दुंदुभि कोह सों करि साजु।
> बिन्दुमाधव को चल्यो दल भूमि को अधिराजु ॥

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : प्रभाव ७, छं०-१७

२- वही, प्रभाव-१३, छं०-३

उठि धूरि भूरि चली अकाशहु शोभिजै अशेष ।
जनु सीधु देन चली पुरंदर को धरा सुविशेष[१]।।

नीचे लिखे छन्द में वाराणसी के ऊंचे-ऊंचे भवनों पर सुशोभित पताकाओं के लिए कवि कल्पना करता है कि वे मानों वैकुण्ठ मार्ग में जाते हुए मुक्त मानवों के ज्योतिपुंज का प्रकाश है। इस प्रकार कवि ने वाराणसी के ऐश्वर्य की ओर संकेत किया है।

वाराणसी अति दूरि ते अवलोकियो मग पूत ।
ऊंचे अवासनि उच्च सोहति है पताक विधूत ।
शोभा विलास विलोकि केशवराइ यों मति होति ।
वैकुण्ठ मारग जात मुक्तनि की नवै ज्यों जोति[२]।।

निम्नलिखित छन्द में `अन्योन्य` अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है-

पत्नी पति बिनु दीन अति, पति पत्नी बिनु मन्द ।
चन्द बिना ज्यों यामिनी, ज्यों यामिनी बिनु चन्द[३]।।

कहीं-कहीं कवि ने एक ही छन्द में अनेक अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। यहां एक उदाहरण देते हैं। `सती` के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह तथा रूपकातिशयोक्ति का मनोहर संकर प्रस्तुत किया है।

चन्द्रमुखीनि में चारु चकोर कि चन्द चकोरनि में रुचिरो है ।
लोचन लोल कपोलनि मध्य विलोकत यों उपमा कह्यो है ।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : प्रभाव-११, छ०-३
२- वही, प्रभाव ११, छ०-४
३- वही, प्रभाव १६, छ०-३६

सुन्दरता सरसौनि में मानहु मीन मनोजनि के मनु मोहै ।

माणिक सों मणि मंडल में कहि को यह बालबधूनि में सोहै[1] ।।

रसिकप्रिया में केशव ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, विभावना, प्रतीप, अतिशयोक्ति, सन्देह, स्वभावोक्ति, सहोक्ति, पर्यायोक्ति तथा समाहित आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है; तथा अधिकांश स्थलों पर अलंकारों का प्रयोग भावव्यंजना का उत्कर्ष साधन करने एवं रूप को अधिक स्पष्ट करने के लिए ही हुआ है । ऐसे स्थल बहुत कम हैं, जहां कवि की कल्पना अस्वाभाविक हो गई हो अथवा पाण्डित्य प्रदर्शन की रुचि से प्रेरित होकर उसने अलंकार-योजना की हो । निम्नलिखित छन्द में अतिशयोक्ति अलंकार के सहारे अभिसारिका नायिका का वर्णन किया गया है, किन्तु यहां केशव की कल्पना अस्वाभाविक हो गई है ।

उरफत उरग चपत चरणनि फणि,

दैखत विविध निशिचर दिशि चारि कै ।

गनत न लागत मुसलधार बरषत,

भिल्ली गन घोष निघोष जलधारि कै

जानति न भूषण गिरत पट फाटत न,

कंटक अटकि उर उरज उजारि कै ।

प्रतनी की पूछै नारि कौन पै तै सीख्यों यह,

योग कैसो सार अभिसार अभिसारिकै[2] ।।

निम्नलिखित छन्द में नायिका के हृदय और शतरंज की बाजी का रूपक बांधते हुए कवि ने अपना पाण्डित्य प्रदर्शित किया है, उपमेय तथा उपमान में कोई सादृश्य नहीं है—

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : प्रभाव- ८, छं० - ३८

२ - रसिकप्रिया प्रभाव- ७, छं० - ३१

प्रेम भय भूप रूप सचिव संकोच शोच,

विरह विनोद फौज पेलियत पचि कै ।

तरल तुरग अवलोकनि अनंत गति,

रथ मनोरथ रहे प्यादे गुन गनि कै ।

दुहू ओर परी जोर घोर घनी केशोदास;

होइ जीत कौन की को हारे जिय लषि कै ।

देखत तुम्हें गुपाल तिहिं काल उहिं बाल,

उर शतरंज कैसी बाजी राखी रचि कै[१]।।

किन्तु अधिकांश स्थलों पर, जैसा कि आरम्भ में कहा गया है, केशव का अलंकार प्रयोग स्वाभाविक तथा भाव-व्यंजना में सहायक है। यहां कुछ छन्द अवलोकनार्थ उपस्थित किए जाते हैं।

स्वभावोक्ति अलंकार के द्वारा नायिका को देखकर कृष्ण की चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कवि का कथन है—

छोरि छोरि बांधी पाग आरस सौं आरसी लै,

अनत ही आन भांति देखत अनैसे हौ ।

तोरि तोरि डारत तिनूका कहौ कौन पर,

कौन के परत पांय बावरे ज्यौं ऐसे हौ ।

कबहूं चुटक देत चटकी खुजावौ कान,

मटकी यों डाउ जुरी ज्यों जम्हात जैसे हौ ।

बार बार कौन पर देत मणिमाला मोहिं,

गावत कछूक कछू आज कान्ह कैसे हौ[२]।।

१- रसिकप्रिया : प्रभाव- ८, छन्द- १८

२- वही, प्रभाव- ५, छं० - ११

निम्नलिखित छन्द में केशव ने घन तथा कृष्ण का रूपक बांधा है—

चपला पट मोर किरीट लसै मघवा धनु शोभ बढ़ावत हैं।
मृदु गावत आवत बेनु बजावत मित्र मयूर नचावत हैं।
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत हैं।
घनश्याम घने घनवेष धरे सु बने बन ते ब्रज आवत हैं [1]।।

निम्नांकित छन्द में 'सन्देहालंकार' का बड़ा ही स्वाभाविक एवं सुन्दर प्रयोग हुआ है। नायक को जाने में विलम्ब हो गया है। नायिका प्रतीक्षा में है और भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाएं कर रही है—

सुधि भूलि गई भुलये किधौं काहु कि भूलेह डोलत बाट न पाई।
भौंत भये किधौं केशव काहु सौं भेट भई कोई भामिनी भाई।
आवत हैं मग आइ गयी किधौं आवहिंगी सजनी सुखदाई।
आये न नन्दकुमार विचारि सु कौन किवार अबार लगाई [2]।।

इसी प्रकार वरुणालय (समुद्र) और कृष्ण का भी 'रूपक' दर्शनीय है—

हैं तरुणाई तरंगिन पूर अपूरब पूरब राग रंगे पय।
केशवदास जहाज मनोरथ संभ्रम विभ्रम भूरि भरे भय।।
तर्क तरंग तरंगित तुंग तिमिंगल शूल विशालनि के चय।
कान्ह कछू करुणामय है सखि तैं ही किये करुणा वरुणालय [3]।।

'स्वभावोक्ति' अलंकार के सहारे नायक (कृष्ण) को देखकर राधा की चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

१- रसिकप्रिया : प्रभाव ६, छ० - २६
२- वही, प्रभाव ७, छ० - ६
३- वही, प्रभाव ११, छ० - ६

चोरि चोरि चित चितवत मुंह मोरि मोरि,
काहे ते हंसत हिये हरष बढ़ायो है ।
केशोराय की सौं तू जम्हाति कहा बार बार,
बिसि साह मेरो वीर आर जोर आयो है ।
ऐंड़ सों ऐंड़ात अति अंचल उठात उर,
उघरि उघरि जात गात छबि छायो है ।
फल फूल भेंटति रहति उर फूलि फूलि,
भूलि भूलि कहत कछू ते आज पायो है[1] ।।

श्रीकृष्ण और राधा मानसरोवर से स्नान करके बाहर निकल कर उसके किनारे हाथ में हाथ मिलाये खड़े हैं । ' उत्प्रेक्षालंकार ' द्वारा उनकी उस समय की छवि का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सों हाथ छिये ।
प्रिय के सिर पाग प्रिया मुकताभार राजत माल दुहूंन हिये ।
कहि केशव काछनी श्वेत कसे सब ही तन चंदन चित्र किये ।
निकसे जनु छीर समुद्र होते संग श्रीपति मानहुं श्री हि लिये[2] ।

कृष्ण ने राधा के भाल पर डोरी से लटें गूंथ दी हैं और मोतियों की सुहावनी लड़ियां लटका दी हैं । राधा उन्हें ही दर्पण लेकर देख रही है । इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है—

भाल गुही गुन लाल लटें लपटी लर मोतिन की सुखदैनी ।
ताहि विलोकत आरसी लेकर आरस सो इक सारसनैनी ।।

१- रसिकप्रिया : प्रभाव- ५, छ० - ६

२- वही, प्रभाव- ५, छ० - ३७

केशव कान्ह दुरे दरसी परसी उपमा मति की अति पैनी ।
सूरज मण्डल में शशि मण्डल मध्य धसी जनु ताहि त्रिवेणी[1] ।।

` प्रथम विभावना ` वहां होती है जहां बिना कारण के ही कार्य सिद्ध हो जाता है । निम्नलिखित छन्द में कवि ने ` विभावना ` का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है—

केशव सूधो विलोचन सूधी विलोकन को अविलोकि सदाई ।
सूधियों बात सुनें समझै कहि आवत सूधियै बात सदाई ।।
सूधो सु हांसी सुधाकर सौं मुख शोध लई वसुधा की सुधाई ।
सूधे स्वभाव सबै सजनी वश कैसे किये अति टेढ़े कन्हाई[2] ।।

पंचम विभावना तब होती है जब विरुद्ध कारण से कार्य की सिद्धि हो जाय । निम्न छन्द इस ` विभावना ` का उदाहरण है—

पाइं परेहु तें प्रीतम त्यों कहि केशव क्योंहुं न मै दृग दीनी ।
तेरी सखी सिख सीखी न एकहु रोष ही की सिष सीख जु लीनी ।।
चंदन चंद समीर सरोज जरे दुख देह भई सुख हीनी ।
मैं उलटी जु करी विधि सो कहं न्याइन हीं उलटी विधि कीनी[3] ।।

कारण के होते हुए भी कार्य की असिद्धि विशेषोक्ति का क्षेत्र है । अधोलिखित छन्द में ` विशेषोक्ति ` का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

बोलि न हौं वे बुलाय रहे हरि पांय परे अरु बोलियो ओड़ी ।
केशव भेंटबै को भरि अंक कुड़ाइ रहे जक हौं नहीं छोड़ी ।।

---

१ - रसिकप्रिया : प्रभाव - ४, छ० - ८
२ - वही, प्रभाव २, छ० - ५
३ - वही, प्रभाव ७, छ० - १५

सीधे चितैबे कों केतौ कियौ शिर चाप उठाइ अंगूठन ठोड़ी ।

मैं भर चित्त तऊं चितयौ न रहीं गड़ नैनन लाज निगोड़ी[1] ।।

निम्नलिखित छन्द में ` अपह्नुति ` का प्रयोग स्वाभाविक बन पड़ा है—

भोजन कै वृषभानु सभा महं बैठे हैं नंद सदा सुखकारी ।

गोप घने बलबीर विराजत खात बनाइ बिरी गिरिधारी ।।

राधिका झांकि झरोखन ह्वै कवि केशव रीझि गिरे सु बिहारी ।

शोर भयौ सकुचे समुझे हहाहि कह्यौ हरि लागि सुपारी[2] ।।

` उपमा ` के द्वारा नायिका की शोभा का वर्णन करते हुए कवि का कथन है·

मैन ऐसो मन तन मृदुल मृणालिका के,

सूत ऐसो सुर धुनि मनहिं हरति हैं ।

दारौं कैसो बीज दंत पांति से अरुण ओंठ,

केशोदास देखे दृग आनंद भरति हैं ।

एरी मेरी तेरी मोहिं भावत भलाई ताते,

बूझत हौं तोहिं उर बूझत डरति है ।

माखन सी जीभ मुख कंज सो कुंवरि कहु,

काठ सी कठैठी बात कैसे निकरति हैं[3] ।।

नायिका के सभी अंग अनुपम हैं। कवि का कथन है कि उनकी उपमा के लिए वे ही कहे जा सकते हैं—

जो कहौं केशव सोम सरोज सुधा सुरभृंगनि देह दहे हैं ।

दाड़िम के फल श्रीफल विद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं ।।

----

१ - रसिक प्रिया : प्रभाव ३, छ० - २५

२ - वही, प्रभाव ६, छ० - ५०

३ - वही, प्रभाव १२, छ० -

कोक कपोत करी अहि केसरि कोकिल कीर कुचील कहे हैं ।
अंग अनुपम वा तिय के उनकी उपमा कहं वेई रहे हैं[१]।।

समाहित अलंकार वहां होता है जहां सहसा अन्य कारणों के आ पड़ने से कार्य सिद्ध हो जाय। निम्नलिखित छन्द में ` समाहित ` अलंकार के द्वारा राधा और कृष्ण का मिलन कराया गया है—

छवि सों छबीली वृषभानु की कुंवरि आजु,
रही हुती रूपमद मानमद छकि कै ।
मारहु ते सुकुमार नन्द के कुमार ताहि,
आये री मनावन सयान सब नकि कै ।
हंसि हंसि सौंहें करि करि पांय परि परि,
केशोराय की सौं जब रहे जिय जकि कै ।
ताहि समै उठे घन घोर दामिनी सी धाई,
उर लागि घनश्याम तन सों लपकि कै[२]।।

` उल्लेख ` अलंकार के द्वारा नायिका के विरह का वर्णन करते हुए कवि का कथन है—

केशव कुंवर वृषभानु की कुंवरि वन—
देवता ज्यों बन उपबन विहरति है ।
कमला ज्यों थिर न रहति कहूं एक ठौर,
कमलानुजा ज्यों कमलनि ते डरति है ।
काली ज्यों न केतकी के फूल सूंघे सीता जू ज्यों,
निशिचर मुख चंद देखि ही जरति है,

१- रसिकप्रिया : प्रभाव ८, छ० - २४
२- वही, प्रभाव ६, छ० - २८

बदन उघारत ही मदन सुयोधन ही,
द्रौपदी ज्यों नाऊं मुख तेरोई रटति है।[1]

कविप्रिया :

इस ग्रन्थ में केशव ने विशिष्टालंकार के अन्तर्गत ३७ प्रमुख अलंकारों का विवेचन करते हुए उनके उदाहरण दिए हैं। प्राय: सभी उदाहरण सुन्दर हैं।

निम्न छन्द में 'रूपकातिशयोक्ति' की सहायता से नायिका के अंगों की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों करणों सुन बुद्धि सके छ्वै।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्री फल से व्वै ।।
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चले च्वै ।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै[2] ।।

नायिका सखी से कहती है कि जो मैं कृष्ण से हंसकर बातें करती हूं तो सब लोग मेरी हंसी करते हैं, जो लज्जा को तिलांजलि दे उनकी ओर निहारती हूं तो लोग मुझसे घृणा करते हैं, कुछ बातें करती हूं तो निन्दा होती है, जो उनकी छवि को मन में धारण करती हूं तो काम जागृत होता है। इसी कारण मन में कोई उत्साह नहीं होता। भोली-भाली नायिका का इस विवशता का चित्रण 'अतिशयोक्ति' अलंकार के द्वारा बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है।

हंसि बोलत ही जु हंसै सब केशव, लाज भगावत लोक भगै।
कछु बात चलावत घेरन चले मन आनत ही मनमत्थ जगै ।।

---

१ - रसिकप्रिया : प्रभाव ११, छं० - १६
२ - कविप्रिया : प्रभाव १३, छं० - १८

सखि तू जु कहैसु हुती मन मेरेहु जानि यहै न हियो उमगै ।

हरि त्यौं टुक डीठि पसारत हा अंगुरीन पसारन लोक लगै[1]।।

` विभावना ` अलंकार के सहारे केशव ने नायिका के सहज सौन्दर्य का भी बड़ा ही सजीव चित्रण किया है ।

पूरन कपूर पान खाये कैसी मुखबास,

अधर अरुण रुचि सुधा सों सुधारे हैं ।

चित्रित कपोल, लोल लोचन, मुकुर ऐन,

अमल झलक, झलकनि मोहि मारे हैं ।

भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करे हू होहिं,

आंजी ऐसी आँखें केशोराय हरि हारे हैं ।

काहे को सिंगार के बिगारति है मेरी आली,

तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं[2]।।

अवध के राजकुमारों के रूप-वर्णन में ` स्वभावोक्ति ` अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

पीरी पगरी पाट की पिछौरी कटि केशोदास,

पीरी पीरी पागें पग पीरिये पनहियां ।

बड़े बड़े मोतिन की माला बड़े बड़े नैन,

भृकुटी कुटिल नान्हीं नान्हीं बघनहियां ।

बोलनि, चलनि, मृदु हंसनि चितौनि चारु,

देखत ही बनै पै न कहत बनै हियां ।

----

१ - कविप्रिया : प्रभाव १३, छं० - ४०

२ - वही, प्रभाव ६, छं० - १२

सरजू के तीर तीर खेलैं चारों सुवीर,

हाथ द्वै द्वै तीर राती रातियै धनुहियां[1]।।

ऐसे उदाहरण ` कविप्रिया ` में कम ही हैं, जहां कवि की कल्पना अस्वाभाविक हो गई हो अथवा चमत्कार-प्रदर्शन की रुचि से प्रेरित होकर उसने अलंकार-योजना की हो। ` श्लेष ` के सहारे उसने प्रवीणराय को रमा, शारदा और शिवा बड़ी से बड़ी देवियां तक बना दिया है (कविप्रिया : प्र० -१, छ० - ५८- ६०)। पर केशव की ये कल्पनाएं अस्वाभाविक हो गई हैं।

छन्द :

भारतीय छन्दशास्त्र का इतिहास बहुत प्राचीन है। वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं और वेदों की रचना छन्दों में ही हुई है। इस प्रकार भारत छन्दरचना के क्षेत्र में भी संसार का अग्रणी है। वैदिक काल में काव्य के लिए छन्द का कितना महत्व था, यह इस बात से प्रकट है कि छन्दशास्त्र को वेदों के षडंगों (शिक्षा, निरुक्त, व्याकरण, कल्प, ज्योतिष तथा छन्द) में माना गया है और उसे वेदों का ` पाद ` (चरण) कहा गया है[2]। वास्तव में काव्य के बिना छन्द में सम्यक् ` गति ` नहीं आती। फिर जीवन में संगीत का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत में मनुष्य तो क्या पशुओं और वृक्षलतादि को भी प्रभावित करने की शक्ति है। अतएव यदि जीवन के लिए है तो संगीत को उससे अलग करना अथवा दूसरे शब्दों में छन्दबन्धन की अवहेलना करना कविता की सम्मोहक शक्ति को कम कर देना होगा, क्योंकि छन्दशास्त्र नाद-सौन्दर्य (संगीत) उत्पन्न करने के नियमों का शास्त्र है।

---

१ - कविप्रिया : प्रभाव ६, छ० - ६

२ - छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते।
ज्योतिषामयनं नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। —छन्दप्रभाकर, भानु, भूमिका, पृ० -२१

छन्द दो प्रकार के माने गये हैं, वैदिक और लौकिक । कुछ छन्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग केवल वेदों में ही दिखलाई देता है जैसे अनुष्टुप, गायत्री, उष्णिक आदि । इनको वैदिक छन्द कहा गया है । वेद से इतर शास्त्र, पुराण, काव्यादि ग्रन्थों में प्रयुक्त होने वाले छन्दों की ' लौकिक ' संज्ञा है । लौकिक छन्दों के तीन भेद माने गये हैं, मात्रिक (जाति) जिनमें लघु गुरु की गणना होती है, वर्णिक (वृत्त) जिनमें गणों की गणना होती है, और ' अक्षर ' जिनमें केवल अक्षरों की गणना की जाती है । हिन्दी में लौकिक छन्दों में प्रथम दो ही भेद, मात्रिक और वर्णिक माने गये हैं और कवित्त आदि छन्द, जिनमें अक्षरों की गणना होती है, वर्णिक के अन्तर्गत मान लिए गये हैं ।

केशवदास ने अपनी रचनाओं में मात्रिक और वर्णिक दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है । दूसरे, जितने अधिक छन्दों का प्रयोग केशव ने किया है उतने छन्दों का प्रयोग केशव के पूर्ववर्ती, समकालीन अथवा परवर्ती हिन्दी-साहित्य के किसी कवि की रचना में आज तक नहीं दिखाई देता । हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक काल की जैन संतों की अपभ्रंश रचनाओं में दूहा छन्द का प्रयोग मिलता है । इसके बाद ' पृथ्वीराजरासो ' आदि वीर-काव्यों में छप्पय, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा और आर्या आदि उस समय के प्रसिद्ध छन्द प्रयुक्त हुये हैं । भक्तिकाल के निर्गुण संत कवियों— कबीर आदि ने छन्दों में चिरपरिचित दोहे का अधिक प्रयोग किया है । जायसी आदि प्रेमाश्रयी कवियों ने अपने आख्यानों के लिए दोहा-चौपाई छन्दों को अपनाया है । केशव के समकालीन अष्टछाप कवियों ने अधिकांश पद लिखे हैं । सूरदास, नन्ददास, परमानन्द दास आदि कुछ कवियों ने कुछ स्थलों पर दोहा, चौपाई, रोला, छप्पय, सार और सरसी आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है । केशव के समकालीन कवियों में एक महाकवि तुलसीदास अवश्य ऐसे हैं जिन्होंने केशव के पूर्व सबसे अधिक छन्दों का प्रयोग किया है । तुलसीदास जी ने मात्रिक छन्दों में

चौपाई, दोहा, सोरठा, चौपैया, डिल्ला, तोमर, हरिगीतिका, त्रिभंगी, छप्पय, झूलना और सोहर तथा वर्णिक छन्दों में अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, तोटक, नगस्वरूपिणी, भुजंगप्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वसन्ततिलका, वंशस्थविलम्, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, किरीटी, मालती, दुर्मिलका तथा कवित्त का प्रयोग किया है। केशव इस क्षेत्र में तुलसी से भी आगे हैं।

केशव के विविध प्रबन्धों में जो छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उनके नाम नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं—

रामचन्द्रिका :

डा० हीरालाल दीक्षित द्वारा उल्लिखित छन्दों के नाम इस प्रकार हैं—

मात्रिक—(१) दोहा, (२) रोला, (३) घत्ता, (४) छप्पय, (५) प्रज्झटिका, (६) अरिल्ल, (७) पादाकुलक, (८) त्रिभंगी, (९) सोरठा, (१०) कुंडलिया, (११) सवैया, (१२) गीतिका, (१३) डिल्ला, (१४)मधुभार, (१५) मोहन, (१६) विजया, (१७) शोभना, (१८) सुखदा, (१९) हरि, (२०) पद्मावती, (२१) हरिगीतिका, (२२) चौबोला, (२३) हरिप्रिया तथा (२४) रूपमाला।

वर्णिक— (१) श्री, (२) सार, (३) दण्डक, (४) तरणिजा, (५) सोमराजी, (६) कुमारललिता, (७) नागस्वरूपिणी, (८) हंस, (९) समानिका, (१०) नराच, (११) विशेषक, (१२) चंचला, (१३) शशिवदना, (१४) शार्दूलविक्रीडित, (१५) चंचरी, (१६) मल्ली, (१७) विजोहा, (१८) तुरंगम, (१९) कमला, (२०) संयुता, (२१) मोदक, (२२) तारक, (२३) कलहंस, (२४) स्वागता, (२५) मोटनक, (२६) अनुकूला, (२७) भुजंगप्रयात, (२८)तामरस, (२९) मत्तगयन्द, (३०) मालिनी, (३१) चामर, (३२) चन्द्रकला, (३३) किरीट सवैया, (३४) मदिरा सवैया, (३५) सुन्दरी, (३६) तन्वी, (३७) सुमुखी,

(३८) कुसुमविचित्रा, (३६) वसन्ततिलका, (४०) मोतियदाम, (४१) सारवती, (४२) त्वरितगति, (४३) द्रुतविलम्बित; (४४) चित्रपदा, (४५) मत्तमातंगलीलाकरण दंडक, (४६) अनंगशेखर दंडक, (४७) दुर्मिल सवैया; (४८) इन्द्रवज्रा, (४६) उपेन्द्रवज्रा, (५०) रथोद्धता, (५१) चन्द्रवर्त्म, (५२) वंशस्थविल, (५३) प्रमिताक्षरा, (५४) पृथ्वी, (५५) मल्लिका, (५६) गंगोदक, (५७) मनोरमा तथा (५८) कमल[१]।

इनके अतिरिक्त डा० किरणचन्द्र शर्मा ने ३६ और छन्दों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित है—

(१) रमण, (२) प्रिया, (३) गाहा, (४) चतुष्पदी अथवा चौपैया, (५) नवपदी, (६) आभीर, (७) मालती, (८) मदनमल्लिका, (६) घनाक्षरी, (१०) तोमर, (११) अमृतगति, (१२) दोधक, (१३) तोटक, (१४) पंकजवाटिका, (१५) निशिपालिका, (१६) सुप्रिया अथवा शशिकला, (१७) मंथना, (१८) मधु, (१६) बन्धु चौपाई या चौपई, (२१) ब्रह्मरूपक, (२२) स्रग्विणी, (२३) हाकलिका, (२४) मदनमनोहर दण्डक, (२५) लवंगलता, (२६) मदनहरा, (२७) पंचचामर, (२८) झूलना, (२६) जयकरी, (३०) मकरंद सवैया, (३१) मरहट्टा, (३२) हरिलीला, (३३) वीर, (३४) उपजाति, (३५) गौरी, (३६) रूपकान्ता, (३७) सुगीत, (३८) सिंहविलोकित तथा (३६) मनहरन[२]।

इस प्रकार 'रामचन्द्रिका' में प्रयुक्त छन्दों की संख्या '८२' के स्थान पर '१२१' ठहरती है।

१- आचार्य केशवदास : हीरालाल दीक्षित, पृ० - २०२

२- केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व : डा० किरणचन्द्र शर्मा, पृ०- १६५- १६६

विज्ञानगीता : मात्रिक — (१) छप्पय, (२) सवैया, (३) दोहा, (४) सोरठा, (५) कुण्डलिया, (६) रूपमाला, (७) मरहट्टा, (८) तोमर, (९) हरिगीतिका; (१०) गीतिका, (११) त्रिभंगी, (१२) विजय तथा (१३) पादाकुलक ।

वर्णिक — (१) नाराच, (२) दण्डक, (३) तारक, (४) हीरक, (५) भुजंगप्रयात, (६) दोधक, (७) नगस्वरूपिणी, (८) कवित्त, (९) चामर, (१०) मल्लिका, (११) सुन्दरी, (१२) तोटक, (१३) मदिरा, (१४) हरिलीला, (१५) नलिनी, (१६) स्वागता, (१७) समानिका, (१८) मधु, (१९) चंचरी अथवा चंचरीक तथा (२०) सरस्वती ।

वीरसिंहदेव-चरित : मात्रिक — (१) छपद (छप्पय), (२) चौपही, (३) दोहा (दोहरा), (४) हीर, (५) कुण्डलिया, (६) त्रिभंगी और (७) मनोरमा ।

वर्णिक — नगस्वरूपिणी, (२) भुजंगप्रयात, (३) कवित्त, (४) दण्डक और नाराच ।

रतनबावनी : मात्रिक —(१) दोहा, (२) छप्पय और (३) कुण्डलिया

जहांगीर जस-चन्द्रिका : मात्रिक —(१) छप्पय, (२) दोहा (३) सवैया, (४) सोरठा, (५) चंचरी और (६) रूपमाला ।

वर्णिक — (१) कवित्त, (२) भुजंगप्रयात, (३) समानिका और (४) निशिपालिका ।

रसिकप्रिया : मात्रिक —(१) दोहा, (२) छप्पय, (३) सवैया

वर्णिक — कवित्त

नखशिख : मात्रिक — (१) दोहा, (२) सवैया

वर्णिक —कवित्त

कविप्रिया : मात्रिक—(१) दोहा, (२) सवैया, (३) छप्पय, (४) पद्मावती, (५) रोला, (६) सोरठा, (७) चौपाई

वर्णिक—(१) कवित्त, (२) प्रमानिका

उपर्युक्त सूची से प्रकट है कि 'रामचन्द्रिका' में ही सबसे अधिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं। केशव ने जितने अधिक छन्दों का प्रयोग इस ग्रन्थ में किया है हिन्दी साहित्य की किसी भी रचना में आज तक नहीं हुआ है। कमल, घत्ता, विजोहा, मोटनक, तरणिजा, सोमराजी, कुमारललिता, बन्धु मधु, समानिका, तुरंगम, डिल्ला, मंथना तथा निशिपालिका आदि छन्दों के नाम कदाचित् ही छन्दशास्त्र से इतर किसी ग्रन्थ में देखने को मिलें। इसी प्रकार दण्डक के उपभेद, मत्तमातंगलीलाकरण, अनंगशेखर तथा मदनमनोहर भी अन्यत्र मिलने दुष्कर हैं। सवैया के प्राय: सभी उपभेदों मत्तगयंद, दुर्मिल, सुन्दरी, किरीट, चन्द्रकला तथा मदिरा का प्रयोग यहां हुआ है। दूसरे, केशव ने छोटे-से-छोटे तथा लम्बे-से-लम्बे छन्दों का यहां प्रयोग किया है। एक वर्ण वाले छन्दों से लेकर आठ वर्णों वाले छन्दों तक के उदाहरण तो एक ही साथ ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तुत किए गए हैं।[१]

१- श्री छन्द- सी, धी, रीं, धी ।।
सार छन्द- राम, नाम । सत्य, धाम ।।
और नाम । कौन, काम
रमण- दुख क्यों । टरिहै ।
हरि जू । हरिहै ।
तरणिजा- वरणियो । वरण सो । जगत को । शरण सो ।।
प्रिया- सुख कंद है । रघुनन्दन जू ।
जग यों कहै जगबंद जू ।।
सोमराजी- गुनो एक रूपी, सुनो वेद गावैं ।
महादेव जाको, सदा चित्त लावैं ।।
कुमारललिता- विरंची गुण देखें । गिरा गुणनि लेखैं
पिणी अनन्त मुख गावैं । विशेषहि न पावैं ।।
नगस्वरूपिणी- भलो बुरो न तू गुनै । वृथा कथा कहै सुनै ।
न रामदेव गाइहै । न देवलोक पाइहै ।।
—रामचन्द्रिका : प्रभाव-१, छं० -८- १६

इस ग्रन्थ में केशव की अभिरुचि मात्रिक छन्दों की अपेक्षा वर्णिक छन्दों के प्रति अधिक रही है। वर्णिक छन्दों में भी दोधक, तोमर, तोटक, तारक, भुजंगप्रयात, नाराच, मोटक तथा दण्डक अधिक प्रिय हैं। इसी प्रकार मात्रिक छन्दों में त्रिभंगी प्रज्झटिका, रूपमाला, हरिगीतिका तथा चौबोला के प्रति कवि का विशेष प्रेम दिखाई पड़ता है। केशव ने `रामचन्द्रिका` में बहुत ही शीघ्र छन्दों का परिवर्तन किया है। लंका-दहन के प्रसंग को छोड़कर जहां लगातार पांच बार भुजंगप्रयात छन्दों का प्रयोग हुआ है (प्र० १४ छं० - ६-१०), ऐसे स्थल अत्यन्त ही कम हैं जहां कवि द्वारा सात-आठ बार लगातार एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ हो। सीता की खोज करते हुए हनुमान के लंका पहुंचने पर लंकाधिपति रावण के राजभवन, सीता की वियोगिनी मूर्ति तथा रावण-सीता संवाद का वर्णन एक साथ ग्यारह भुजंगप्रयात छन्दों में हुआ है। (प्र० - १३, छं० - ५० - ६०)। कुम्भकर्ण का युद्ध-वर्णन भी लगातार सात भुजंगप्रयात छन्दों में किया गया है (प्र०- १८, छं०- २२- २८)। रावण-मख-भंग तथा मन्दोदरी की दयनीय दशा का वर्णन करने में आठ बार लगातार भुजंगप्रयात का प्रयोग हुआ है (प्र० १६, छं० - २६- ३३)। इसी प्रकार रामकृत राज्यश्री-निन्दा के प्रसंग में लगातार सात बार (जयकरी ` प्रयुक्त किया गया है (प्र० २३, छं० - १४ - २०)। राम के राज्याभिषेक के शुभावसर पर ब्रह्मादि देवताओं, पितरों तथा ऋषियों द्वारा की गई स्तुति के प्रसंग में भी निरन्तर सात बार दण्डक (प्र० २७ छं० - २ - ८) तथा पन्द्रह बार रूपमाला (प्र० २७, छं०- १० - २४) का प्रयोग किया गया है। कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनका केवल एक बार ही प्रयोग किया गया है यथा मल्ली, विजोहा तथा मंथना (प्र० - ३, छं० - ३४)(प्र० - ४, छं० - ४ तथा प्रभाव - ४, छं०- ७ क्रमशः) इस प्रकार स्व० डा० बड़थ्वाल के शब्दों में ` रामचन्द्रिका ` को छन्दों का अजायबघर कहना अत्युचित न होगी।

' विज्ञानगीता ' में भी केशव के उसी छन्द-वैविध्य के दर्शन होते हैं, जो उनकी ' रामचन्द्रिका ' में दृष्टिगोचर होता है। इस ग्रन्थ में ' रामचन्द्रिका ' के सदृश ही मात्रिक छन्दों की अपेक्षा वर्णिक छन्दों का प्रयोग बाहुल्य से हुआ है। परन्तु यहां अपरिचित छन्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। प्राय: एक छन्द का दो या तीन बार ही लगातार प्रयोग किया गया है। कुण्डलिया, मरहट्टा तथा पादाकुलक छन्द केवल एक बार प्रयुक्त हुए हैं। शरद्-वर्णन लगातार पांच दण्डक छन्दों में हुआ है (प्र० १०, छ०-१३-१७)। बिन्दुमाधव तथा गंगा की स्तुति के प्रसंग में लगातार आठ-आठ बार भुजंगप्रयात छन्दों का प्रयोग किया गया है (प्र० ११, छ० - २१ - २८ तथा प्र० - ११, छ०- ४० - ४७ क्रमश:)। विश्वनाथ- स्तुति लगातार पांच चामर छन्दों में हुई है (प्र० - ११, छ० - ३३ - ३७)। ज्ञान- अज्ञान की भूमियों का विवरण लगातार उन्नीस दोहों में प्रस्तुत किया गया है (प्र० - १७, छ० - ४३ - ६१)। अन्य छन्दों की अपेक्षा केशव ने दोहा, दोधक, तारक, चामर, सुन्दरी, सरस्वती तथा रूपमाला छन्दों का अधिक प्रयोग किया है।

' वीरसिंहदेव-चरित ' में दोहा-चौपाई छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। सम्भवत: जायसी और तुलसी आदि प्रबन्धकारों की देखा-देखी ही केशव ने भी अपने इस प्रबन्ध में दोहा-चौपाई छन्दों का ही प्रयोग किया है। परन्तु ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में युद्ध का वर्णन होने से इस भाग के लिए इन छन्दों का चयन अधिक उपयुक्त एवं संगत नहीं है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ की रचना ब्रजभाषा में हुई है। दोहा-चौपाई अवधी के छन्द हैं। ब्रज में इनका प्रयोग उतना सुन्दर एवं रोचक नहीं लगता। फिर भी ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में, जहां युद्ध से इतर प्रसंगों का वर्णन हुआ है, इन छन्दों का प्रयोग इतना अरुचिकर प्रतीत नहीं होता। प्रयोग की दृष्टि से दोहा-चौपाई छन्दों के पश्चात् छप्पय(छप्पय),

सवैया और कवित्त का स्थान आता है । सवैया का ग्यारह बार, कुण्डलिया का पांच बार और दण्डक का तीन बार प्रयोग हुआ है । कवित्त छन्दों का लगातार आठ बार प्रयोग भी देखा जाता है (पृ० - १६२ - १६४, छं० -४१ - ४८)। कई छन्द ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग केशव ने केवल एक ही बार किया है, जैसे नगस्वरूपिणी, त्रिभंगी, हीरक, भुजंगप्रयात और मनोरमा ।

` रतनबावनी ` में केशव ने वीरगाथा — काल की व्यंजनों के द्वित्व एवं अन्त्यानुप्रास से पूर्ण शैली के साथ उस काल के प्रसिद्ध दोहा और छप्पय छन्दों को अपनाया है । कुण्डलिया (कुण्डरिया) छन्द का केवल एक ही बार प्रयोग किया गया है ।

` जहांगीर- जस - चन्द्रिका ` में केशव ने अधिकांश कवित्त - सवैयों को अपनाया है । ` दोहा ` को छोड़कर अन्य छन्द बहुत ही कम प्रयुक्त हुए हैं । रूपमाला, भुजंगप्रयात, समानिका, नाराच, निशिपालिका, दोधक तथा चामर छन्दों का प्रयोग केवल एक ही बार हुआ है । सोरठा दो बार प्रयुक्त हुआ है । जहांगीर बादशाह के दरबार का दृश्य तथा उसके प्रताप का वर्णन क्रमश: एक साथ चार तथा पांच कवित्त छन्दों में हुआ (छं० - ४२ - ४५ तथा छं० - ३२ - ३६ क्रमश:)। उदय-भाग्य संवाद के प्रसंग में लगातार ग्यारह छप्पय छन्दों का प्रयोग हुआ है (छं० - १४ - २४) । ` रसिकप्रिया `, ` कविप्रिया ` और ` नखशिख ` लक्षण ग्रन्थ हैं, अतएव इनमें अधिकांश दोहा, कवित्त और सवैया का ही उपयोग किया गया है । दोहों में लक्षण दिए गये हैं और कवित्त अथवा सवैया में उदाहरण । लक्षण - ग्रन्थों के लिए यह छन्द सबसे अधिक उपयुक्त है । ` रसिकप्रिया ` नामक ग्रन्थ में केवल एकबार मंगलाचरण में छप्पय का प्रयोग हुआ है । ` नखशिख ` में दोहा, कवित्त तथा सवैया से इतर छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ है ।`कविप्रिया ` में अवश्य छप्पय, रोला, सोरठा आदि कुछ अन्य छन्दों का भी प्रयोग किया गया है । इस ग्रन्थ में शिखापोप के अन्तर्गत बारहमासे का वर्णन बारह छप्पयों में

हुआ है ।

छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में केशव की मौलिकता :

केशव के छन्द - प्रयोग - सम्बन्धी कौशल को परखने के लिए उनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ ` रामचन्द्रिका ` है । इस ग्रन्थ में छन्द - प्रयोग के क्षेत्र में केशव की कुछ नवीन उद्भावनाएं दिखलाई पड़ती हैं । उन्होंने कुछ नये छन्दों का आविष्कार किया है, जैसे सुगीत (ज, म, र, स, ज, ज, = १८ वर्ण- पृ० १, छं० - ४), मनहरन (न, स, र,र,र = १५ वर्ण- पृ० ११, छं०- २३) मनोरमा (स, स,स, स, ल, ल = १४ वर्ण- पृ० ११, छं०- ३४) तथा कमल (स, स, स, न, ग = १३ वर्ण- पृ० ३२, छं० - १७) ।

तेरहवें प्रकाश में कवि ने दो स्थलों पर ` चौबोला ` और ` जयकरी ` छन्द का मिश्रण कर दिया है[१]। कहीं चौबोला के दो चरण पहले प्रयुक्त हुये हैं और कहीं जयकरी के । निम्नलिखित प्रथम उदाहरण में प्रथम दो चरण चौबोला के हैं, और दूसरे में जयकरी के ।

> सादर मन्त्रिन के जु चरित्र । इनके हमपै सुनि मखमित्र ।
> इनहीं लगे राज के काज । इनहीं ते सब होत अकाज[२]।।

तथा-

> कालकूट ते मोहन रीति । मणि गण ते अति निष्ठुर प्रीति ।
> मदिरा ते मादकता लई । मन्दर उदर मई भ्रम मई[३] ।।

---

१ - जयकरी और चौबोला दोनों ही छन्द पन्द्रह मात्रा के हैं, भेद केवल इतना ही है कि जयकरी के अन्त में गुरु- लघु होना चाहिए और चौबोला में लघु - गुरु । जयकरी का दूसरा नाम चौपई भी है ।
— छन्दप्रभाकर, भानु, पृ० - ४८

२ - रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध : छं० - १४, पृ० - ४०

३ - वही, छं० - २४, पृ० - ४४

केशव ने `चौपाई` और `चौपई` में भी कोई भेद नहीं किया है। वे १६ मात्राओं के छन्द को भी `चौपाई` लिखते हैं और १५ मात्राओं वाले को भी। उन्होंने `चौपई` में अन्त में गुरु लघु के भी नियम का पालन नहीं किया है[1]। चौपाई का उन्होंने एक विचित्र उदाहरण भी दिया है।

(चौपई १५ मात्राएं)

> सुख नासिका जग मोहियो। मुक्तफलनि युक्त सोहियो।
> अनंद लतिका मनहु सफूल। सूंघि लजत ससि सकल कुशूल[2]।।

संस्कृत भाषा के काव्य-ग्रन्थों में कहीं-कहीं एक ही भाव डेढ़ श्लोक में वर्णित दिखलाई देता है। हिन्दी में यह परिपाटी नहीं है। हिन्दी के काव्य-ग्रन्थों में किसी एक भाव अथवा वस्तु का वर्णन एक अथवा एक से अधिक पूर्ण छन्दों में मिलता है। केशव ने एक दो स्थलों पर एक ही भाव अथवा वस्तु का वर्णनडेढ़ छन्द में किया है, जैसे राम के रनिवास की स्त्रियों के,नखशिख-वर्णन के अन्तर्गत उनके `शिरोभूषण` और `भृकुटि` के वर्णन में—

यथा—

> शीष फूल शुभ जर्यो जराय। मांगफूल सोहै सम भाय।
> वेणीफूलन की बर माल। भाल भले बेंदा युग लाल।
> तम नगरी पर तेजनिधान। बैठे मनो बारहो भान[3]।

१- चौपाई (१५ मात्राएं)

> सेंदुर मांग भरी अति भली। तिहि पर मोतिन की आवली।
> गंग-गिरा तनु सों तन जोरि। निकसीं जनु जमुना जल फोरि।
> —रामचन्द्रिका : प्र० -३१,छ० -८

२- रामचन्द्रिका : प्रभाव- ३१, छ०- १३

अथवा-

भृकुटि कुटिल बहु मायन भरी । माल लाल दुति दीसत खरी ।
मृगमद तिलक रेख युगबनी । तिनकी सोभा सोभित घनी ।
जनु जमुना खेलति शुभगाथ । परसन पितहि पसार्यो हाथ[1]।

तार्टक (कर्णाभूषण) तथा जलकेलि के अनन्तर सुन्दरियों के शरीरों की शोभा का वर्णन क्रमश: पद्धटिका तथा हाकलिका छन्दों के दो ही चरणों में किया गया है ।

अति फुलमुलीन सह फलकलीन । फहरात पताका अति नवीन[2]।

अथवा-

केशनि ओरनि सीकर रमै । भृदानि को तमयी जनु वमै[3]।

इस सम्बन्ध में केशव के चौबोला और कुण्डलिया का उल्लेख भी आवश्यक है । चौबोला पन्द्रह मात्राओं का छन्द है जिसके अन्त में लघुगुरु होता है । केशव का चौबोला इस लक्षण पर ठीक उतरने पर भी वर्णिक वृत्त है, जिसका रूप है तीन भगण तथा लघु गुरु यथा—

संग लिए ऋषि शिष्यन घने । पावक से तपतेजनि सने ।
देखत बाग तड़ागन भले । देखन औधपुरी कहं चले[4]।

कुण्डलिया आदि में एक दोहा तथा उसके बाद एक रोला छन्द रखने से बनता है । अधिकांश कवियों ने कुण्डलिया के दूसरे चरण का तीसरे के साथ सिंहावलोकन प्रदर्शित किया है । गिरिधरदास जी ने, जिनकी कुण्डलियां प्रसिद्ध

---

१ - रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध : पृ० - १६४
२ - वही,
३ - वही, पृ० -१, छ० - ३६
४ वही,

हैं, इसी रीति का अनुसरण किया है, किन्तु कभी-कभी कुछ कवियों ने दूसरे चरण का तीसरे के साथ और चौथे चरण का पांचवें के साथ सिंहावलोकन कराया है। केशवदास जी ने दोनों मार्गों का अनुसरण किया है। यहां केशव की दोनों शैलियों की कुण्डलियों का क्रमश: एक-एक उदाहरण दिया जाता है—

> नारी तजै न आपनो सपनेहू भरतार।
> पंगु गुंग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार।
> अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी।
> बालक पंडु कुरूपसदा कुबचन जड़ जोगी।
> कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी।
> अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी[1]।।

तथा-

> ताते नृप सुग्रीव पै जैये सत्वर तात।
> कहियो बचन बुझाय कै कुशल न चाहो गात।
> कुशल न चाहो गात चहत हौ बालिहि देख्यो।
> करहु न सीता सोध कामबश राम न लेख्यो।
> राम न लेख्यो चित्त लही सुख सम्पति जाते।
> मित्र कह्यो गहि बांह कान कीजत है ताते[2]।।

'रामचन्द्रिका' में रामसीता के विवाह-वर्णन के सम्बन्ध में शिष्टाचार वर्णन के प्रसंग में अतुकान्त का भी प्रयोग हुआ है, यद्यपि उस समय के प्राय: सभी हिन्दी काव्य-ग्रन्थों में तुकान्त का ही प्रयोग होता था। हिन्दी से इतर

१- रामचन्द्रिका : प्रभाव १, छं०-१६

२- वही, प्रभाव-१३, छं०-२८

मराठी, गुजराती, पंजाबी, फारसी, उर्दू आदि अन्य भारतीय भाषाओं के प्राचीन काव्य ग्रन्थों में भी तुकान्त का ही प्रयोग दिखलाई देता है। अंग्रेजी और बंगला भाषाओं में भी अतुकान्त का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। इसका कारण अन्त्यानुप्रास अथवा तुकान्त के कारण उत्पन्न हुई सरसता एवं कर्णमधुरता है। संस्कृत में अवश्य अधिकांश अतुकान्त का ही प्रयोग मिलता है। संस्कृत वृत्त भिन्न तुकान्त के लिए उपयुक्त भी है। हिन्दी में आजकल संस्कृत वृत्तों के प्रयोग के साथ ही भिन्न तुकान्त का प्रयोग बढ़ रहा है।
अयोध्या सिंह जी उपाध्याय ` हरिऔध ` का ` प्रियप्रवास ` और अनूप शर्मा का ` सिद्धार्थ ` भिन्न तुकान्त संस्कृत वृत्तों में ही लिखे गये हैं। किन्तु केशव द्वारा अतुकान्त का प्रयोग यह प्रदर्शित करता है कि भिन्न तुकान्त हिन्दी के लिए नवीन वस्तु नहीं है। केशव से भी पूर्व वीरगाथाकाल में संस्कृत वृत्तों के प्रयोग के साथ ही महाकवि चन्द ने अतुकान्त का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में अयोध्यासिंह जी उपाध्याय ` हरिऔध ` ने अपने ग्रन्थ `हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास ` में चन्द के निम्नलिखित अतुकान्त छन्द का उल्लेख किया है—

हरित कनक कान्तिं कापि चंपेव गौरा।
रसित पदुम गंधा फुल्ल राजीव नेत्रा।
उरज जलज शोभा नाभि कोषं सरोजं।
चरण कमल हस्ती लीलया राजहंसी[१]॥

चन्द के बाद आज से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व केशवदास जी की `रामचन्द्रिका ` में निम्नलिखित अतुकान्त छन्द का प्रयोग मिलता है।

गुण गणमणिमाला चित्त चातुर्य शाला।
जनक सुखद गीता पुत्रिका पाय सीता।

१- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास : उपाध्याय, पृ० - २९० -२९१

अखिल भुवन भर्ता ब्रह्म रुद्रादि कर्ता ।
थिर चर अभिरामी कीय जामातु नामी[1]।।

इस छन्द में 'माला- शाला,' 'गीता- सीता,' 'भर्ता- कर्ता' तथा 'अभिरामी - नामी' आदि शब्दों में अन्त्यानुप्रास है[2]।

उक्तिगत चमत्कार :

सहज स्फुरित स्वच्छन्द स्वभाव वाली कविता से शास्त्रानुसारी पाण्डित्य- प्रदर्शनमयी कविता की प्रकृति पर्याप्त भिन्न होती है । पहली स्थिति में कवि भावों तथा सौन्दर्य विधायक अलंकरणों का प्रयोग सहज रीति से बिना उनके नाम रूप के प्रति सजग हुए, इस प्रकार करता है कि उसे वस्तु और शिल्प का अन्तर प्रतिभासित ही नहीं होता । परन्तु शास्त्रीय चेतना से लिखी गयी कविता में कवि निरन्तर अपने कवि-कर्म के प्रति जागरूक रहता है । वस्तु तथा शिल्प दोनों के विषय में उसकी निश्चित धारणाएं बन जाती हैं । एक ओर वह परम्परा तथा कवि- समयों से अनुशासित होने में गौरव का अनुभव करता है तथा दूसरी ओर उसके मन में अपने शिल्प- कौशल एवं उक्ति- वैचित्र्य के प्रदर्शन का भी लक्ष्य रहता है । कवि- शिक्षा को वह अपना धर्म समझता है तथा औरों को शिक्षित करना अपना कर्म । केशवदास इसी दूसरी कोटि के कवि थे । उनकी कविता की प्रकृति को सही रूप में समझने के लिए यही दृष्टि अपनाना उचित है ।

कविता के क्षेत्र में इतना विशद और रूप इतना जटिल एवं विविधात्मक होता है कि उसे खानों में बांटकर प्रस्तुत करना कृत्रिम लगता है और सम्भव भी नहीं हो पाता । स्वच्छन्दतावादी तथा शास्त्रीयतावादी ढंग के विभाजन भी इसके ऊपर थोपे नहीं जा सकते । दोनों प्रवृत्तियों की सन्धि,सामंजस्य एवं संश्लेषण के भी प्रभूत उदाहरण मिलते हैं । केशव के काव्य में ऐसे अनेक तत्व हैं,जो उनकी स्वच्छन्दता के परिचायक हैं और भावोन्मेष के पोषक भी । पर

१- रामचन्द्रिका : छं०- २७

२- 'अन्त्यानुप्रास छन्द के चरणों में सभी कहीं रखा जाता एवं जा सकता है,यह बात तुक में नहीं होती ।' —अलंकार-पीयूष, पूर्वार्द्ध, रसाल,पृ०-१६४

अधिकतर उनकी रुझान शास्त्रबद्धता का ही और दिखायी देती है। इसमें उनकी पौराणिकता एवं संस्कृतज्ञता भी सहायक हुई है। मिथकों, कवि-समयों तथा वर्णकों से केशव का काव्य-संसार आद्यन्त आपूरित है। उसमें प्रतीकात्मकता एवं बिम्बात्मकता भी समाहित है और भावमयता भी। पर काव्य में वे सबसे अधिक उक्तिवैचित्र्य के प्रति अनुरक्त दिखायी देते हैं। यह उनकी शक्ति भी है और सीमा भी। रसोक्ति स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति, उक्ति के ये तीनों प्रकार उनके काव्य में लक्षित होते हैं।

'रसिकप्रिया' रसोक्तियों का भण्डार है। प्रारम्भिक रचना होते हुए भी मार्मिकता की दृष्टि से इसका असाधारण महत्व है। 'कविप्रिया' में भी भाव-सौन्दर्य की उत्कृष्टता पर्याप्त मात्रा में मिलती है पर 'रसिकप्रिया' से अधिक नहीं। उसमें रसेतर विषयों के समावेश के कारण भिन्न प्रकार का वैशिष्ट्य लक्षित होता है। रामचन्द्रिका की स्थिति मिली जुली है। उसमें रसात्मकता भी है और मन को विरस बनाने वाले प्रसंगों का समावेश भी। केवल उसी को आधार मानकर केशव के काव्य का मूल्यांकन करना उचित नहीं। केशव का कवि-मन निरन्तर उर्वरता का अनुभव करता रहता था, किन्तु उनकी काव्य-प्रतिभा उसका पूरा साथ नहीं दे पाती थी। जहां दोनों का सघन सामंजस्य घटित हुआ है, वहां इतनी उत्कृष्टता मिलती है कि आश्चर्य होता है। राधा का भाव और रूप दोनों प्रकार से जैसा परस्परस्पर्धी व्यक्तित्व उन्होंने अंकित किया है, वह विद्यापति और सूर के बाद अपना स्वतन्त्र महत्व रखता है। एक आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित होकर वह मतिराम, देव, पद्माकर और रत्नाकर आदि रीति परम्परा के सभी प्रमुख कवियों को सतत प्रभावित करता रहा। और आज भी उसका वैशिष्ट्य समाप्त नहीं हुआ है। कृष्ण के व्यक्तित्व को भी केशव ने बहुत दूर तक राधा का पूरक-प्रतिरूप बनाकर प्रस्तुत किया है। पर सामान्य लौकिक नायक से जहां उसका तादात्म्य हो गया, वहां उसमें दुर्बलता आ

गयी है। नवरसमय रूप में राधा और कृष्ण दोनों को निरूपित करने के आग्रह ने भी केशवदास से बहुत कुछ ऐसा लिखा लिया, जो सहज रूप से इन उपास्य देवों के साथ सम्बद्ध नहीं किया जाता था। प्रश्न शृंगारिकता और अश्लीलता का ही नहीं है, संगति और असंगति के विवेक का भी है, जिसमें केशव बहुधा चूक जाते हैं। तथापि उनकी बहुत सी रसमयी उक्तियां अविस्मरणीय लगती हैं। कुछ तो ऐसी भी हैं, जिन पर सही ढंग से समीक्षकों का ध्यान अभी तक नहीं गया क्योंकि प्राय: कुछ विशेष छन्दों को लेकर ही उनमें ऊहापोह बना रहा।

राधा भाव सम्बन्धी कुछ छन्द विशेष द्रष्टव्य हैं। पूर्वराग की परिपक्वता ने राधा के तन और मन दोनों को इतना प्रभावित कर लिया कि सखियों को चिन्ता होने लगी—

> ऐसे हा क्यों चुप है रहिहौं सखि, हौं सहिहौं सतराहट सौं लों।
> क्यों सरिहै मिलिबे बिनु तोहि तउ, मिलियै मिलियै दिन जौ लों।
> केसव कोरि करौ उपचार, मिले को कहा मिलिहै सुख तौ लों।
> देखि घौं अंगनि आरसी लै, मिलिहै पिय सौं मन हा मन को लों[1]।।

इसमें मानसिक मिलन की पूर्णता और अपूर्णता दोनों की व्यंजना कुशलतापूर्वक की गयी है। सखियों के सहयोग से अन्तत: वन में दोनों का ऐहिक मिलन भी घटित होता है। कवि ने अपनी कल्पना का असाधारण वैभव वैचित्र्यपूर्ण अद्भुत योजना और ज्योतिषमूलक रंगमयता के साथ ऐसे रूप में प्रस्तुत किया है जिसका प्रभाव बिहारी आदि अनेक कवियों पर पड़ा—

> बन में वृषभानु, कुमारि मुरारि रमे रुचि सों रस-रूप पियें।
> कल कूजत पूजत काम कला विपरीत रची रति केलि किये।
> मनि सोभित स्याम जराव जरी अति चोकी चलै चल चारु हियें।
> मखतूल के फूल फुलावत केशव भानु मनो सनि अंक लिये[2]।।

---

१ - रसिकप्रिया : त्रयोदश प्रभाव, पृ० - २४१, छं० - ४

२ - वही, प्रथम प्रभाव, पृ० - ५६, छं० - २०

' प्रच्छन्न संयोग श्रृंगार ' का यह उदाहरण विपरीत रति के वर्णन के कारण अशोभन या अश्लील नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक तो यह दम्पतिभाव के साथ प्रगाढ़-प्रेम की भूमिका पर प्रतिष्ठित है, दूसरे कवि ने इसमें सौन्दर्य दर्शन ही अभीष्ट माना है। यह श्रृंगारिक वर्णन न तो स्थूल है और न विकृतिमूलक। दैहिक भूमि पर प्रेम का अवतरण भारतीय परम्परा में कभी अवांछित नहीं माना गया है। सूफियों तक ने उसका विस्तार से विरूपण किया है। जिन रीति कवियों का सौन्दर्य-बोध शिथिल एवं भावोन्मेष अपरिपक्व रहा है,उनके श्रृंगारिक वर्णन अवश्य अवांछित और निष्प्रेरक लगते हैं। केशव के साथ ऐसी बात नहीं है। फिर इस छन्द में श्रृंगार की भूमिका में वात्सल्य को उतार कर कवि ने विशेष साहस का परिचय दिया है। मध्यकाल में राम कथा और कृष्ण कथा की आन्तरिक भावधारा इतनी एकात्म हो चुकी थी कि सूर-तुलसी आदि ने ही नहीं, केशव ने भी उसे कहीं-कहीं समन्वित रूप में वर्णित किया है। रसिकप्रिया का प्रकाश-संयोग के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत यह छन्द भी कम मनोहर एवं अविस्मरणीय नहीं है—

> केशव एक समै हरि-राधिका आसन एक लसैं रंग भीनें।
> आनन्द सों तिय-आनन की दुति देखत दर्पन में दृग दीनें।
> भाल के लाल में बाल बिलोकि, तहीं भरि लालन लोचन लीनें।
> सासन पीय सबासन सीय हुतासन में जनु आसन कीनें[१]।।

यहाँ राधा कृष्ण वन-विहार से भिन्न नितान्त राजसी वातावरण में प्रेमलीन चित्रित किये गये हैं। इस छन्द की सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि कृष्ण अपने रामावतार के अग्नि-परीक्षा प्रसंग की बिम्बात्मक स्मृति से अभिभूत होकर सजलनेत्र हो उठते हैं। इन्हें राधा के मस्तक पर सुशोभित लालमणि में वह नारी-छवि आभासित होती है जो सामने कुण्ड के दर्पण में

१- रसिकप्रिया : प्रथम प्रभाव, पृ०- ६०, छं०- २२

उसी का प्रतिबिम्ब है। लाल अग्निकुण्ड में परीक्षा के लिए प्रवेश करती हुई सुसज्जित एवं सुभूषित सीता के रूप में देखकर कृष्ण तत्काल विचलित हो उठते हैं। अप्रस्तुत विधान की ऐसी अद्भुत- योजना अन्य किसी कवि में नहीं मिलती। केवल सूर ने कृष्ण की बाल- लीलाओं के वर्णन में एक जगह यशोदा द्वारा रामकथा सुनते हुए सीता हरण का प्रसंग आने पर 'चाप- चाप' कह उठने का वर्णन किया है, जिससे राम कृष्ण की तात्विक एकता प्रमाणित होती है और कथा वैचित्र्य एवं लीला- रस का भी अनुभव होता है।

राधा का स्वभाव नितान्त भोला और कृष्ण का उतना ही चातुर्यमय चित्रित करके कवियों ने वैचित्र्य की सृष्टि की है। कहीं-कहीं स्थिति इसके विपरीत भी प्रदर्शित की गयी है। केशव के छन्द के अन्त में सखी राधा से पूछती है कि जब तुम ऊपर से नीचे तक सिधाई की मूरत हो तो यह बताओ कि ऐसे टेढ़े कृष्ण को कैसे वशीभूत कर लिया—

सूधे सुभाइ सबै सजनी बस कैसे किये अति टेढ़े कन्हाई[1]

कृष्ण के इसी बांकेपन को लेकर बिहारी ने अनेक उक्तियों की सृष्टि अपनी 'सतसई' में की है पर उनकी राधा केशव की राधा की तरह सीधी सादी ग्राम तरुणी न होकर नागरी बन गयी है। अन्यत्र केशव ने राधा के चातुर्य का भी वर्णन किया है और इसका श्रेय भी बिहारी से अधिक केशव को है। वह अपना रूप जाल फैलाकर कृष्ण को वन में अपहृत कर ले जाती है।

बन में वृषभानुसुता
सुखहीं हरि को हरि लै गई हेलहिं हेली[2]।

वहां जाकर फिर भोलापन धारण कर लेती है—

१- रसिकप्रिया : द्वितीय प्रभाव, पृ०- ६४, छं०- ५

२- वही, षष्ठ प्रभाव, पृ०- १२६, छं०- १६

आँखिन मूँदि कै सीखति राधिका कुंजनि तें प्रतिकुंजनि जैबो[1]।

राधा कृष्ण के बीच सांकेतिक प्रेम-संवाद चलता है और उसमें कमल जैसे प्रतीकों का आदान-प्रदान भी होता है। उसमें दोनों ही एक दूसरे से अधिक समझदार और चतुर प्रतीत होते हैं। गोप सभा में बैठे हुए कृष्ण के पास सजल कमल के रूप में राधा प्रेम-सन्देश भेजती है। कृष्ण उस अधोमुख कमल को कलिका का रूप देकर वापस कर देते हैं। जिसका आशय है, सायंकाल सूर्यास्त के समय सरोवर के तट पर भेंट करना। वे सजल-कमल में राधा के व्यथाकुल नेत्रों का आभास पाकर उसकी विरह व्यथा का निदान मिलन-प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। यथा—

सखि गोकुल गोप-सभा महं गोविन्द बैठे हुते दुति कों धरि कै।
जनु 'केसव' पूरनचन्द लसै चित चारु चकोरनि कोहरि कै।
तिनकों उलटो करि आनि दियो किहुं नीरज नैन नए भरि कै।
कहि कहि तें नैंक निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करि कै[2]।।

कालीदास ने मेघदूत में यक्षिणी का वर्णन करते हुए 'हस्तेलीलाकमलम्' का उल्लेख किया है। यही कमल शताब्दियों का अन्तराल पार करता हुआ राधा के हाथ में आ गया। बीच में मूर्तिकला और चित्रकला के अनगिनत उदाहरणों में इसका अस्तित्व प्रवाह की अखण्डता सिद्ध करता है। कमल भारतीय सौन्दर्य-बोध का केन्द्रीय प्रतीक रहा है। राधा जब कमल सूंघती है तो केशव के कृष्ण को लगता है मानो वह उनका हृदय ही सूंघ रही है—

'मेरे ही मानो हिये कहा सूंघति यों अरविन्द दियें मुख ढाढ़ी'[3]

----

१ - रसिकप्रिया : षष्ठ प्रभाव, पृ० - १३०, छ० - २२

२ - वही, सप्तम प्रभाव, पृ० - १४४, छ० - ५६

३ - वही, अष्टम प्रभाव, पृ० - १७१, छ० - २४

रसिकप्रिया में अन्यत्र भी ' है कुम्हिलानो सो कुन्ज ' आदि का उल्लेख मिलता है। इस परम्परा के सम्यक् ज्ञान के अभाव में भारतीय काव्य को समझना दुष्कर है; चाहे वह प्राचीन हो या मध्यकालीन अथवा आधुनिक युग तक चली आने वाली परम्परा से सम्बन्ध नवीन।

झरोखों से झांकती राधा का अद्भुत रूप देखकर विह्वल हुए कृष्ण की दशा का वर्णन करने के लिए ' सुपारी लगना ' जैसी कल्पना केशव की निजी उद्भावना लगती है पर राधा-कृष्ण के युगल रूप को ' नैननि की जोरी ' कहना इतना सटीक लगा कि बिहारी आदि अनेक कवियों ने उसको आत्मसात् कर लिया।

' कविप्रिया ' में भी भावपूर्ण उक्तियों की कमी नहीं है। कोई दूती किसी नायिका को कृष्णपक्ष में अभिसार कराना चाहती है, अतः कहती है कि यह पतला सफेद रेशमी चादर उतार दो और अन्धकार की काली चादर ओढ़कर चलो, क्योंकि यह अन्धकारमय चादर ऐसी है कि न तो यह कांटों में उलझती है, न पैर से दबकर फटती है। सबसे बड़ी विशेषता इस चादर की यह है कि इसे प्रियतम के पास भूल आने का भी भय नहीं है। कितनी मनोहर युक्ति है।

> कंटक न अटकै न फाटत चरण चपि,
> बात तें न जात उड़ि अंग न उघारिये।
> नेकहू न भींजत मुसलधार बरषत,
> कीच न रचत रंच चित्त में विचारिये।
> केशोदास सावकास परम प्रकासन,
> उसारिये पसारिये न पिय पै बिसारिये।
> चलिये जू ओढ़ि पट तम ही को गाढ़ो तन,
> पातरो पिछौरा सेत पाट को उतारिये[1]।।

---

१ - प्रियाप्रकाश : (कविप्रिया) चौथा प्रभाव, पृ० - २६, छं० - ६

राधिका जी चांदनी रात में सुसज्जित होकर संकेत स्थल में कृष्ण जी की बाट जोह रही हैं। कपूर के आभूषण और चांदनी में स्नान द्वारा केशव ने राधिका की रूप ज्योति का ऐसा सुन्दर वर्णन किया है कि सुन समझकर चित्त प्रसन्न हो जाता है।

भूषण सकल घनसार ही के घनस्याम,
कुसुम कलित केस रही छबि छाई-सी।
मोतिन की सरि सिर कंठ कंठमाल हार,
वाको रूप ज्योति जात हेरत हिराई-सी।
चंदन चढ़ाये चारु सुंदर सरीर सब,
राखी सुभ्रशोभा सब बसन बसाई-सी।
शारदा-सी देखियत देखी जाय केशोराय
ठाढ़ी वह कुंवरि जुन्हाई में अन्हाई सी[1]।

कीर्ति और यश का रंग सफेद माना गया है। कविप्रिया के पांचवें प्रभाव में केशव ने श्वेत वस्तुओं का वर्णन किया है। राम के यश के वर्णन के माध्यम से केशव ने विभिन्न श्वेत वस्तुओं को इस प्रकार युक्ति से समायोजित किया है कि उसका रूप मनोहर हो उठा है।

कीन्हें छत्र छितिपति, केशोदास गणपति,
दसन, बसन बसुमति कर्यो चारु है।
विधि कीन्हो आसन शरासन असमसर,
आसन को कीन्हो पाकशासन तुषारु है।।
हरि करि सेज हरिप्रिया करी नाक मोती,
हर कर्यो तिलक हराहू कियो हारु है।
राजा दशरथ सुत सुनो राजा रामचंद्र,
रावरो सुयश सब जग को सिंगारु है[2]।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ० - ३०, छं० - १०
२- वही, पांचवां ,, पृ० -३५, छं० - १०

कभी-कभी अशोभनीय तथा निन्दनीय वस्तुएं भी केशव की लेखनी से सुन्दर और मनोरंजक रूप धारण करके हमारे सामने आती है जिसे पढ़कर पाठक ठगा का ठगा रह जाता है।

उठे किधौं आयु की औधि के अंकुर,
शूल कि सुख समूल नसायौ ।।
लिख्यौ किधौं रूपे के पानी पराजय
रूप कौ भूप, कुरूप लिखायौ ।
जरा जरपंजर जीव जर्यौ, कि
जुरा जर-कंवर सौं पहिरायौ[1] ।।

पार्वती का रंग पीला माना गया है। नीचे लिखी कविता में इसी विचार ने कैसी सुन्दर बात पैदा कर दी है। यह केशव की लेखनी का चमत्कार है।

मंगल ही जु करी रजनी बिधि, याही तें मंगली नाम धर्यौ है।
दंपति दामिनि देह संवारि, उड़ाय दई घन जाय बर्यो है ।
रोचन को रुचि केतकि चंपक फूल में अंग सुबास भर्यो है ।
गौरी गोराई के मैलहि लैकरि हाटक तें करहाट कर्यो है[2] ।।

दूसरे प्रकार की विभावना के उदाहरण में केशव यौवन की युवित का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

नेकहू काहू नवाई न बानी नवाये बिना ही सु बंक भई है।
लोचन श्री बिभुकाये बिना बिभुकी-सी, रंगे बिनु राग मई है।।
केशव कौन की दीनी कहौ यह चंदमुखी गति मंद लई है ।
छोली न, छीली गई कटि छीन सु यौवन की यह युवित नई है[3]।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : पांचवां प्रभाव, पृ०-३७, छं०-१३
२- वही, पृ०-३६, छं०-१६
३- वही, प्रभाव नवां, पृ०-१०५, छं०-१४

रामचन्द्रिका में भी केशव की उक्तियों की विचित्रता अनेक स्थलों पर स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है। रावण- धनुष उठाने तथा तोड़ने के लिए जिस प्रकार बहाना बनाता है वह विचारणीय है—

> वज्र को अखर्ब गर्ब गंज्यो जेहि पर्वतारि,
> जीत्यो है सुपर्व सर्व भाजे लै लै अंगना।
> खंडित अखंड आशु कीन्हों है जलेश पाशु,
> चंदन सी चन्द्रिका सों कीन्हीं चन्द बन्दना।
> दंड में कीन्हा कालदंड हू को मान खंड,
> मान कीन्हीं काल हो की कालखण्ड खंडना।
> केशव कोदंड विषादंड ऐसो खंडे अब,
> मेरे भुजदण्डन की बड़ी है बिडम्बना[1]।।

यहां केशव ने प्रसन्नराघव की निम्न पंक्तियों को आधार रूप में ग्रहण किया है—

> उद्दंडश्चण्डमलसद् भुजदंडखंड
> हैलाचला चलहराचलचारु कीर्तेः,
> को दृग्भ्रशस्तुलित बालमृणालकांड,
> कोदंड भंजन कथनयानया मे[2] ।।

ऋषि विश्वामित्र राजा जनक की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि अपने- अपने स्थान पर तो सभी राजा सदैव ही भूमि का पालन करते हैं। पर वे केवल नाम ही के भूमिपाल हैं।

> आपने आपने ठौरनि तो भुवपाल सब भुव पाले सदाई।
> केवल नामहिं के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।

१- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ४६, छ०- ६

२- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७१- ७२, छ०- ४८

भूपन को तुम हो धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई ।
केशव भूषण की भवि भूषण भू- तन ते तनया उपजाई[1] ।।

प्रसन्नराघव के विश्वामित्र ने भी इसी प्रकार की उक्ति जनक के प्रति कही है—

अवनिमवनिपाला: संघश: पालयन्ता
मवनिपतियशस्तु त्वां बिना नापरस्य
जनक कनक गौरीं यत्प्रसूतां तनूजां,
जगति दुहितृमन्तं भवन्तं वितेने[2] ।।

रामचन्द्रिका में मौलिक उक्तियों की कमी नहीं है । धनुषभंग हो जाने पर सीता जी ने रघुनाथ जी को सुन्दर स्वच्छ कमलों की माला पहना दी । इस पर केशव की उक्ति है—

सीता जू रघुनाथ को, अमल कमल की माल ।
पहिराई जनु सबन की, हृदयावलि भूपाल[3] ।।

राम के रूप से मोहित होकर परशुराम यह सोचते हैं कि निश्चय ही यह राम के भेष में कामदेव हैं और इसी कारण पुराना वैर स्मरण करके इसने महादेव का धनुष तोड़ा है ।

अमल सजल घनस्याम वपु केशोदास,
चन्द्रहु ते चारु मुख सुषमा को ग्राम है ।
कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि
सोदर समान रूप न्यारो- न्यारो नाम है ।।
बालक विलोकियत पूरण पुरुष, गुन
मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है ।

१- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ६४, छं०- २४
२- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- ४१, छं०- १३
३- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ७२, छं०- ४६

> बैर जिय मानि बामदेव को धनुष तोर्‌यो,
> जानत हौं बीस बिसे राम भेस काम है[1] ।।

ग्रामवासिनी स्त्रियों में से एक सीता से कहती है कि तू चन्द्रमा से किसी गुण में कम नहीं ।

> बासों मृग अंग कहैं तोसों मृगनैनी सब,
> वह सुधाधर तुहूं सुधाधर मानिये ।
> वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजै,
> वह कलानिधि तुहूं कलाकलित बखानिये ।
> रत्नाकर के हैं दोऊ केशव प्रकाशकर,
> अम्बर बिलास कुवलय हितु मानिये ।
> वाकै अति सीत कर तुहूं सीता सीतकर,
> चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिये[2] ।।

दूसरी स्त्री पहली स्त्री के मत को खण्डित करती हुई अपनी उक्ति लड़ाती है और सीता के मुख को केवल कमल सा कहती है ; चन्द्रमा के समान नहीं क्योंकि चन्द्रमा में तो अनेकों दोष हैं और सीता का मुख निर्दोष है ।

> एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जू को,
> एकै कहैं चन्द्र सम आनन्द को कंद री ।
> होय जो कमल तो रयनि में न सकुचै री,
> चन्द्र जो तो बासर न होती दुति मंद री ।।
> बासर ही कमल रजनि ही में, चन्द्र मुख,
> बासर हू रजनि बिराजै जगबन्द री ।

---

१ - रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ० - १०३, छ० - १४
२ - वही, नवां प्रकाश, पृ० - १४५, छ० - ४०

देखे मुख भाषै अनदेखई कमल चन्द्र,

ताते मुख मुखै सखी कमलै न चन्द री[1]।।

' विज्ञानगीता ' दार्शनिक ग्रन्थ होते हुए भी उसमें यत्र तत्र उक्तिगत वैचित्र्य के दर्शन हो ही जाते हैं। करुणा अपनी सखी शान्ति से पूछ रही है कि हे सखी, चन्द्रमुखी स्त्रियों में यह सुन्दर चकोर है या चकोरों में चन्द्र का प्रेम अटक रहा है

चन्द्रमुखीन में चारु चकोर कि चंद चकोरन में रुचि रोहै।

लोचन लोल कपोलन मध्य विलोकत यों उपमा कहं टोहै ।

सुंदरता सरसीन में मानहु मीन मनोजन के मन मोहै ।

मानिक सों मनिमंडल में कहि को यह बाल बधून में सोहै[2]।

इस छन्द में उपमा और रूपक अलंकार के माध्यम से कवि ने नेत्रों के लिए कामदेव की मछलियों और कपोलों के लिए तालाब की उपमा देकर अपने उक्तिगत वैचित्र्य के सुन्दर रूप को प्रदर्शित किया है।

केशवदास ने ' विज्ञानगीता ' के दसवें प्रभाव में श्लेष परक कविता का चमत्कार एवं आनन्द वर्णित किया है। इस वर्णन के बहाने वर्षा और शरद के प्रकाश का सौन्दर्य उद्घाटित हुआ है। निम्न छन्द में केशव ने श्लेष के माध्यम से वर्षाकाल और अविवेकी राजा के राज्य का सुन्दर चित्रण किया है।

लोग लगे सिगरे अपमारग कौन भलो बुरो जानि न जाई।

चंचल हस्तन को सुखदा अचला चल दामिनि को दुखदाई ।

हंस कलानिधि सूर प्रभाहत खंड सिखंडिन की अधिकाई ।

केसव पावस काल किधौं अविवेक महीपति की ठकुराई[3] ।

---

१ - रामचन्द्रिका : नवां प्रकाश, पृ० - १४४, छं० - ४२

२ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रभाव, पृ०-१०३, छं० - ४२

३ - वही, दशम प्रभाव, पृ०-१२३, छं० - ५

इसी प्रकार वर्षा के प्रचण्ड स्वरूप का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं कि कमला ने चूंकि कमलिनियों को छोड़ दिया है, इस कारण वे जल में डूबकर मर गई हैं। इन्द्र ने वीर वधूटियों को पकड़कर पृथ्वी को सौंप दिया है। इन बातों से वर्षा के देवता इन्द्र का क्रोध स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

> घनघोर किधौं भट पुंजन पै तरवार कढ़ी तड़िता दुति भीनी।
> गहि सक्र सरासन ' केसव ' जोति समूहनि को फवी बहुलीनी।
> कमला तजि पद्मिनी बूड़िअरी धरनी कहं चंदबधू गहि दीनी।
> बरषा हरषी कि बजाय निसान पुरंदर सूरज को रिस कीनी[1]।।

मधुकर शाह के शौर्य का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं—

> बापा बघेले को राज सुखाय गौ तौंवर क्षुद्र पठानी नठानी।
> ' केसव ' ताल तरंगिनि सी सब सूखि गई सिगरी चहुआनी।
> साहि अकब्बर अर्क उदै मिटि मेह मझोपन की रजधानी।
> उजागर सागर ज्यों मधुसाहि की तेग बढ़यौ दिन हौ दिन पानी[2]।।

इस छन्द की अन्तिम पंक्ति का चमत्कार यह है कि अकबर के प्रताप रूप के द्वारा जिन क्षत्रिय राजाओं का जल (तेज) बावली, तालाब और नदियों की भांति सूख गया था उसे फिर भरने के लिए मधुकर शाह की तलवार का जल (धार) सागर की भांति बढ़ गया। रूपक, उपमा और श्लेषादि अलंकारों के माध्यम से केशव ने अपने उक्तिगत चमत्कार को पूर्णतया प्रदर्शित करने की चेष्टा की है।

> लूटिबे के नाते पर पूटने तौ लूटियत
> तोरिबे के नाते गढ़ तोरि डारियत हैं।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत, विज्ञानगीता : दशम प्रभाव, पृ० - १२५, छ० - ७

२ - वही, प्रभाव - प्रथम , पृ० - २६, छ० - ६

घालिबे के नाते गर्व घालियत राजन के
जारिबे के नाते अघओघ जारियत है,
बांधिबे के नाते ताल बांधियत ` कैसोराय
मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियत है ।
राजबीर सिंह जू के राज जग जीतियत
(हारिबे के नाते आनजन्म) हारियत है[1] ।।

प्रस्तुत छन्द में केशवदास ने अपने प्रिय अलंकार परिसंख्या के माध्यम से राजा बीरदेव सिंह के राज्य का शौर्यपूर्ण वर्णन किया है ।

पेटनि पेटनि ह्वै भटक्यौ बहु पेटनि को पचवी न नक्यौ जू ।
पेट ते पेट लयौ निकस्यौ फिरिकै पुनि पेटहि सौं अटक्यौ जू ।
पेट को चेरो सबै जग काहू के पेट न पेट समात लक्यौ जू ।
पेट के पंथ न पावहु केसव पेटहि पोषत पेट पक्यौ जू[2] ।।

पेट विषयक मुहावरों के आधार पर रूढ़ि लक्षणा के माध्यम से इस छन्द में चमत्कृति उत्पन्न की गई है । यह केशव के ही वश की बात है कि पेट जैसे साधारण विषय पर ऐसा चमत्कार उत्पन्न कर सके । केशव ने विज्ञानगीता के दसवें प्रभाव में वर्षा और शरद् ऋतुओं का श्लेष पूर्ण वर्णन किया है । निम्न पंक्तियों में केशव ने श्लेष के सभंग और अभंग दोनों भेदों के माध्यम से वर्षा और कालिका का वर्णन किया है—

भौंहें सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भुखन जराय जोति तड़ित रलाई है ।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है ।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : प्रथम प्रभाव, पृ० - ३१, छं० - २२
२ - वही, तृतीय प्रभाव, पृ० - ५०, छं० - २६

` केसवदास ` प्रवल करुका गमनहार,

मुकुत सुहंसक सवद सुखदाई है ।

अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की

कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है[1]।।

निम्न छन्द में केशव ने श्लेष के माध्यम से शरद् एवं आदर्श राजनीति का वर्णन किया है—

छूटि गयो प्रजनि चलन अपमारग को,

आपने आपने सतमारग समीति है ।

सोहति परम हंस सूर एक कलानिधि,

गाय द्विज देवतानि पूजिबे की प्रीति है ।

पावै न प्रवेस विभिचारी निसिचारी चोर,

धामनि धामनि रामदेव जूको गीति है ।

केसवदास सबही के हृदय कमल फूले,

सोभित सरद किधों आछी राजनीति है[2]।।

यह केशव के ही वश की बात है कि शरद ऋतु जैसे कोमल विषय और राजनीति जैसे शुष्क विषय को एक साथ एक ही छन्द में वर्णित कर दिया है। यह साधारण प्रतिभा के बूते की बात नहीं है। विज्ञानगीता के दसवें प्रभाव में इस तरह के वर्णन भरे पड़े हैं। पूरा प्रभाव ही श्लेष में वर्णित है। इसके एकाध उदाहरण और देखे जा सकते हैं—

जहां- तहां दुर्गापाठ पठत प्रबीन द्विज,

धाम धाम धुम घर मलिन आकास सो ।

राजै राज सिंघासन संजुत चौर छत्र,

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : दशम प्रभाव, पृ० - १३०, छ० - १२

२ - वही, पृ० - १३१, छ० - १४

बाजत निसान गज गाजत हुलास सौं ।
ठौर ठौर ज्वालामुखी दासे दीपमालिका सौं,
सोभित सिंहार हार कुसुम सुबास सौं ।
' केसौदास ' आस पास लसत परम हंस
देवों को सदन किधौं सरद प्रकास सौं[1] ।।

इसी प्रकार निम्न छन्द में केशव ने श्लेष के माध्यम से शरद की शोभा कल्पना भगवान राम की वृद्धा दासी के रूप में की है—

चमकि चिकुर चारु चंद्रमुखी चंद्रिका,
सुचंदन चढ़ायौ साधु मन बच काय कौ ।
कृस कृटि केहरि कमल दल पद कर,
खंजन नयन कुंद दंत सुखदाय कौ ।
आछे तनु गंगाजल सहित सिंगारहार,
केसौराय हंसगति सुदर सुभाय कौ ॥
बीतें निसि बरषा के आई है जगावन कौं
सरद की शोभा वृद्धदासी रघुराय की[2] ।।

निम्न छन्द में श्लेष के माध्यम से शरद और शंकर दोनों की विशेषताओं का कथन हुआ है—

सकल विभूतिधर परम दिगम्बर पै अम्बर सुरंग सीस शोभा रजनीस की ।
स्वेत दुति सब अंग गिरिजा अनंग संग करत परम हंस प्रीति बिसबीस की
बंदित हैं भूमिदेव नरदेव देवदेव केसौदास भामिनी है अति जगदीस की[3]
जीव जोति हरषति सब सुख बरसति सरद की सूरत के मूरत है ईस की।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : दशम प्रभाव, पृ० - १३४, छं० - १६
२ - वही, पृ० -१३६, छं० १८
३ - वही, पृ० - १३८, छं० - २०

श्लेष के अतिरिक्त केशव ने उत्प्रेक्षा का भी सुन्दर वर्णन किया है—

> रथ राजि साजि बजाय दुंदुभि कोह सौ करि साज
> बिन्दुमाधव को चल्यौ दल भूमि को अधिराज
> उठि धूरि चली अकासहिं सोभिजे जु असेष
> जनु सौध लैन चली पुरंदर को धरा सुविसेष[1]

आचार्य केशवदास ने रूपक अलंकार और कैतवापह्नुति अलंकार के माध्यम से निम्न छन्द में वाराणसी के बागों में प्रवाहित होने वाले शीतल मंद, सुगन्ध समीर को हरि भक्त के रूप में चित्रित किया है, जो केशव के उक्ति वैचित्र्य को ही प्रदर्शित करता है—

> गंग अन्हाय के ईसहि पूजत फूलत सौ तन फूलि गनौ ।
> आनंद भूलि के भौंरनि के मिस गावत है बड़भाग घनौ ।
> बाहु लतानि उठाय कै नाचत केसव रांचत चित्त मनौ ।
> बागनि सीतल मंद सुगंध समीर लसै हरिभक्त मनौ[2] ।।

द्वादश प्रभाव के अन्तर्गत केशव ने युद्ध क्षेत्र का जो भयानक रूप चित्रित किया है उसे पढ़कर मानो नेत्रों के सामने वह वीभत्स रूप नाचने सा लगता है—

> केकरे कर बाहु मीन गयंद- सुंड भुजंग ।
> चौर चार सुदेस केसव खग समान तुरंग ।
> बालुका बहु भांति हैयनि माल जाल बिसाल ।
> पैरि पार भए विवेक नृपाल केसवदास[3] ।।

ऊपर के छन्द में केशव ने युद्ध- क्षेत्र में नदी का सांगरूपक बांधा है ।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकादश प्रभाव, पृ० - १४१, छ० - ४
२ - वही, पृ० - १४१, छ० - ६
३ - वही, द्वादस प्रभाव, पृ० - १६०, छ० - २१

सेषामयी कबरी रसनानल कुंडल सूरज-सोम रचै जू ।
मेखल ब्रह्म-कपालनि की पद नूपुर रुद्र-कपाल रचै जू ।
पंकज-विष्नु कपालनि की बनमाल न केसव काहू बचै जू ।
हस्तक भेद दसौ दिसि दीसत उग्रहू अथ मीचु नचै जू[१] ।

इसमें मृत्यु के भयानक स्वरूप की विराट कल्पना की गई है । इसमें केशव ने सांगरूपक अलंकार के द्वारा मृत्यु में नर्तकी के सभी गुणों का आरोप किया है ।

आचार्य केशवदास ने विज्ञानगीता के सोलहवें प्रभाव में राजा सिखिध्वज और रानी चूड़ाला की कथा का वर्णन करने के क्रम में रानी चूड़ाला के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन निम्न शब्दों में किया है—

दामिनी चल चारु खंजन दाड़िमी फटि जात
चन्द्रमा घटि जात है जिय फूल फूलि कुम्हिलात
कोकिला को कालिमा तनु मारबान अदृष्ट
ह्वै गए दुख जासु के यह जानियै जग इष्ट[२]

इस छन्द में केशव ने प्रतीप और रूपकातिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से साध्यवसाना लक्षणा का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार विज्ञानगीता के निम्न छन्द में रूपक अलंकार के माध्यम से भक्ति का वर्णन किया है—

चित्त सुनाल के अग्र लसै बहु कंटक कष्ट बिनास बिलासै ।
कारन कोमल पल्लव ` केशवदास ` संतोष सुबासनि बासै ।
भक्ति असंग की तीसरी भूमि मिलि असि अद्भुत संसृति नासै ।
भूप बिवेक हियें सरसीरुह मित्र बिचार प्रकास प्रकासै[३] ।।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : चतुर्दश प्रभाव, पृ० - १८८, छ० - २७

२ - वही, षोडशोप्रभाव, पृ० - २१२, छ० - ६

३ - वही, पृ० - २६३, पृ० - ४८

केशव ने विज्ञानगीता में इच्छा का वर्णन रूपक अलंकार के माध्यम से किया है—

> पाय पदारथ कुंभ निरे दिवि सुंडि त्रिषा तरुनी जनिये जू ।
> कर्म अकर्म विलोचन जीम पियास- दुधाम्भ में मनिये जू ।
> लोभ बिलोभति बासना बास दरो मनु दीरघ में गनिये जू ।
> इच्छागजी मदमत्त बनी तन में सर धीरज सो हनिये जू[१] ।।

इस छन्द में केशव ने इच्छारूपी हथिनी का रूपक बांधा है ।

स्वभावोक्तियों का सौन्दर्य :

यद्यपि स्वभावोक्ति को केशव की वक्रतामूलक अलंकारवादी प्रवृत्ति ने विशेष महत्व नहीं दी है तथापि कवि- स्वभाव के कारण उन्होंने स्वाभाविकता में भी सौन्दर्य दर्शन किया है । उनका नायिका के विषय में सखी से यह कहलाना कि तेरा शरीर तो स्वभावत: सुन्दर है, श्रृंगार करके उसे बिगाड़ती क्यों है, इसी प्रकार की सौन्दर्य दृष्टि का परिचायक है ।

> काहे को सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
> तेरे अंग बिनाही सिंगार के सिंगारे हैं[२] ।।

गोप और गोपबालाओं की स्वाभाविक शब्दावली तथा चेष्टा का भी केशव ने अपनी कविता में यत्र- तत्र समावेश किया है । ` ए हो गुपाल मैं ऐसे कह्यो ` में ` हो ` भाषा-प्रयोग की स्वाभाविकता व्यक्त करता है । जब कृष्ण को नारी वेश में राधा के सामने लाया जाता है और राधा अपने अबोधपन में सही स्थिति न समझकर सखी की तरह उनसे भेंटती है तो केशव लिखते हैं— ` हँसी सब कीक दै गोप कुमारी ` । यह ` कीक ` और उससे व्यंजित होने वाली चेष्टा दोनों स्वाभाविकता के कारण ही सुन्दर लगती है । जिसे केशव ने रसहीन

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : विंशति प्रभाव, पृ० - २८६, छं० - ६३

२ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) नवां प्रभाव, पृ० - १०५, छं० - १२

नग्न वर्णन के रूप में प्रस्तुत किया है। उस छन्द के अन्तिम अंश में स्वभावोक्ति की प्रतीति होती है और बार-बार उसके सौन्दर्य पर ध्यान जाता है—

> केसव चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी ।
>
> कै मुख चूमन दै फिरि मोहिं कि आपनि धाय सौं जाय कहौंगी[1]।।

अपनी दाई से शिकायत कर देने की धमकी देकर नायक को चुम्बन के लिए प्रेरित एवं विवश करना अस्वाभाविक कैसे कहा जा सकता है ? वह तो लीलाभाव की रमणीयता व्यंजित करता है अतः सुन्दर भी है ।

पशु-पक्षी और वन्य प्रकृति तथा सेना-प्रयाण आदि के विषय में भी केशव ने स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसे काव्य में समाविष्ट किया है। चंचल घोड़ों की कूंद करने तथा मदोन्मत्त हाथियों के चिघाड़ने आदि का वर्णन भी केशव ने किया है। कहीं-कहीं अप्रस्तुत विधान में भी पशु-चेष्टा समाहित की गयी है पर साहसिकता युक्त होने पर भी वह सुन्दर नहीं बन सकी है। यथा—

> चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुन मुख ।
>
> कीन्हौ झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन[2]।।

सूर्य को बन्दर से उपमित करना, अरुण-मुख का सादृश्य दिखाना, फूल गिराने और तारकों के विलीन हो जाने में साम्य देखना केशव के कल्पना वैचित्र्य का अद्वितीय उदाहरण है। किन्तु स्वभाव-केन्द्रित होने पर भी उसे सहज रूप से ग्रहण करना काव्य-समीक्षकों के लिए सम्भव न हो सका। रामचन्द्रिका में ऐसे और भी वर्णन मिलते हैं, जो मानसिकतया पूरी तरह ग्राह्य नहीं हो पाते।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ०- १८, छ०- १३

२- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ५८, छ०- १३

राम के द्वारा कौशल्या को विधवा-धर्म का उपदेश अस्वाभाविकता की चरम सीमा पर पहुंचा हुआ लगता है। वस्तुत: केशव का मन स्वभावोक्तियों से कहीं अधिक वक्रोक्तियों एवं व्यंग्योक्तियों में रमता दिखायी देता है। इतना होते हुए भी जहां केशव का कवि हृदय उनके पाण्डित्य पर विजय प्राप्त कर लेता है वहां कविता की स्वाभाविक निर्झरिणी बह उठी है। जब राम ने सीता को वन में छोड़ आने की बात कही तो भरत द्वारा दिए गये तर्क तथा उनका बार-बार आत्मग्लानि से भर जाना सहज स्वाभाविक परिवेश की सृष्टि करता है। भरत का कथन है—

> वा माता वैसे पिता तुम सो भैया पाय।
> भरत भयो अपवाद को भाजन भूतल आय[1]।।

भरत राम को समझाते हुए तर्क देते हैं—

> तुलसी को मानत प्रिया, गौतम तिय अति अज्ञ।
> सीता को छोड़न कहो, कैसे कै सर्वज्ञ ।।
> स्वप्नहू नहिं छोड़िये तिय गुर्बिनी पल दोय।
> छोड़िये तब शुद्ध सीतहिं गर्भमोचन होय।
> पुत्र होय कि पुत्रिका यह बात जानि न जाय।
> लोक लोकन में अलोक न लीजिए रघुराय[2] ।।

निर्वासन के समय लक्ष्मण की दशा देखकर सीता तथा सीता को देखकर लक्ष्मण की जिस दशा का वर्णन केशव ने किया है वह किसी सहृदय कवि की लेखनी से ही निःसृत हो सकती है।

> विलोकि लक्ष्मणै भई विदेहजा विदेह सी।
> गिरी अचेत ह्वै मनो घने बनै तड़ित सी।

१- रामचन्द्रिका : प्रभाव ३३, पृ०-२०६, छं०-३५

२- वही, पृ०-२११, छं०-३६-४०

करी जु बाँह एक हाथ एक बात बास सौं ।
सिच्यो शरीर बीर नैन नीर हो प्रकास सौं[1]।।

लवकुश के द्वारा राम की सेना के बार-बार हार जाने का जो कारण भरत के मानस में बार-बार आता है वह कितना सहज एवं स्वाभाविक है—

जीतहि को रण मांहि रिपुघ्नहिं ।
को कर लक्ष्मण के बल बिघ्नहि ।
लक्ष्मण सोय तजो जब ते बन ।
लोक अलोकन पूरि रहे तन[2] ।

अथवा—

पातक कौन तजी तुम सीता, पावन होत सुने जग गीता ।
दोष विहीनहिं दोष लगावै । सो प्रभु ये फल काहे न पावै[3]।।

अथवा बानरों, राक्षसों और रीछों को रघुवंश के कारण (कि इन्होंने रघुवंशियों की सहायता की) अति गर्व हो गया है उनके गर्व को दूर करने के लिए यह युक्ति निकली है,क्योंकि प्रभु सदैव अपने भक्तों का गर्वनाश किया करते हैं।

बानर राक्षस रिच्छ तिहारे । गर्व चढ़े रघुवंशहिं भारे ।
ता लगि कै यह बात विचारी । हौ प्रभु संतत गर्वप्रहारी[4]।।

कुश द्वारा राम की सेनाओं पर विजय प्राप्त कर सीता के सम्मुख उपस्थित होने तथा [illegible] सीता को वास्तविकता का ज्ञान होने पर कितनी स्वाभाविक उक्ति केशव ने सीता के मुख से कहलाई है—

१- रामचन्द्रिका : प्रभाव ३३, पृ०- २१४, छं०- ५२
२- वही, प्रभाव- ३६, पृ०- २५८, छं०- ३०
३- वही, छं०- ३२
४- वही, पृ०- २५६, छं०- ३४

पापि कहां हति बापहिं जैहो । लोक चतुर्दश ठौर न पैहो ।
रामकुमार कँह नहिं कोऊ । जारज जाय कहावहु दोऊ[1]।।

कुश ने अपनी निर्दोषिता कितनी सहजता से व्यक्त की है ।

मोकहं दोष कहा सुनु माता बाँधि लियो जो सुन्यो उन भ्राता ।
हौं तुमही तेहिं बार पठायो । राम पिता कब मोहिं सुनायो[2]।।

इस प्रकार इन उदाहरणों को देखकर यह कहा जा सकता है कि केशव के ग्रन्थों में स्वाभाविक स्थलों की योजना भी हुई है, केवल वक्रोक्तियां ही नहीं हैं ।

वक्रोक्तियों की प्रखरता :

केशव के संवादों में वक्रोक्तियों का प्रखर स्वरूप विशेषत: निखरा है । राम- परशुराम संवाद तो प्रसिद्ध ही है पर अंगद- रावण- संवाद में भी पर्याप्त व्यंग्यमयता मिलती है । यथा—

रावण- कौन है वह बाँधि कै हम देह पूंछ सबै दही ।
अंगद- लंक जारि संहारि अच्छ गयो सो बात वृथा कही ।।
कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि न जानिये ।
कांख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये[3] ।।

कहीं- कहीं उपमा के द्वारा हीनता व्यंजित की गयी है । रामचन्द्रिका के अन्त में रावण अंगद से कहते हैं—बाननि बेधि रहो सब देही । बानर ते जु भये अब सेही । से ही या साही के कांटे सुप्रसिद्ध हैं । इतने बाण वानर शरीर में चुभे कि वह साही का शरीर लगने लगा— यह कल्पना सचमुच विचित्र,किन्तु

१- रामचन्द्रिका : प्रभाव ३६, पृ० - २७४, छ० - ३
२- वही, पृ० - २७४, छ० - ४
३- वही, सोलहवां प्रकाश, पृ० - २६५-२६६, छ० - ४, ६

सराहनीय है। राम के राज्य का वर्णन करने में केशव ने परिसंख्या अलंकार का विशद प्रयोग किया है, जो वक्रोक्ति-विधान के ही अन्तर्गत आता है।

> बैरी गाइ-ब्राह्मन को ग्रन्थिन में सुनियत,
> कलिकुल ही के मतवारे को सो साज है।
> गुरुसेजागामी एक बाल कै विलोकियत,
> मातंगन ही के मतवारे को सो साज है।
> अभिगरीन प्रति होत है अगम्यागीन,
> दुर्गनहिं 'केसोदास' दुर्गति सी आज है।
> देवताई देखियत गढ़न गढ़ोई, जावौ—
> चिर-चिर रामचन्द्र जाको ऐसो राज है[1]।

केशवदास को अपनी जो उक्तियां स्वयं बहुत प्रिय लगती थीं, उनको उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में समाविष्ट किया है। कविप्रिया के अनेक छन्द रामचन्द्रिका में भी मिलते हैं। ऐसी ही स्थिति अन्य ग्रन्थों की भी है।

भावव्यंजना का उत्कर्ष :

प्रबन्धकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं। इस कसौटी पर केशव की 'रामचन्द्रिका' को कसने से ज्ञात होता है कि अधिकांश स्थलों पर मार्मिकता के साथ अनुरक्त होने वाली सहृदयता केशव में न थी। रामकथा के अन्तर्गत दशरथ-मरण और रामवनगमन, चित्रकूट में राम-भरत-मिलाप-शबरी का आतिथ्य, सीताहरण और लक्ष्मण शक्ति के बाद राम विलाप आदि स्थल अधिक मर्मस्पर्शी हैं। प्रायः इन सभी स्थलों पर

१- रामचन्द्रिका : सोलहवां प्रकाश, पृ०- २६८- २६६, छं०- ४,६

केशव की रागात्मिका वृत्ति लीन होती नहीं दिखाई देती । कदाचित् इसीलिए बहुधा लोग केशव को हृदयहीन कह डालते हैं । किन्तु वृद्धापे में पनघट पर मृगलोचनी कामिनियों द्वारा 'बाबा' कहकर सम्बोधित किए जाने पर अपने सफेद बालों को कोसने के लिए प्रसिद्ध कवि हृदयहीन था, यह कहना उचित न होगा । केशव में भिन्न-भिन्न मानव मनोभावों को परखने की पूर्ण क्षमता थी । इस कथन के प्रमाण-स्वरूप 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' के स्फुट छन्द उपस्थित किए जा सकते हैं । प्रबन्धकाव्य के क्षेत्र में भी केशव के संवाद उनके मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण का परिचय देते हैं । संवादों से इतर स्थलों पर भी कवि ने भिन्न-भिन्न प्रकृतस्थ भावों की सुन्दर व्यंजना की है, यद्यपि ऐसे स्थल कम अवश्य हैं ।

राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन में चले जा रहे हैं । उनके अलौकिक सौन्दर्य को देखकर भोले-भाले वनवासी मोहित और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं । उनका हृदय तर्क वितर्क में पड़ जाता है और वे मन में विचार करते हैं कि 'हे भगवान, यह लोग कौन हैं' किन्तु जब वे कुछ भी निश्चय नहीं कर पाते और उनका चित्त भारी भ्रम में उलझ जाता है तो मानवोचित स्वाभाविक उत्सुकतावश वे राम से एक ही सांस में अनेक प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं—

> कौन हो कित तू चले कित जात हो केहि काम जू ?
> कौन की दुहिता बहू कहि कौन की यह बाम जू ।।
> एक गांउ रहो कि साजन मित्र बन्धु बखानिये ।
> देश के परदेश के किधौं पंथ की पहिचानिये[1] ।।

'शोक' का वर्णन कवि ने तीन स्थलों पर किया है । सीताहरण और लक्ष्मण-शक्ति के बाद राम की शोक-विह्वल दशा के चित्रण में तथा मेघनाद-वध के पश्चात् रावण की दशा के वर्णन में । मारीच रूपी स्वर्णमृग को मारने के बाद जब राम अपनी कुटी को वापस आकर सीता को नहीं पाते तो उनके

१- रामचन्द्रिका : नवां प्रकाश, पृ०-१३६, छं०- ३३

हृदय में स्वाभाविक रूप से अनेक तर्क-वितर्क उठते हैं। वे लक्ष्मण से कहते हैं कि कहीं सीता मेरे लिए मुझे ढूँढने वन में तो नहीं गई, अथवा तुमसे कुछ कहा-सुनी तो नहीं हो गई जिस दुःख से वह कहीं छिपी बैठी है, अथवा यह कोई अन्य पर्णकुटी तो नहीं है—

निज देखौं नहीं शुभ गीतहि सीतहिं कारण कौन कहौं अबहीं ।
अति मो हित कै बन मांझ गई सुर मारग में मृग मार्यो जहीं ।।
कटु बात कछु तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रहीं ।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं[1] ।।

केशव की उपर्युक्त पंक्तियों का आधार 'हनुमन्नाटक' की निम्न पंक्तियां हैं। परन्तु केशव की पंक्तियों में स्वाभाविकता अधिक है।

बहिरपि न पादानां पंक्तिरन्तनं कि मन्या
अहमपि किल नाथं सर्वथा राघवश्चेत्
क्षणमपि नहि सोढ़ा हन्त सीता वियोगम्[2] ।।

आशा के क्षीण तन्तु के सहारे राम, सीता की खोज करने आगे बढ़ते हैं किन्तु मार्ग में जटायु से यह समाचार पाकर कि सीता को रावण हर ले गया, राम पर एकाएक अशनिपात हो जाता है, जो उन्हें पागल बना देता है। सीता के प्रेम में विह्वल राम विलाप करते हुए पक्षियों और वृक्षलताओं आदि से करुणा-पूर्ण शब्दों में पता पूछते हुए दिखलाई देते हैं। चक्रवाक के जोड़े को देखकर राम उनसे कहते हैं कि 'जब जब तुम सीता को हमारे साथ देखते थे तो तुम्हें दुःख होता था। आज मुझे सीता से वियुक्त देखकर कदाचित् तुम्हें सन्तोष हो रहा हो, किन्तु वैर-भाव त्यागकर हमारी दशा पर सहानुभूति दिखलाते हुए तुम्हें सीता का पता बता देना चाहिए।

१- रामचन्द्रिका : बारहवां प्रकाश, पृ०- १८२, छं०- २७

२- हनुमन्नाटक : पंचम अंक, पृ०- ६०, श्लोक २

अवलोकन है जबहीं जबहीं । दुख होत तुम्हें तबहीं तबहीं ।
वह बैर न चित्त कछू धरिये । सिय देहु बताय कृपा करिये[1]।।

कुछ और आगे बढ़ने पर राम, चकोर से कहते हैं कि " चकोर, जिस सीता के चन्द्रमुख को देखकर तुम चन्द्रमा को भी भूल जाते थे, जिसके मुख को देखकर तुम जीवन धारण करते थे, आज वही सीता खो गई है। अतएव सीता के उपकारों को स्मरण कर उसकी खोज में तुम मेरी सहायता करो।

शशि को अवलोकन दूर कियो। जिनके मुख की छवि देखि जियो।
कृत चित्त चकोर कछुक धरो । सिय देहु बताय सहाय करो[2]।।

आगे बढ़ने पर " करुणा " नामक वृक्ष को देखकर राम कहते हैं कि हे करुणा मकरन्द के प्रार्थी भौरे को चम्पा पुष्प पास भी फटकने नहीं देता, इस प्रकार वह याचक का शत्रु है। अतएव मैं उसके पास सीता का पता पूछने नहीं गया। अशोक शोक रहित है अतएव वह मेरे शोक का अनुभव नहीं कर सकता। केवड़े, केतकी, गुलाब आदि के पास जाना भी व्यर्थ है क्योंकि वह सब तीक्ष्ण स्वभाव (कांटेदार) वाले हैं। तुमको सज्जन जान हम तुमसे ही सीता का पता पूछने आये हैं, किन्तु तुम भी मौन हो। क्या यह उचित है। तुम तो करुणामय हो तुमको तो मुझ पर दया कर सीता का पता बताना ही चाहिए। बोलो, बताओ, सीता कहां है "।

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भये हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षण जानि तजे डरिकै।
सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आए रहे मन मौन कहा धरिकै ।
सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय है करुणा करुणा करिकै[3]।।

१- रामचन्द्रिका : बारहवां प्रकाश, पृ०- १८६, छ०- ३६
२- वही, छ०- ४०
३- वही, छ०- ४१

राम के शोक का दूसरा स्थल है लक्ष्मण-शक्ति। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर एकबार फिर राम के हृदय के बांध टूट गये और उनके नेत्रों से अश्रु सरिता प्रवाहित हो गई। उन्होंने कहा ` हे लक्ष्मण एकबार तो मेरी ओर देखो! मेरे प्राण जा रहे हैं उन्हें बचाओ। मैं तुम्हारे किन-किन गुणों का स्मरण करूं। तुम तो भाई होते हुए भी पुत्र के समान मेरी आज्ञा का पालन करते थे और पुत्र के समान आचरण करते हुए भी मित्र के समान मेरी सहायता करते थे। तुम मेरी आंखों की ज्योति थे और तुम्हीं मेरे अस्त्र-शस्त्र तथा बल-विक्रम थे। आज तुम्हारे बिना मैं निशस्त्र और निर्बल हूं। एकबार तो आंखें खोलकर मेरी ओर देखो। सत्य समझो, मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी जीवित न रह सकूंगा। मुझे प्राणों का मोह नहीं, दुःख केवल इस बात का है कि विभीषण को लंका देने का वचन न पूरा कर सका। अपने ` प्रभु ` को कलंकित होते देख सकोगे। कदाचित् नहीं, तो उठो और मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा करो।

लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन ते न न रह्यौ जल रोक्यो।
बारक लक्ष्मण मोहिं बिलोको। मोकहं प्राण चले तजि रोको।।
हौं सुमिरौ गुण केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे।
लोचन बान तुही धनु मेरो। तू बल विक्रम बारक हेरो।।
तू बिनु हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं कछु झूठ न भाखौं।
मोहि रही इतनी मन शंका। देन न पाई विभीषण लंका।।
बोलि उठौ प्रभु को पन पारौ। नातरु होत है मो मुख कारौ[1]।।

लक्ष्मण द्वारा मेघनाद का वध किये जाने पर इसी प्रकार रावण पर एकाएक शोक का पहाड़ टूटा था, जिसके फलस्वरूप रावण का कठोर हृदय भी शोक-विह्वल हो गया। जब मनुष्य पर अचानक कोई बहुत बड़ा दुःख पड़ता है तो उसे जीवन, सुख और संसार से विरक्ति हो जाती है और असीम निराशा की

१- रामचन्द्रिका : सत्रहवां प्रकाश, पृ०-२६४-२६५, छ०-४३-४६

दशा में वह सब ओर से उदासीन हो जाता है। मेघनाद के वध से रावण की भी यही दशा हुई थी। ऐसी ही मानसिक स्थिति में रावण कहता है कि आज से सूर्य, जल, वायु, अग्नि, चन्द्रमा आदि मेरी ओर से निडर होकर आनन्दपूर्वक विचरण करें। किन्नर गान करें, गन्धर्व नाचें और यक्ष सुखपूर्वक कर्दम का लेप करें। ब्रह्मा रुद्रादि तीनों लोक के देवता जाकर इन्द्र का अभिषेक करें। सीता राम को और लंका का राज्य कुलद्रोही विभीषण को दे दिया जाये। ब्राह्मणगण भी स्वच्छन्दतापूर्वक जाकर यज्ञानुष्ठान आदि कृत्य करें।

आजु आदित्यजल पवन पावक प्रबल,
चंद आनन्दमय, त्रास जग को हरौ ।।
गान किन्नर करौ, नृत्य गंधर्व कुल,
यक्ष विधि लक्ष उर, यक्षकर्दम धरौ ।।
ब्रह्म रुद्रादि दै, देव तिहुं लोक के,
राज को जाय अभिषेक इन्द्राहिं करौ ।
आजु सिय राम दैं, लंक कुलदूषणाहिं,
यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रहु बरौ[1]।

जिस समय रंचमात्र आशा न हो उस समय यदि किसी मनुष्य को प्रिय वस्तु अथवा प्रिय समाचार प्राप्त हो जाता है तो एकाएक उसे अपने नेत्रों अथवा कानों पर विश्वास नहीं होता और बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है। नव पल्लव युक्त अशोक

१- रामचन्द्रिका : उन्नीसवां प्रकाश, पृ० - ३१२, छं० - ३

से अग्नि की याचना करने पर अग्नि के स्थान पर राम की मुंदरी मिलने पर सीता के हृदय की यही दशा हुई थी। मुंदरी पर राम का नाम पढ़कर सीता की मति भ्रम में पड़ गई। उन्हें एकाएक विश्वास न हुआ कि यह राम ही की मुद्रिका है। उनके हृदय में स्वाभाविक रूप से तर्क-वितर्क होता है कि लड़कपन से इस मुंदरी को राम अपने हाथ में धारण करते रहे हैं। यह किस प्रकार उनसे विमुक्त हुई अथवा इसे यहाँ कौन लाया। यह भेद किस प्रकार ज्ञात हो, किससे पूछने जाऊँ।

> जब बाँचि देख्यौ नाँव। मन नग्यौ संभ्रम भाउ।
> आबाल तें रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ ।।
> बिछुरी सु कौन उपाय। केहि आनियौ यहि ठाउ।
> सुधि लहौं कौन प्रभाउ। अब काहि बूझन जाऊँ[१] ।।

रावण वध के पश्चात् हनुमान द्वारा रामादि के प्रत्यागमन का समाचार सुनकर भरत के हृदय की भी बहुत कुछ ऐसी ही दशा हुई थी, यद्यपि इस अवसर पर जड़ मुंदरी के स्थान में चैतन्य हनुमान जी संवादवाहक के रूप में भरत जी के पास आये थे। हनुमान जी से यह सुखद समाचार सुनकर भरत सुख-सागर में निमज्जित हो गये और एकाएक इस समाचार की सत्यता पर उन्हें विश्वास न आया। वे सोचने लगे "हे ईश, हनुमान जी मुझसे क्या कह रहे हैं। क्या यह सच है, अथवा मैं स्वप्न देख रहा हूं।

केशव ने "हर्ष" की भी बड़ी सुन्दर व्यंजना की है। चिर-वियोग के बाद प्रियतम की मुद्रिका पाकर सीता को जो हर्ष हुआ होगा वह अवर्णनीय है। कविवर केशवदास ने अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए सीता जी से मुद्रिका का वर्णन नाना प्रकार से कराकर सीता के हर्षातिरेक को व्यंजित किया है। हर्षातिरेक में जड़ मुंदरी को सजीव मानकर उससे सीता का बातचीत

१- रामचन्द्रिका : तेरहवां प्रकाश, पृ०- २२२, छं०- ६७- ६८

करना भी मनोवैज्ञानिक है। मुंदरी के प्रति सीता का उपालंभ है—

> श्रीपुर में वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
> कहि मुंदरी अब तियन की, को करिहै परतीति[1]।।

आगे सीता जी उससे राम की कुशल पूछती हैं किन्तु उसके उत्तर न देने पर हनुमान से उसके मौन का कारण पूछती हैं—

> कहि कुशल मुद्रिके राम गात। शुभ लक्ष्मण सहित समान तात।
> यह उत्तरु देत नहि बुद्धिवंत। केहि कारण धौं हनुमंत संत[2]।।

केशव के इस छन्द का भाव 'हनुमन्नाटक' के निम्न श्लोक से ग्रहण किया गया है—

> मुद्रे सन्ति सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्री रामपादाः सुखं
> सन्ति स्वामिनि मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिन्तया[3]।।

हनुमान जी ने भी बड़ी चतुरता के साथ मुंदरी के मौन का कारण और सीता के मुंदरी के प्रति किये गये प्रश्न का उत्तर एक ही साथ दे दिया।

> तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।
> कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहं राम[4]।।

'हनुमन्नाटक' के हनुमान ने भी उपर्युक्त उत्तर ही दिया है—

> एनां व्याहर मैथिलाधिप सुते नामान्तरेणाधुना
> रामस्त्वद्विरहेण कंकणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान्[5]।।

१- रामचन्द्रिका : तेरहवां प्रकाश, पृ०- २२७, छं०- ८५

२- वही, पृ०- २८८, छं०- ८६

३- हनुमन्नाटक : षष्टं अंक, पृ०- १०३, श्लोक १६

४- रामचन्द्रिका : तेरहवां प्रकाश, पृ०- २२८, छं०- ८७

५- हनुमन्नाटक : षष्ठ अंक, पृ०- १०३, श्लोक १६

' लज्जा ' भारतीय ललनाओं का भूषण है। केशवदास जी ने एक स्थल पर कुलवधुओं की ' लज्जा ' की भी मनोहर व्यंजना की है। राम के रनिवास की कामिनियां वाटिका बिहार के लिए गई हैं। एक स्थान पर वह देखती हैं कि सुख- लोलुप भौंरे भौंरियों के सामने ही मालती का चुंबन कर रहे हैं,यह दृश्य देखकर वे ललनाएं लजा जाती हैं और घूंघट के भीतर मुस्कराती हैं।

> अलि उड़ि धरत मंजरी जाल। देखि लाज साजति सब बाल।
> अलि अलिनी के देखत धाइ। चुम्बत चतुर मालती जाइ ।।
> अद्भुत गति सुन्दरी विलोकि। बिहंसति हैं घूंघट पट रोकि[1]।

' हास्य ' की एक झलक उस समय दिखलाई देती है जब रावण का यज्ञ विध्वंस करने के लिए गये हुए वानरगण रावण की चित्रशाला में मन्दोदरी को ढूंढ़ते हुए पहुंचते हैं। अंगद चित्रलिखित पुतलियों को रावण की रानियां समझकर पकड़ने दौड़ते हैं किन्तु जब निकट पहुंचते हैं तो उन्हें अपना भ्रम ज्ञात होता है। यह देखकर वहां छिपी देवकन्याएं हंसती हैं—

> भगी देखि कै संकि लंकेश- बाला। दुरी दौरि मन्दोदरी चित्रशाला।
> तहां दौरि गो बालि को पूत फूल्यो। सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो ।।
> गहै दौरि जाको तजै ता दिसा को। तजै जा दिशा को भजै बाम ताको।
> भले कै निहारी सबै चित्रसारी। लहै सुन्दरी क्यों दरी को बिहारी।।
> तजै देखि कै चित्र की श्रेष्ठ धन्या। हंसी एक ताको तहीं देवकन्या[2] ।।

सीता की खोज लगाकर वापस आए हुए हनुमान जी की राम द्वारा प्रशंसा किए जाने पर हनुमान के शब्दों में स्वाभाविक ' दीनता ' का प्रकाशन है। हनुमान जी कहते हैं कि ' हे महराज आप व्यर्थ ही मेरी प्रशंसा करते हैं,मैंने किया ही क्या है। आपकी मुद्रिका मुझे समुद्र के उस पार ले गई और सीता जी

१- रामचन्द्रिका : बत्तीसवां प्रकाश, पृ०- १८३, छ०- १० - ११
२- वही, उन्नीसवां प्रकाश, पृ०- ३२०, छ०- २६- २८

की मणि के प्रभाव से मैं इस ओर आया हूं। लंका जलाकर भी मैंने कौन-सा विक्रम किया है। वह तो स्वयं मृत था। अक्षयकुमार को मारा, वह भी निर्बल बालक था। तदनन्तर शत्रु द्वारा बांधा गया। यदि बली होता तो बांधा ही क्यों जाता। वृक्ष अवश्य तोड़े, किन्तु वे जड़ थे। इस प्रकार मैंने कुछ भी तो विक्रम नहीं किया जो इस प्रकार आप मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।

गई मुद्रिका ले पार। मनि मोहि लाई वार।
कह कर्यो मैं बल रंक। अति मृतक जारी लंक।
अति हत्यो बालक अच्छ। ले गयो बांधि विपच्छ।
जड़ वृच्छ तोरे दीन। मैं कहा विक्रम कीन[1]।।

वीरोचित 'उत्साह' की व्यंजना केशव ने कई स्थलों पर बड़ी मार्मिक की है। महाबली कुम्भकर्ण युद्धस्थल में रामचन्द्र जी से कहता है, 'हे राम, मुझे ताड़का या सुबाहु न समझना जिसको तुमने सहज ही मृत्यु के घाट उतार दिया है। मैं शिव-पिनाक भी नहीं हूं जिसे तुमने फूल की तरह तोड़ डाला। मैं ताल नहीं हूं और न बाली अथवा खर हूं,जिसे तुमने बेधकर रख दिया। खरदूषण भी नहीं हूं जो तुम्हारे बाणों का लक्ष्य हो गया। तनिक सामने देखो, मैं देव और असुर कन्याओं से भोग करने वाला तथा महाकाल का भी काल कुम्भकर्ण हूं। राम, मैं तुम्हें युद्ध के लिए चुनौती देता हूं। लंका आकर तुम्हें गर्व हो गया है, आज संसार के सामने तुम्हारा बल प्रकट हो जाएगा।

न हौं ताड़का, हौं सुबाहौ न मानो। न हौं शम्भु को दण्ड सांची बखानो।
न हौं ताल बाली, खर, जाहि मारो। न हौं दूषणौ सिंधु सूधे निहारो।।
सुरी आसुरी सुन्दरी भोग कर्णै। महाकाल को काल हौं कुम्भकर्णै।
सुनो राम संग्राम को तोहि बोलौं। बड़ो गर्व लंकाहि आए सु खोलौं[2]।।

1- रामचन्द्रिका : चौदहवां प्रकाश, पृ० - २४६, छं० - ३३ - ३४

2- वही, अठारहवां प्रकाश, पृ० - ३०८, छं० - २२ - २३

यही भाव 'हनुमन्नाटक' की निम्न पंक्तियों में भी व्यक्त किया गया है—

> नाहं बाली सुबाहुर्न खरत्रिशिरसौ दूषण-
> स्ताटकाऽहं नाहं सेतुः समुद्रो न च धनुरपि
> त्र्यम्बकस्य त्वयात्तम् । रे रे राम प्रतापानल-
> कवल महाकालमूर्तिः विलाहं वीराणां मौलि-
> शल्यः समरभुविधरः संस्थितः कुम्भकर्णः[1]

आगे चलकर कुम्भकर्ण और मेघनाद के वध के पश्चात् निराश रावण को उत्साहित करता हुआ वीर मकराक्ष कहता है कि 'मेरे सामने कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत क्या है। एक सोया करता था और दूसरा डरते हुए युद्ध करता था। जब तक आपका यह दास जीवित है तब तक सीता को यहां से कौन ले जा सकता है। महाराज, आप निश्चिन्त होकर लंका का राज भोगिए। मुझे युद्ध के लिए शीघ्र विदा मात्र कर दीजिए। विश्वास रखिए, मैं युद्ध में सुग्रीवादि सहित राम-लक्ष्मण को परमधाम पहुंचा दूंगा और अयोध्या पर अधिकार कर उसे आपकी राजधानी बनाकर रखूंगा।

> कहा कुम्भकर्ण कहा इन्द्रजीतौ। करै सोइबो वा करै युद्ध भीतौ।
> सुजीलौं जियौं हौं सदा दास तेरो। सिया को सकै लै सुनौ मंत्र मेरो।
> महाराज लंका सदा राज कीजै। करौं युद्ध मोको बिदा वेगि दीजै।
> हतौं राम स्यौं बन्धु सुग्रीव मारौं। अयोध्याहि लै राजधानी सुधारौं[2]।।

इसी प्रकार शत्रुघ्न के बाणों से मूर्छित लव के लिए विलाप करती हुई सीता के प्रति कुश का कथन है, मां, तू व्यर्थ ही शोक करती है। यदि शत्रु स्वयं यमराज है तो भी मैं उसको मारकर और उसके दल को नष्ट कर लव को छुड़ा लूंगा। हे मां

१- हनुमन्नाटक : एकादश अंक, पृ०- १८६, श्लोक २४

२- रामचन्द्रिका : उन्नीसवां प्रकाश, पृ०- ३१४, छं०- ७-८

तभी आकर मैं आपके चरणों का दर्शन करूंगा ।

> रिपुहि मारि संहारि दल यम ते लेहुं छुड़ाय ।
> लवहि मिलिहौ देखिहौ माता तेरे पांय[1] ।।

वहाँ कुश लक्ष्मण से वीर के सामने आकर भी असीम उत्साह से उन्हें ललकार कर कहता है (हे लक्ष्मण, मुझे मकराक्ष या इन्द्रजीत समझने की भूल न करना, जिन्हें तुम अपने बाणों का लक्ष्य बना चुके हो यहां हम तुम्हें रण में सम्मुख देखकर विचलित होने वाले नहीं हैं । जिस यश का आज तक तुमने संचय किया है मुझसे युद्ध कर उसे क्यों गंवाते हो । लक्ष्मण, मुझसे युद्ध कर अपनी माता को व्यर्थ ही अनाथ मत करो ।

> न हौं मकराक्ष न हौं इन्द्रजीत । विलोकि तुम्हें रण होहुं न भीत ।
> सदा तुम लक्ष्मण उत्तम गाथ । करौ जनि आपनि मातु अनाथ[2] ।।

केशव प्रबन्ध की अपेक्षा मुक्तक रचनाओं में विभिन्न मानव भावों के प्रत्यक्षीकरण में अधिक सफल हुए हैं । प्रेम संसार का मूल है । केशव ने भी अधिकांश मुक्तकों में नायक - नायिका के प्रेम और विभिन्न अवस्थाओं तथा परिस्थितियों में प्रेमिका के भावों की गम्भीर और मार्मिक व्यंजना की है । इन मुक्तकों में रसराज कृष्ण तथा गोपियां आलम्बन के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं । अस्तु प्रेम का अंकुर धीरे- धीरे उत्पन्न और पल्लवित होता है । नायिका ने नायक के गुणों के विषय में सुना, जिसे सुनकर उसके दर्शन की लालसा हुई । दर्शन मिले पर ठगौरी लग गई । नायक ने नायिका के हृदय में घर कर लिया और अब तो चाहने पर भी वह हृदय से दूर नहीं होता ।

> सौंहं दिवाय दिवाय सखी इक बारक काननि आनि बसाए ।
> जानै को केसव कानन तें कित ह्वै कब नैननि मांझ सिधाए ।

१- रामचन्द्रिका : पैंतीसवां प्रकाश,पृ०- २४५, छं०- २५
२- वही, छत्तीसवां प्रकाश, पृ०- २५३, छं०- १७

लाज के साज धरेई रहे सब नैननि लै मनहीं सों मिलाए ।
कैसी करौं अब क्यों निकसैं री हरेई हरें हिय में हरि आए[1] ।।

किसी से प्रेम हो जाने तथा उससे न मिलने पर न तो खेल अच्छा लगता है और न हंसी । गीत की ध्वनि बाण के समान प्रतीत होती है । वस्त्र और शृंगार की ओर से अरुचि हो जाती है । प्रेमी से साम्य अथवा सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएं ही अच्छी लगती हैं । केशव के नायक रसराज कृष्ण की भी यही दशा है—

खेलत न खेल कछू हांसी न हंसत हरि,
सुनत न गान कान तान बान सी बहै ।
ओढ़त न अंबरन डोलत दिगंबर सो,
शंबर ज्यों शंबरारि दुःख देह को दहै ।।
भूलिहु न सूंघै फूल, फूल तूल कुम्हिलात
गात आत बारी हू न बात काहू सों कहै ।
जानि जानि चंद मुख केशव चकोर सम,
चंदमुखी ! चंद ही के बिंब त्यों चितै रहै[2] ।।

बिहारी की नायिका ' बतरस ' के लालच से कृष्ण की मुरली लुकाकर रख देती है । इधर केशव के कृष्ण इसी उद्देश्य से एक गोपी को मार्ग में घेर कर खड़े हो जाते हैं और उससे दधि मांगते हैं । गोपी, कृष्ण को दही देने की इच्छा रखते हुए भी नहीं देती और उन्हें खिझाती है । यह ' प्रेम की रार ' है । बातों में रस का सागर छलक रहा है ।

दै दधि, दीनो उधार हो केशव, दानी कहा जब मोल लै खैहैं ।
दीन्हे बिना तो गई जु गई, न गई न गई घर ही फिर जैहैं ।
गो हित बैरु कियो, हित हो कब, बैरु किये बरु नीके ह्वै रैहैं ।
बैर कै गोरस बेचहुगी, अहो बेच्यो न बेच्यो तो ढारि न दैहैं[3] ।।

१- रसिकप्रिया : चतुर्थ प्रभाव, पृ०- १०५, छं०- १५
२-३ प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) एवं तीसरा प्रभाव, पृ०-१६६ एवं २३, पृ०-२०, ३६
क्रमशः

यदि प्रेमी अपने प्रिय से हंसी में भी कोई तीखी बात कह देता है तो उसके हृदय पर गहरी चोट लगती है। एक दिन कृष्ण ने अपनी प्रेमिका से हंसी ही हंसी में कह दिया कि जिसको पिता ने अपने घर से निकाल दिया उससे उनसे प्रेम कैसे निभ सकता है। यह सुनकर नायिका के अविरल आंसू बह चले और फिर उसे सान्त्वना देना कठिन हो गया।

एक समै इक गोपी सों केसव केसहुं हांसी की बात कही।
जा कहं तात दई तजि ताहि कहा हम सों रस-रीति नहीं।
सुनि को प्रतिउत्तर देइ सखी दृग आंसुन की अवली उमही।
उर लाइ लई अकुलाइ तऊ अधिरातक लौं सिसकी न रही[1]।

प्रेम एकाधिपत्य स्वत्व चाहता है। प्रेमी यह कभी सहन नहीं कर सकता कि उसका प्रिय किसी अन्य से भी प्रेम करे। एक बार एक गोपी, कृष्ण से कुछ पूछ रही थी। अचानक कृष्ण के मुख से किसी अन्य नायिका का नाम निकल गया। अब तो नायिका के हाथ का पान का बीड़ा हाथ में और मुंह का मुंह में ही रह गया और आतुरतापूर्वक शब्दों के साथ ही आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली।

बूझति ही वह गोपी गुपालहि आजु कछू हंसिकै गुनगाथहिं।
ऐसे में काहू को नाम सखी कहि कैसे धौं आइ गयो ब्रजनाथहि।
खात खवावति ही जु बिरी सु रही मुख की मुख हाथ की हाथहिं।
आतुर ह्वै उनि आंखिन तें अंसुवा निकसे अखरान के साथहि[2] ।।

मान प्रेम का आवश्यक अंग है। यह ऐसी प्रेम की रार है जो प्रेम-रस को बढ़ाती है। मान दुधारी तलवार है जो प्रेमी और प्रेमिका दोनों पर असर करती है। नायिका ने एक बार अपने प्रिय से मान किया। वह मना कर हार गया किन्तु वह न मानी। नायक को निराश जाना पड़ा। अब नायिका को स्वयं अपने

१- रसिकप्रिया : षष्ठ प्रभाव, पृ०- १४०, छं०- ४४
२- वही, नवम प्रभाव, पृ०- १८६, छं०- ५

किये पर पश्चाताप हो रहा है।

> पाइ परेहू ते प्रीतम त्यों कहि केसव क्योंहू न मैं दृग दीनो।
> तेरी सखी सिख सीखी न एकहू रोष ही की सिख सीखि जु लीनो।।
> चंदन चंद समीर सरोज जरे दुख देह मई सुख हीनो।
> मैं उलटी जु करी बिधि मो कहं न्याय नहीं उलटी बिधि कीनो[1]।।

अभिसार प्रेम-परीक्षा की कसौटी है। लोक-लज्जा को तिलांजलि दे, बाधाओं का सामना करते हुये प्रिय से मिलने के लिए जाकर प्रेमिका अपने प्रगाढ़ प्रेम का परिचय देती है। प्रेम अन्धा होता है। केशव की नायिका मार्ग में चलने वाले बालक, वृद्ध और युवाओं की चिन्ता न करती हुई प्रेमी से मिलने के लिए चली जा रही है।

> गोप बड़े बड़े बैठे अथाइन केसव कोटि सभा अवगाहीं।
> खेलत बालकजाल गलीन मैं बाल बिलोकि बिलोकि बिकाहीं।
> आवति जाति लुगाई चहूं दिसि घूंघट मैं पहिचाननि छाहीं।
> चंद सो आनन काढ़ि कहा चली सूझत है कछू तोहि कि नाहीं[2]।।

रात्रि का समय है। बादल घिरे हैं। घना अन्धकार छाया है। कांटों और कीच का उल्लंघन करती हुई नायिका अकेली आई है। उसका साहस देखकर नायक भी चकित रह गया। आज इस प्रकार बिना बुलाए आकर नायिका ने नायक को मोल ले लिया।

> लीनो इन मोल अनबोले आइ जान्यो मोह,
> मोहिं घनश्याम घनमाला बोलि लाई है।
> देख्यो इन्है है दुख जहां देहउं न देखी पैर,
> देखी कैसे बाट कैसी दामिनी दिखाई है।

१- रसिकप्रिया : सप्तम प्रभाव, पृ०-१५०, छ०-१५

२- वही, पृ०-१५८, छ०-३२

ऊंचे नीचे बीच-कीच कंटकनि पै पग,
साहस गयंद गति अति सुखदाई है ।
मारी मध्कारी निसि निपट अकेला तुम,
नाहीं प्राननाथ साथ प्रेम जु सहाई है[१]।

जिस प्रकार दिन के बाद रात्रि अनिवार्य है, उसी प्रकार सुख के बाद दुःख और संयोग के बाद वियोग, संसार का नियम है। किन्तु प्रेमी के लिए अपने प्रिय से वियुक्त होने की सम्भावना ही कितनी दुःखदायी है, यह वही समझ सकता है जिसने वियोग-दुख को सहन किया है। आज केशव की नायिका का प्रेमी किसी कार्यवश परदेश जा रहा है। बेचारी नायिका किंकर्तव्यविमूढ़ है। यदि वह रहने को कहती है तो प्रभुता प्रकट होती है। यदि वह यह कहती है कि जो ठीक समझो वह करो तो उदासीनता सूचित होती है। यदि कहती है कि साथ ले चलो, तो लोक-लज्जा का प्रश्न सामने आता है। अन्त में वह अपने प्रिय से ही पूछती है कि उस अवसर पर उसे क्या कहना उचित होगा।

जो हौं कहौं 'रहिये' तो प्रभुता प्रगट होति,
'चलन' कहौं तो हित-हानि, नाहिं सहनो ।
'भावै सो करहु' तो उदास भाव प्राणनाथ,
'साथ लै चलहु' कैसे लोक लाज बहनो ।।
केशोराय की सौं तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जौपै नाहीं राजा रहनो ।
तैसिये सिखाओ सीख तुमही सुजान पिय,
तुमहि चलत मोहि जैसो कछू कहनो[२]।।

१- रसिकप्रिया ? सप्तम प्रभाव, पृ०- १५५, छं०- २७
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) दसवां प्रभाव, पृ०- ११६, छं०- २०

आज नायिका अपने प्रिय से वियुक्त है। आंखें मेह से होड़ लगा रही हैं। सांसों के साथ ही रात्रि भी बढ़ती सी जा रही है और काटे नहीं कटती। हंसी भी लुप्त हो गई। नींद क्षणभर के लिए बिजली के समान आती और फिर न जाने कहां चली जाती है। पपीहे के समान " पी - पी " की रट लगी है। शरीर ताप से तप रहा है। इस प्रकार केशव द्वारा अंकित विरहणी का निम्नलिखित चित्र यथातथ्य है—

नेह कि है सखि आंसू,
उसांसनि साथ निसा सु बिसासिनि बाढ़ी।
हांसी गयी उड़ि हंसिनि ज्यों,
चपला सम नींद भई गति काढ़ी ।।
चातकि ज्यों पिउ पीउ रटै,
चढ़ा ताप तरंगिनि ज्यौं तन गाढ़ी।
केशव याको दशा सुनि हौं अब,
आगि बिना अंग अंगन डाढ़ी[1]।।

ज्यों - ज्यों दिन बीते वियोग - व्यथा बढ़ती ही गई और अब तो उसकी दशा पागलों की सी हो रही है। वह चौंककर इधर - उधर देखती है, पृथ्वी पर अपनी ही परछाई देखकर डर सी जाती है तथा प्रश्न करने पर और का और उत्तर देती है। उसे न तो बड़ों के सामने घूंघट काढ़ने का ध्यान है और न वस्त्र सम्हालने का आज उसकी सब सुध भूली हुई है। उसकी दशा ऐसी हो रही है जैसे किसी की दृष्टि लग गई हो, सन्निपात ज्वर हो गया हो अथवा किसी ने कुछ करा दिया हो।

केसव चौंकति सी चितवै छतिया धरकै तरकै तकि छांहीं।
बूझिये और कहै मुख और सु और की और भई पल मांहीं।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) आठवां प्रभाव, पृ० - ६६, छं० - ४३

डीठि लगी किधौं बाय लगी मन भूलि पर्यो कै कर्यो कछु कांहीं ।
घूंघट की घट की पट की हरि आजु कछू सुधि राधिकै नाहीं[1] ।।

सखियां समझाने आती हैं किन्तु उनकी समझ में उनकी सीख नहीं आती और आये भी कैसे, उसकी बुद्धि तो प्रीतम के साथ ही चली गई । अन्त में वे स्वाभाविक रूप से झांककर चली जाती हैं—

कौन के न प्रीति, को न प्रीतमहिं बिछुरत,
याही के अनोखो पतिव्रत गाइयत है ।
केसौदास जतन किये ही मलें आवैं हाथ,
और कहा पच्छिनि के पाछें धाइयत है ।
उठि चलि जौ न मानै काहू की बलाइ जानै,
मानसि जु पहिचानै ताकें आइयत है ।
याकैं तौ है आजु ही मिलौं कि मरि जाउं ऐसैं,
आगि लागें मेरी माई मेह पाइयत है[2] ।

इन छन्दों में केशवदास विप्रलम्भ-श्रृंगार के सम्राट सूरदास के निकट पहुंचते दिखाई देते हैं । ऊपर दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट है कि श्रृंगार के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग के चित्रण में केशव का पूरा आधिपत्य था और श्रृंगार रस पर लिखने वाले हिन्दी-साहित्य के किसी भी कवि के छन्दों के समकक्ष इस विषय पर लिखे गये केशव के छन्द रखे जा सकते हैं । केशव के छन्दों में कवि का गम्भीर पर्यवेक्षण है, और तन्मयता भी । इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' नामक ग्रन्थों में भरे पड़े हैं । हां केशव के कुछ छन्दों में अश्लीलता अवश्य है, किन्तु बहुत कुछ यह उस समय और समाज का प्रभाव है जिसमें केशव उत्पन्न हुए थे । श्रृंगार रस पर लिखने वाला प्रायः कोई

---

१ - रसिकप्रिया : अष्टम प्रभाव, पृ०- १७६, छं०- ४२
२ - वही, एकादश प्रभाव, पृ०- २१३, छं०- ६

तत्कालीन कवि इस दोष से सर्वथा मुक्त नहीं है। यहां तक कि महात्मा सूरदास भी इस दोष से एकदम नहीं बचे हैं। हां यह अवश्य कहा जा सकता है कि केशव, भूषण के समान परिस्थितियों के निर्माता न होकर परिस्थितियों द्वारा निर्मित थे।

संवाद योजना :

यद्यपि भाव काव्य का प्राण है तथापि भावों के अतिरिक्त काव्य में और कुछ भी अपेक्षित होता है। भावों का स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं है। स्त्री अथवा पुरुष ही उनका सर्वत्र आश्रय होते हैं। इसी कारण काव्य में आए हुए व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण की आवश्यकता पड़ती है। प्रबन्ध काव्य की सफलता अधिकांश चरित्र-चित्रण पर निर्भर करती है। यों तो वस्तु रचना में घटनाओं का भी बहुत दायित्व है पर सुन्दर चरित्र-विधान से घटनाएं सुव्यवस्थित हो जाती हैं। चरित्र-चित्रण के दो प्रकार हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष चित्रण में कवि स्वयं चरित्र पर प्रकाश डालता है। कथा में इस प्रकार के चित्रण का प्रयोग अवश्य उचित है परन्तु काव्य में वह अरुचिकर हो जाता है। परोक्ष चित्रण में संवाद या कथोपकथन द्वारा चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है। कवि इसी ढंग को अपनाता है। केशव ने कथोपकथन द्वारा ही अपने चरित्रों का चित्रण किया है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि केशव को संवादों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। केशव के चरित्र-चित्रण में घटनाओं का उतना मूल्य नहीं है जितना कि संवादों का। 'रामचन्द्रिका' में ये संवाद उल्लेखनीय हैं— (१) दशरथ-विश्वामित्र-वशिष्ठ संवाद (प्रकाश २), (२) सुमति-विमति संवाद (प्र० ३), (३) रावण-बाणासुर संवाद (प्र० ४), (४) विश्वामित्र-जनक संवाद(प्र० ५), (५) परशुराम-वामदेव-संवाद (प्र० ७), (६) परशुराम-राम संवाद (प्र० ७), ७-कैकेयी-भरत-संवाद (प्र० १०), (८) सूर्पणखा-राम संवाद (प्र० ११), (९) सीता-रावण-संवाद (प्र० १३),

(१०) रावण- हनुमान संवाद (प्र० १४), (११) रावण- अंगद- संवाद (प्र० १६) और (१२) लव- कुश- विभीषण संवाद (प्र० ३७) इनमें से कुछ तो बहुत ही छोटे हैं, परशुराम- वामदेव संवाद, सीता- रावण- संवाद, सूर्पणखा- राम- संवाद आदि। राम- परशुराम- संवाद तथा रावण- अंगद संवाद काफी लम्बे और सब संवादों में श्रेष्ठ हैं। केशव अपने संवादों के लिए संस्कृत के 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' नामक नाटकों के ऋणी हैं। अतः उनकी रामचन्द्रिका में नाटकीय संवादों का ही प्राधान्य है। काव्य में नाटकीय विधि-विधान से नाटकीयता तो अवश्य आ जाती है पर प्रबन्धात्मकता में बाधा पहुंचती है। दरबारी कवि होने के नाते केशव राजनीति के दांव- पेंच एवं वाग्वैदग्ध्य में कुशल हैं। इसी कारण उनके संवाद एक दो को छोड़कर पात्रोपयुक्त, नीतिपूर्ण और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अवश्य हैं, किन्तु जब वे एक ही छन्द में कई पात्रों के कथोपकथन को समाविष्ट कर देते हैं तो पाठक उस वर्णन से वंचित रह जाता है जिसकी योजना प्रबन्धकार पात्रों के हाव- भाव तथा अनुभाव को चित्रित करने के लिए करता है।

केशव के सब पात्र राजनीति, कूटनीति और वाग्विलास में सिद्धहस्त हैं। केशव ने अपने उन्हीं पात्रों को बोलने का अधिक अवसर दिया है जिन्हें व्यंग्य कसने और राजनैतिक दांव- पेंच खेलने की अधिक आवश्यकता थी। जहां- जहां गम्भीर मनोवृत्तियों के चित्रण की आवश्यकता थी वहां- वहां केशव संवादों को छोड़ गए हैं, जैसे चित्रकूट में राम- भरत का संवाद तथा दशरथ- कैकेयी का संवाद। राज-दरबार के वातावरण में कवि केशव ने वाग्चातुर्य एवं कूटनीति यही सब अर्जन किया था जिसका विसर्जन इन्होंने अपने इन संवादों में किया। अतः स्वभावतः उनमें वे कमियां आ गईं जो एक भावुक कवि के काव्य में नहीं आनी चाहिए थीं।

दशरथ- विश्वामित्र- संवाद में विश्वामित्र राम के लोकोत्तर शौर्य द्वारा दशरथ को प्रभावित करके राम- लक्ष्मण दोनों भाइयों को ऋषियों के यज्ञ की रक्षा

के लिए मांगते हैं। दशरथ की ममता को समझने का प्रयास किए बिना ही विश्वामित्र जी उन पर क्रुद्ध हो कहने लगते हैं—

झूठे सो झूठहि बांधत हौ मन। छोड़त हौ नृप सत्य सनातन[1]।।

`सुमति- विमति- संवाद` प्रसन्नराघव के मंजीरक और नूपुरक संवाद का रूपान्तर ही है। वह केवल सीता- स्वयंवर में आए हुए मल्लिक (पार्वत्य प्रदेश), काश्मीर, कांची, मत्स्य और सिन्धु प्रदेशों के राजाओं के गुण, प्रभाव, शौर्य और बल- विक्रम का वर्णन करने के लिए ही नियोजित किया गया है और उसका कथा के पात्रों के चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। नाटक के विष्कम्भक में संस्थित मंजीरक और नूपुरक ही `रामचन्द्रिका` में सुमति- विमति (बन्दीजन) बन गए हैं। दोनों ग्रन्थों के संवादों में साम्य है, केवल नाम का अन्तर है। `प्रसन्नराघव` में नूपुरक कहता है—

`वअस्स मंजीरअ को एसो सीता करग्गहव्वासणावसन्तलच्छी - विलसन्तपुल- अगुउलजालमण्डिदं णिअमुअसहआर साहिजुअलंपुलोवन्तो चिट्ठदि`[2]?

मंजीरक उत्तर देता है—

`स एष निजयशः परिमल प्रमोदित चारण चंचरीकचम
कोलाहल मुखरित दिक्चक्रवाल लक्ष्मीपालकुन्तलालङ्कारो मल्लिकापीडो नाम[3]।`

प्राकृत और संस्कृत में जो कुछ कहा गया है उसी को केशव ने अपनी भाषा में इस प्रकार कहा है—सुमति पूछता है—

को यह निरखत आपनी पुलकित बाहु विसाल।
सुरभि स्वयंवर जनु करी मुकुलित शाख रसाल[4]।।

१- रामचन्द्रिका : दूसरा प्रकाश, पृ०- ३०, छं०- २२
२-३ प्रसन्नराघव अंक १, पृ०- २७
४- रामचन्द्रिका : प्रकाश ३, छं०- १८

विमति उत्तर में कहता है—

जेहि यश परिमल मत्त, चंचरीक चारण फिरत ।
दिशि विदिशन अनुरक्त, सु तौ मल्लिकापीड नृप[1] ।।`

जहां नाटक में मंजीरक ने

पश्य पश्य सुभटैः स्फुटभावं भवितोऽपि गमिता न तु शक्तिः ।
अंजलिर्विरचितो न तु मुष्टिर्मौलिरेव नमितो न तु चापः[2] ।।

शब्दों से अपना विषाद व्यक्त किया है वहां रामचन्द्रिका में विमति ने—

` शक्ति करी नहि भक्ति करी अब, सो न नयो तिल शीश नये सब ।
देख्यो मैं राजकुमारन के वर, चाप चढ़यो नहिं आप चढ़ेवर[3] ।।

तथा—

अस काहु चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठायो न आंगरहु ।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ आये ह्वै वीर चले वनिता ह्वै[4] ।।

में आमंत्रित राजाओं का उपहास किया है। केशव इस सम्पूर्ण प्रसंग के लिए जयदेव के ऋणी हैं। इसी प्रकार ` रावण-वाण-संवाद ` भी इस नाटक का अनुकरण मात्र है और प्रायः अवसर के उपयुक्त भी नहीं है। प्रसन्नराघव का बाण रावण से कहता है—

यदीदृशं वीराडम्बरं तत्किमारोप्य हरकार्मुकं नानीयते सीता[5] ।

केशव के बाण का कथन भी कुछ इसी प्रकार है—

१- रामचन्द्रिका : ३ प्रकाश, छं० - १६
२- प्रसन्नराघव अंक १, पृ० - ३१, छं० - ३१
३- रामचन्द्रिका : प्रकाश ३, छं० - ३३
४- वही, छं० - ३४
५- प्रसन्नराघव ; प्रथम अंक, पृ० - ७१

जपै जिय जोर, तजौ सब शोर ।
सरासन तोरि, लहौ सुख कोरि[1] ।।

प्रसन्नराघव के रावण के शब्द हैं—

उद्दंडचण्डिमल सद् भुजदंडखंड
हेलाचला चलहराचल चारु कीर्तै,
को दृग्यशस्तुलित बालमृणाल कांड,
को दंडकर्षण कथनयानया मे[2] ।।

यही भाव अपेक्षाकृत अधिक विस्तार के साथ केशव के बाण ने भी प्रकट किया है—

वज्र को अखर्ब गर्ब गंज्यो जेहि पर्वतारि
जीत्यो है, सुपर्ब भाजे लै लै अंगना ।
खंडित अखंड आशु कीन्हों है जलेश पाशु,
चंदन सी चंद्रिका सों कीन्हीं चन्द बंदना ।
दंड मैं कीन्हों कालदंड हू को मानखंड,
मानो कीन्हीं काल ही की कालखंड खंडना ।।
केशव को दंड विषादंड ऐसो खंडै अब,
मेरे भुजदंडन की बड़ी है विडम्बना[3] ।।

' प्रसन्नराघव ' का बाण रावण पर व्यंग्य करता हुआ कहता है—

बहुमुखता नाम बहुप्रलापितायाः कारणम्[4] ।

केशव का बाण भी इसी प्रकार कहता है—

बहुत बदन जाके । विविध बचन ताके[5] ।

१- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५५, छं०- ८
२- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७१-७२, श्लो०- ४८
३- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५६, छं०- ६
४- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७२
५- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५७, छं०-१०

प्रसन्नराघव के रावण का कथन है—

अरे: कथं ते प्रलालभारिनि: सारेण भुजभारेण वीरमन्योऽसि[1]।

केशव का रावण भी यही कहता है—

अति असार भुज भार ही बली होहुगे बाण[2]

प्रसन्नराघव का बाण अपनी वीरता की प्रशंसा करता हुआ कहता है—

पितु पादाम्भोजप्रणतिरभसोत्त्सिवत हृदय:
प्रयात: पाताले न कक्कि ति वारानकखम्
सक्षे बाहूनां क्षितिवलयमासज्य सकलं
जगद्भारोद्धिता फल फलकमाला फणिपते:[3]।।

यहीं भाव केशव के निम्न छन्द का भी है—

हौं जब हों जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रणासी ।
देखि फिरौं तबहीं तब रावण सातो रसातल के जे विलासी ।।
लै अपने भुजदण्ड अखंड करौं क्षितिमण्डल छत्र प्रभा सी ।
जानै को केशव केतिक बार मैं सेस के सीसन्ह दीन्ह उसासी[4]।।

प्रसन्नराघव का बाण कहता है—

अलमलकिवाग्विग्रहेण । तदिदं धनुरावयोस्तारतम्यं निरूपयिष्यति[5]।

केशव के बाण का भी यही कथन है—

हमहि तुमहि नहिं बूझिये विक्रम वाद अखंड ।
अब ही यह कहि देहगो मदन कदन को दंड[6]।।

धनुष- यज्ञ में आकर भी बाण तो—

१- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७२

२- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५७, छ०- ११

३- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७३, छ०- ४६

४- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५७, छ०- १२

५- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७५

६- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ६०, छ०- १६

मेरे गुरु को धनुष यह सीता मेरी माय ।
दुहूं भांति असमंजसै, बाण चले सुख पाय[1]।।

की स्थिति का बहाना करके सहर्ष चला जाता है। परन्तु रावण उसी समय प्रतिज्ञा करता है कि मैं तो बिना सीता को लिए यहां से न हटूंगा। मैं यहां से तब तक न हटूंगा जब तक कि मैं अपने किसी सेवक की आर्त पुकार न सुनूंगा (राम० प्र० ४ छ०- २६) इतने में ही आकाश में किसी शरविद्ध असुर की आर्तवाणी सुनाई पड़ती है जिसे सुनते ही रावण वहां से चल पड़ा।

काहू काहू सर आसर मार्यो। आरत शब्द आकाश पुकार्यो।
रावण के वह कान पर्यो जब। छोड़ि स्वयम्बर जात भयो तब[2]।।

इन उक्तियों का आधार ' प्रसन्नराघव ' ही है।

अनाहृत्य हठात् सीतां नान्यतो गन्तुमुत्सहे।
न शृणोमि यदि क्रूरमाक्रन्दमनु जीविन:[3] ।।

तथा—

रावण: (कर्ण दत्वा) अये कस्यायमाक्रन्द: श्रूयते नभसि।
नूनमनेन कस्य चिन्नाराचपीड़ितेन कठोरमाक्रन्दता गगनपदचारिणा आदि[4]।।

ऐसी घटनाएं कभी-कभी इस प्रकार संसार में घट जाती हैं पर केवल दैव-संयोग से ही। प्रबन्धकार को ऐसी घटनाओं से बचना ही चाहिए, अन्यथा प्रभाव-प्रेषणीयता क्षीण पड़ जाती है। विश्वामित्र- जनक संवाद इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि केशव के पात्रों में शिष्टाचार और परस्पर का सत्कार पूरा है। विश्वामित्र और जनक एक दूसरे का जी खोलकर गुणगान करते हैं। जनक ने यदि कन्यारत्न उत्पन्न किया तो विश्वामित्र ने दूसरा लोक ही रच

१-२रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५३- ५४, छ०- २८, ३० क्रमश:
३ - प्रसन्नराघव अंक १, श्लोक ६
४ - वही, पृ०- ५५

उठता । केशव के विश्वामित्र कहते हैं—

आपने आपने ठौरनि तो भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई ।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुवपालि न जाई ।
भूपन की तुम ही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई ।
केशव भूषण की भवि भूषण भू तन ते तनया उपजाई[1] ।।

ऐसा ही कथन प्रसन्नराघव के विश्वामित्र का भी है—

अवनिमवनिपाला: संघश: पालयन्ता
मवनिपतिय्शस्तु त्वां बिना नापरस्य
जनक कनक गौरीं यत्प्रसूतां तनूजां,
जगति दुहितृमन्तं भवन्तं वितेने[2] ।।

प्रसन्नराघव के जनक विश्वामित्र के प्रति अपना नम्रता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं—

भगवन नूतनशत भुवन निर्माणनिपुणस्य भावत:
क्रियतामभिनववचनचातुरी नाम[3]।

इन शब्दों का आधार ग्रहण कर केशव के जनक कहते हैं—

ईहि विधि की चित चातुरी तिनकी कहा अकत्थ ।
लोकन की रचना रुचिर रचिबे को समरत्थ[4] ।।

केशव ने ' परशुराम - राम- संवाद ' में अपनी कुशलता का पूरा परिचय दिया है । इसमें केशव ने राम और परशुराम के चरित्रों का बड़ा ही सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है । वामदेव ऋषि के मुंह से ' रा ' निकलते ही परशुराम उसे

१- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ७६, छं०- २४

२- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- ४१, छं०- १३

३- वही, पृ०- १५३

४- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ७६, छं०- २५

रावण समझ बैठते हैं।

महादेव को धनुष यह परशुराम ऋषिराज।

तोर्यो `रा` यह कहत ही समुझ्यो रावण राज[1]।।

इस उक्ति का आधार प्रसन्नराघव है। वहाँ सतानन्द का शिष्य तांडायन कहते हैं—

सुबाहुमारीचपुरस्सरा अमी निशाचरा: कौशिकयज्ञघातिन:।
वशे स्थिता यस्य[2]।

इतना सुनते ही परशुराम जी आगबबूला हो तुरन्त बोल उठते हैं—

अलम् अत: परं ज्ञात: खलु कलानामग्रणीर्निशाचर ग्रामणी:[3]।

वामदेव के द्वारा राम के शौर्य का परिचय प्राप्त करके और अपने गुरु महादेव जी के धनुर्भंग की सूचना पाकर सहसा क्षुब्ध होकर अपना परशु उठा लेते हैं और समस्त रघुवंशियों के समूलोच्छेद करने का ठान लेते हैं।

बोरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहिं।
बान की वायु उड़ाय के लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।।
रामहिं बाम समेत पठै वन कोप के भार में भूंजौ भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आजु अनाथ करौं दशरत्थहिं[4]।।

परन्तु राम के मोहन-रूप को देखकर उनका क्रोध शान्त हो जाता है और उन्हें ऐसा आभास होने लगता है कि यह राम के वेष में कामदेव हैं और इसी कारण सनातन वैर स्मरण करके इसने महादेव का धनुष तोड़ा है।

१- रामचन्द्रिका : सातवाँ प्रकाश, पृ०- ९९, छं०- ४
२- प्रसन्नराघव : अंक ४, पृ०- १३६
३- वही,
४- रामचन्द्रिका : सातवाँ प्रकाश, पृ०- १०२, छं०- १२

अमल सजल घनस्याम वपु केशोदास,
चन्द्रहु ते चारु मुख सुषमा को ग्राम है ।
कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि,
सोदर समान रूप न्यारो- न्यारो नाम है ।।
बालक विलोकियत पूरण पुरुष, गुन,
मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है ।
वैर जिय मानि बामदेव को धनुष तोरो,
जानत हौं बीस बिसे राम भेस काम है[1] ।।

राम के शिष्टाचार ने परशुराम के क्रोध को भी संयत कर दिया है । परशुराम का राम के प्रति यह क्रोध कि महादेव के धनुष को तोड़कर तुम्हें बड़ा भारी अभिमान हो गया है, भला तुमने धनुष तोड़ते समय मेरा भय क्यों न किया, राम के निःसंकोच अपराध स्वीकार कर लेने पर भी पूर्णतया शान्त नहीं होता, वरन् वह राम के दोनों हाथ काट लेने के लिए कहते दिखाई पड़ते हैं । इतने से ही सन्तोष नहीं होता । वे अपने कुठार को सम्बोधित करते हुए—

" तौ लौं नहीं सुख जौ लग तू रघुवीर को शोण सुधा न पियो रे[2] ।

की चुनौती देते हैं । भरत भी, तुलसी के लक्ष्मण के समान, कुछ व्यंग्य कस जाते हैं ।

बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिए तन मन बनि आवै ।
आदि बड़े हौ बड़पन रखिये, जा हित तूं सब जग जस पावै ।
चंदन हूं में, अति तन घसिए, आगि उठे यह गुनि सब लीजै ।
हैहय मारो नृपजन संहरे, सो यश लै किन युग- युग जीजै[3] ।।

१- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १०३, छं०- १४
२- वही, पृ०- १०६, छं० - २१
३- वही, पृ०- १०७, छं० - २२

इस पर तो परशुराम और भी जल भुन जाते हैं और भरत को अपनी धनुर्विद्या दिखाने की चुनौती दे उठते हैं। बस फिर क्या था, तीनों भाई (भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) अपने- अपने धनुषों पर बाण चढ़ा लेते हैं। तब राम ही उनको

भगवन्तन सों जीतिए, कबहुं न कीन्हें शक्ति।
जीतिय एकै बात तें, केवल कीन्हें भक्ति [१] ।।

के उपदेशामृत द्वारा शान्त करते हैं। राम के इस आचरण से परशुराम भी प्रभावित होते हैं परन्तु उन्हें तीनों भाइयों का आचरण धृष्टता स्पष्ट हो जाती है। शत्रुघ्न और लक्ष्मण फिर भी चंचलता नहीं छोड़ते और परशुराम जी का क्रोध यहां तक पहुंच जाता है कि वह कह ही उठते हैं—

कोटि करो उपचार न कैसहु मीच बचै [२] ।।

दोनों रामों में जब बात बढ़ती है तो महादेव आ उपस्थित होते हैं और दोनों को समझा बुझाकर शान्त कर देते हैं।

कैकेयी - भरत- संवाद इतना संक्षिप्त और अपर्याप्त है कि उससे पात्रों के चरित्रों की रूपरेखाएं भी स्पष्ट नहीं हो पाई हैं। यह संवाद ` हनुमन्नाटक ` की छाया है। जहां तुलसी ने कैकेयी और मंथरा के संवाद द्वारा कैकेयी के चरित्र को बहुत ऊंचा उठाया है वहां केशव ने उसे वास्तव में ` मतासुत विद्वेषिणी ` सिद्ध कर दिया है।

` रावण- सीता- संवाद ` में केशव ने सीता के उज्ज्वल चारित्र्यतेज का और रावण की दुश्शीलता का बड़ा ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है।

१- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ० - १०८, छं० - २५

२- वही, पृ० - ११२, छं० - ३४

रावण सीता के सामने राम की निन्दा करता है और उसे विविध प्रकार के प्रलोभनों द्वारा अपनी पटरानी बनाना चाहता है परन्तु सीता जैसी सुचरित्रा उसकी प्रार्थना ठुकरा देती है और कठोर शब्दों में भर्त्सना करती है। रावण-सीता-संवाद भी मनोवैज्ञानिक तथा कवि की नीति-कुशलता का प्रमाण है। रावण को जो कुछ कहना है वह एक ही बार में कह डालता है। इसी प्रकार सीता उसे एक ही बार में उत्तर देती है। ऐसा करके केशव ने अपनी कुशाग्रबुद्धि का ही परिचय दिया है। सीता सी पतिव्रता सती को पर पुरुष से, जिसकी उस पर कुदृष्टि हो, बातचीत करने में संकोच होना स्वाभाविक ही था। सुनते-सुनते जब सीता के कान पक गये तो उसे विवश होकर बोलना पड़ा।

यह साधारण व्यवहार की बात है कि यदि प्रेमिका को उसके प्रेमी की ओर से उदासीन करना हो तो प्रेमी के अवगुण बतलाते हुए प्रेमिका की ओर से उसकी उदासीनता और अन्य स्त्रियों के प्रति आकर्षण दिखलाए। अतएव रावण कहता है—

> कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै। हितू नग्न मुंडी नहीं को सदा है।
> अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी। बसै चित्त दंडी जटी मुंडधारी ।।
> तुम्हे देवि दूषै हितू ताहि मानै। उदासीन तोसों सदा ताहि जानै।
> महा निर्गुणी नाम ताको न लीजै। सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै[1] ।।

सुख और ऐश्वर्य की बांकी झांकी दिखाकर उसने दूसरे अस्त्र का प्रयोग किया—

> अदेवी नृदेवीन की होहु रानी। करैं सेव बानी मघोनी मृडानी।
> लिए किन्नरी किन्नरी गीत गावैं। सुकेसी नचैं उर्वसी मान पावैं[2] ।।

उधर सीता जी के उत्तर स्वरूप तीन छन्दों में सीता का क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता दिखलाई देता है। प्रथम छन्द में सीता कहती है—

१- रामचन्द्रिका : तेरहवां प्रकाश, पृ०- २१९, छं०- ५८- ५९

२- वही, छं०- ६०

दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी ।
दशरथ सुत द्वैषी रुद्र ब्रह्मा न भासै ।
निसिचर बपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासै[1]—

कुछ और क्रोध बढ़ने पर व्यंग्य- मिश्रित स्वर में सीता का कथन है—

अति तनु धनु रेखा नेक नाकी न जाकी ।
खल सर खर धारा क्यों सहै तिग्म तार्को[2]।।

तीसरे छन्द में सीता के हृदय का दबा हुआ क्रोध एकदम भड़क उठता है—

उठि उठि शठ ह्यां ते भागु तौलों अभागे ।
मम बचन बिसर्पी सर्प जौलों न लागे[3] ।।

इस संवाद की भाषा भी बड़ी स्वाभाविक है । सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै इतो सोच तो राम काजै न कीजै । अथवा दशमुख सठ को तू कौन की राजधानी ठीक दैनिक बोलचाल के शब्द हैं । कछू और ` तो ` आदि छोटे- छोटे शब्द यदि हटा दिए जायें तो भावों का गम्भीर सागर लुप्त हो जायेगा ।

सीता- हनुमान संवाद सीता के चातुर्य और हनुमान की कुशाग्र- बुद्धि का परिचायक है । सीता मायावी राक्षसों के बीच रहती थीं । सम्भव था कि राम के वियोग में प्राण देने के लिए उद्यत सीता को इस कृत्य से रोकने के लिए रावण ने किसी मायावी - राक्षस को राम- दूत बनाकर भेजा हो अतएव हनुमान की भली भांति परीक्षा लेकर उनका विश्वास करना स्वाभाविक था । सीता हनुमान को राम का दूत जानकर उनका विश्वास करना स्वाभाविक था । सीता हनुमान को राम का दूत जानकर उनसे रघुनाथ से परिचय और आने का कारण पूछती हैं ।

१- रामचन्द्रिका : तेरहवां प्रकाश, पृ०- २२०, छं०- ६१
२- वही, छं०-६२
३- वही, पृ०-२२१, छं०- ६३

कर जोरि कह्यो हौं पौनपूत । जिय जननि जानि रघुनाथ दूत ।।
रघुनाथ कौन दशरत्थनंद । दशरत्थ कौन अज तनय चंद ।।
केहि कारन पठये यहि निकेत । निज देन लेन संदेश हेत[1] ।।

किन्तु सम्भव था कि प्रसिद्ध रविवंश के विषय में उन्होंने किसी से सुन लिया हो अथवा चतुर रावण ने ही यह सब सिखला कर भेजा हो, अतएव सीता जी हनुमान से राम के गुण रूप आदि के विषय में पूछती हैं।

गुण रूप सील सोभा सुभाउ । कछु रघुपति के लक्षण सुनाउ[2] ।।

हनुमान जी कुशाग्र-बुद्धि थे ही, अतएव उन्होंने जब यह परिस्थिति देखी तो ऐसी बातें बताना उचित समझा जो केवल घनिष्ठ लोगों को ही ज्ञात हो सकती थीं।

अति जदपि सुमित्रानन्द भक्त । अति सेवक है अति सूर सक्त ।
अरु जदपि अनुज तीनों समान । पै तदपि भरत भावत निदान[3] ।।

रावण-हनुमान-संवाद केशव के वाग्वैदग्ध्य एवं व्यंग्य का सुन्दर उदाहरण है। समस्त संवाद —

रे कपि कौन तू ? अक्ष को घातक दूत बली रघुनन्दन जू को ।
को रघुनन्दन रे ? त्रिसिरा-खर-दूषण-दूषण भूषण भू को ।।
सागर कैसे तर्यो ? जस गोपद, काज कहा ? सिय चोरहि देखो ।
कैसे बंधायो ? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो[4] ।।

इस एक 'मत्तगयंद' सवैया में केशव ने युक्ति-पूर्वक राम के माहात्म्य, रूप और बल का तथा राम भक्तों के आचरण का वर्णन किया है। राम का बल कैसा है ? उनके दास अक्षय (अमर) को भी मार सकते हैं। रूप कैसा है ? समस्त संसार का भूषण है। राम के दास भवसागर कैसे तरते हैं ? जैसे गोपद। राम के दास काम क्या करते हैं ? केवल राम सम्बन्धी कार्य। इस उक्ति में राम-भक्तों के आचरण की भी कितनी सुन्दर व्यंजना है—कैसे बंधायो ? हनुमान रावण के

१-२ रामचन्द्रिका : तेरहवां प्रकाश, पृ०-२२३, छं०-७३-७४, ७४ क्रमशः
३-४ वही, तेरहवां तथा चौदहवां, पृ०-२२३, छं०-७५, १ क्रमशः

इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं तेरी स्त्री को सोते हुए देख लिया, इसी पाप से बन्दी होना पड़ा। व्यंजना यह हुई कि मैंने तो स्त्री को देखा पाई नहीं है, पर तू तो अपने घर ले आया है, तेरी तो इससे भी बुरी दशा होगी। लाला भगवानदीन के अनुसार इससे व्यंजना यह निकली कि रामभक्त पराई स्त्री को आंख से देखने को भी पाप समझते हैं और उसके दण्ड को यहीं भोग लेते हैं। (राम० प्र० १४, छ० - १ की टीका) इस व्यंजना को साधारण पाठक नहीं समझ सकता। चाहे व्यंग्यार्थ कुछ भी हो, इस प्रकार का कथन सूझ का ही विषय है। वह मस्तिष्क की उपज है, हृदय की नहीं। उक्त प्रसंग का आधार हनुमन्नाटक है।

रे रे वानर को भवानहम् रे त्वत्सुनुहन्ताक्षे।

दूतोऽहं खरखण्डनस्य जगतां कोदण्डभाषागुरोः[1]।।

इसके विपरीत तुलसी के " रावण- हनुमान- संवाद " में काफी गाली - गलौज है। रावण और हनुमान दोनों एक दूसरे के लिए शठ, अधम, मूढ़ आदि अपशब्दों का प्रयोग करते हैं, जो कि राज-सभा के शिष्टाचार के प्रतिकूल है।
(रामचरितमानस सुन्दरकाण्ड : दोहा १६, २२ व २३ के बाद २४)

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम करहू[2]।।

आदि हनुमान की रावण के प्रति उपदेशात्मक उक्तियां राम के पारब्रह्म के विषय में उनके दूतत्व की दृष्टि से भी सर्वथा असंगत हैं। तुलसी राम- भक्ति के आवेश में आकर ही हनुमान से ऐसा कहला गए हैं। यह चाहे उनकी कमजोरी हो पर भक्तिकाव्य की दृष्टि से यही उनका बल कहा जा सकता है। उन्होंने स्वयं लिख भी दिया है—

यद्यपि कही कपि अति हित बानी। भक्ति विवेक विरति नयसानी[3]।

१- हनुमन्नाटक : अंक ६, श्लोक २२

२- रामचरितमानस : सुन्दरकाण्ड, २१वें दोहे के बाद की चौपाई

३- वही, १६वें दोहे के बाद की चौपाई

' रावण- अंगद- संवाद ' केशव के वचन- विलास का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस संवाद में रावण और अंगद दोनों ही बड़े चातुर्य के साथ एक दूसरे पर व्यंग्य करते- करते हुए प्रतिपक्षी की हीनता और अपनी महत्ता प्रदर्शित करते चलते हैं परन्तु दोनों ओर से राजसमोचित मर्यादा का पूरा- पूरा पालन किया गया है। अंगद को सदैव यह स्मरण रहता है कि वह दूत बनकर आया है और एक महान और प्रतापी राजा के दरबार में खड़ा है। रावण भी एक ओर अपनी महिमा प्रदर्शित करता है, दूसरी ओर राम की तुच्छता। इस प्रकार जब अंगद पर आतंक जमता नहीं दिखाई देता तो रावण भेद- नीति से अंगद को अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेने के लिए उकसाता है। परन्तु अंगद कभी आवेश में नहीं आता है और बड़े कौशल के साथ रावण की भेद- नीति के दांव- पेंचों से बचाता चलता है। वह रावण को मुंहतोड़ जवाब देता हुआ कहता है कि पहले अपनी रक्षा करो फिर और की रक्षा करना। रावण फिर भी साहस नहीं छोड़ता। एक और पैंतरा बदलता है, सम्भव है अन्तिम समय में ही अंगद के हृदय में पिता के घातक- राम से बदला लेने की भावना जग उठे। वह अंगद से कहता है कि ' मैंने बड़ी भूल की जो अब तक तुझे मार नहीं डाला। दूत समझकर तेरी सब बातें सह रहा हूं राम, सुग्रीव आदि तुझे मरवाना ही चाहते हैं। अतः तुझे क्या मारूं तुझे तो दैव ने ही मार रखा है।

मेरी बड़ी भूल कहा कहीं रे। तेरी कह्यौ दूत सबै सहौं रे ।।
वे जो सबै चाहत तोहि मार्यो। मारो कहा तोहि जो दैव मार्यो[1] ॥

जब अंगद राम का गुणगान करता ही जाता है तो एकबार रावण भी क्रोधवेश में कह उठता है—

तपी जपी विप्रन छिप्र ही हरौं। अदेव द्वेषी सब देव संहरौं।
सिया न देहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अबानरी करौं[2] ।।

१- रामचन्द्रिका : सोलहवां प्रकाश, पृ०- २७५, छं०- २०
२- वही, पृ०- २७६, छं०- ३०

किन्तु रावण एकदम सम्हल जाता है और कहता है कि अच्छा मैं कुछ शर्तों पर सीता को लौटा सकता हूं। रावण का यह वार भी खाली जाता है, अतः निराश हो अंगद से इस विषय में बात करना ही छोड़ देता है।

तुलसी ने भी रावण-अंगद-संवाद की योजना की है। किन्तु उसमें राज-समोचित मर्यादा का कोई ध्यान नहीं रखा गया है। अंगद और रावण का संभाषण न तो अंगद के राजदूतत्व के अनुरूप है और न रावण के राक्षस-राजत्व के। तुलसी के अंगद रावण की सभा में पहुंचते ही उसको--

दसन गहहु तृन कण्ठ कुठारी। परिजन संग सहित निज नारी।
सादर जनक सुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे[1]।।

का अपमानजनक उपदेश देने लगते हैं और रावण भी अपमान न सहकर अंगद को मूर्ख, बर्बर, खल, कुलघातक, तिय चोर, मलराशि आदि अपशब्दों में ललकारता है (रामचरितमानस लंकाकाण्ड ४७वें तथा ५५वें दोहे के बाद की चौपाई)। दोनों की तू-तू मैं-मैं ने राजसभा की मर्यादा को धूल में मिला दिया है। पर केशवदास ऐसे शिष्टाचारों के प्रकट करने में बड़े ही कुशल हैं। इनके अंगद रावण के सम्मुख सन्धि-प्रस्ताव रखते हुए कहते हैं कि राम को सादर अपने घर लाकर और उनका सत्कार कर सीता को उन्हें लौटा दो। अपनी पटरानी और कुम्भकर्ण आदि जितने तुम्हारे हितैषी हैं उनसे भी पूछ लो कि मेरी सलाह अच्छी है या नहीं।

राम राजान राज आये यहां धाम तेरे महाभाग जागे अबै।
देवि मन्दोदरी कुम्भकर्णादि दै मित्र मंत्री जिते पूछि देखा सबै।।
राखिये जाति को पाति को वंश को गोत को साधिये लोक परलोक को।
आनि कै पां परो, देस लै कोष लै, आसुही ईश सीता चलै ओक को[2]।।

१- रामचरितमानस : लंकाकाण्ड, ३५वें दोहे के बाद की अन्तिम चौपाई

२- रामचन्द्रिका : सोलहवां प्रकाश, पृ०- २७१, छं०- ६

इस पर रावण भी व्यंग्यपूर्ण पर सरल उत्तर देता है कि " जो होना हो, मैं अपने इष्टदेव शंकर को जो समस्त सृष्टि और ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवताओं को तनिक से क्रोध से ही नष्ट कर डालते हैं, छोड़ राम के चरणों में न पड़ूंगा ।

> लोक लोकेश स्यों जो जु ब्रह्मा रचे, आपनी आपनी सीव सो सो रहैं ।
> चारि बाहै धरे विष्णु रक्षा करैं, बात साँची यहै बेद बानी कहै ।
> ताहि भ्रूभंग ही देव देवेश स्यों, विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरै ।
> ताहि हौं छोड़ि कै पायं काके परौं, आज संसार तो पायं मेरे परै[1]।।

तुलसी के अंगद बिना पूछे ही बालि की बात सुनाने लग जाते हैं पर केशव के अंगद बिना प्रसंग के ऐसी डींग नहीं हांकते । रावण और अंगद के उत्तर प्रत्युत्तर बहुत ही संगत और सुसम्बद्ध हैं । इस संवाद की भी अनेक उक्तियों का आधार 'हनुमन्नाटक' है ।

लव-कुश-विभीषण-संवाद केशव ने विभीषण की उस वृत्ति की निन्दा करने के लिए नियोजित किया है जिसके लिए उसने अपने भाई रावण और उसके अपने कुल का सर्वनाश करवाया । रामभक्तों की दृष्टि में विभीषण चाहे भक्त हैं परन्तु राजनैतिक दृष्टि में वह राजद्रोही ही ठहरते हैं और इसी कारण उसे लव के व्यंग्य बाण सहने पड़ते हैं । केशव के संवाद उनकी प्रत्युत्पन्नमति और सूक्ष्म मनोविज्ञान के परिचायक हैं । व्यंग्य जो संवाद का आवश्यक गुण है केशव के संवादों का प्रमुख विशेषता है ।

केशव ने 'रामचन्द्रिका' के अतिरिक्त 'वीरसिंहदेव-चरित,' 'विज्ञानगीता' और 'जहांगीर-जस-चन्द्रिका' आदि सभी ग्रन्थों में संवादों का उपयोग किया है । विज्ञानगीता, वीरसिंहदेव-चरित और जहांगीरजस-चन्द्रिका नामक ग्रन्थ तो आद्योपान्त संवाद ही के रूप में लिखे गये हैं ।

१- रामचन्द्रिका : सोलहवां प्रकाश, पृ०- २७१, छं०- १०

विज्ञानगीता आदि से अन्त तक शिव- पार्वती - संवाद है, यद्यपि इसके अन्तर्गत भी अनेक संवाद हैं जैसे कलह- काम- रति- संवाद, अहंकार- दंभ- संवाद, महामोह मिथ्यादृष्टि संवाद, चार्वाक- शिष्य- संवाद, शान्ति- करुणा संवाद, भिक्षुक- श्रावक संवाद, शूद्र - नारीवेष संवाद, विवेक- राजधर्म- संवाद, राजा (विवेक) उद्यम- संवाद, सरस्वती - मन संवाद, विवेक- जीव - संवाद, राजा- शिखिध्वज- देवपुत्र संवाद, वेदसिद्ध- विवेक संवाद आदि । विज्ञानगीता में संवादों के लिए केशव ने प्रबोधचन्द्रोदय का आश्रय लिया है । अहंकार- दम्भ- संवाद प्रबोधचन्द्रोदय का लगभग अनुवाद ही है । चार्वाक और महामोह का संवाद प्रबोधचन्द्रोदय के आधार पर ही प्रस्तुत किया गया है । शान्ति और करुणा द्वारा पाखण्ड की खोज करते समय परस्पर जो बातचीत हुई है वह भी प्रबोधचन्द्रोदय के अनुसार ही है । विज्ञानगीता के तेरहवें प्रभाव में सरस्वती ने मन को ज्ञान की अनेक बातें बताई हैं । यद्यपि ऐसी बातों की चर्चा प्रबोधचन्द्रोदय में भी है परन्तु उसकी तुलना में केशव ने सरस्वती के ज्ञानोपदेश की विस्तृत जानकारी दी है ।

इसी प्रकार वीरसिंहदेव- चरित दान- लोभ- संवाद के रूप में लिखे गये हैं । यह सब संवाद प्रायः एक ही परिपाटी पर लिखे गये हैं, तथा इनमें कोई ऐसी निजी विशेषता नहीं है जिसके आधार पर इन्हें एक दूसरे से अलग किया जा सके । प्रायः एक पात्र कुछ कहता है और दूसरा उसका उत्तर दे देता है । यह संवाद अधिकांश कथोपकथन मात्र है ।

—

अध्याय : पांच

दार्शनिक प्रभाव

दार्शनिक प्रभाव

श्रुति तथा स्मृतियों का आश्रय लेकर जो जो सम्प्रदाय भारतवर्ष में प्रतिष्ठित हुए उनमें अद्वैतवाद तथा द्वैतवाद के अनुसार दो मुख्य शाखाएं हुईं। ' नेह नानाऽस्ति किञ्चन ' एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ' इत्यादि स्पष्ट अद्वैत के समर्थक वचन मिलने पर भी आगे चलकर आचार्यों ने अनुभव किया कि पारमार्थिक दृष्टि से जीव-ब्रह्म की सत्ता एक होने पर भी उपासना की दृष्टि से यह आवश्यक है कि जीव और ब्रह्म दोनों भिन्न मान लिए जायें। प्रथम तो इस बात का प्रयास नहीं किया गया कि इस द्वैतवाद की सत्ता श्रुति-स्मृति के पुष्ट प्रमाणों पर रखी जावे, परन्तु आगे चलकर उपासना— मार्ग के आचार्यों को द्वैतवाद का इतना आग्रह हुआ कि उन्होंने अद्वैतवाद का खण्डन कर अपने वाद को ही श्रुति-स्मृतियों से प्रमाणित सिद्ध कर देना चाहा। इन दोनों के प्रमाणभूत ग्रन्थ वेद, उपनिषद् तथा व्याससूत्र ही हैं। परन्तु दृष्टिभेद से इन्हीं तीनों का आधार लेकर एक-दूसरे से नितान्त भिन्न प्रतीत होते हुए दो सम्प्रदाय समानांतर चलने लगे। स्वामी वल्लभाचार्य जी ने द्वैत-अद्वैत के पार्थक्य को बहुत कुछ दूर कर देने का सफल प्रयत्न किया। द्वैतवाद की शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर प्रतिष्ठा हो जाने पर भी भारत की जनता अपने पुराने संस्कार को हटा न सकी। यह पुराना संस्कार वही था जिसकी पुनः स्थापना बौद्धों के शून्यवाद के स्थान पर स्वामी शंकराचार्य ने की थी। और जो कालान्तर में वैदिक ब्रह्मवाद के नाम से अभिहित किया गया। मुसलमानों का कट्टर एकेश्वरवाद भी इस ' तत्वमसि ' के सामने ठहर न सका। मुसलमानी संस्कारों में पले हुए लोगों के मुंह से भी ऐसे उद्गार निकलने ही लगे—

" तू तू करता तू भया मुझमें रही न हूं। वारी तेरे नाम पर जित देखूं तित तूं " ।

पारमार्थिक दृष्टि से अद्वैतवाद जनता को स्वीकृत होते हुए भी भक्तिमार्ग में सेवक सेव्य-भाव की स्थापना हुए बिना न रह पाई। इसी बात का स्पष्ट संकेत तुलसीदास जो ने भी जो सम्पूर्ण जगत को 'सियाराम मय' मानते थे और जिन्होंने घट-घट में उसी एक के दर्शन किए थे, इन शब्दों में किया है—

सेवक-सेव्य-भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि

इसी से मिलता-जुलता भाव प्राय: भक्तिमार्ग के सब कवियों का था। वे पारमार्थिक दृष्टि से तो जीव-ब्रह्म का एकत्व मानते थे, परन्तु लौकिक दृष्टि से भगवान का दास ही होकर रहना अधिक पसन्द करते थे।

केशवदास के आध्यात्मिक सिद्धान्त 'रामचन्द्रिका' के २५वें प्रकाश में तथा 'विज्ञानगीता' में मिलते हैं। राम वशिष्ठ के संवाद में उन्होंने अपने आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट कर दिया है—

सब जानि बूझियत मोहिं राम
सुनिए सो कहौं जग ब्रह्मनाम
जिनके असेष प्रतिबिंब-जाल,
तेइ जीव जान जग में कृपाल[१]

इसमें गीता की इस पंक्ति की छाया पड़ी है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:

केशवदास जी जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मानते हैं। उनका सिद्धान्त दूसरे द्वैतवादी भक्तों की अपेक्षा अद्वैतवाद के बहुत पास ही नहीं पहुंच जाता, अद्वैतवाद ही हो जाता है।

ब्रह्म-जीव का विचार करने के बाद जगत का प्रश्न आता है। कुछ

१- रामचन्द्रिका : पच्चीसवां प्रभाव, छं०सं० २

वेदांती जगत को मिथ्या मानते हैं और कुछ कहते हैं कि जगत ब्रह्म की कृति है परन्तु इसके स्वरूप में कोई चिरस्थायी वास्तविकता नहीं है तथा इस नाम रूपात्मक आवरण के परे जो सत्ता है वही सत्य है। जगत् को मिथ्या मानने वालों में भी दो सम्प्रदाय हैं। एक कहता है कि जिस प्रकार स्वप्न में नाना दृश्य दिखाई पड़ते हैं परन्तु उनमें वास्तविकता नहीं होती उसी प्रकार यह जगत् भी हमारी कल्पना की सृष्टि है, इसमें कोई यथार्थ सत्ता नहीं। दूसरे कहते हैं कि जगत को मिथ्या कहने का यह भाव नहीं कि यह है ही नहीं— मिथ्या से केवल इतना ही तात्पर्य है कि यह नाम रूपात्मक जगत नश्वर तथा परिवर्तनशील है। केशवदास जी जगत् को काल्पनिक नहीं बताते, वे इसे भगवान की रचना कहते हैं—

तुम्हहीं जु रची रचना बिचारि, तेहि कौन भांति समझौं मुरारि।[१]

परन्तु वे भी इस संसार को झूठा ही कहते हैं और झूठा कहने से उनका तात्पर्य केवल यह है कि यह नश्वर है तथा इसके नाम और रूप क्षणभंगुर हैं। वे कहते हैं कि यह सत्य-सा प्रतीत होता है क्योंकि यह किसी सच्चे की रचना है—

झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई।
काहू सांचे को बनाये तातें सांचों सो लगत है।[२]।

केशव संसार से सन्तुष्ट नहीं प्रतीत होते। स्थान-स्थान पर संसार के लिए उनके जो उद्गार निकलते हैं उनसे यही प्रतीत होता है कि वे संसार को अत्यन्त दु:खमय समझते थे। संसार के विषय में वे कैसे निराशावादी थे यह उनकी

१- रामचन्द्रिका : २५वां प्रभाव, छं०सं० २

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १४वां प्रभाव, पृ०- १८१, छं०सं० ७

उस पंक्ति से स्पष्ट हो जाएगा—

सुमति महामुनि सुनिए, जग महं सु: ख न गुनिए[1]।

वे तृष्णा तथा कामवासना को जीव के मार्ग में बड़ा भारी बाधक मानते थे। वे तृष्णा को भयानक रूप में सामने लाते हैं—

पाटु कहुं घाट न केसव, क्यों तरि जाय तरंगिनि तृष्ना[2]।

`काम` एक भयानक डाकू के रूप में उपस्थित किया जाता है—

औरे को केसव लूटतो जन्म अनेकन के तपसान को पोतो।
तौ सम लोक सबै जग जातो जु काम बड़ो बटपार न होतो[3]।।

काम, क्रोध इत्यादि को डाकू चोर इत्यादि के रूप में भयानकता प्रकट करने में कवि हमारे हृदयों में उनके प्रति विरक्ति उत्पन्न करने में शीघ्र समर्थ होता है—

केशव के दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण `विज्ञानगीता` तथा `रामचन्द्रिका` नामक प्रबन्धों में हुआ है। `विज्ञानगीता` में प्रतिपादित केशव के दार्शनिक सिद्धान्तों पर भारतीय अद्वैतवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार `रामचन्द्रिका` में उल्लिखित केशव की राम-भावना पर भी वैष्णव अद्वैतवाद की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। केशव के राम परब्रह्म हैं किन्तु उनके ब्रह्मत्व का आधार कौन-सा दार्शनिकवाद है, इस विषय में उनके ग्रन्थ सर्वथा मौन ही हैं। हां भक्ति के क्षेत्र में वे रामानन्दी सम्प्रदाय से अवश्य प्रभावित जान पड़ते हैं। केशव की `विज्ञानगीता` पर निर्गुण विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। पर शांकर अद्वैत का ही

१- रामचन्द्रिका : २४वां प्रभाव, पृ०-२४५, छं०सं० २

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : ७वां प्रभाव, पृ०-६१, छं०सं० १८

३- रामचन्द्रिका : २४वां प्रभाव, पृ०- २४८, छं०सं० ११

सीधा प्रभाव केशव पर मानना अधिक समीचीन होगा, क्योंकि निर्गुण- भक्ति के अन्य प्रभावों से केशव मुक्त हैं। सगुण- भक्तिकाल में कवियों ने इस धारा को भक्ति से अनुप्राणित करके सगुणोन्मुख किया। वैधी —भक्ति समन्वित मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को तुलसी की प्रतिभा ने उभारा। केशव को इस चरित्र ने आकर्षित किया। पर `रामचन्द्रिका` में भक्ति के मार्मिक स्थलों पर कवि की वृत्ति उतनी नहीं रमी जितनी सामन्तीय जीवन के ठाट- बाट, मनोरंजन, उद्यान- विहार और राज प्रासादों की क्रीड़ाओं के अंकन में। इसी वातावरण से केशव का निजी सम्बन्ध था। कृष्णभक्ति शाखा में भावावेश की चरमावस्था है। दिव्य भावानुकूल कृष्ण लीलाओं की समाधि - सहज अनुभूति में साहित्य विभोर हो उठा। फलत: भाव- वस्तु को प्राधान्य मिला, शैली- रीति अपेक्षाकृत गौण रही। इस मधुर उज्ज्वल श्रृंगार की पृष्ठभूमि में संस्कृत का वैष्णव भक्ति साहित्य है। केशव में हमें इस प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया मिलती है। शैली - रीति का समर्थन काव्यशास्त्रों के गहन अध्ययन का परिणाम था। राधाकृष्ण के विलासों को लोक- भूमिका पर सजाने में संस्कृत काव्यशास्त्र के राधाकृष्ण- गोप बन्धुओं के माध्यम से वर्णित नायक- नायिका- निरूपण सहायक हुआ।

भक्तिकालीन कृष्ण का ईश्वरत्व तिरोहित हुआ और दूती, सखी, मान, मिलन आदि के मांसल चित्रणों से वह समन्वित हुआ। साहित्यशास्त्र, मांसल सौन्दर्य, अलंकार-विधान और श्रृंगार के रसराजत्व के सम्मिलित रूप ने रीतिकाल का रूप ग्रहण किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव के पूर्व की साहित्यिक प्रवृत्तियों ने कहीं कवि को प्रभावित किया तो कहीं प्रतिक्रिया के लिए प्रेरित किया।

केशवदास जी ने भक्ति को बड़े व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है, जिसमें विशाल हिन्दू धर्म अपनी समस्त मान्यताओं के साथ प्रतिफलित हुआ है।

एक ओर योग की प्रक्रियाएं चित्त शुद्धि के लिए साधन रूप में स्वीकार की गई हैं तो दूसरी ओर पूजा, जप, स्नान दान, कर्मकाण्ड सभी कुछ चित्त- शुद्धि में सहायक समझा गया है। भक्ति द्वारा विवेक और विवेक द्वारा भक्ति का पोषण होता है। भक्ति सरस एवं सरलतम पथ है, जिसकी कृपा से जीव मुक्ति- पथ की ओर सहज ही बढ़ सकता है—

वीरसिंह नृपसिंह मणि, मैं वरणों हरिभक्ति।
जाहि सुने सहसा सुमति, ह्वै है पाप बिरक्ति।।
जी त्यो मोह विवेक ज्यौं, पाइ बोध को भेव।
त्यौं तुम जीतौ शत्रु सब, राजवीर सिंह देव[1]।।

इस प्रकार वे भक्ति को स्पष्ट ही साधन कोटि ही में मानते हैं।

भक्तियोग की भूमिका इति विधि साधत साधु।
होत पार संसार के जदपि अनंत अगाधु[2]।।

यहां हमें सूर, तुलसी और केशव के दृष्टिकोण का अन्तर मिल जाता है। केशव के वर्णन में भक्ति को यद्यपि पूर्ण स्थान मिला है, किन्तु उससे अधिक उन्होंने ज्ञान और विवेक को महत्व दिया है, जबकि सूर- तुलसी में ज्ञान-विवेक के महत्व की स्वीकृति होते हुए भी उनकी कठिनता और अपनी अक्षमता के आधार पर भक्ति को प्रमुखता दी गई है। अत: सूर- तुलसी भक्त ज्ञानी हैं, केशव ज्ञानी - भक्त। सूर- तुलसी भक्तकवि हैं, केशव कवि भक्त। सूर तुलसी भक्ति के कवि हैं, केशव भक्ति के आचार्य।

फिर भी हम देखते हैं कि केशव का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक है। उसमें दर्शन, भक्ति एवं धर्म का बड़ा व्यवस्थित एवं सुन्दर सामंजस्य दिखाई पड़ता है। उनके धर्म को भक्ति ने हृदय दिया है, दर्शन ने ज्ञान और इस सामंजस्य में हिन्दूधर्म

१- आचार्य केशव कृत विज्ञानगीता : एकविंशति प्रभाव, पृ०-३१४, छ०सं० ६६- ६७

२- वही, पृ०- २९६, छ०सं० ६२

के ` सबकुछ ` को अपने अनुरूप ` उचित ` स्थान प्राप्त हुआ है। केशव का यह जीवन-दर्शन वस्तुत: सुदीर्घकालीन भारतीय संस्कृति का जीवन-दर्शन है।

विज्ञानगीता के पांचवें प्रभाव में महामोह के परिवार तथा महामोह द्वारा अपनी रानी मिथ्यादृष्टि से मिथ्या विचार किये जाने का प्रत्यक्ष वर्णन किया गया है।

महामोह उवाच :

देही न्यारो देह तें, कहत अयाने लोग।
दु:सह दु:ख ह्यां देखि परलोक करहिं भोग।।
लोक करहिं भोग जोग-संयम व्रत साधे।
भूलि जहं तहं भ्रमत सकल सोभासुख बांधे।
भूलि जहं तहं भ्रमत होत तन सों न सनेही।
जो भूठो है देह ततो अति भूठो देही[1]।।

इस छन्द में केशव ने शरीर और आत्मा के सम्बन्ध में मोह के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार शरीर मिथ्या है तो आत्मा भी अतिशय मिथ्या है।

सम्भवत: यहां केशव चार्वाक के अनात्मवादी दर्शन से प्रभावित हैं। और वे चार्वाक् के सिद्धान्त के आगे अन्य सभी सिद्धान्तों को छोटा मानते हैं—

वहै सास्त्र तातें सदा सत्य लेख्यौ। प्रमा सिद्धिता मध्य प्रत्यक्ष देख्यौ।
धरातेज बातांबु, है तत्व चार्यौ। सदा इष्ट तो अर्थ कामै विचार्यौ।
यहै लोक स्वलोक है, मुक्ति मीचै,। सदा चारु चार्वाक ते और नीचै।
बिलोको, जहां धर्म-धर्माधिकारी। बिलोपौ सदावेद विद्या विचारी[2]।।

१- आचार्य केशव कृत विज्ञानगीता : पंचम प्रभाव, पृ०- ६१, छ०सं० २
२- वही, पृ०- ६३, छ०सं० ७,८

यथार्थ ज्ञान के प्रत्यक्ष प्रमाण के अनुभव को ही केशव सत्य मानते हैं। उनके अनुसार पृथ्वी, अग्नि, हवा तथा जल में ही चार तत्व हैं तथा मृत्यु ही मोक्ष है।

आचार्य केशवदास ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति के क्रम में जैन और बौद्ध धर्मों के श्रावकों के वीभत्स व्यापारों और उनके सिद्धान्तों का भी वर्णन किया है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं—

करुणा : यह कौन आवत है सखी - मल - पंक - अंकित अंग।
सिर केस लुंचित नग्न हाथ सिखी - सिखंड सुरंग।
यह नर्क को कोउ जीव है जिनि याहि देखि डराय।
जिन जानियै यह श्रावका अति दूरि तें तजि ताहि[1]।।

श्रावक : अपने गुरु की प्रशंसा करते हुए कह रहा है—
देह गेह नवद्वार में, दीप - समान लसंत।
मुक्तिहु तें अति देत सुख, सेवहु श्री अरहंत[2]।।

इसी प्रकार केशव ने बौद्धधर्म के भिक्षुक का वर्णन इन शब्दों में किया है—

बुद्धागम यह जानियें, सजनी भिक्षुक रूप।
सुनि लीजै कछु कहत है, पुस्तक हस्त विरूप[3]।।

केशव के अनुसार यह संसार असत्य है और किसी सच्चे के द्वारा बनाया गया है इसी से यह सच्चा जैसा प्रतीत होता है—

अनहो ठिक को ठग जानै न कुठौर ठौर ताही पै ठगावै
ठेलि जाहि को ठगत है।
ऐसे बस बास तें उदास ताहि केसौदास केसौ न भजत
कहि काहे को खगत है।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रकाश, पृ० - ६४, छ०सं० १०
२ - वही, पृ० - ६५, छ०सं० ११
३ - वही, पृ० - ६६, छ०सं० १४

झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई काहू सांचे को बनायो
तातें सांचो सो लगत है[1]।

दार्शनिक दृष्टि से उपर्युक्त छन्द में रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का संकेत है।

केशवदास का शरीर त्याग के सम्बन्ध में विचार है कि जिस तरह भौतिक प्राणी शरीर को त्याग देते हैं उस प्रकार सन्तगण उसे नहीं त्यागते।

देही अविनासी सदा देह विलास- विचार।
केसवदास प्रकास बस घटत बढ़त नहिं बार ।
घटत बढ़त नहिं बार- बार मत बूझि देखि सब।
वेद पुरान अनंत साधु भगवंत सिद्ध अब
वेद पुरान अनंत कहत जो ब्रह्म सनेही
यों छांड़त नहिं संत देह ज्यों छांडत देही[2]।।

आचार्य केशवदास की उपर्युक्त पंक्तियों का भावाधार गीता की निम्न पंक्तियां कही जा सकती हैं—

देहिनोऽस्मिन यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति[3] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार ब्रह्म सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है—

अध उर्ध्व चतुर्दिक्षु विदिक्षुश्च निरन्तर।
ब्रह्मेन्द्र हरि रुद्रेश प्रमुख महिमण्डिताः ।
इमां भूत प्रियां तस्य रोमावली प्रतिचिन्तयेदिति[4]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : चतुर्दश प्रकाश; पृ०- १८१, छ०सं० ७
२- वही, पृ०- १८१, छंसं० ५
३- वही, ,, छ०सं० ६
४- वही, पंचदश प्रकाश, पृ०- २०६, छ०सं० ५१

उपर्युक्त पंक्तियों का भावानुवाद केशव ने निम्न पंक्तियों में किया है—

देव अरूप अमेय है कहै निरीह प्रकास ।
सर्व जीव मंडित कहौ कैसे 'केसवदास' ।।
अद्भुत देवन जानियै ताके अमित प्रकार ।
सब तें न्यारो सबन में इहि बिधि बेद बिचार[1] ।।

योगवाशिष्ठ में मृत्यु ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तीनों से बड़ा स्वीकार किया गया है—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वा वा भूतजातय: ।
नाशयेत् वायुधावृत्ति: सलिलानीव वाडवम्[2] ।।

इस श्लोक को आधार मानकर केशव ने निम्न पंक्तियों में सांगरूपक के द्वारा मृत्यु में नर्तकी के सभी गुणों का आरोप किया है ।

सेषमयी कबरी रसनानल कुंडल सूरज- सोम रचे जू ।
मेखल ब्रह्म- कपालनि की पद नूपुर रुद्र- कपाल रचे जू ।
पंकज- बिष्नु कपालनि की बनमाल न केसव काहू बचे जू ।
हस्तक भेद दसौ दिसि दीसत ऊरधहूं अध मीचु नचे जू[3] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार व्यापक, कलंकरहित, निष्कलंक एवं शुद्ध यह महात्मा स्वयं पवित्र आत्मक में माया रहित होकर उसी प्रकार एकात्म को प्राप्त हो गया । जैसे पानी के कण समुद्र में मिलकर एक रूप हो जाते हैं—

१- आचार्य केशव कृत विज्ञानगीता : पंचदश प्रकाश, पृ०- २०८, छं०सं० ४६- ५०
२- वही, चतुर्दश प्रकाश, पृ०- १६०, छं०सं० २८
३- वही, ,, पृ०- १८६, छं०सं० २७

व्यापक गत कलडेनाकलंक शुद्ध: स्वयमात्मनि पावने पदेऽसौ ।

सलिल कण इवाम्बुधौ महात्मा विगलित वासनामेकतां जगाम[१]।।

योगवाशिष्ठ की उपर्युक्त पंक्तियों के भाव केशव की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—

जाय मेरु के सिखर पर पूरन साधि समाधि

धरी धीर सब धर्म तजि परब्रह्म आराधि

बरस अनेक सहस्र तहं एक रूप भवभूप

क्रम क्रम दीपक ज्योति ज्यों मिलि आपने रूप[२]।।

केशव के अनुसार यह दृश्यमान जगत और जगत से परे अर्थात् सभी दृश्यादृश्य ब्रह्म स्वरूप है, और इसे जानना ही मुक्ति है।

दृस्यादृस्य सु ब्रह्म है यहै मुक्ति जिय जानि[३]

केशव ने अपने इस विचार की पुष्टि योगवाशिष्ठ तथा भर्तृहरि की निम्न पंक्तियों से की है—

योगवाशिष्ठे :

बन्धोऽयं दृश्य सद्भावादस्याभावेन बंधनम् ।

न सम्भवति दृश्यं तु यथेदं श्रृणु कथ्यते ।।

य इदं दृश्यते सर्वं जगत्स्थावर जङ्गमम् ।

तत्सुषुप्ता विवस्वप्न: कल्पान्तेऽपिविनश्यति[४]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : चतुर्दश प्रकाश, पृ०- १६४, छ०सं० ४६

२- वही, पृ०- १६३, छ०सं० ४४, ४५

३- वही, पृ०- १६७, छ०सं० ५६

४- वही, पृ०- १६८, छ०सं० ६०, ६१

भर्तृहरि :

चेतोहरा युवतय: स्वजनानुकूला:
सद्बान्धवा: प्रणति नम्रतराश्च भृत्या:
गर्जन्ति दन्तिनिवहाश्य चलास्तुरंगा ।
सम्मिलिने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति[1] ।।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म का उपदेश दिया है। उसी प्रकार केशव भाग्यवाद में नहीं बल्कि सत्कर्म में विश्वास रखते हैं—

नाहिन मोह समूल उखार्यो । नाहिन सत्रु बड़ो मनु मार्यो ।
कानन मांफ सुवासना आर । कैसे अदृष्ट पै जात अवार ।।
'केसव' कैसहु कर्म के लीने । देसहिं जाहु जो जाग विहीने ।
लोक करै उपहास तिहारे । रोके रहैं न बड़े अरु बारे[2] ।।

इसमें भाग्यवाद को तुलना में सत्कर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

विज्ञानगीता में वीरसिंह देव ने केशव से प्रश्न किया कि यह मोह और लोभमय जीव की मुक्ति किस प्रकार सम्भव है—

जीवमोहमय लोभमय कनक ते कौन प्रकार ।
मिलिहै कबहुं आपनि रूपहि तजि जंजार[3] ।।

इस प्रश्न का उत्तर योगवाशिष्ठ में इस प्रकार दिया गया है—

यथा सत्वसमुपेत्य स्वंशेन विप्रा दुराशय: ।
अंगीकरोति शूद्रत्वं तथा जीवत्वमीश्वरात[4] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : चतुर्दश प्रकाश, पृ० - १६८, छ०सं० ६२

२- वही, सोलहवीं प्रकाश, पृ० - २२६, छ०सं० ७३ - ७४

३- वही, पंचदश प्रकाश, पृ० - २०४, छ०सं० ३१

४- वही, पृ० - ३२

मृत्यु के सम्बन्ध में केशव का मत है कि मृत्यु से ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी छुटकारा नहीं पा सकते—

> शेषधर नागधर, नागमुख ब्रह्म बिस्नु,
> इनको कलेवर तौ काल को कवल है[1]।।

केशव अपने इस विचार में योगवाशिष्ठ और पराशर से प्रभावित दिखाई देते हैं—

पराशेर यथा : कल्पे- कल्पे दायोत्पत्तिर्ब्रह्मा विष्णु शिवस्य च ।
श्रुति स्मृति सदाचार: तस्य चैत्प्रिय आत्मन:[2]।।

योगवाशिष्ठे : न देव: पुण्डरीकाक्षो न देवस्तु त्रिलोचन: ।
न देव: देहरूपो हि न देवश्चित रूप धृक[3] ।।

आचार्य केशव के अनुसार जो निष्काम भाव से यज्ञादि करते हैं उन्हें संसार के विकार का भय नहीं होता—

> ताते जज्ञन तें सबै जानौ जगत प्रकास ।
> जौ फल दीजे ईस कौ तौ तबहीं भवनास[4]।।

सम्भवत: यहां पर केशव गीता के निम्न श्लोक से प्रभावित दिखाई देते हैं—

> यत्करोणि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत् ।
> यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्[5] ।।

निम्न छन्द में केशव मीमांसकों के विचार से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं—

> एक जीव अंध एक जगत साखि कहत है ।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : पंचदश प्रकाश, पृ०- २०६, छ०सं० ४०
२- वही, पृ०- २०७, छ०सं० ४२
३- वही, ,, छ०सं० ४३
४- वही, पृ०-२४५, छ०सं० २२
५- वही, ,, छ०सं० २३

एक काम सहित एक नित्य काम रहित है ।

एक कहत परम पुरुष दंब्रान लीन है ।

एक कहत संग सहित क्रिया कर्महीन है[1]।

विज्ञानगीता के सत्रहवें प्रभाव में आचार्य केशवदास ने ज्ञान अज्ञान की भूमिकाओं का विस्तृत विवेचन किया है। केशव के इस वर्णन का आधार योगवाशिष्ठ के ज्ञान- अज्ञान की भूमियों का वर्णन है। योगवाशिष्ठ के अनुसार सृष्टि के आदि में अथवा जागरण के आदि में मायाशबल चैतन्य से प्राणधारण आदि क्रियारूप उपाधि से भविष्य में होने वाले चित्त, जीव आदि नाम शब्दों और उनके अर्थों का भाजन रूप तथा वक्ष्माण जाग्रत का बीजभूत जो प्रथम चेतन है,वह बीज जाग्रत कहलाता है—

प्रथमं चेतनं यत्स्यादनाख्यां निर्मलं चितः ।

भविष्यच्चित्त जीवादिनाम शब्दार्थ भाजनम् ।

बीजरूपं स्थितं जाग्रद्बीजजाग्रद् दुच्यते[2] ।।

आचार्य केशवदास के अनुसार भी व्यक्ति जब वासनायुक्त गर्भस्थ होता है तभी उसमें मोह उत्पन्न होता है। यह प्रथम मोह अज्ञान ही है। यह अज्ञान बीज जाग्रत नाम से अभिहित होता है।

सहित बासना गर्भ में प्रथम मोह अज्ञान ।

बीजै जाग्रत नाम यह ताको नित्य बखान[3] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार नवप्रसूत बीज जाग्रत के बाद ' यह स्थूल देह मैं हूं, ' यह देह समूह मेरा है ' ऐसी जो अपने में प्रतीति है, उसे ही जाग्रत कहते हैं।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश; पृ०- २४६, छ०सं० २७

२- योगवाशिष्ठ : प्रथमोभाग:, सर्ग ११७, पृ०- १५२६, छ०सं० १३,१४

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०- २५०, छ०सं० ४७

नच प्रसूतस्य परादयं चाऽहमिदं मम ।।

इति यः प्रत्ययः स्वस्थस्तज्जाग्रत्प्रागभावनात्[1] ।।

इसके विपरीत आचार्य केशवदास अज्ञान की ` जाग्रत ` भूमि वहां मानते हैं जहां जीव को अपने- पराए का ज्ञान नहीं रहता ।

गर्भ आय पर आपनो, नहि जानत मन मांहि ।

वह जाग्रत विज्ञान है पूर्व बासना छांहि[2] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार ऐहिक या जन्मान्तरीय दृढ़ाभ्यास से दृढ़ता को प्राप्त हुआ जो पूर्वोक्त जाग्रत प्रत्यय है, उसी को ` महाजाग्रत ` कहते हैं ।

अयं सोऽहमिदं तन्म इति जन्मान्तरोदितः ।।

पीवरः प्रत्ययः प्रोक्तो महाजाग्रदिति स्फुरन्[3] ।

आचार्य केशवदास के अनुसार यह सब संसार मेरे ही कारण है औ ` मैं ब्रह्म हूं ` मैं स्वामी हूं और सब लोग मेरे दास हैं ऐसा सोचना महाजाग्रत मोह है ।

सोहौं जाको यह सबै हौं प्रभु ये सब दास ।

महाजागरन मोह यह, बरनत केसवदास[4] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार जाग्रत पुरुष का अनभ्यास से अदृढ़ अथवा दृढ़ाभ्यास से दृढ़ जो तन्मयात्मक मनोराज्य है, उसी को जाग्रतस्वप्न कहते हैं ।

अरूढमथवा रूढं सर्वथा तन्मयात्मकम् ।।

यज्जाग्रतो मनोराज्यं जाग्रत्स्वप्नः स उच्यते[5] ।

१- योगवाशिष्ठ : प्रथमो भागः, सर्ग ११७, पृ०- १५२६, श्लो०सं० १५, १६

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०- २५०, छं०सं० ४८

३- योगवाशिष्ठ : प्रथमोभागः, सर्ग ११७, पृ०- १५२६, श्लो०सं० १६, १७

४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०- २५०, छं०सं० ४९

५- योगवाशिष्ठ : प्रथमोभागः, सर्ग ११७, पृ०- १५२६- २७, श्लो०सं० १७, १८

आचार्य केशवदास ने भी तन्मय होकर नाना प्रकार की कामनाओं का आनन्द लेने को 'जाग्रतस्वप्न' की संज्ञा दी है।

तन्मय ह्वै कै करत है, मन अभिलाष बिलास ।
जानौ चौथो नाम यह जाग्रत स्वप्न प्रकाश[1] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार जिसे मैंने अल्पकाल तक देखा, जो सत्य भी नहीं है, इस तरह की निद्रा के मध्य में अथवा निद्रा के अन्त में निद्राकाल में अनुभूत पदार्थों की जो प्रतीति है उसे स्वप्न कहते हैं।

अल्पकालं मया दृष्टमेवं नो सत्यमित्यपि ।।
निद्राकालानुभूतेऽर्थे निद्रान्ते प्रत्ययो हि यः ।।
स स्वप्नः कथितस्तस्य महाजाग्रत्स्थितेर्हृदि[2] ।।

आचार्य केशवदास के अनुसार जो संसार के कर्मों को सत्यवत् मानकर करते हैं उनके ऐसे भ्रमात्मक विचार को स्वप्न नामक अज्ञान की भूमिका कहा जाता है।

जानत कारी रज्जु में जैसी कारो सांप ।
तैसें कर्मनि करत यह स्वप्न पांचयो आप[3] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार अज्ञान की छहों अवस्थाओं का परित्याग करने पर जो जीव की जड़ अवस्था है, वह सुषुप्ति है—

षडवस्थापरित्यागे जडा जीवस्य स्थितिः ।।
भविष्यद्दुःखबोधाढ्या सौषुप्ती सोच्यते गतिः[4] ।।

इसके विपरीत आचार्य केशवदास, जो अपना-पराया नहीं जानते हैं और कुछ का कुछ किया करते हैं, उनके ऐसे अज्ञान को सुषुप्ति नामक अज्ञान की भूमि मानते हैं।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०- २५१, छ०सं० ५०
२- योगवाशिष्ठ : प्रथमो भागः, सर्ग ११७, पृ०- १५२७, छ०सं० १९, २०
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०- २५१, छ०सं० ५१
४- योगवाशिष्ठ : प्रथमो भागः, सर्ग ११७, पृ०- १५२७, छ०सं० २२, २३

अपनो पर नहि जानई कहि और की और ।
यहि सुषुप्ता सातई मोह कहत सिरमौर[1] ।।

यहां यह उल्लेखनीय है कि आचार्य केशवदास अपने- पराए के भेद को न जानना ही जाग्रत और सुषुप्ति दोनों का लक्षण बताते हैं। वे इन दोनों में परस्पर किस प्रकार से भेद स्वीकार करते हैं यह उनके छन्दों से स्पष्ट नहीं है।

योगवाशिष्ठ के एक सौ अठारहवें सर्ग में ज्ञान की भूमियों का विस्तृत विवेचन मिलता है। उसके अनुसार— मैं मूढ़ होकर क्यों स्थित हूं, विचारित वेदान्त वाक्यों से और गुरुजनों से परमतत्व को देखूंगा, इस प्रकार की साधन चतुष्टयसम्पत्ति पूर्वक जो इच्छा है, उसे विद्वान् लोग शुभेच्छा कहते हैं।

स्थित: किं मूढ एवाऽस्मि प्रेक्ष्येऽहं शास्त्रसज्जनै: ।
वैराग्य पूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधै:[2] ।।

आचार्य केशवदास भी अपने को मूर्ख समझ शास्त्र और सज्जनों के संसर्ग से ज्ञान की बातों को जानने की इच्छा को शुभेच्छा कहते हैं।

श्रवन मूढ़ जो हौं रह्यौ, बूझौ सास्त्र सु साधु ।
याही सों सब कहत है, सुभ इच्छा तम बाधु[3] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार शास्त्राभ्यास, गुरुओं के साथ संसर्ग, वैराग्य और अभ्यास पूर्वक जो सदाचार में प्रवृत्ति है, वह विचारणा नाम की ज्ञानभूमि है।

शास्त्रसज्जन सम्पर्क वैराग्याभ्यासपूर्वकम् ।
सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा[4] ।।

जो इच्छापूर्वक चित्त में वैराग्य भाव उत्पन्न करे और वेदानुसार सदाचार का

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०- २५१, छ०सं० ५३
२- योगवाशिष्ठ : प्रथमोभाग:, सर्ग ११८, पृ०- १५३१, छ०सं० ८
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०- २५२, छ०सं० ५८
४- योगवाशिष्ठ : प्रथमो भाग:, सर्ग ११८, पृ०- १५३२, छ०सं० ६

पालन करे, आचार्य केशव उसे विचारणा नामक ज्ञानभूमि मानते हैं।

> इच्छाजुत बैराग कों करै जु चित्त बिचार।
> सदाचार को बेदमत वह बिचारनाचार[1]।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार विचारणा और शुभेच्छा से साधनचतुष्टय सम्पत्ति पूर्वक किये गये श्रवण और मनन से युक्त निदिध्यासन से मन की शब्द आदि विषयों में असक्तता रूप जो तनुता (सविकल्प समाधि रूप सूक्ष्मता) है,वह तनुमानसानामक भूमिका कही गई है।

> विचारणा शुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेष्वसक्तता।
> याऽत्र सा तनुताभावात् प्रोच्यते तनुमानसा[2]।।

आचार्य केशवदास के अनुसार शुभेच्छा और बिचारना से जब इन्द्रियां कर्म से विरक्त हो जाती हैं (विषयभोग से अलग हो जाती हैं) औरजीव सूक्ष्म रूप (ब्रह्म) को जब मन में धारण करने में लगा रहता है तब ` तनमानसा ` नामक ज्ञान की तीसरी भूमिका उत्पन्न होती है।

> अति विचार तें होति है इन्द्रिय कर्म बिरक्ति।
> सूक्ष्म रूप हियें धरै तनमानसा प्रसक्त[3] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार शुभेच्छा, विचारणा और तनुमानसा— इन तीन भूमिकाओं के अभ्यास से बाह्य विषयों में संस्कार न रहने के कारण चित्त में अत्यन्त विरक्ति होने से माया, माया के कार्य और तीन अवस्थाओं से शोधित, सबके आधार, सन्मात्ररूप आत्मा में नीर में जल के तुल्य ज्ञान, ज्ञाता ज्ञेयभाव के विनाश से साक्षात्कार पर्यन्त जो स्थिति यानी निर्विकल्पक समाधिरूपा स्थिति है, वह सत्वापत्ति है, क्योंकि उसमें मन परमात्मसत्व रूप से स्थित हो जाता है।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०- २५२, छ०सं० ५६
२- योगवाशिष्ठ : प्रथमो भागः, सर्ग ११८, पृ०- १५३२, छ०सं० १०
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०- २५२, छ०सं० ६०

इस भूमिका में जीव ब्रह्मवित् कहा जाता है ।

भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेऽर्थे विरतेर्वशात् ।
सत्यात्मनि स्थिति: शुद्धे सत्त्वापत्ति रुदाहृता[1] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार ही आचार्य केशव भी जब ब्रह्म के सूक्ष्म रूप के प्रकाशित होने से मन अतिशय पवित्र हो जाता है तब शुद्ध एवं सत्य हृदय में सत्त्वापत्ति का प्रकाश होना स्वीकार करते हैं ।

सूक्ष्म रूप प्रकासै ते महासुद्ध मन होत ।
सुद्ध तत्व हिय आवई, सत्त्वापत्ति उदोत[2] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार पहले वर्णित चार ज्ञानभूमियों के अभ्यास से बाह्य और आभ्यन्तर विषयाकारों से और उनके संस्कारों से असम्बन्ध रूप समाधि परिपाक से चित्त में वृद्धि को प्राप्त हुआ निरतिशयानन्द, नित्यापरोक्ष, ब्रह्मात्मभावसाक्षात्काररूप चमत्कार जिसमें उत्पन्न हुआ है, ऐसी पांचवीं ज्ञानभूमि असंसक्ति नाम की कही गई है ।

दशाचतुष्टयाभ्यासाद संसङ्गफलेन च ।
रूढसत्त्वचमत्कारात् प्रोक्ताऽसंसक्ति नामिका[3] ।।

केशवदास के अनुसार मन की सब प्रकार की आसक्ति समाप्त हो जाना तथा संसार को भ्रमपूर्ण समझने लगना ही असंशक्ति है ।

केसव सत्त्वापत्ति में छूटि जात सब संग ।
झूठो जानै जगत को असंसक्ति भू अंग[4] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार पांच भूमिकाओं के अभ्यास से आत्माराम रूप से दृढ़

१- योगवाशिष्ठ : प्रथमो भाग:, सर्ग ११८, पृ०- १५३२, श्लोक ११
२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०- २५३, छ०सं० ६१
३- योगवाशिष्ठ : प्रथमो भाग:, सर्ग ११८, पृ०- १५३३, श्लोक १२
४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०- २५३, छ०सं० ६२

स्थिति होती है। बाह्य और आभ्यान्तर पदार्थों की भावना न होने से यह भूमिका पदार्थाभाविनी कहलाती है।

भूमिकापञ्चकाभ्यासात् स्वात्मारामतया दृढम् ।
आभ्यन्तराणां बाह्यानां पदार्थानामभावनात्[1]।।

आचार्य केशव के अनुसार भी मन अपनी आत्मा में ही रमे तथा दूसरों की इच्छा को ही अपनी इच्छा समझे इसे पदार्थभावनी नामक ज्ञानभूमि कहते हैं।

रमै आत्माराम मन दुख सुख भूलहिं चित्त ।
पर इच्छा करै छठी भूमिका मित्त[2] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार पूर्वोक्त छः भूमिकाओं का बहुत दिनों तक अभ्यास होने से दूसरे के प्रयत्न से भी भेद की प्रतीति न होने से जो एकमात्र स्वरूप में स्थिति है उसे तुर्यगा नाम की गति यानी ज्ञानभूमि जानना चाहिए।

भूमिषट्कचिराभ्यासाद् भेदस्याऽनुपलम्भतः
यत् स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः[3]।।

केशव के अनुसार ज्ञान की सातवीं भूमि तुरीयावस्था है जिससे लोग जीवनमुक्त हो जाते हैं।

तुर्यावस्था सातईं जातें जीवनमुक्त ।
तातें ऊपर होति है अति बिदेहता जुक्त[4]।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार— भूनें बीज के समान बहुत से (अनेक) जन्मान्तरों से रहित जीवनमुक्त पुरुषों के हृदय में शुद्ध वासना बसती है—

१- योगवाशिष्ठ : प्रथमो भागः, सर्ग ११८, पृ०- १५३३, श्लोक १३
२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०- २५३, छ०सं० ६३
३- योगवाशिष्ठ : प्रथमो भागः, सर्ग ११८, पृ०- १५३४, श्लोक १५
४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०-२५३, छ०सं० ६४

मूर्वीबीजोपमा भूयो जन्मान्तर विवर्जिता ।
हृदये जीवन्मुक्तां शुद्धा वसति वासना[1] ।।

आचार्य केशवदास के अनुसार पवित्र वासना वाला प्राणी जीवन्मुक्त पुरुष के समान संसार में सानन्द विचरण करता है ।

ताते जीवन जीवन मुक्त सम फिरत जगत सानंद ।
चाहि तज्यों शरीर को तबहि तजै नृप चंद[2] ।।

आचार्य केशव के अनुसार एक ऐसा विलक्षण देश है जहां सदैव प्रकाश की निशा रहती है । वहां न लोभ और विरोध ही है, वहां पाखण्ड है न पाप, बल्कि पुण्य की चेतना का दर्शन होता है—

है इक देस बिलास महामति, सब देसनि ऊपर देस महाव्रति ।
सूरज सोम को अस्त उदोत न, नित्य प्रकाश निशा निसि होत न ।।
है न तहां सरिता गिरि-कूपन, भूमि अकास न सिन्धु सरूप न ।
काम क्रोध न लोभ विरोध न, दंभ न पाप, अपाप प्रबोधन[3] ।।

सम्भवत: केशव अपने इस मत में गीता की निम्न पंक्तियों से प्रभावित लगते हैं—

गीतायां : न तद्भासते सूर्यो न शशांको न पावक: ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम[4] ।।

केशव के मतानुसार विषय-वासना के मोह को त्यागकर जीवन्मुक्त पुरुषों के गुणों को ग्रहण करना चाहिए ।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टादश प्रकाश; पृ०- २६६, छ०सं० ४२
२- वही, छ०सं० ४१
३- वही, एकोनविंश प्रकाश, पृ०- २६८, छ०सं० ११, १२
४- वही, छ०सं० १३

एक संग जन संग कहावै । एक संग यह देह कहावै ।

एक बासना संग तजौ जू । जीवन मुक्त प्रभाव भजौ जू[1]।।

यहां केशव ने गीता के निम्न श्लोक से प्रभाव ग्रहण किया है ।

गीतायां यथा—

योगस्थ: कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय ।

सिद्धय-सिद्धयो: भूत्वा समत्वं योग उच्यते[2]।।

विज्ञानगीता में देवी का कथन है कि—

देवी : संग नसै जिहि भांति ज्यौं उपजै पाप अपाप ।

तिन सौं लिप्त न होहि ते ज्यौं उपलन को आप[3]।।

केशव अपने इस विचार में योगवाशिष्ठ की निम्न पंक्ति से प्रभावित हैं—

योगवाशिष्ठ : बलादपि ह्रिंसा जाता न लिम्पन्त्याशयंसत: ।

लोभ मोहादयो दोषा पयांसीव सरोरुहम्[4]।।

केशवदास ने बताया है कि दोनों प्रकार के आदेश (अधर्म को नष्ट करने तथा धर्म की स्थापना करने का आदेश) को मन में धरते हुए यदि वे (शंकर और विष्णु) नहीं मानते तो इसे ईश्वर के प्रति पूर्ण द्रोह का भाव कहा जाता है, यह एक प्रकार से ईश्वर से विद्रोह है) ।

दुहूं भांति की सासना मनोभाव भय मानि ।

जौ न मानिये सर्वथा प्रभु को द्रोह बखानि[5]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : विंशति प्रकाश, पृ०- २८६, छ०सं० १७

२- वही, छ०सं० १८

३- वही, छ०-२१८

४- वही, पृ०- २८७, छ०सं० २२

५- वही, पृ०- २८८, छ०सं० २७

यहां केशव निम्न पंक्तियों से प्रभावित है—

राजधर्म : आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनम् ।
पृथक्शय्या वरस्त्रीणामशस्त्र वध उच्यते[१] ।।

केशव के अनुसार अधिकारियों को स्वामी की आज्ञा पालन करना चाहिए ।

प्रभु को कह्यौ करै न यह अधिकारीनि अधर्म ।
तातें राखि लोक में लोकाधिप को धर्म[२] ।।

ब्रह्मनारदीये : ब्रह्म विष्णुमहेशाणां यस्यांशा: लोक साधका: ।
समाधिदेव चिद्रूपं विश्वेशं परमं भजेत[३] ।।

केशव के अनुसार—

देव दुरायौ ईस को रूप सु ताहि प्रकास ।
तेही ते संसार को ह्वैहै आसु बिनास[४] ।।

इसी प्रकार का विचार योगवाशिष्ठ में भी व्यक्त किया गया है—

ब्रह्मेन्द्र विष्णुरुद्राधा: यत्त् कर्तुं समुद्गता: ।
तदहं चिद्वपु: सर्वं करोमीत्येव भावयेत्[५] ।।

केशव के अनुसार—

एक जीव प्रबृत्ति एक निबृत्ति जानि सुजान ।
स्वर्ग सों अपवर्ग सों रति होति हेत बखान ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : विंशति प्रकाश, पृ० -२८८, छ०सं० २८
२- वही, पृ० - २८८, छ०सं० २६
३- वही, पृ० - २८८, छ०सं० ३०
४- वही, २८६, छ०सं० ३१, ३२
५- वही, पृ० - २८६, छ०सं० ३३

है कहा अपवर्ग `केसव` नित्य, संसृति लोक ।
स्वर्ग भोगानि भोगवै जगते निवृति बिलोक ।
स्वर्ग नर्कनि जात आवत को फदी हति होय ।
आइये जिहि लोक ते मन जो बिचारै कोय ।
आलिलें मरिहिं मरत अब पाछिलै परतच्छ ।
मेटिये मरिबो बखान निवृत्ति जे मति अच्छ[1] ।।

इन विचारों की पुष्टि केशव ने गीता के निम्न श्लोक से की है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम[2] ।।

केशव के मतानुसार सत्यस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति के लिए सत्संग आवश्यक है ।

एक आत्मा कहत हैं एक कहैं चित भक्त ।
इहि विधि नाना नाम जग लसत सबै अनुरक्त[3] ।।

योगवाशिष्ठ : एकमात्मपरं ब्रह्म सत्यमित्याह वै बुधः ।
कल्पनाव्यवहारार्थं तस्य संगो महात्मनः[4] ।।

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि आत्मा न कभी उत्पन्न होती है और न मरती है ।

` न जायते म्रियते वा कदाचित् ।। `

केशव के मतानुसार कौन किससे उत्पन्न हुआ है या होगा यह निश्चित नहीं है । अहंकार के नष्ट होते ही संसार उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे ज्ञानोदय

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : विंशति प्रकाश, पृ०-२८६, छ०सं० ३५-३६
२- वही, पृ०- २९०, छ०सं० ३७
३- वही, पृ०- २९५, छ०सं० ५६
४- वही, पृ०- २९६, छ०सं० ६१

होने पर समस्त भ्रम समाप्त हो जाता है।

सकल लोक र बसत है अहंकार आधार।
ताहि बसत हीं नसत ज्यों पटु प्रबोध भ्रम मार[1]।।

+ + +

कबहूं यह सृष्टि महाशिव तें सुनि। कबहूं बिधि तें कबहूं हरि ते गुनि।
कबहूं बिधि होत सरोरुह के मग। कबहूं जल अंड तें अंबर तें जग।
कबहूं धरनी पल में मय पाहन। कबहूं जलमय मृन्मै अरु कंचन।
हर तें बिधि है कबहूं बिधि तें हर। हर तें हरिजू कबहूं हरि तें हर[2]।।

इन छन्दों का आधार योगवाशिष्ठ का मुमुक्षु प्रकरण है। आचार्य केशव के अनुसार संसार का एकमात्र कारण मन है—

जग को कारन एक मन मन को जीत अजीत।
मन को मन सुनि सत्रु है मनहीं को मन मीत[3]।।

कबीर ने भी मन के सम्बन्ध में इसी प्रकार का संकेत किया है—

मन के हारे हार है मन के जीते जीत

मन सम्बन्धी अपने इस विचार में सम्भवत: केशव गीता के निम्न श्लोक से प्रभावित दिखाई देते हैं—

गीतायां : मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो:[4]।।

मन सम्बन्धी इसी प्रकार का विचार योगवाशिष्ठ में भी दिखाई देता है—

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकविंशति प्रकाश; पृ०-२९९, छ०सं० ११
२- वही, पृ०- ३००, छ०सं० १२
३- वही, पृ०- ३०१, छ०सं० १७
४- वही, ,, छ०सं० १८

योगवाशिष्ठ : मनो हि जगतां कर्ता मनो हि पुरुषः स्मृतः ।
मनः कृतं कृतं लोके न शरीरकृतं कृतम्[1] ।।

जीव और ब्रह्म के बीच सम्बन्ध के विषय में केशव लिखते हैं—

जीव सों चिद्रूप सों इतनो सु अन्तर जानि ।
बिस्नु सों अरु जीव सों तितनो महामति मानि ।
जीव सों मन सों तितो मन सों बिकल्पनि जानि ।
कल्प सों अरु सृष्टि सों तितनो बिसेष बखानि[2] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार ब्रह्म और जीव में अन्तर नहीं है—

भेदो यथानास्ति चिदात्म जीवयो ।
स्तथैव भेदोऽस्ति न चित्त जीवयोः[3] ।।

केशव के मतानुसार ब्रह्म की जितनी सगुण लीलाएं हैं उनका मूल कारण यह मन और माया है—

जितनी लीला सगुन की ताकों यहै निदानु ।
निर्गुन ईस बिचार में ना जग ना मन मानु ।।
क्रम-क्रम सब कों छांडियो ममता प्रभु भक्तियुक्त ।
अहंकार परिहार कै हूजै जीवन मुक्त[4] ।।

उसी चित्त को चेत, मन, माया और प्रकृति नामों से पुकारा जाता है ।

चित्तं चेतो मनोमाया प्रकृतिश्चेतिनामभिः ।
परः स्यात्कारणं देव मनः प्रथममुत्थितम्[5] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकविंशति प्रकाश, पृ०- ३०२, छ०सं० २६
२- वही, पृ०- ३०४, छ०सं० ३०
३- वही, ,, छ०सं० ३१
४- वही, ,, छ०सं० ३२, ३३
५- वही, ,, छ०सं० ३४

आचार्य केशव ने जीवन्मुक्त विदेह तीन प्रकार के माने हैं—

> जीवन मुक्त विदेह के सुनि प्रभु तीन प्रकार ।
> तिन्है सुनेंतें होयगो प्रगट प्रबोध अपार ।।
>
> होहु महाकर्ता प्रथम महाभोक्ता होहु ।
> महा सुत्यागी होहु पुनि सिगरे जग में सोहु[१]।।

आचार्य केशव के अनुसार साधन रूप भगवान की भक्ति की कृपा से जीव जीवन्मुक्त हो जाता है और भगवान के रूप में मिल जाता है—

> जैसे भट साजि सैन हाथ लै हथ्यार रन
> मारे मारे अरिगन जीति जीतैं मन कौं ।
> मारतंड मंडल को भेदत अखंडमति
> भूलि जात पुत्र मित्र सब देव गन कौं ।
> तैसें सतसंग श्रद्धा बिबेक बैराग बुद्धि
> छांड़ि धरै बेदसिद्धि से साधन कौं ।
> ' केसौदास ' हरि की भगति के प्रसाद भयो
> जीवन मुकुत मिलि आनंद के घन कौं[२] ।।

गीता में अर्जुन से श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो सर्वत्र मुझको देखता है और मेरे लिए सबको देखता है, उसको मैं नष्ट नहीं करता—

> यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
> तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति[३]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकविंशति प्रकाश; पृ०- ३०६,छं०३८-३९

२- वही, पृ०- ३०८, ३०९, छं०सं० ४५

३- वही, पृ०- ३१०, छं०सं० ५०

विज्ञानगीता में जहां केशव ने ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की वकालत की है और सगुण रूप की उपासना को निरर्थक बताया है—

कौन सौं कहत देव कौन कौं सिखावौं सेव,
जारे को सो बास मूल मलिन धवल है ।
सेषधर नागधर नागमुख ब्रह्म बिस्नु,
इनको कलेवर तौ काल को कवल है[1]।।

वहीं रामचन्द्रिका में उन्होंने राम के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार किया है—

राम सदा तुम अन्तरजामी । लोक चतुर्दश के अभिरामी ।
निर्गुण एक तुम्हें जग जानै । एक सदा गुणवन्त बखानै[2]।।

केशव के राम एक साथ ही निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को धारण करने में समर्थ हैं । एक ओर जहां न तो उनका आदि है न अन्त है, न तो उनका कोई रूप है न रंग है केवल वे ज्योति रूप में ही संसार में विराजमान है, दूसरी ओर वे ही ब्रह्म, विष्णु और शिव रूप में जगत की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं—

ज्योति जगै जग मध्य तिहारी । जाइ कही न सुनी न निहारी ।
कोउ कहै परिणाम न ताको । आदि न अन्त न रूप न जाको ।।
तुम ही गुण रूप गुणी तुम ठाए । तुम एक ते रूप अनेक बनाये[3]।।

ये ही राम रजोगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मा के रूप में संसार की रचना करते हैं, सतोगुण का आश्रय लेकर वह विष्णु नाम से समस्त संसार की रक्षा करते हैं ।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : पंचदश प्रकाश, पृ०-२०६, छं०सं० ४०
२- रामचन्द्रिका : २०वां प्रभाव, पृ०-२११, छं०सं० १६
३- वही, पृ०-२११, छं०सं० १७

और वे ही तमोगुण का आश्रय लेकर रुद्र के रूप में जगत का नाश करते हैं। जगत का अस्तित्व उसी में है और वही जगत रूप में व्यक्त हो रहे हैं।

> एक है जु रजोगुण रूप तिहारो। त्यहि सृष्टि रची बिधि नाम बिहारो
> गुण सत्व धरे तुम रक्षत जाको। अब विष्णु कहै सिगरो जग ताको।।
> तुम हो जग रुद्र स्वरूप संहारो। कहिए तिन मध्य तमोगुण भारो[1]।

यहां पर आचार्य केशव रामानन्दी सम्प्रदाय से प्रभावित दिखाई देते हैं। इसके विपरीत—

> 'तुम हो जग हो जग है तुम ही में'[2]

कहकर शंकर के अद्वैतवाद को भी स्वीकार करते हैं। एक ओर केशव राम के चरणों में लीन होने की बात कहते हैं।

> जग जिनको मन तव चरण लीन।
> तन तिनको मृत्यु न करति हीन[3]।।

जो राम के चरणों की सेवा करता है उसे मृत्यु का भय नहीं रह जाता। दूसरी ओर केशव नाथपंथियों की योगसाधना और प्राणायाम को ईश्वर प्राप्ति रूपी अपूर्व आनन्द की प्राप्ति का साधन मानते हैं—

> जो चाहै जीवन अति अनंत।
> सो साधै प्राणायाम यंत
> शुभ रेचक पूरक नाम जानि।
> अरु कुम्भकादि सुखदानि मानि।

१- रामचन्द्रिका : बीसवां प्रभाव, पृ०- २११,२१२, छ०सं० १८, १९

२- वही, पृ०- २१२, छ०सं० २०

३- वही, पचीसवां प्रभाव, छ०सं० २२

जो क्रम-क्रम साधै साधु धीर ।
सो तुमहिं मिलै याहीं शरीर[1] ।।

और अन्त में केशव राम नाम की महिमा बताते हुए उसे ईश्वर की प्राप्ति के लिए सब साधनों में उत्तम साधन बताते हैं—

सबको साधन एक जग राम तिहारो नाम[2] ।।

केशव ने सगुणोपासकों की तरह उस परब्रह्म की पूजा करने की बात को भी स्वीकार किया है परन्तु निर्गुणोपासकों के आश्रय से । तात्पर्य यह है कि केशव की पूजा वाह्य पदार्थों से न होकर आन्तरिक है । अपनी इस मान्यता को केशव ने 'रामचन्द्रिका' और 'विज्ञानगीता' दोनों ग्रन्थों में स्वीकार किया है—

सुद्ध स्वभाव के नीर न्हावै । पूरन प्रेम सुगंधहि लावै ।
मूल चिदानंद फूलनि पूजै । और न केसव पूजन दूजै[3] ।।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि केशव किसी विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्त से प्रभावित नहीं हैं । क्योंकि एक ओर जहां केशव शंकर के अद्वैतवाद से प्रभावित है वहीं दूसरी ओर रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से । कहीं वे चार्वाक के अनात्मवादी दर्शन की वकालत करते हैं तो कहीं 'सकल शक्ति अनुमानिये अद्भुत ज्योति प्रकाश' कहकर निर्गुणोपासना की । कहीं वे सगुणोपासकों से प्रभावित होकर पूजा, दान, ब्राह्मण सेवा आदि की बात कहते हैं तो कहीं नाथपंथियों की योगसाधना की । कहीं वे सब साधनों में उत्तम राम के नाम की महिमा बताते हैं । अतः यह कहा जा सकता है कि केशव ने सभी

१- रामचन्द्रिका : पचीसवां प्रभाव, छ०सं० २३-२४
२- वही, छ०-४०
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : पंचदश प्रभाव, पृ०-२१०, छ०सं०५५

दार्शनिक विचारों को एक साथ समन्वित करके एक नये सूत्र में पिरोने का प्रयत्न किया है ।

विज्ञानगीता और प्रबोध चन्द्रोदय :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ` विज्ञानगीता ` को संस्कृत में लिखित कृष्ण मिश्र कृत ` प्रबोध चन्द्रोदय ` का अनुवाद मात्र बताया है । वास्तव में ` विज्ञानगीता ` अनुवाद न होकर रूपक शैली में रचित ` प्रबोध चन्द्रोदय ` का रूपान्तर है । ` विज्ञानगीता ` प्रबोध चन्द्रोदय के आधार को ग्रहण करते हुए भी बहुत कुछ उससे भिन्न है । प्रथम भिन्नता तो यही लक्षित होती है कि जहां ` प्रबोध चन्द्रोदय ` नाट्य शैली का अभिनेय ग्रन्थ है, वहीं ` विज्ञानगीता ` प्रबन्ध शैली की एक सरस काव्य रचना है । यद्यपि इसमें प्रबन्धात्मकता के सभी गुण नहीं मिलते फिर भी इसे नाटक की कोटि में नहीं रखा जा सकता । हां, यह अवश्य कहा जा सकता है कि इसमें नाटकीय तत्वों की (यथा, संवादों की) सुष्ठु- योजना, आद्योपान्त मिलती है । इस रचना का प्रतिपाद्य प्रतीक पद्धति द्वारा दार्शनिक विचारों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है । ` प्रबोध चन्द्रोदय ` की तुलना में केशव की `विज्ञानगीता` का कथानक अधिक काव्यात्मक और सरस है । स्थूल रूप में दोनों ग्रन्थों की कथावस्तु में पर्याप्त अन्तर है । इसके कई कारण हैं । प्रथम तो ` प्रबोधचन्द्रोदय ` नाटक है और ` विज्ञानगीता ` एक काव्य ग्रन्थ है । जहां नाटककार को कुछ बन्धन में रहना पड़ता है वहां कवि स्वतन्त्र होता है । रंगमंच पर सुगमतापूर्वक न दिखलाई जाने वाली बातों, जैसे- युद्ध, विवाह आदि की न नाटककार केवल सूचना- मात्र ही देता है । किन्तु कवि इनका भी विस्तार के साथ वर्णन कर सकता है । इस स्वतन्त्रता का उपयोग करते हुए

केशव ने महामोह के अनेक द्वीपों और देशों को जीतने एवं महामोह और विवेक के युद्ध का बड़ा ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, जिसका ' प्रबोधचन्द्रोदय ' में अभाव है। दूसरे, केशव ने ' प्रबोधचन्द्रोदय ' के कुछ ऐसे दृश्यों को जानबूझ कर उल्लेख नहीं किया है, जिनको छोड़ देने से मूल कथा के विकास में कोई अन्तर नहीं आता। तीसरे, नवीनता की भावना से प्रेरित होकर कथानक में बहुत सी बातें केशव ने अपनी ओर से भी जोड़ दी है, जिनका आधार उक्त नाटक न होकर ' योगवाशिष्ठ ', ' भागवत, ' ' गीता ' आदि ग्रन्थ हैं। ज्ञानचर्चा के प्रसंग में उल्लिखित गाधि-ऋषि, राजा शिखिध्वज व्यासपुत्र शुकदेव, प्रह्लाद, बलि आदि के आख्यानों एवं ज्ञान- अज्ञान की भूमिकाओं के वर्णन का सन्निवेश ' योगवाशिष्ठ ' नामक ग्रन्थ के आधार पर किया गया है। सूक्ष्म ब्यौरों के अन्तर्गत कुछ अन्य स्थलों पर भी ' योगवाशिष्ठ ' के दार्शनिक सिद्धान्तों की छाप दिखलाई देती है, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जाएगा। कहीं-कहीं ' विज्ञानगीता ' के विचार ' गीता ' और ' भागवत ' के दार्शनिक विचारों से भी मेल खाते हैं। ब्राह्मणों की पूज्यता का निरूपण तथा नवधा भक्ति का प्रतिपादन ' भागवत ' के समान किया गया है।

मन और उसकी दशाओं का विवेचन ' गीता ' के अनुकरण पर हुआ है। ' विज्ञानगीता ' की रचना करते समय केशव के मस्तिष्क में ' गीता ' और ' भागवत ' के सिद्धान्त विद्यमान थे, जिसकी पुष्टि ' विज्ञानगीता ' के दोहे से हो जाती है।

कहे भागवत में असम, गीता कहे समान।
अप्रमान कौनहिं करौं, कौनहिं करौं प्रमान[१]।।

---

१ आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकोनविंश प्रकाश, पृ०-२७५, छं०सं० ३५

केशव की कथावस्तु ` प्रबोध चन्द्रोदय ` की अपेक्षा अधिक नाटकीय ढंग से प्रारम्भ होती है। वीरसिंह के प्रश्न के अतिरिक्त शिव-पार्वती संवाद भी केशव ने अपनी ओर से जोड़ा है। केशव ने नाटक में दिए हुए राजा ` विवेक ` तथा ` मति ` के संवाद को छोड़ दिया है। इस अंश का उल्लेख न करने से कथा के विकास में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती है। द्वितीय प्रभाव में काम और रति के कथोपकथन का आधार तो नाटक (अंक १, पृ०-२३-२८) है, किन्तु कलि अथवा कलह तथा दिल्ली नगरी की कल्पना केशव की अपनी है। विज्ञानगीता में केशव के कामदेव रति के प्रति कहते हैं कि—मेरे निकट तुम्हें बन्धु विरोध की स्थिति ज्ञात है अतः शुद्ध और दयालु हृदय वाले लोगों में प्रबोधोदय कैसे हो सकता है।

देव दनुज सिद्ध मनुज संजम ब्रत धारहीं।
वेद बिहित धर्म सकल करि-करि मनुहारहीं।
मोहि निकट तोहि प्रगट बंधु अरु बिरोध को।
सुद्ध सदय उदय हृदय होय क्यों प्रबोध को[1] ।।

उपर्युक्त छन्द प्रबोधचन्द्रोदय के निम्न श्लोक का भावानुवाद प्रतीत होता है—

रम्यं हर्म्यतलं नवाः सुनयना गुञ्जद्विरेफा लताः
प्रोन्मीलन्नवमल्लिकाः सुरभयो वाताः सचन्द्राः क्षपाः।
यद्येतानि जयन्ति हन्त परितः शस्त्राण्यमोघानि मे
तद्भोः कीदृगसौ विवेक विभवः कीदृक्प्रबोधोदयः[2] ।।

विज्ञानगीता में रति कामदेव से कहती है कि महामोह से बड़ा विवेक है।

प्राननाथ सुनि प्रेम सों, जग जन कहत अनेक।
महामोह नृपनाथ कौं, सुनियत बड़ो बिबेक[3] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वितीय प्रकाश, पृ०-३७, छ०सं० ६

२- प्रबोधचन्द्रोदयम् : प्रथमोऽङ्कः ; पृ०- २४, श्लोक १२

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वितीय प्रकाश, पृ०-३७, छ०सं० ८

प्रबोधचन्द्रोदय में भी रति ने कामदेव को यही तर्क दिया है—

अज्जउत्त, गुरुओ क्खु महाराअमहामोहस्स पडिवक्खो विवेओ त्तिसक्केमि[१]।

विज्ञानगीता की रति को कामदेव के विजयी होने में शंका है—

सब बिधि जद्यपि सर्वदा, सुनियत प्रिय यह गाथ।

बहु सहाय संपन्न अरि, संकनीय है नाथ[२] ।।

उपर्युक्त पंक्तियां प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों का छायानुवाद है—

अज्जउत्त, एव्वं णेदं। तहवि महासहावसंपण्णो संकिदव्वो अरादी। जदो अस्स जमणिअमप्पमुहा अमच्चा महाबला: सुणी अन्दि[३]।

विज्ञानगीता में रति कामदेव से कहती है—

सैतत मोह बिबेक को सुनियत एकै बंश[४]

ठीक इसी प्रकार का प्रश्न प्रबोधचन्द्रोदय में भी रति ने किया है—

अज्जउत्त, सुदं मए तुआणं विवेअसमदमप्पहुदीणं च एक्वं उप्पत्तित्थाणं ति[५]।

विज्ञानगीता में कामदेव रति के प्रश्नों का उत्तर देते हैं—

बंस कहा गजगामिनी, एकै पिता प्रसंस ॥

ईस माय बिलोकि कै उपजाइयो मन पूत।

सुन्दरी तिहि द्वै करी - तिहि ते त्रिलोक अभूत।

एक नाम निबृत्ति है जग एक प्रबृति सुजान।

बंश द्वै ताते भयौ यह लोक मानि प्रमानि[६]।।

---

१ - प्रबोधचन्द्रोदयम् : प्रथमोऽङ्क:, पृ० - २४

२ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वितीय प्रकाश, पृ० -३८, छ० - ६

३ - प्रबोधचन्द्रोदयम् : प्रथमोऽङ्क:; पृ० - २६

४ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वितीय प्रकाश, पृ० -३८, छ० ११

५ - प्रबोधचन्द्रोदयम् : प्रथमोऽङ्क:, पृ० - २८

६ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वितीय प्रकाश, पृ० -३६, छ० - ११-१२

उपर्युक्त पंक्तियां प्रबोध चन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों की छायानुवाद हैं—

कामः— आः प्रिये, किमुच्यत एकमुत्पत्तिस्थानमिति । ननु जनक एवास्माकमभिन्नः । तथाहि—संभूतः प्रथममहेश्वरस्य सङ्गान्मायायां मन इति विश्रुतस्तनूजः ।

त्रैलोक्यं सकलमिदं विसृज्य भूयस्तेनाथो जनितमिदं कुलद्वयं नः

तस्य च प्रवृत्तिनिवृत्ती द्वे धर्मपत्न्यौ तयोः प्रवृत्त्यां समुत्पन्नं महामोहप्रधानमेकं कुलम् । निवृत्त्यां च द्वितीयं विवेकप्रधानमिति[1]।

तृतीय प्रभाव में वर्णित दम्भ और अहंकार के कथोपकथन का आधार नाटक (अंक २, पृ०-५०— ६८) है । केशव का दम्भ, अहंकार को दिल्ली नगरी में यमुना पार करते देखता है—

कलह गये तब वेगही, बासर के आरम्भ ।

कालिंदी सरिताहि को, उतरत देख्यौ दंभ[2] ।।

परन्तु प्रबोधचन्द्रोदयकार के दम्भ ने उसे वाराणसी में ही भागीरथी पार करते देखा है ।

` विलोक्य कोऽप्ययं पान्थो भागीरथीमुत्तीर्य साम्प्रतमित एवाभिवर्तते[3] ।`

पेट का वर्णन केशव के निजी हैं । ` प्रबोधचन्द्रोदय ` में इसका वर्णन नहीं हुआ है ।

विज्ञानगीता में अहंकार कहता है—

१- प्रबोधचन्द्रोदय : प्रथमोऽङ्कः : पृ०- २८, श्लोक १७

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश, पृ०- ४३, छ०सं० ५

३ - प्रबोधचन्द्रोदय : अध्याय २, पृ०- ५२

कबहूं न सुन्यौ कहूं गुरु कौ कह्यौ उपदेस ।

अज्ञ जज्ञ न भेद जानत धर्म कर्म न लेस ।।

स्नान दान सयान संजम जोग जाग संजोग ।

ईस तत्व न गूढ़ जानत मूढ़ माथुर लोग[१]।।

प्रबोधचन्द्रोदय में अहंकार कहता है—

नैवाश्रावि गुरोर्मतं न विदितं कौमारिलं दर्शनं

तत्वज्ञानमहो न शालिकगिरां वाचस्पतेः का कथा

सूक्तं नापि महोदधेरधिगतं माहाव्रती नेक्षिता

सूक्ष्मा वस्तु विचारणा नृपशुभिः स्वस्थैः कथं स्थीयते[२]

केशव ने " विज्ञानगीता " में मथुरा के चौबों के पाखण्ड का वर्णन निम्न शब्दों में किया है—

वेद भेद कछू न जानत घोष करत कराल

अर्थ कौ न समर्थ पाठ पढ़ै मनोसुकबाल

भीख काज जती—भये तजि लाज मुंडे मुंड

शास्त्र कौ अति करत व्याकुल बादि पंडित कुंड[३]।।

उपरोक्त छन्द प्रबोधचन्द्रोदय के निम्न पंक्तियों का अनुवाद है—

एते तावदर्थावधारणविधुराः स्वाध्यायाध्ययनमात्रनिरता वेदविप्लावका एव।एते च भिक्षामात्रगृहीतत्यक्त्रिता मुण्डितमुण्डाः पण्डितंमन्या वेदान्तशास्त्रं व्याकुलयन्ति[४]।

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश, पृ० -४३, छं० -७

२ - प्रबोधचन्द्रोदयम् : द्वितीयोऽङ्कः, पृ० -५३, श्लोक ३

३ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश, पृ० -४३, छं० - ८

४ - प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीयोऽङ्कः, पृ० - ५४, छं० -

केशव ने शैव लोगों के व्यापारों का वर्णन विज्ञानगीता में किया है—

मेखला मृग-चर्म सुजुत अक्षमाल बिसाल ।
भस्म भाल दिये त्रिपुंड्र मुष्टिके कुसजाल ।
ठौर ठौर विराजही मठपाल जुक्त कुतर्क ।
घोष एक कहो रहयौ इन संग ते बहु नर्क[१] ।।

शैव लोगों के यही लक्षण प्रबोधचन्द्रोदय में निम्न शब्दों में वर्णित है—

तदेतद्वार्ताश्रवणमपि गुरुतरदुरितोदयाय । एते च शैव पाशुपतादयो दुरभ्यस्तापापादमता: पशव: पाषण्डा: । अमीषां संभाषणादपि नरा नरकं यान्ति । तदेते दर्शनपथाद्दूरत: परिहरणीया: ।

गङ्गातीर तरङ्गशीतल शिलाविन्यस्तभास्वद्वृषी—
संविष्टा: कुशमुष्टिमण्डितमहादण्डा: करण्डोज्ज्वला: ।
पर्यायग्रथिताक्षसूत्रवलय प्रत्येक बीजग्रह—
व्यग्राग्राङ्गुलयो हरन्ति धनिनां वित्तान्यहो दाम्भिका:[२] ।।

विज्ञानगीता में जब दम्भ अहंकार से मिलने जाता है तो अहंकार का शिष्य दम्भ को पैर धोकर अन्दर आने के लिए कहता है—

दंभहि देखि गयो जब नीरे । कुंहति सो बरज्यो मति धीरे ।
दूरि रहो धीरज धरो । पांय पखारी इहां पग धारो[३] ।।

बिलकुल इसी तरह का आदेश प्रबोधचन्द्रोदय में भी बटु ने दिया है—

बटु:-(ससंभ्रमम्) ब्रह्मन्, दूरत एव स्थीयताम् ।
यत: पादौ प्रक्षाल्य एतदाश्रमपदं प्रविष्टव्यम्[४] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश,पृ०-४१,छ०सं० ८
२- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ०-५५, श्लोक ५
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : पृ०-४४, छ०सं० ११
४- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ०- ५७

' प्रबोधचन्द्रोदय ' में अहंकार ने तुरुष्क देश के लोगों के आचरण का वर्णन निम्न शब्दों में किया है—

अहंकार:-(सक्रोधम्) आ: पाप, तुरुष्कदेशं प्राप्ता: स्म: यत्र श्रोत्रियानतिथीनासन पद्यादिभिरपि गृहिणो नोपतिष्ठन्ति[१]।

उपर्युक्त पंक्तियों का अनुवाद केशव ने निम्न शब्दों में किया है—

जानत हौं दिल्ली पुरी, तुरुक बसत सब ठांउ ।
अतिथिनि को दीजत ने जहं आसन अर्घ सुभाउ[२]।।

' विज्ञानगीता ' में अहंकार का शिष्य कहता है कि बुद्धिमान पुरुष अपरिचित व्यक्ति की पूजा (सम्मान) कैसे कर सकता है—

कुल सील न जानिये कोविद जाको ।
कहि क्यों करि आवत अर्चन ताको[३]।।

प्रबोधचन्द्रोदयकार ने भी बटु के द्वारा इसी प्रकार का प्रश्न निम्न शब्दों में पूछा है—

बटु: स्वमाराध्यपादा आज्ञापयन्ति । दूरदेशादागतस्यार्यस्य कुलशीलादिः न सम्यगस्माकं वेदितव्यम्[४]।

अहंकार ने विज्ञानगीता में अपना परिचय निम्न शब्दों में दिया है—

मायापुरी इक पावनी जग गौड़ देस समृद्ध ।
माता पिता मम धर्म संजुत लोक लोक प्रसिद्ध ।।

१- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक; पृ०- ५८

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : पृ०- ४५, छ०सं० १२

३- वही, छ०सं० १३

४- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ०- ५८

जाए सुपुत्र अनेक में तिनमें सुविद्ध हि जुक्त ।

विस्वंभरापर देस दक्षिन जानि जीवन मुक्त[1]।।

ठीक ऐसा ही परिचय ' प्रबोधचन्द्रोदय ' के अहंकार ने भी दिया है—

गौडं राष्ट्रमनुत्तमं निरुपमा तत्रापि राढापुरी

भूरिश्रेष्ठकनाम धाम परमं तत्रोत्तमो न: पिता ।

तत्पुत्राश्च महाकुला न विदिता: कस्यात्र तेषामपि

प्रज्ञाशील विवेक धैर्य विनयाचारैरहं चोत्तम:[2]।

अहंकार के शिष्य ने दम्भ को दूर बैठने का आदेश दिया क्योंकि—

बटु: - दूरे तावत्स्थीयताम् । वाताहता: प्रस्वेदकणिका: प्रसरन्ति[3]।

इन पंक्तियों का अनुवाद केशव ने इस प्रकार किया है—

शिष्य— बैठि दूरि द्विज जनि छुवो, गुरु को आसन मूल

परसि तुम्हारो बात, पथिक प्रगट प्रस्वेद कन ।

जग स्वामी को गात, ज्यौं न छुवै त्यौं बैठियै[4]।।

प्रबोधचन्द्रोदय में बटु ने अहंकार की श्रेष्ठता का वर्णन इस प्रकार किया है—

बटु:—अस्पृष्टचरणा ह्यस्य चूडामणि मरीचिभि:

नीराजयन्ति भूपाला: पादपीठान्तभूतलम्[5]

इन पंक्तियों का छायानुवाद केशव ने निम्न शब्दों में किया है—

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश, पृ०-४५, छ०सं० १४

२- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ०-५८, श्लोक ७

३- वही, पृ०- ५६

४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश, पृ०-४६, छ०सं० १६

५- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ०- ५८, छ०सं० ८

प्रभु को करत प्रनाम जब, देव देव मुनि भाल ।

छ्वै न सकत आसन छिती, मुकुट मनिन की माल[1]।।

` प्रबोधचन्द्रोदय ` में जब दम्भ और लोभ अहंकार के पैर छूते हैं तो अहंकार उनसे कुशल क्षेम निम्न शब्दों में पूछता है—

अहंकार:— वत्स, आयुष्मानभव । बाल: खल्वसि मया द्वापारान्ते दृष्ट: । संप्रति चिरकालविप्रकर्षाद्वार्धक्यग्रस्ततया च न सम्यक्प्रत्यभिजानामि । अथ त्वत्कुमारस्यानृतस्य कुशलम्[2]?

इन पंक्तियों का भावानुवाद केशव ने निम्न शब्दों में किया है ।

दंभ लोभ- सुत हंसि गहे, अहंकार के पाय ।

अहंकार आसिष दई, सोभन सुखद सुभाय[3]।।

पुत्र अनृत- जुत कुसल हौ, बीत्यौ काल अपार[4]।

` प्रबोधचन्द्रोदय ` में दम्भ ने अपने आने का कारण निम्न शब्दों में वर्णित किया है—

दम्भ: — आर्य, ननु विवेकोपरोध एव । तथाहि विद्याप्रबोधोदय जन्म भूमिर्वाराणसी ब्रह्मपुरी निरप्ययां । असौ कुलोच्छेद विधिं चिकीर्षु- र्निर्विस्तुमत्रेच्छति नित्यमेवम्[5]।।

इन पंक्तियों का भावानुवाद केशव ने निम्न शब्दों में किया है—

बारानसी सुनियै बढ़्यौ बहुधा विवेक विचार ।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश, पृ० - ४६, छं०सं० १७

२- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ० - ६१

३ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश, पृ० -४७, छं०सं० २०

४- वही, पृ० -४८

५- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ० - ६३, श्लोक १२

विज्ञान को तिनते कहैं, सब होइगो अवतार।
सोई प्रवृत्ति असेष बस बिनास हेतु सुभाउ।
ताके बिसेष बिलोप कारज आइहै इहि गांव[1]।।

`प्रबोधचन्द्रोदय` का अहंकार जब यह सुनता है कि काशी में प्रबोधोदय को रोकना है तो उसे इस कार्य के पूरा होने में शंका उत्पन्न होती है—

अहंकार: —(सभयम) यद्यप्येवमशक्यप्रतीकार एवायमर्थ:।
यत: —परममविदुषां पदं नराणां पुर विजयी करुणाविधेयचेता:।
कथयति भगवानिहान्तकाले भवभय कातरतारकं प्रबोधम्[2] ।।

ठीक इसी प्रकार की शंका केशव के अहंकार ने भी की है—

अहंकार : भागीरथी जहं कासी है केसव ` साधुन को जहं पुंज लसै रे।
संतत एक विवेक सों बेदबिचारन सों जहं जीव कसै रे,
तारक मंत्र के दायक लायक आपु जहां जगदीश बसै रे।
साधन सुद्ध समाधि जहां तहां कैसे प्रबोध उदोत नसै रे[3] ।।

पंचम प्रभाव में नाटक (अंक २ पृ० – ६१ – ६४) का आधार तो है पर वर्णन कुछ बदले गये हैं। जहां केशव की `मिथ्यादृष्टि,` `महामोह` को `श्रद्धा` को पाखण्ड के अर्पण करने का परामर्श देती है वहां कृष्णमिश्र का `महामोह` स्वयं विचारता है कि यदि `श्रद्धा` को `शान्ति` से अलग कर दिया जाय तो `शान्ति` विगलित हो जाएगी। `मिथ्यादृष्टि` के राजसी ठाट-बाट और वैभव का विशद वर्णन तथा वाराणसी के पापियों एवं पुण्यात्माओं के वर्णन केशव ने अपनी ओर से जोड़े हैं। इस प्रकार का

---

१ – आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश, पृ० –४८, छ०सं० २४
२ – प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ० –६४, श्लोक १३
३ – आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रकाश, पृ० – ४६, छ०सं० २५

वर्णन 'प्रबोधचन्द्रोदय' में नहीं मिलता है। षष्ठ प्रभाव केशव की मौलिक उद्भावना का परिचायक है। इसमें गंगा, शिव, वाराणसी तथा मणिकर्णिका के माहात्म्य का वर्णन किया गया है, जो नाटक में नहीं मिलता है।

सप्तम प्रभाव में 'महामोह,' 'महाभैरवी' को बुलाकर उसे समझाता है कि वह 'श्रद्धा' को 'पाखण्ड' के हाथों में सौंप दे। इसके अनन्तर महामोह सभा में पहुंचता है और वहां क्या देखता है कि 'चार्वाक' अपने शिष्यों को नास्तिक विचारों का उपदेश दे रहे हैं। 'चार्वाक' और शिष्य तथा 'चार्वाक' और 'महामोह' की बातचीत अधिकांश नाटक (अंक २, पृ० - ७१ - ७७) से मिलती है। इस प्रसंग में मौलिक अंशों की उद्भावना प्रायः नहीं की गई है। कलि की अवतारणा केशव ने अपनी ओर से की है। नाटक में 'चार्वाक', 'कलि' का नाम तो लेता है पर उसमें उतना विस्तार नहीं है जितना 'विज्ञानगीता' में किया गया है।

'तदत्र हेतुर्न कलिर्न चाप्यहं प्रभो'[१]

प्रबोधचन्द्रोदय में चार्वाक का शिष्य चार्वाक से कहता है—

शिष्यः — आचार्य, यद्येष एव परमार्थः पुरुषस्य यत्खाद्यते पीयते। तर्हि किमित्येतैस्तीर्थैः संसारसौख्यं परिहृत्यात्मा घोरघोरतरैः पराक सान्तपन षष्ठ-कालाशनप्रभृतिभिर्दुःखैः कस्मात्क्लिश्यते[२]।

केशव ने इन पंक्तियों का अनुवाद निम्न शब्दों में किया है—

शिष्य— सांचो जो है जग खैबो रु पीबो।
तौ यह झूठ तपोबल पैबो[३] ।।

---

१ - प्रबोधचन्द्रोदय : अंक २, श्लोक २५, पृ० - ७६

२ - वही, पृ० - ७२ - ७३

३ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तम् प्रकाश, पृ० - ८७, छ० - ६

प्रबोधचन्द्रोदय में चार्वाक के शब्द हैं—

चार्वाकः — धूर्त प्रणीतागमप्रतारितानामाशामोदकैरियं तृप्तिर्मूर्खाणाम् । पश्य पश्य—

क्वालिङ्गनं भुजनिपीडितबाहुमूलं
भुग्नोन्नतस्तन मनोहरमायताक्ष्याः ।
भिक्षोपवासनियमार्कमरीचिदाहै—
र्देहोपशोषणविधिः कुधियां क्व चैषः[1] ॥

केशव के चार्वाक के शब्द हैं—

हास बिलास बिलासनि सौं भिलि लोचन लोल विलोकन रूरे ।
भांतिनि भांतिनि के परिरंभन निर्भय राग बिरागनि पूरे ।
नागलता दल रंग रंगे अधरामृत पान कहावत सूरे ।
केसवदास कहा ब्रत संजम संपति मांझ बिपत्तिन कूरे[2] ॥

'प्रबोधचन्द्रोदय' में चार्वाक का शिष्य कहता है—

शिष्यः — आचार्य, एवं खलु तीर्थिका आलपन्ति यद् दुःखमिश्रितं संसार सुखं परिहरणीयमिति[3]।

विज्ञानगीता में भी चार्वाक के शिष्य का ऐसा प्रकार का कथन है—

शिष्य — तीरथ बासी यह कहत, तजत त्रियन के साथ ।
कलुषनि मिश्रित विषय सुख, त्याजनीय है नाथ[4] ॥

'प्रबोधचन्द्रोदय' में चार्वाक महामोह से कलियुग का वर्णन करता हुआ

---

१ - प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ० - ७३, श्लोक २२
२ - आचार्य केशव कृत विज्ञानगीता : सप्तम प्रकाश, पृ० -८७, छं०सं० ७
३ - प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ० - ७४
४ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तम प्रकाश, पृ० - ८७, छं०सं० ८

कहता है—

चार्वाक : — देव

व्यतीतवेदार्थपथ: प्रथीयसीं यथेष्टचेष्टां गमितो महाजन:

तदत्र हेतुर्न कलिर्न चाप्यहं प्रभो: प्रभावो हि तनोति पौरुषम

तत्रोत्तरा: पथिका: शास्त्राणि त्रयीमेव त्याजिता: । शमद—

मादीनां कैव कथा । अन्यत्रापि प्रायशो जीविकामात्रफलैव त्रयी ।

यथाह्याचार्य: ।

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।

प्रज्ञापौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पति:[1] ।।

इसी प्रकार का वर्णन विज्ञानगीता में भी निम्न पंक्तियों में मिलता है—

ब्राह्मण बेचत वेदनको सुमलेच्छ महीप को सेव करै जू ।

क्षत्रिय दंडत है परजा अपराध बिना द्विज बृत्ति हरैं जू ।

छांड़ि दयौं क्रय- बिक्रय बैस्यनि क्षत्रिन ज्यों हथियार धरैं जू ।

पूजत सूद्र सिला धनु चोरत चित्त में राजनको न डरैं जू[2] ।।

प्रबोधचन्द्रोदय में विष्णुभक्ति के सम्बन्ध में चार्वाक का कथन है—

अस्ति विष्णुभक्तिर्नाम महाप्रभावा योगिनी । सा :

तु कलिना यद्यपि विरलप्रचारा कृता तथापि तदनुगृहीता न्वयमालोकयितुमपि

न प्रभवाम: । तदत्र देवेनाप्यवधातव्यमिति[3]

विज्ञानगीता में चार्वाक के स्थान पर कलियुग स्वयं कहता है—

१- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ०- ७६, श्लोक २५

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तम प्रकाश, पृ०-८६, छं०सं० १४

३- प्रबोधचन्द्रोदय : द्वितीय अंक, पृ०- ७६- ७७

विष्णु भक्ति जग में करी, जद्यपि बिरल प्रचार।
तदपि सांति श्रद्धा सखी, तजति न प्रेम प्रकार[1]।।

अष्टम प्रभाव का आधार नाटक (अंक ३) ही है। संन्यासी की कथा, नारी वेश, सती, वृन्दादेवी आदि की कथा केशव ने अपनी ओर से जोड़ दिए हैं।

केशव की `शान्ति` पाखण्डियों के स्थानों में `श्रद्धा` की खोज न मिलने पर प्राणोत्सर्ग करने को उद्यत होती है, किन्तु कृष्णमिश्र की `शान्ति` पाखण्डियों के स्थलों को देखने के पूर्व ही चिता में जल मरने को उत्सुक होती है। नाटक में वर्णित तामसी तथा राजसी `श्रद्धा` आदि का उल्लेख केशव ने नहीं किया है। प्रबोधचन्द्रोदय में शान्ति करुणा से श्रद्धा के बारे में कहती है—

यस्याः प्रीतिरमीषु सात्र भवती चण्डालवेश्मोदरं।
प्राप्ता गौः कपिलेव जीवति कथं पाषण्डहस्तं गता[2]।।

ठीक इसी प्रकार की शंका विज्ञानगीता की शान्ति भी करती है—

गंगा-कारहिन चरति ही, पूजत साधु अपार।
पाई कपिला गाय-सी, पटु पाषंड चंडार[3]।।

प्रबन्धचन्द्रोदय में शान्ति श्रद्धा के न मिलने पर दुखित होकर करुणा से कहती है—

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तम प्रकाश, पृ० -९०, छ०सं० १५

२- प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीयोऽङ्कः, पृ० - ६५, श्लोक १

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रकाश, पृ० -९२, छ०सं० ३

मामनालोक्य न स्नाति न भुङ्क्ते न पिबत्यपः ।
न मया रहिता श्रद्धा मुहूर्तमपि जीवति [1]।।

`विज्ञानगीता` की श्रद्धा भी शान्ति के बिना न खाती है न पीती है न स्नान करती है और न तो मुहूर्त भर भी जीवित रह सकती है ।

भो बिना न अन्हाति जेंवति करति नाहिन पान ।
नेकु के बिछुरे भटू घट में न राखति प्रान ।
चेतिका करुना रची सब छांडि और उपाय ।
क्यों जियौं जननी बिना मरिहूं मिलै जौ आय [2]।।

विज्ञानगीता की शान्ति यदि मृत्यु का वरण करके श्रद्धा से मिलना चाहती है तो `प्रबोधचन्द्रोदय` की शान्ति भी प्राणोत्सर्ग के द्वारा ही श्रद्धा से मिलने का प्रयत्न करना चाहती है ।

तद्विना श्रद्धया मुहूर्तमपि शांतेर्जीवितं विडम्बनमेव । तत्सखि करुणे, मदर्थं चितामारचय । यावदचिरमेव हुताशनप्रवेशेन तस्याः सहचरी भवामि [3]

प्रबोधचन्द्रोदय में करुणा शान्ति को समझाती है—

यावदितस्ततः पुण्येष्वाश्रमेषु मुनिजन समाकुलेषु भागीरथीतीरेषु निपुणं निरूपयामि कदाचिन्महामोहभीत्या कथमपि प्रच्छन्ना निवसति [4]।

इन पंक्तियों को केशव ने निम्न शब्दों में लिखा है—

जोग जाग विराग के थल सूर नंदिनि- तीर ।
पुन्य आश्रम ठौर ठौर बिलोकिये धरि धीर [5]।।

१- प्रबोधचन्द्रोदय :तृतीय अंक, पृ०- ६६, श्लोक २
२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रकाश,पृ०-६३,छ०सं० ४
३- प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीय अंक, पृ०-६६
४- वही,
५- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रभाव,पृ०-६३,छ०सं० ५

प्रबोधचन्द्रोदय की शान्ति कहती है—

शान्तिः - सखि, किंतु प्रतिकूले विधातरि न संभाव्यते[1]।

श्री देवी जनकात्मजा दशमुखस्यासीद्गृहे राक्षसो
गीता चैव रसातलं भगवती वेदत्रयी दानवैः

इसका अनुवाद केशव ने इस प्रकार किया है—

विधि प्रतिकूल भए सखी, कहाँ न सुनियै गाथ।
रघुनाथ की तरुनी हरी दसकंध, अंध लबार।
अरु ज्यौं दई दुरजोधनैं गहि द्रौपदी करतार[2]।

प्रबोधचन्द्रोदय की करुणा शान्ति से कहती है—

करुणा— पश्य पश्य। य एष गलन्मलपिच्छिलबीभत्स-
दुःप्रेक्ष्यदेहच्छविः उल्लुञ्चितचिकुरमुक्तवसनदुर्दर्शनः शिखि—
शिखण्डपिच्छिकाहस्त इत एवाभिवर्तते।

शान्ति उत्तर देती है—

शान्तिः —तर्हि अनन्तरमेव नरकविवरादुदीर्णः कोऽपि नारकी
भविष्यति। तत्सर्वथा दूरे परिहरणीयमस्य दर्शनम्[3]

करुणा और शान्ति के इस संवाद का अनुवाद केशव ने इस प्रकार किया है—

करुणा- यह कौन आवत है सखी- मल- पंक- अंकित अंग।
सिर केस लुंचित नग्न हाथसिखि- सिखंड सुरंग।

१- प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीय अंक, पृ०- ९७

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रभाव, पृ०- ९४, छं०सं० ७-८

३- प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीय अंक, पृ०- ९९- १००

यह नर्क कौन रेउ जीव है जिनि याहि देखि डराय ।

जिन जानिय यह श्रावका अति दूरि तैं तजि ताहि[१]।।

प्रबोधचन्द्रोदय का दिगम्बर अपने गुरु तथा धर्म के बारे में कहता है—

दिगम्बर— ॐ नमोऽर्हद्भ्य: । नवद्वारपुरीमध्ये आत्मा दीप इव ज्वलति । एष जिनवरभाषित: परमार्थो यं मोक्षसुखद: । अरे श्रावका: शृणुध्वम्—

किं मध्याथ कीदृशमृषिपरिचरणमिति । तच्छृणुध्वम्—

दूरे चरणप्रणाम: कृतसत्कारं चभोजनं मिष्टम् ।

ईर्ष्यामलं न कार्यं ऋषीणां दारान्रमणानाम्[२]।।

इन पंक्तियों का अनुवाद केशव के निम्न छन्द में हुआ है—

श्रावक— देह गेह नवद्वार में, दीप-समान लसंत ।

मुक्तिहु तें अति देत सुख, सेवहु श्री अरहंत ।।

मिष्ट भोजन बीटिका मृगनाभि मय घनसार ।

अंग सुभ्र सुगंध संजुत सेव श्री सुकुमार ।।

कन्यका भगिनी बधू मिलि हौं रमौं दिनराति ।

चित्त म्लान न कीजिए गुरु पूजिये इहि भांति[३]।।

प्रबोधचन्द्रोदय की करुणा, शान्ति से प्रश्न करती है—

सखि क एष: तरुणतालतरुप्रलम्बो लम्बमानकषायपिशङ्ग चिकुरो मुण्डित सद्यःमुण्डपिण्ड इत एवागच्छति[४]।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रकाश, पृ०-९४, छ०सं० १०

२- प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीय अंक, पृ०-१०१, १०२

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रकाश, पृ०-९५, छ०सं० ११, १२

४- प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीय अंक, पृ०- १०५, १०६

ठीक ऐसा ही प्रश्न ` विज्ञानगीता ` की करुणा भी शान्ति से पूछती है—

तमाल तूल तुंग है। पिसंग चीर अंग है।
सचूड़ मुंड मुंडिये । सखी सुको बिलोकिये[1]।।

प्रबोधचन्द्रोदय में बौद्ध भिक्षुक अपने धर्म के बारे में बताता है—

भिक्षु: — भो भो उपासका: भिक्षवश्च, श्रूयतां भगवत: सुगतस्य वाक्यामृतम्। पश्याम्यहं दिव्येन चक्षुषा लोकानां सुगतिं दुर्गतिं च। क्षणिका: सर्वे संस्कारा: नास्त्यात्मा स्थायी। तस्माद्भिक्षुषु दारानाक्रमत्सु नेर्ष्यितव्यम्। चित्तमलं हि तदीर्ष्यानाम। श्रद्धे, इतस्तावत[2]।

भिक्षुक की इन बातों का अनुवाद केशव ने निम्न शब्दों में किया है—

हम दिव्य दृष्टि बिलोकहीं सुख मुक्ति मुक्ति समान।
जग मध्य है यति- सिद्धि सुद्ध सुनौ सुसिष्य प्रमान।
कबहूं न रोकहु भिक्षुकै रमनीन सौं रममान।
निज चित्त कोमल ईरषा तजि दूरि ताहि सुजान।
कहि कौन को उपदेस है सर्वज्ञ सिद्धिहि जानि।
सरवज्ञ बुद्ध कहा कहे बहु ग्रंथ ग्रंथनि मानि[3]।।

प्रबोधचन्द्रोदय में कपालिक का वर्णन निम्न शब्दों में मिलता है—

नरास्थिमालाकृतचारुभूषण:
स्मशानवासी नृकपाल भोजन:।
पश्यामि योगाञ्जनशुद्धचक्षुषा
जगन्मिथो भिन्नमभिन्नमीश्वरात्[4]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रकाश, पृ० - ६५, छं०सं० १३
२- प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीय अंक, पृ० - १०६
३ -आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रकाश,पृ० -६६, छं०सं० १५- १६
४- प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीय अंक, पृ० - ११२, श्लोक १२

इसका भावानुवाद आचार्य केशव ने इस प्रकार किया है—

लिये नृकपाल नृदेह कराल । करे नरमुंडनि को उर माल ।
पिये नरश्रोन मिल्यौ मदिरा सों । कपालिक देखिये भीम प्रभा सों[१] ।।

प्रबोधचन्द्रोदय में श्रावक कपालिक से पूछता है कि तुम्हारा धर्म और मोक्ष कैसा है—

क्षपणकः - क एष कापालिकं व्रतं पुरुषो धारयति । तदेनमपि पृच्छामि । अरेरे कपालिक, नरास्थिमुण्डमालाधारक, कीदृशस्तव धर्मः कीदृशस्तव मोक्षः[२]

इसका भावानुवाद केशव ने निम्न शब्दों में किया है—

श्रावक— कापालिक बीभत्सु बपु, कैसे तेरे धर्म ।
पूजत हौ किहि देव कों, करि करि कैसे कर्म[३]।

प्रबोधचन्द्रोदय का कापालिक श्रावक को उत्तर देता है—

कापालिक- अरे क्षपणक, धर्मं तावदस्माकमवधारय ।
मस्तिष्कान्त्रवसाभिपूरितमहामांसाहुतीर्जुह्वतां
वह्नौ ब्रह्मकपाल कल्पितसुरापानेन नः पारणा ।
सद्यः कृतकठोर कण्ठ विगलत्कीलालधारोज्ज्वलैरर्च्यो नः
पुरुषोपहार बलिभिर्देवो महाभैरवः[४] ।।

इन पंक्तियों का छायानुवाद केशव ने इस प्रकार किया है—

मेद मिश्रित मांस होमत अग्नि में बहु भांति सों ।
सुद्ध ब्रह्म कपाल सोनित को पियों दिन राति सों ।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रकाश, पृ० - ९७, छं०सं० २०
२- प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीय अंक, पृ० - ११२
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम प्रभाव, पृ० - ९७, छं०सं० २१
४ - प्रबोधचन्द्रोदय : तृतीय अंक, पृ० - ११३, श्लोक १३

बिप्र बालक जाल लै बलि देत हौ न हियैं लजौं ।
देव सिद्ध प्रसिद्ध कन्यनि सों रमों भव को भजौं[1]।।

नवम् प्रभाव में 'श्रद्धा' से 'करुणा' और 'शान्ति' के मिलन का उल्लेख हुआ है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' में भी इस मिलन का संकेत हुआ है पर वह दूसरे ढंग का है। वहां 'श्रद्धा' को 'भैरवी' द्वारा बन्दी बनाए जाने एवं 'विष्णुभक्ति' द्वारा उससे मुक्त किए जाने का जो उल्लेख है, वह नाटक (अंक ४, पृ०-१३२- १३४) के समान ही है। नाटक में 'श्रद्धा' से 'मैत्री' को 'विष्णुभक्ति' के आदेश का जो वर्णन किया है वह 'विज्ञानगीता' की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। 'विज्ञानगीता' में मैत्री का कोई उल्लेख नहीं है। केशव का 'सन्तोष', 'क्रोध' को जीतने के लिए उपयुक्त बताया गया है। पर कृष्ण मिश्र का 'सन्तोष' लोभ को जीतने में समर्थ कहा गया है—

'राजा- वेगवति आहूयतां लोभस्य जेता सन्तोषः'[2]

नाटक में क्रोध की विजय के लिए 'संतोष' के स्थान पर 'क्षमा' आया है—

राजा- वेगवति क्रोधस्य विजयाय क्षमैवाहूयताम्[3]।

'उद्यम' का नाटक में कोई उल्लेख नहीं है।

'प्रबोधचन्द्रोदय' में श्रद्धा के भैरवी द्वारा बन्दी बनाए जाने व विष्णुभक्ति द्वारा उससे मुक्त किए जाने का उल्लेख निम्न शब्दों में हुआ है—

मैत्री — श्रुतं मया मुदितायाः सकाशाद्यथा महाभैरवीसङ्कट सन

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टम् प्रभाव, पृ० ६८, छ० सं० २३
२- प्रबोधचन्द्रोदय : अंक ४, पृ०- १५२
३- वही, ,, पृ०- १४८

संभ्रमाद्भगवत्या विष्णुभक्त्या परित्राता प्रिय सखी श्रद्धेति । तदुत्कण्ठितेन हृदयेन प्रियसखी श्रद्धां कदा प्रेक्षिष्ये[1]।

इसका भावानुवाद केशव ने निम्न शब्दों में किया है—

श्रद्धा— ग्रसी हुती हौं भैरवी लै विस्नुभक्ति छुड़ाई ।
ताकों मिलौ तुम जाय जी सुख पाय दुख्ख नसाय[2]।।

प्रबोधचन्द्रोदय में महाभयानक भैरवी का वर्णन निम्न शब्दों में हुआ है—

श्रद्धा— घोरां नारकपालकुण्डलवतीं विद्युच्छटां दृष्टिभिर्मुञ्चन्तीं विकराल मूर्तिमनलज्वालापिशङ्गैःकचैः

दंष्ट्रा चन्द्रकलाङ्कुरान्तरलसज्जिह्वां महाभैरवी ।
पश्यन्त्या इव मे मनः कदलिकेवाधाप्यहोवेपते[3]।।

केशव की श्रद्धा भैरवी के रूप को देखकर इतनी डरी हुई है कि वह उसका वर्णन करने में असमर्थ है—

श्रद्धा— महाभयानक भैरवी देखा सुनी न जाति ।
देखत हौं दसहूं दिस मेरो चित्त चबाति[4]।।

` विज्ञानगीता ` के दसवें प्रभाव में विवेक के आदेशानुसार डुग्गी पीटी जाती है और कहा जाता है कि सभी लोग ब्रह्म—चिन्तन और वस्तु- विचार करें । इसे सुनकर ` महामोह ` नाराज हो जाता है और दूसरे दिन प्रातःकाल ही वाराणसी में आक्रमण करने की तैयारी का निश्चय करता है । ` चार्वाक ` उसे समझाता है कि अभी वर्षाकाल है, अतः ऐसे समय में आक्रमण करना

१- प्रबोधचन्द्रोदय : चतुर्थोऽङ्कः, पृ०- १३२

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : नवम् प्रकाश,पृ० -१०६,छं०सं० ४

३ - प्रबोधचन्द्रोदय : चतुर्थ अंक, पृ० -१३२-१३३, श्लोक १

४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : नवम् प्रकाश,पृ० - १०६,छं०सं० ६

ठीक नहीं है। आक्रमण शरद् ऋतु में कीजिएगा। इसके पश्चात् केशवदास ने वर्षा और शरद् का श्लेष अलंकार के प्रयोग द्वारा बड़ा ही सुन्दर और पाण्डित्यपूर्ण शैली में वर्णन किया है। दशम प्रभाव की कथावस्तु में केशव की मौलिकता परिलक्षित होती है। वर्षा तथा शरद् ऋतुओं का वर्णन नाटक में नहीं है। ऋतुओं का समावेश केशव की चमत्कारवादी दृष्टि का परिचायक है।

एकादश प्रभाव में महामोह वाराणसी की ओर प्रयाण करता है और विवेक से 'श्रद्धा' को वापस करने का आग्रह करता है। इसमें आचार्य केशवदास और कृष्णमिश्र दोनों ने ही विवेक द्वारा देवताओं की स्तुति का समानरूपेण उल्लेख किया है। 'विश्वनाथ पंचक' और 'गंगाष्टक' का समावेश केशव की मौलिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप किया गया है। 'बिन्दुमाधवाष्टक' के लिखने की प्रेरणा केशव को सम्भवतः तुलसी की 'विनय-पत्रिका' में काशी के प्रसंग में दिए 'बिन्दुमाधव' के वर्णन (विनय-पत्रिका, छं०सं० - २२) से मिली जान पड़ती है।

द्वादश प्रभाव में महामोह तथा विवेक की सेनाओं में जो युद्ध ठनता है उसका वर्णन नाटक (अंक ५, पृ० - १६८- १७६) में भी उसी विस्तार के साथ 'श्रद्धा' द्वारा 'विष्णुभक्ति' को कराया गया है। इस प्रकार युद्ध में 'महामोह' पराजित होता है और वह भागकर अपने पिता (मन) के पेट में छिप जाता है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' में विवेक और मोह के युद्ध का समाचार 'विष्णुभक्ति' द्वारा बताया गया है। और यह भी कहा गया है कि महामोह युद्ध से भागकर कहीं छिप गया है। इस नाटक में यह भी उल्लिखित है कि जब मन को यह ज्ञात हुआ है कि महामोह कहीं चला गया तो पुत्र-पौत्रादिक के शोक में 'मन' का जीवनोत्सर्ग करने का विचार तथा 'विष्णुभक्ति' द्वारा उसके रोकने एवं 'मन' के हृदय में वैराग्य उत्पन्न

करने के लिए ` सरस्वती ` के भेज जाने का निश्चय आदि बातों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

प्रबोधचन्द्रोदय में महामोह और विवेक के बीच युद्ध के शुरू होने से पूर्व का दृश्य श्रद्धा ने शान्ति के प्रति वर्णित किया है—

श्रद्धा— आकर्णयतु भवति। देव्यामाविर्भवायतनादपक्रान्तायामेव किंचिदुत्सृष्टपाटलिम्नि भगवति भासति, विजयघोषणाहूयमानानेकवरवीर बहुलतरसिंहनाद बधिरित दिगन्ते संततरथतुरङ्ग — खुरखण्डितभूमण्डलोच्छल— विपुलरज: पटलान्तरितकिरणमालिनि प्रबल तरकर्ण तालास्फालनोच्छलत्स- मदकरि कुम्भ सिन्दूर सन्ध्यायमानदशदिशि प्रलयजलधर ध्वानभीषणो तेषामस्माकं संनद्धे सैन्यसागरे महाराजमहामोहस्य महाराजेन नैयायिक दर्शनं दौत्येन प्रहितम्[1]।

केशव ने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व का दृश्य अपेक्षाकृत संक्षिप्त में ही वर्णित कर दिया है—

> हय- हींस गर्जे- गयंद घोष रथीन के तेहि काल।
> बहु भेरि मुर्ज मृदंग तुंग बजी बड़ी करनाल ।
> बहु ढोल दुंदुभि लोल गर्जत बोल बंदि प्रकास ।
> तहं धूरि भूरि उठी दसौं दिसि पूरियो सु अकास[2]।।

` प्रबन्धचन्द्रोदय ` में श्रद्धा कहती है कि सर्वप्रथम महामोह ने पाखण्ड को लड़ने के लिए भेजा।

श्रद्धा— ततो देवि, विकट ललाट तटताण्डवितभ्रुकुटिनाक्रुद्धेन महामोहेनाभिहितम्। अनुभवत्वस्य दुर्नयपरिपाकस्य विवेक हतक: फलमित्यभिधाय स्वयं पाखण्डागमा: पाखण्डतर्कशास्त्रै: समं समराय प्रथमं

१- प्रबोधचन्द्रोदय : पंचमोऽङ्क:, पृ०- १६८- १६६

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वादश प्रकाश, पृ० -२५४, छ०सं० २

समुधोपिता:[1]।

`विज्ञानगीता` में भी पाखण्ड ही पहले आता है।

महामोह तब कोह करि, पठए दूत प्रचंड।
धर्म कर्म जुत जुद्ध कौं, पटु पाखण्ड अखंड[2]।।
तब विवेक प्रति जुद्ध को आगम निगम समेत।
पठई तहां सरस्वती, सन्मुख समर- निकेत।।

प्रबोधचन्द्रोदय में—

वेदोपवेदाङ्ग पुराण धर्म शास्त्रेतिहासादिभिरुच्छ्रितश्री:।
सरस्वती पद्मधरा शशाङ्कसंकाशकान्ति: सहसाविरासीत्।।

साङ्ख्यन्यायकणादभाषित महाभाष्यादिशास्त्रैर्वृता
स्फूर्जन्न्याय सहस्रबाहु निकरैरुद्‌योतयन्ती दिश:।
मीमांसा समरोत्सुकाविरभवद्धर्मेन्दुकान्तानना
वाग्देव्या: पुरतस्त्रयी त्रिनयना कात्यायनीवापरा[3]।।

इसका भावानुवाद केशव ने निम्न छन्द में किया है—

सिर धर्म, शास्त्र मुखेन्दु सुंदर, वेद लोचन तीन।
हरि भक्ति की महिमा हृदै कहि कैतवादिक बीन।
सांख्य बाहु कनाद- भाषित भाष्य न्याय सुपाद।
रन सोभमान सरस्वती जनु अंबिका अविषाद[4]।।

१- प्रबोधचन्द्रोदय : पंचमोऽङ्क:, पृ०- १७१
२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वादश प्रकाश, पृ०-१५५, छं०सं०३,४
३- प्रबोधचन्द्रोदय ; पंचमोऽङ्क:, पृ०- १७१- १७२
४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वादश प्रभाव,पृ०-१५५, छं०सं० ५

विज्ञानगीता में सरस्वती के प्रचण्ड रूप को देखकर मयवश सभी सौगतादिक, हूण, मगध एवं अंग प्रदेश में भाग गए।

सौगतादिक भागिगे सब हून मागध अंग।
सिन्धुपार गये ति एक अनेक बंग कलिंग।
पामरादि दिगंबरादि कपालकादि असेष।
मारए अरु मारवार गये ति नीच नि भेष।।

निदंक एकादसिनि के मध्य देस मेवार।
अरु पाखंडी धर्म सब गये सिन्धु के पार।
जब आयो रन लोभ तब आयो दीरघदान।
देखन लागे देव गन बल विक्रम परिमान[1]।।

इसमें केशव ने प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों का भावानुवाद किया है—

सौगतास्तावत्सिन्धु गान्धार पारसिक मागधान्ध्र हूण वङ्ग कलिङ्गण
दी म्लेच्छप्रायान्प्रविष्टा: पाषण्डदिगम्बर कापालिका—
दयस्तु पामरबहुलेषु पाञ्चालमालवाभीरावर्तभूमिषु सागरोपान्त-
निगूढं संचरन्ति। न्यायाधनुगतमीमांसयावगाढप्रहारजर्जरीकृता
नास्तिकतर्कास्तेषामेवागमानामनुपथं प्रयाता:[2]।

विज्ञानगीता में क्रोध और विरोध का सामना करने के लिए सहनशील के सहित वस्तु विचार आया—

आए क्रोध विरोध सब, कीने क्रोध अपार।
सहनशील संजुक्त तहं, आए बस्तु विचार[3]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वादश प्रभाव, पृ०- १५६, छं०सं० ७-८-९
२- प्रबोधचन्द्रोदय : पञ्चमोऽङ्क:, पृ०- १७७
३ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : द्वादश प्रभाव, पृ०- १५७, छं०सं० ११

इसमें केशव ने 'प्रबोधचन्द्रोदय' की निम्न पंक्तियों का भावानुवाद किया है—

ततो वस्तुविचारेण कामो हतः, क्षमया क्रोधपारुष्यहिंसादयो निपातिताः[1]।

त्रयोदश प्रभाव में मन के काम, क्रोध, विरोध और लोभादि पुत्रों के शोक से दुखी होने तथा संकल्प द्वारा उसके समझाए जाने का कथन है। परन्तु चिन्ता और शोकातिरेक के कारण उसमें विवेक उत्पन्न नहीं हो पाता। परन्तु ऐसे समय सरस्वती आकर उसे सान्त्वना देती हैं और ज्ञान की अनेक बातों की चर्चा करती हैं। यद्यपि ऐसी बातों की चर्चा प्रबोधचन्द्रोदय में भी है। परन्तु मन को दिया गया 'सरस्वती' का ज्ञानोपदेश नाटक की अपेक्षा अधिक विस्तारपूर्वक वर्णित है। 'मन' को माया की विचित्रता समझाने के निमित्त 'सरस्वती' द्वारा कही गाधि ऋषि की कथा का आधार नाटक न होकर योगवाशिष्ठ है। केशव ने यह कथा 'योगवाशिष्ठ' की अपेक्षा संक्षिप्त रूप में ही दी है। हाँ कथा के अन्तिम अंश में, जिसमें कीर देश में पता लगाने जाने पर गाधि ऋषि के उसी वृत्तान्त के सुनने का उल्लेख है जिसका साक्षात्कार उन्होंने मोहावस्था में किया था, केशव की मौलिकता प्रतिफलित हो रही है (वि०गी० प्र० १३, छंसं० ६० - ८०)।

गाधि ऋषि की कथा इस प्रकार है—

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

अस्त्यस्मिन् वसुधापीठे कोशलो नाम मण्डलः।
कल्पवृक्षावनं मेराविव रत्नगणाकरः ॥
तत्राऽभूद् ब्राह्मणः कश्चिद् गुणी गाधिरिति श्रुतः।
परम श्रोत्रियो धीमान् धर्ममूर्तिरिव स्थितः[2] ॥

१- प्रबोधचन्द्रोदय : अंक ५, पृ०- १७८

२- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः, सर्ग ४४, पृ० -२४४७, श्लोक ३-४

मेरु पर्वत पर कल्पवृक्ष-वन के समान इस पृथ्वीतल में कोशल नामक विविध रत्नों का आकारभूत देश है। वहां पर गाधि नाम से प्रख्यात कोई गुणवान ब्राह्मण हुआ। वह परम श्रोत्रिय, धीमान् और मूर्तिमान धर्म- सा था।

विज्ञानगीता के अनुसार—

> भूतल मालव वैसे लसै जू। तामहं ब्राह्मन गाधि बसै जू।
> सोदर सुंदरि बंधु तजे जू। बोध कों कानन जाय सजे जू[1]।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

> किमप्यभिमतं कार्यं विनिधाय स्वचेतसि।
> बन्धुवृन्दाद् विनिष्क्रम्य तपस्तप्तुं वनं ययौ।।
> ययौ मासाष्टकं तस्य मग्नस्य सरसोऽम्भसि।
> वासपङ्कजसंकोचमनाग्मग्नमुखच्छवे:[2] ।।

किसी अभीष्ट तपस्या रूप कार्य को अपना लक्ष्य बनाकर वह बन्धुओं के समूह से हटकर तपस्या करने के लिए वन में चला गया। तालाब के जल में डूबे हुए तथा तालाब के कमलों का सूर्य के वियोग से संकोच होने पर उनके सहवास स्नेह से तनिक मलिन मुखकमल वाले उसके आठ मास व्यतीत हो गये।

विज्ञानगीता के अनुसार—

> सुन्दर स्वच्छ सरोवर देख्यौ। सीतल साधु तपोमय लेख्यौ।
> तामहं पैठि तपोव्रत लीनो। सोरह पर्ष जलै घर कीनो[3]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १३वां प्रकाश, पृ०- १६७, छंसं० २८

२- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भाग:, सर्ग ४४, पृ०- २४४७, श्लोक ६-६

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १३वां प्रकाश, पृ०- १६७, छ०सं०-२६

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

अथैनं तपसा तप्तमाजगामैकदा हरिः ।
निदाघार्तं घनः श्यामः प्रावृषीव धरातलम्[1] ।।

तदनन्तर एक समय जैसे वर्षा ऋतु में ग्रीष्म से संतप्त पृथ्वीतल पर काला मेघ आता है, वैसे ही तपस्या से कृश उसके पास श्यामल कान्ति वाले भगवान श्री हरि आए ।

विज्ञानगीता के अनुसार—

ताको धीरज देखि कै ह्वै कृपालु भगवंत ।
देख्यौ गाधि अगाधि मति दरसन दयौ अनंत[2] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

विप्रोत्तिष्ठ पयोमध्याद् गृहाणाऽभिमतं वरम् ।
अभीप्सित फलोपेतो जातस्ते नियमद्रुमः ।।

मायामिमां त्वद्रचितां भगवन पारमात्मिकीम् ।
द्रष्टुमिच्छामि संसार नाम्नीं मान्ध्यैककारिणीम्[3] ।।

श्री भगवान ने कहा— हे विप्र, जल के मध्य से उठो, मनमाना वर लो । तुम्हारा नियम रूपी वृक्ष अभीष्ट फल से युक्त हो गया है ।

ब्राह्मण ने कहा— हे भगवन् आपसे रचित इस संसारनामक माया को, जो परमात्मा में अध्यस्त है और जीवों को अन्धा बनाने वाली है, मैं देखना चाहता हूं ।

विज्ञानगीता के अनुसार—

१- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः, सर्ग ४४, पृ०- २४४८, श्लोक १०

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०- १६८, छं०सं० ३०

३- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः, सर्ग ४४, पृ०-२४४८, श्लोक ११, १३

बाहिर आवहु बिप्र तजो जल । आनि तपोजल को गाहिजै फल ।
मागहु जो जिय मांफ रह्यौबसि । आनि लहौ भगवंत कह्यौ हंसि ।।
अद्भुत माया रावरी, महामोह तम मित्र ।
देख्यौ चाहत हौं कछू ताको जगत चरित्र[1] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार एक समय वह ब्राह्मण जल में डुबकी लगाकर प्रणव आदि मंत्रों के स्मरण रूप उस अघमर्षण विधि में जल के मध्य में स्थित उसके मंत्र, ध्यान आदि विस्मृत हो गये और ज्ञान विपरीत ग्रहणोन्मुख हो गया । उसने अपने घर पर अपने को वायुवेग से कन्दरा के बीच में गिरे हुए वृक्ष के समान मृत और शोचनीयता को प्राप्त हुआ देखा । जैसे ओस बहा रहे सूखे पत्तों से वृक्ष परिवेष्ठित होता है वैसे ही पास में बैठे हुए दुःखी अश्रुधारा बहा रहे अन्यान्य लोगों से वह परिवेष्टित था ।

अन्यैः पार्श्वगतैर्दीनैः प्रवदश्रुमुखैर्जनैः ।
श्रितं गलदवश्यायैः शुष्कपर्णैरिव द्रुमम ।।

तत्र ते ज्वलने दीप्ते चक्रुस्तं भस्मसात्क्षणम् ।
बान्धवाः सलिलापूरं समुद्रा इव वाडवे[2] ।।

वहां पर उन बन्धुओं ने प्रदीप्त अग्नि में जैसे समुद्र बड़वानल में अपने जल प्रवाह को भस्म करते हैं वैसे ही उसे भस्म किया ।

रोवत बंधु असेष बढ़यौ दुख । चुंबति गोद लिये जननी मुख ।
लै गए लोग सबै सरिता तट । बारि दयौ लगि रोवन की रट[3] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०- १६८, छ०सं० ३१,३

२- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो: भाग:, सर्ग ४४, पृ०- २४५१-५२, श्लोक २८,३०

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ० -१६६, छ०सं० ३६

योगवाशिष्ठ के अनुसार मृत्यु को प्राप्त उस ऋषि ने चाण्डाल के घर में जन्म लिया और चाण्डाल की कन्या से विवाह किया—

शनैः पक्वतया काले प्रसूतं मेचकच्छविम् ।
श्वपच्या प्रावृषेवाऽब्दं श्याममावलितं मलैः ।।

तमालतरुवेवाऽथ श्रितं श्वपचकन्यया ।
स्तनस्तबकशालिन्या नवपल्लवहस्तया[1] ।।

विज्ञानगीता के अनुसार—

जाय चंडाल को पुत्र भयौ मुनि । व्याह कर्यौ पितु मातु बड़ो गुनि[2] ।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

तत्कलत्रमशेषेण नीतमापृत्य मृत्युना ।
आसारसलिलेनाऽऽशु वनपर्णगणो यथा[3] ।।

तब उस गाधि ने अपना जितना कुटुम्ब था उसे मृत्यु द्वारा आवृत कर जैसे वृष्टि- जल का प्रवाह वन में गिरे हुए सूखे पत्तों को ले जाता है वैसे ही हरा गया देखा ।

विज्ञानगीता के अनुसार—

एक दिना त्रिय पुत्र लै गई पिता के गेह ।
तब ता केसव बंस की कालबस्य भई देह[4] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

एकदा प्राप कीराणां मण्डले भ्रमतो पुरीम् ।
खेचरो विहरन् शून्ये सद्विमानमिवाऽम्बरे[5] ।।

1- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः,सर्ग ४५,पृ०-२४५४,श्लोक ४
2- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता :त्रयोदश प्रकाश,पृ०-१६६,छ०सं० ३७
3- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः,सर्ग ४५,पृ०-२४५६,श्लोक २१
4- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता :त्रयोदश प्रकाश,पृ०-१६६,छ०सं०३६
5- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः,सर्ग ४५,प०-२४५७,श्लोक २५

एक समय आकाश में सुन्दर विमान के समान आकाश में विचरण करने वाले वह कीर लोगों के निवासभूत देश में श्रीमती पुरी में पहुंचा ।
विज्ञानगीता के अनुसार—

छाँड़ि गो जब हूंन मंडल तात मात बियोग ।
कीर मंडल स्यों चल्यो मुनि पुन्य काल संजोग[1] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार श्रीमती पुर पहुंचने पर उसने चिरकाल तक मंगल हाथी को देखा । उस हाथी ने देख रहे उस चाण्डाल को अपनी सूंड से पकड़ कर जैसे मेरु अपने तट पर सूर्य को संलग्न करता है वैसे ही बड़े आदर के साथ उसको अपने गण्डस्थल पर चढ़ाया । इस प्रकार उसके गण्डस्थल पर चढ़ने पर चारों ओर विजय के नगारे बजने लगे ।

आलोकयन्तमादाय तं करेण स वारणः ।
स्वकटेऽयोजयन्मेरुस्तटेऽर्कमिव सादरम् ।।
तस्मिन् कटगते नेदुर्जयदुन्दुभयोऽभितः[2] ।

विज्ञानगीता की कथा में यहां पर थोड़ी भिन्नता है । जब चाण्डाल कीर मण्डल पहुंचा उसी समय उस देश का राजा भी काल के वश में हो गया । तब चाण्डाल रूप गाधि ऋषि को कीरमण्डल के लोग पकड़कर ले गये और उन्हें राजा बना दिया ।

काल के बस राज भो तेहि देस को तिहि काल ।
लै गए गहि ताहि भूप भयो सुबुद्धि बिसाल[3] ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०-१७०, छं०सं० ४०
२- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः, सर्ग ४५, पृ०-२४५८, श्लोक ३१, ३२
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०-१७०, छं०सं० ४०

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

> विलासिनीभिर्मिलितो मंत्रिमण्डलपूजित: ।
> वन्दित: सर्व सामन्तैश्छत्रचामरलालित: ।।
> सिद्धानुशासन: कान्तो ज्ञातराज्यगुणक्रम: ।
> धीतशोकभयायासप्रज: प्राप्तमहादश:[1] ।।

वह चाण्डाल विलासवती सुन्दरियों से परिवृत्त, मन्त्रिमण्डल द्वारा समादृत, सब सामन्तों द्वारा वन्दित, छत्र और चंवरों से लालित, अप्रतिहत आज्ञा वाला तथा सुन्दर आकृति वाला था । उसे राज्य के सब गुण ज्ञात थे । उसकी प्रजाओं के शोक, भय क्लेश आदि नष्ट हो गये थे ।

विज्ञानगीता के अनुसार—

> छत्र चामर सीस दै भए मंत्रि मित्र संजुक्त ।
> पाय घोड़े मत्त दंती दु:ख तें भये मुक्त ।
> संग लै बहु सुंदरी वन बाग जाय तड़ाग ।
> नृत्य गीत कवित्त नाटक रंग राग सभाग[2]।

योगवाशिष्ठ के अनुसार कीर देश में उस चाण्डाल ने आठ वर्ष तक राज्य किया ।

> कीरेषु ष्वपचो राज्यं वर्षाण्यष्टौ चकार ह ।
> आर्येभुपमरीशेणा तापत्कालं बभार ह[3] ।।

विज्ञानगीता के अनुसार भी गाधि ऋषि ने राजा के रूप में आठ वर्ष तक राज्य किया—

> संग चले ता नृपति भो कीर—देस को जाय ।
> आठ बरस लगि राज किय सत्रु अनेक नसाय[4] ।।

१- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भाग:, सर्ग ४६, पृ०- २४६२, श्लोक १,२
२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०-१७०, छं०सं० ४१
३- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भाग:, सर्ग ४६, पृ०-२४६२, श्लोक ४
४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०-१७१, छं०सं० ४३

योगवाशिष्ठ के अनुसार एक दिन वह राजा बिना आभूषणों के बाहर ही खड़ा था कि उसने मधुर स्वर में गा रहे चाण्डालों के संघ को देखा। उनमें से एक बूढ़ा चाण्डाल, जो उस संघ का नेता था, ने ' हे कटंज ' इस पूर्व नाम से कीर देश के अधिपति गवल का सहसा सम्बोधन करते हुए कहा— यहाँ पर राजा गानविद्या में कुशल मधुर कण्ठ वाले आपका सम्मान करता है क्या ?

विज्ञानगीता की कथा में इस स्थान पर कुछ अन्तर है। विज्ञानगीता में उस चाण्डाल राजा की पहचान स्वयं उसकी पत्नी तथा पुत्र ने की।

पुत्र तिया पहिचानि लगे डर। रोय उठी तरुनी तब आतुर[१]।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार उस बूढ़े चाण्डाल की बातें सुनकर उसी समय झरोखे में बैठी हुई स्त्रियां और अमात्य आदि प्रकृतया यह चाण्डाल है यह जानकर अत्यन्त उदास हुईं। इसके अनन्तर हम सब लोग चिरकाल तक चाण्डाल के स्पर्श से दूषित हैं, प्रायश्चित्तों से हमारी शुद्धि होने की नहीं; अतएव हम लोग अग्नि में प्रवेश करते हैं, ऐसा निश्चय कर नगर में सब नागरिक तथा मन्त्रियों ने सूखी हुई लकड़ियों से बढ़ाई हुई चिताएं चारों ओर बनाईं।

अथ सर्वे वयं दीर्घकालं श्वपचदूषिताः।
प्रायश्चित्तैर्न शुद्धयामः प्रविशामो हुताशनम्।।
इति निर्णीय नगरे नागरा मन्त्रिणस्तथा।
अभितो ज्वालयामासुश्चिताः शुष्केन्धनैधिताः[२]।।

विज्ञानगीता के अनुसार—

रानिन मंत्रिन मित्रजन जान्यौ जाति चंडाल।
सुंदरि सुत लै संग घर आयौ नृप मति चारु।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०-१७१, छ०सं०४५

२- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः, सर्ग ४६, पृ०-२४६७, श्लोक ३०-३१

रानिन अपनी सुद्धि लगि कीनों अग्नि-प्रवेस ।
पाछें मंत्री मित्रजन दुखित भयौ सब देस ।।
ताके पाछें स्वपच हूं कीन्हीं मन में लाज ।
जर्यौ अग्नि में आनहू छांडि सबै सुख-साज[1] ।।

योगवाशिष्ठ के चाण्डाल ने भी, मेरे ही कारण यह अनर्थ, जो अकालप्रलयमय और सब नेताओं का नाशकारी है, इस देश में उत्पन्न हुआ है । मेरे जीवन के क्लेश से क्या प्रयोजन है मेरा मरना ही महोत्सव है । ऐसा विचारकर गवल ने अपने शरीर को पतंग की नाईं बिना किसी उद्वेग के प्रज्ज्वलित अग्नि में आहुति बना दिया ।

इति निश्चित्य गवलो ज्वलिते ज्वलने पुनः ।
पतङ्गवदनुद्वेगमकरोदाहुतिं वपुः[2] ।।

इस प्रकार गवल नामक उस देह के निर्वेदवश अग्नि में गिरने और अवयवों से व्याकुल होने पर अपने अंगों के दाहवश हिलने-डुलने के कारण जल के अन्दर अघमर्षण कर रहे गाधि तुरन्त बोध को प्राप्त हुए । इस प्रकार गाधि ने चित्त में उस मोह का विचार कर उसी अपने आश्रम में कतिपय दिन बिताये । वहां एक समय गाधि के पास कोई प्रिय अतिथि आया । श्रान्त हुए उसने वहां पर विश्राम किया । गाधि ने फल, पुष्प, रस और भोजन से उस अतिथि को प्रसन्नता को प्राप्त कराया ।

अवधार्येति तं चित्ते मोहं गाधिर्निनाय सः ।
दिनानि कतिचित्तस्मिन् स्वक एवाऽऽश्रमे तदा ।।
एकदा गाधिमगमत्कश्चित्तत्र प्रियोऽतिथिः ।

1- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रभाव, पृ०- १७१, छ०-४६-४८
2- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः, सर्ग ४६, पृ०- २४६६, श्लोक ४४

ब्राह्मणमिव दुर्वासाः स विशश्राम सश्रमः ।।

परमां तुष्टिमानीतः फलपुष्परसाशनैः ।

सोऽतिथिर्गाधिना तेन वसन्तेनैव पादपः[1] ।।

विज्ञानगीता के अनुसार—

जल तैं निकस्यौ आश्रमहिं गाधि गयौ अकुलाय ।

संभ्रम चित्त न छांड़ई बहुत रह्यौ समुफाय ।।

अतिथि एक दिन गाधि कैं आयो बुद्धि अगाधि ।

विधि सौं आसन अर्घ्य दै दूरि करी मग आधि[2] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

तं पप्रच्छाऽतिथिं गाधिः प्रसंगपतितं वचः ।

किं ब्रह्मन् कुशाङ्गस्त्वं किमिति श्रमवानसि[3] ।।

गाधि ने बातचीत के सिलसिले में उस अतिथि से पूछा कि ब्रह्मन्, आप क्यों कृश है और थके हैं ?

विज्ञानगीता के गाधि ने भी अतिथि से ऐसा ही प्रश्न किया है—

बूफत गाधि तिन्हें बुधिधारन । दुर्बल बिप्र कही किहि कारन[4] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार ब्राह्मण ने गाधि ऋषि के प्रश्न का उत्तर दिया कि इस भूतल में उत्तर दिशारूपी निकुंज में कीर नाम से विख्यात समृद्ध और विशाल देश है । उसमें पुरवासी लोगों से आदृत हो रहा और विविध प्रकार के

१- योगवाशिष्ठ: द्वितीयो भाग:, सर्ग ४७, पृ०- २४७४, श्लोक १६, १७, १८

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञान गीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ० -१७२, छं०सं० ५०-५१

३- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भाग:, सर्ग ४७, पृ०- २४७४, श्लोक २१

४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ० -१७२, छं०सं० ५२

आत्मा को अच्छे लगने वाले भोज्यों में तृष्णायुक्त और चित्तरूपी वेताल से मोहित मैं एक मास रहा। वहां पर कहीं एक समय एक ने कथा के सिलसिले में मुझसे कहा— हे द्विज, यहां पर आठ वर्ष तक चाण्डाल राजा हुआ। वह अन्त में जाना गया और शीघ्र अग्नि में प्रविष्ट हो गया। उससे सैकड़ों ब्राह्मणों ने यहां पर अग्नि में प्रवेश किया।

अस्त्यस्मिन् वसुधापीठे उत्तराशानिकुञ्जके।
कीरो नामाऽति विख्यातः श्रीमाञ्जनपदो महान्।
तत्राऽहमवसं मासं पूज्यमानः पुरे जनैः।
नानात्मस्वादलोलात्मा चित्तवेतालमोहितः॥
एकदैकेन तत्रोक्तं कथाप्रस्तावतः क्वचित्।
इहाऽभूच्छ्वपचो राजा वर्षाण्यष्टौ द्विजेति मे॥
सोऽयमन्ते परिज्ञातः प्रविष्टो ज्वलनं जवात्।
ततो द्विजशतानीह प्रविष्टानि हुताशनम्[1]॥

विज्ञानगीता में भी ब्राह्मण ने गाधि ऋषि को ऐसा ही वृत्तान्त कहकर सुनाया है।

भूमिलोकन में भलो एक कीर- देस सुदेस।
भोग जोग समृद्धि लोगनि दुःख को नहिं लेस।
मास एक बसे तहां हम पूज्यमान सुबुद्धि।
गूढ़ मूढ़ चंडार भो नृप वर्ष अष्ट कुबुद्धि[2]॥

१- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भागः, सर्ग ४७, पृ०-२४७४-७५, श्लोक २३, २४, २५, २७

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०- १७२, छ०सं० ५३

जाति जानि परी खिस्याय तज्यौ सबै तिहि राज ।
अग्नि मध्य प्रविष्ट भो संग मंत्रि मित्र समाज ।
सुंदरा सिगरी तजी द्विज एक बुद्धि अगाध ।
देखिकै तिनको मए सब दु:ख दु:खित साधु [1] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

इति तेषां मुखाच्छ्रुत्वा तस्मान्निर्गत्य मण्डलात् ।
प्रयागेऽकरवं शुध्यै प्रायश्चित्तमहं द्विज[2] ।।

ब्राह्मण ने कहा हे विप्र, उनके मुख से यह सुनकर उस देश से बाहर निकलकर मैंने शुद्धि के लिए प्रयाग में प्रायश्चित किया । आज तीसरे चान्द्रायण के बाद पारणा करके मैं यहां आया हूं, इसी कारण मैं थका हूं और अत्यन्त कृश हूं ।

यही बात विज्ञानगीता के ब्राह्मण ने भी कही है—

संसर्ग दोष निवारिबे कहँ विप्र जाय प्रयाग
स्नान दान अनेकधा तप साधियौ बड़ भाग ।
मध्य ह्यां हम मदियौ मन इच्छि कै सुख पाय ।
दु:ख दुर्बल ह्वै गए यह बात बर्नि न जाय [3] ।।

योगवाशिष्ठ तथा विज्ञानगीता दोनों के गाधि ऋषि इसके बाद कीरमण्डल को देखने जाते हैं । परन्तु आगे की कथा दोनों ग्रन्थों में अलग अलग है । विज्ञानगीता में इस प्रसंग के आगे जो कथा है उसमें आचार्य केशव की मौलिकता देखी जा सकती है । गाधि ऋषि को चाण्डाल पुत्र द्वारा पहचान लिए जाने पर नगरवासियों द्वारा गाधि ऋषि के प्रति किए गये व्यवहार से नगरवासियों

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०-१७३, छं०सं० ५४
२- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भाग:, सर्ग ४७, पृ०- २४७५, श्लोक २८
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०-१७३, छं०सं० ५५

की मनोदशाओं की अभिव्यक्ति के साथ- साथ एक स्वाभाविक दृश्य का निर्माण आचार्य केशव ने किया है। विज्ञानगीता में हरिभक्ति मन को उपदेश देते हुए कहते हैं--

एक ब्रह्म सांचो सदा झूठो यह संसार।
कौन लोभ मद काम को, को सुतमित्र बिचार[1]।।

ये पंक्तियां केशव ने प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों के आधार पर लिखी हैं-

एकमेव सदा ब्रह्म सत्यमन्यद्विकल्पितम्।
को मोहस्तत्र कः शोक एकत्वमनुपश्यतः[2]।।

विज्ञानगीता में मन कहता है कि शोक से दूषित हृदय में अब विवेक की गुंजाइश नहीं है-

मन सोक बिदूषित उरसि अब नहिं विवेक अवकाश।
केवल प्रेम प्रकास को समुझत मोह विलास[3]।।

इसमें केशव ने प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों का छायानुवाद किया है--

मनः भगवति शोकावेगदूषिते मनसि विवेक एवमनवकाशं लभते----[4]

प्रबोधचन्द्रोदय में मन पुनः कहता है-

मनः - देवि, यद्यप्येवं तथापि न शक्नोमि शोकानलदग्धः
प्राणान्धारयितुम्।
संपन्न एवान्तकाले त्वं ताप दृष्टासि ------[5]

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०- १६३, छं०सं० ६

२- प्रबोधचन्द्रोदय, अंक पांच, पृ०-१८३, श्लोक १५

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ०-१६३, छं०सं० ८

४- प्रबोधचन्द्रोदय : अंक पांच, पृ०- १८४

५- वही, पृ०- १८५

विज्ञानगीता में भी मन इसी प्रकार की इच्छा व्यक्त करता है—

देवी कहिये कौन बिधि मेरो मरिबो होय ।
जाय मिलौं लोभादिकनि इहां मरै को रोय[1]।।

' विज्ञानगीता ' में मन सरस्वती से कहता है—

मन- मन पुत्रादिक जो सबै जधपि जगत अनित्य ।
तिन बिन और कछू न अब आवै मेरे चित्त[2]।।

विज्ञानगीता की इन पंक्तियों का आधार प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियां हैं—

ललितानां स्वजातानां हृदि संचरतां चिरम् ।
प्राणानामिव विच्छेदो मर्मच्छेदादरुन्तुद:[3] ।।

चतुर्दश प्रभाव में सरस्वती के उपदेश से मन में किस प्रकार वैराग्य और निर्वेद भाव जागृत हुए इसका सांगोपांग वर्णन हुआ है । इसी प्रभाव में मन सरस्वती से प्रार्थना करता है कि उसे इस प्रकार का वह उपदेश दे जिससे जन्म और मृत्यु से उसको मुक्ति मिल जाय । सरस्वती उसे व्यास- पुत्र शुकदेव की कथा सुनाती है और बताती है कि वह सुख और दु:ख को समान समझते हुए पारब्रह्म को जानने का प्रयास करें । यह अंश ' योगवाशिष्ठ ' से ग्रहण किया है । ' प्रबोधचन्द्रोदय ' की तुलना में केशव का सरस्वती द्वारा ज्ञानोपदेश वर्णन अधिक विस्तृत है । ' विज्ञानगीता ' में उल्लिखित ' मन ' के हृदय में वैराग्योत्पत्ति तथा उसका ' निवृत्ति ' को सहधर्मिणी के रूप में अंगीकार करना ' वेदसिद्धि ' के गर्भ से ' प्रबोध ' नामक पुत्र का उदय होना आदि

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : त्रयोदश प्रकाश, पृ0 - १६४, छ0सं0 १२

२- वही, पृ0 -१६६, छ0सं0 २२

३ - प्रबोधचन्द्रोदय : अंक ५, पृ0 - १८७

बातें नाटक में कुछ परिवर्तित रूप में दी गई हैं। शुकदेव की कथा का आधार योगवाशिष्ठ है। केवल दो - एक स्थलों पर सूक्ष्म भेद को छोड़कर दोनों ग्रन्थों की कथा अधिकांश एक ही है। पंचदश प्रभाव में वर्णित शिव तथा वशिष्ठ के कथोपकथन के अन्तर्गत देवनिर्णय और उसकी पूजन- विधि आदि प्रसंगों का आधार नाटक न होकर 'योगवाशिष्ठ' का शिव- वशिष्ठ आख्यान है। केशव ने इस कथा में केवल प्रकृत विषय से सम्बन्ध रखने वाली बातों को ही लिया है। 'योगवाशिष्ठ' में यह आख्यान अधिक विस्तार के साथ तो अवश्य दिया गया है, किन्तु उतना सुबोध एवं सुस्पष्ट नहीं है। योगवाशिष्ठ में ऋषि वशिष्ठ ने सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म का परिचय पूछने पर शिव जी कहते हैं—

> एष देव: स परम: पूज्य एष सदा सताम् ।
> चिन्मात्रमनुभूत्यात्मा सर्वग: सर्वसंश्रय:[1] ।।

श्री महेश्वर ने कहा— महर्षे, नियति के नाटक का साक्षीभूत यह चिदात्मा ही सबसे बड़ा देव है, यही देव सदा साधुजनों के पूजनयोग्य है। यही समस्त वस्तुओं का आश्रय, सर्वव्यापी, चिन्मात्ररूप तथा अनुभवात्मक है।

विज्ञानगीता में भी शिव ने कहा है—

> अजन्म है अमर्त्य है। असेष जंतु सर्व है।
> अनादि अन्तहीन है। जु नित्य ही नवीन है।।
> अरूप है अमेय है। अमाय है अजेय है।
> निरीह निर्विकार है। समाधि आधिहार है।।
> अकृत्त में अखंड है। असेष जीव मंडि है।
> समस्त सक्ति जुक्त है। सुदेवदेव मुक्त है[2] ।।

१- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, सर्ग ३८, पृ०- ३४०७, श्लोक १

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : पंचदश प्रकाश, पृ०-२०८, छ०सं० ४५-४७

इसी प्रकार का कथन योगवाशिष्ठ के शिव का भी है—

अनन्तदिक्तटाभोगभुजमण्डलमण्डितम् ।
नानाविधमहालोकगृहीतपरमायुधम् ।।
हृत्कोशकोण विश्रान्त ब्रह्माण्डौघपरम्परम् ।
प्रकाशपरमाकाश पारगापार विग्रहम्[1] ।।

सीमा शून्य दिशाओं के किनारों का यह जो विस्तार है, वही उसका भुजमण्डल है और उसी से वह राजित है; उन हाथों में उसने विविध ब्रह्माण्डों में विद्यमान बड़े- बड़े सत्य आदि लोकरूप श्रेष्ठ आयुधों को ग्रहण किया है। उसके हृदय- कोश के एक कोने में ब्रह्माण्ड- समूहों की पंक्तियों की पंक्तियां छिपी हुई हैं, वह प्रकाशस्वरूप एवं तम से परे है और उसके स्वरूप का कहीं पार भी नहीं पाया जा सकता। विज्ञानगीता के अनुसार इस ब्रह्म की पूजा निम्न प्रकार से की जा सकती है।

सुद्ध स्वभाव के नीर नहावै। पूरन प्रेम सुगंधहि लावै।
मूल चिदानंद फूलनि पूजै। और न 'केसव' पूजन दूजै[2]।।

योगवाशिष्ठ के शिव ने भी हृदय प्रदेश में स्थित शुद्ध चैतन्य मात्र स्वरूप आत्मा के अविच्छिन्न संवेदन को ही पूजा का सच्चा साधन है—

नित्यमक्लेशलभ्येन शीतलेनाऽविनाशिना ।
एकेनैवाऽमृतेनैष बोधेन स्वेन पूज्यते ।।[3]

षोडश प्रभाव में दिया गया राजा शिखिध्वज का आख्यान 'योगवाशिष्ठ' से लिया गया है। केशव का यह आख्यान 'योगवाशिष्ठ' की अपेक्षा बहुत संक्षिप्त है जिससे मूलकथा की बहुत-सी बातें छूट गई हैं।

१- योगवाशिष्ठ : तृतीय भाग:, सर्ग ३८, पृ०-३४०८-९, श्लोक ९, १०
२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : पंचदश प्रकाश, पृ०-२१०, छ०सं० ५५
३- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, सर्ग ३८, पृ०- ३४११, श्लोक २४

वहीं - कहीं सूक्ष्म भेद भी परिलक्षित होता है।

विज्ञानगीता में राजा शिखिध्वज ने रानी चुडाला से उसके अपूर्व सौन्दर्य का कारण पूछा है—

> रानी सुनि आबाल तें, तेरे तन एक रीति।
> काहे तें तुम श्रीमती, रहीं कहां करि प्रीति[1]।।

इसी प्रकार का प्रश्न योगवाशिष्ठ के शिखिध्वज ने भी पूछा है—

> प्रपीतामृतसारेव लब्धालभ्यपदेव च।
> आनन्दापूरपूर्णेव राजसे नितरां प्रिये[2]।।

हे प्रिये, इस समय तुम ऐसे परिपूर्ण रूप से शोभित हो रही हो, जैसे कि मानो तुमने अमृत का सार पी लिया हो या अलभ्य पद की तुमने प्राप्ति कर ली हो। आनन्द प्रवाह से तुम परिपूर्ण हो गई हो।

योगवाशिष्ठ की चुडाला ने शिखिध्वज के इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया है—

> नाकिञ्चित्किञ्चिदाकारमिदं त्यक्त्वाऽहमागता।
> न किञ्चित्किञ्चिदाकारं तेनाऽस्मि श्रीमती स्थिता[3]।।

आर्य, मैं इस मूढ़जनों में प्रसिद्ध सम्पूर्ण देहात्मरूपता का परित्याग कर तत्व ज्ञान से अशेष नामरूपाकारों से निर्मुक्त, परम ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गई हूं। मंत्र रसायनादि साधनों से तुच्छ तत्तत् सिद्धयाकार को प्राप्त मैं नहीं हूं, इसलिए मैं दिव्यातिदिव्य श्री सम्पन्न होकर स्थित हूं।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२१४, छं०सं० ११
२- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भागः, सर्ग ७९, पृ०- ३७७५, श्लोक १२
३- वही, पृ०-३७७६, श्लोक २१

विज्ञानगीता की चुडाला ने भी कुछ ऐसा ही उत्तर दिया है—

> सृष्टि को जो प्रकास नास बिलास जानत मित्त ।
> भोग जोग अजोग के सुख दुःख मोहिं न चित्त ।
> नित्य बस्तु विचार है न जरा जुरा न कराल ।
> हौं रहौं तिनतें सुनौ पति श्रीमती सब काल[1] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

> स तस्यां सम्प्रसुप्तायां शयने कोमलांशुके ।
> भृशं निद्राविमूढायां भ्रमर्यामिव पङ्कजे ।।
> तत्याज दयितां सुप्तामङ्कात्राजा शिखिध्वजः ।
> स्वैरं - स्वैरं मुखं राहोर्दिशं चान्द्रप्रभामिव[2] ।।

उस राजा ने, कमल के ऊपर सोई हुई निद्रा से अत्यन्त विमूढ़ भ्रमरी के समान, कोमल वस्त्रों से सुसज्जित पलंग पर सोई हुई उस चूडाला के निद्रा से अत्यन्त विमूढ़ हो जाने पर धीरे-धीरे अपनी गोद से सोई हुई प्रिया को उस तरह त्याग दिया, जिस तरह राहु का मुख पूर्व दिशा में चन्द्रमा की प्रभा को । केशव के शिखिध्वज ने भी सोती हुई चुडाला को त्याग दिया—

> सोय रहीं जब सुंदरि जानी । जामिनि में बहु जोबनमानी ।
> राज तज्यो सिगरी रजधानी । जाय महाबन रैन बिहानी[3] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

> मसृणं वैणवं दण्डं फलभोजनभाजनम् ।
> अर्घपात्रं पुष्पभाण्डमक्षमालां कमण्डलुम् ।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : चौदहवां प्रकाश, पृ०-२१४, छ०सं० १२

२- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, सर्ग ८४, पृ०-३८५३, श्लोक ४३,४४

आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : चौदहवां प्रकाश, पृ०-२१६, छ०सं० ३५

कन्थां शीतापनोदाय वृसीं चैव मृगाजिनम् ।
आनीयाऽयोजयत्तस्मिन्मठिका मन्दिरे नृपः[1]।।

विज्ञानगीता के अनुसार—

मंदिर के तट पर्नकुटी करि । तामँहि दंड कमंडलु कौं धरि ।
माल लियैं मृग चर्म धर्यौ तन । दीन्ह तौ फल फूल के भोजन[2]।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

संध्यापूर्वं जपं प्रातः प्रहरे स तदाऽकरोत् ।
पुष्पोच्चयं द्वितीये तु स्नानं देवार्चनं ततः[3]।।

राजा ने दिन के प्रथम प्रहर में प्रातःकाल सन्ध्यापूर्वक जप, द्वितीय प्रहर में पुष्प आदि का संचय और उसके बाद स्नान, देवार्चन आदि कार्य किये । इस प्रकार का वर्णन केशव ने भी किया है—

स्नान करत पहिलै प्रहर, कुसुम गहन जुग जाहि ।
तीजें पूजन देवता, मूलन चौथे जाहि[4] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

तत्राऽर्द्धरात्रसमये दूरं याते शिखिध्वजे ।
हरिणीग्राममुप्तेव चूडाला बुबुधे भयात् ।।
तन्मयेहाऽद्य किं कार्यं तत्समीपं व्रजाम्यहम् ।
भर्तैव गतिरुद्दिष्टा विधिना प्रकृता स्त्रियः[5]।।

१- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भागः, सर्ग ८४, पृ०-३८५५, श्लोक ५७,५८
२-आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश,पृ०-२१६,छ०सं० ३६
३- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भागः,सर्ग ८५,पृ०- ३८५६, श्लोक ६०
४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश,पृ०-२१६,छ०सं० ३७
५- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भागः,सर्ग ८५,पृ०- ३८५७-५८,श्लोक २,७

उस आधी रात के समय राजा शिखिध्वज के बहुत दूर निकल जाने पर गांव में सोई हुई हरिणी की नाईं, वह चूडाला भय से अचानक जाग गई। मेरे पति राज्य छोड़कर जंगल में चले गये हैं इसलिए अब मुझे यहां क्या करना है, मैं भी अपने स्वामी के समीप चलूं, क्योंकि शास्त्र द्वारा पति ही स्त्री का प्रथम शरणस्थान विहित है।

विज्ञानगीता की चुडाला भी ऐसा ही सोचती है।

जागि उठी जबही निसि रानी। पौ बिनु सेज विलोकि डरानी।
मोकहं छोड़ि गए नृप कानन। ज्यों नलिनी तजि और गजानन।
हौं अब जाउं जहां कहं भूपति। है पतिनी कहं पीव सदा गति[1]।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

भर्ता कषायपाकेन परिपक्वमतिः स्थितः।
चेतस्यस्याऽथ विमले स्वं तत्वं प्रतिबिम्बति।।
इति सञ्चिन्त्य चूडाला बभूव द्विजदारकः[2]।

अब मेरा स्वामी रागादि वासनाओं के परिपाक से परिपक्वमति होकर स्थित है। उसके विमल चित्त में आत्मतत्व भली भांति प्रतिबिम्बित होगा, यों विचारकर चूडाला ब्राह्मण पुत्र बन गई।

विज्ञानगीता की चूडाला ने भी देवपुत्र का रूप धारण किया—

नरदेवी नरदेव पै देवपुत्र के रूप।
गई प्रगट तिहि निकट तब अवलोकी पटुभूप[3]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०- २१६, छं०सं० ३६

२- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भागः, सर्ग ८१, पृ०- ३८६६, श्लोक ५५, ५६

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०- २२१, छं०सं० ४७

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

> वनान्तरादुपायातं तपोमूर्तिमिवाऽऽस्थितम् ।
> द्रवत्कनकगौराङ्गं मुक्ताहारविभूषितम् ।।
> शुक्लयज्ञोपवीताङ्गं शुक्लाम्बरयुगावृतम् ।
> कमण्डलुधरं कान्तं पुरो यातं शिखिध्वजः[1] ।।

देवपुत्र ने जो एक दूसरे जंगल से आए हुए मूर्तिमान तप के सदृश अवस्थित, पिघल रहे सुवर्ण के समान गौरांग, मोतियों के हार से विभूषित, शुक्ल यज्ञोपवीत से विराजमान, शुक्ल दो वस्त्रों से आवृत, कमण्डलधारी तथा अत्यन्त कान्ति से युक्त सामने आकर खड़ा था ।

केशव ने भी देवपुत्र के रूप का लगभग ऐसा ही वर्णन किया है—

> अति गौर गूढ़ अनंग के अंग- अंग रूप तरंग ।
> मुकतान के उर हार लोचन स्वेत चारु कुरंग ।
> उपबीत उज्ज्वल स्वेत अम्बर बालवेष उदार ।
> नरदेव आसन तें उठ्यो अवलोकि देवकुमार[2] ।।

राजा ने देवपुत्र को आसन आदि दिया—

> देवपुत्रागमधिया सम्परित्यक्तपादुकः ।
> देवपुत्र नमस्कार इमासनमास्यताम्[3] ।।

देवपुत्र के आगमन की बुद्धि से अपनी खड़ाऊं छोड़कर राजा शिखिध्वज ने कहा— हे देवपुत्र, आपको नमस्कार है, यह आपके लिए आसन है कृपाकर इस पर बैठ जाइए ।

१- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भागः, सर्ग ८५, पृ०- ३८६७, श्लोक ५६- ६०

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०- २२२, छंसं० ४८

३- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भागः, सर्ग ८५, पृ०-३८६८, श्लोक ६६

केशव के शिखिध्वज ने भी देवपुत्र को आसन आदि दिया—

दीने आसन अर्घ नृप कीने दोऊ प्रनाम ।

बैठे दोऊ देवदुति पूछि कुशल गुनग्राम[1] ।।

योगवाशिष्ठ में राजा का परिचय प्राप्त करने के लिए चूडाला का कथन है—

आस्तामेषा कथा तावत् सर्वं ते वर्णितंमया ।

त्वं मे कथय हे साधो कस्त्वमत्रौ करोषि किम्[2] ।।

चूडाला ने कहा— साधो, अब मेरी प्रशंसार्थ जो कुछ वचन आप, कह रहे हैं, उसे रहने दीजिए । आपने जो कुछ पूछा, उसका मैंने वर्णन किया । अब मुझसे कहिए कि आप हैं कौन और इस पर्वत पर क्या कर रहे हैं । इसी प्रकार का परिचय विज्ञानगीता की चुडाला ने भी प्राप्त किया है—

कौन काज आए कहाँ, कानन में मुनिराज[3] ।।

राजा अपना परिचय देते हुए कहते हैं—

शिखिध्वजोऽहं भूपालस्त्यक्त्वा राज्यमिहाऽऽस्थितः ।

भृशं भीतोऽस्मि तत्वज्ञ संसृतौ जन्मतः पुनः[4] ।।

मैं शिखिध्वज नामक राजा हूं, राज्य छोड़कर यहां पर वास करके तप कर रहा हूं । हे तत्वज्ञ मैं संसार में पुनर्जन्म से अत्यन्त डर गया हूं ।

विज्ञानगीता के शिखिध्वज कुछ भिन्न प्रकार से परिचय देते हैं—

१- आचार्य केशवदासकृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२२२, छ०सं० ४६

२- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, पृ०- ३८१, श्लोक ६

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२२६, छ०सं० ६१

४- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, पृ०-३८२, श्लोक १०

जाति देस विदेस त्यौं जग जोतिके कह राज ।

हौं सिखिध्वज नाम मालव देस को अधिराज[1]।।

देवपुत्र ने ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता बताई—

कथं बन्धः कथं मोक्ष इति प्रश्नानुदाहरन् ।

पारावारविदां पादान् कस्माद्राजन्न सेवसे[2]।।

यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ, मोक्ष किस उपाय से होगा इत्यादि प्रश्न करते हुए आप पर तत्पदार्थ और अपर त्वंपदार्थ का स्वरूप से जानने वाले तत्वज्ञ गुरुओं के पास जाकर उनके चरणों की सेवा क्यों नहीं करते ।

विज्ञानगीता के अनुसार—

ज्ञान गुरु पै सीखिये, जब उपजै विज्ञानु ।

तब अधिकारी होहुगे, भूपति जिय मैं जानु[3]।।

राजा ने देवपुत्र को ही गुरु मानकर उनसे ही उपदेश देने का आग्रह किया—

गुरुस्त्वं मे पिता त्वं मे मित्रं त्वं मे वरानन ।

शिष्यो नमस्करोम्यद्य पादौ तव कृपां कुरु[4] ।।

हे सुन्दरानन, आप ही मेरे गुरु हैं, आप ही मेरे पिता हैं, आप ही मेरे मित्र हैं, शिष्य रूप में मैं आपके चरणों को प्रणाम करता हूं, कृपा कीजिए ।

शिखिध्वज का ऐसा ही कथन विज्ञानगीता में भी है—

तुमहीं मुनि मित्र पिता गुरु मेरे । सिखवौ उपदेस सबै हित केरे ।

जिहि तें सब ज्ञान प्रयोगनि जानौं । अति श्री परमानंद को सुख मानौं[5]॥

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२२६, छ०सं० ६२

२- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, पृ०-३८७, सर्ग ८७, श्लोक ३१

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२२६, छ०सं० ६३

४- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, सर्ग ८७, पृ०-३८८, श्लोक ३८

५- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२२६, छ०सं० ६४

देवपुत्र राजा को हाथी की कथा बताते हैं—

स बद्धो लोह जालेन हस्तिपेन किलाऽमितः ।
मुनीन्द्रेणेव विन्ध्याद्रिरुपेन्द्रेणेव वा बलिः[1] ।।

उस हाथी को पीलवान ने चारों ओर से लोहमय जाल से उसको उस तरह बांध रखा था, जिस तरह अगस्त्य ने विन्ध्याद्रि को और उपेन्द्र ने बलिराज को बांध रखा था ।

किंचित् भेद के साथ केशव ने भी विज्ञानगीता में हाथी की कथा दी है—

एक हो एक भूप के बारन नीको । अति सुन्दर सूर मनोहर जी को ।
वह तो बहु जीवन जोर भर्यो है । पुनि लोह जंजीरन जाल जर्यो है[2] ।।

बड़े प्रयत्न से उस हाथी ने अपने दोनों दांतों से उस शृंखलाजाल को उस प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया ।

दन्ताभ्यां यत्नतस्ताभ्यां मुहूर्तेनितयेन सः ।
बभञ्ज शृङ्खलाजालं स्वर्गार्गलमिवाऽसुरः[3] ।।

विज्ञानगीता के अनुसार—

छांड़ि जीवत ताहि खंभहि तोरि गो बन मांहि ।
त्यों जंजीरनि सोय गो गिरि की गुहा गुरु माहिं[4] ।।

कुछ ही दिनों के अनन्तर वन में विहार कर रहा वह हाथी, पीलवान द्वारा खोदे गये गड्ढे में गिर गया—

१- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भागः, सर्ग ८६, पृ०- ३६०८, श्लोक ४

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२२७, छ०सं० ६६

३- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भागः, सर्ग ८६, पृ०- ३६०६, श्लोक ८

४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२२७, छ०सं० ६८

दिनै: कतिपयैरेव पारणी विहरन् वने ।

तस्मिन्निपतित: शाते शुष्कपर्णाविव पर्वत:[1] ।।

विज्ञानगीता के अनुसार—

जोर घटाय गये नगरी है । रासियौं दोख जात दरी है ।

आधि न जाय तहां जग कोनौ । लाजन लै रह्यौ जात के कोनौ[2] ।।

चूडाला ने राजा को चिन्तामणि की कथा इस प्रकार सुनाई । कोई एक श्रीमान् पुरुष था । उसने तप, जप, देवतास्तवन आदि अनन्त उपायों से सिद्ध होने वाले चिन्तामणि की प्राप्ति के लिए तपश्चर्या की ।

अनन्तयत्नसंसाध्ये स चिन्तामणिसाधने ।

प्रवृत्तो वाञ्छो वह्निरब्धिसंशोषणे यथा[3] ।।

केशव ने भी इस कथा का वर्णन विज्ञानगीता में किया है—

एक हुतौ धरनी धनिक, सब सुख पूरन गेह ।

छांडि गयौ बन गह्वरनि, चिंतामनि के नेह[4] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार—

न यदा येन लब्धव्यं न तत्प्राप्नोत्यसौ तदा ।

चिन्तामणिरवाप्तोऽपि दुर्धिया ह्यवोज्झित:[5] ।।

जो वस्तु जिस समय जिसको प्राप्त होने योग्य नहीं रहती, वह वस्तु उस समय वह प्राप्त कर सकता ही नहीं । अत: प्राप्त हुआ भी चिन्तामणि दुर्बुद्धि के कारण उपेक्षा से उसने छोड़ दिया ।

१- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, सर्ग ८६, पृ०- ३६११, श्लोक २५

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२२८, छ०सं० ७०

३- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, सर्ग ८८, पृ०-३६०२, श्लोक ३

४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२३०, छ०सं० ८१

५- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, सर्ग ८८, पृ०- ३६०४

विज्ञानगीता के अनुसार—

चिंतामनि को पाय कै, छूवै नहीं जु हाथ।
अन जानत ताके मरम छांड़ि गयौ नरनाथ[1]।।

चिन्तामणि को छोड़कर उस व्यक्ति ने कांच के टुकड़े को देखा और उठा लिया—

ददर्शाऽन्य कच्चद्रूपं काचखण्डमखण्डितम् ।
हसद्भिर्वञ्चकैः सिद्धैः पुरस्कृतमलक्षितैः[2]।।

विज्ञानगीता के उस धनिक ने भी आगे चलकर कांच प्राप्त किया—

कौनहुं एक अभाग तें, चिंतामनि तें मागि।
पाई आगें काचमनि, सो लीनी पौ लागि[3]।।

इसके पश्चात् उस कांचमणि से उसे बहुत ही दुर्गति सहनी पड़ी। इस कथा को कहकर देवपुत्र ने राजा को अनेकों उपदेश दिए। योगवाशिष्ठ में इसका बहुत ही विस्तृत वर्णन है। विज्ञानगीता में भी देवपुत्र ने राजा को उपदेश दिया है परन्तु वह उपदेश योगवाशिष्ठ की तुलना में अत्यन्त संक्षिप्त है।

सप्तदश प्रभाव में जीव विवेक के ज्ञानोपदेश से विकाररहित हो जाता है। जीव के विकाररहित हो जाने पर 'श्रद्धा' और 'शान्ति' का आगमन होता है। इसके अनन्तर 'श्रद्धा' यह देखती है कि अब मन जीव के वशीभूत हो गया अतः उसे विश्वास हो जाता है कि 'विवेक' और जीव का स्नेह सम्बन्ध बढ़ता ही रहेगा। दूसरी ओर 'शान्ति' 'विष्णुभक्ति' के पास उपनिषद को बुलाने जाती है बड़ी कठिनाई के बाद जब वह आती है तो जीव उससे प्रश्न पूछता है कि वह इतने दिन कहां रही ? उसका उत्तर देती हुई वह

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२३०, छं०सं० ८३
२- योगवाशिष्ठ : तृतीयो भाग:, सर्ग ८८, पृ०-३६०५, श्लोक २०
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : षोडश प्रकाश, पृ०-२३१, छं०सं० ८४

बताती है कि पहले तो वह ` यज्ञविद्या ` के पास गई, किन्तु उसे वहां सम्मान प्राप्त न हो सका। इसके बाद मीमांसा के पास गई, वहां भी वह उपेक्षित हुई। वहां से वह तर्क विद्या के पास गई, तर्कविद्या भी उसके विचारों से सन्तुष्ट न हो सकी। यही नहीं, उसके निकट रहने वाले लोगों ने उसे पकड़कर बांधना चाहा, लेकिन वह वहां से भाग निकली और दण्डक वन में पहुंची, जहां राम ने उसकी रक्षा की। वहां से वह गीता के पास गयी, जहां उसे ससम्मान- शरण मिली। किंचित् परिवर्तन के साथ यह कथा ` ` प्रबोधचन्द्रोदय ` से ली गई है। अन्तर केवल इतना है कि ` विज्ञानगीता ` के ` जीव ` तथा ` वेदसिद्धि ` नाटक में क्रमश: ` पुरुष ` और `उपनिषद्` बन गए हैं। अज्ञान- ज्ञान की भूमिकाओं का वर्णन ` योगवाशिष्ठ ` के सदृश ही है। केवल योगवाशिष्ठ की पहली भूमिका ` बीज- जाग्रत ` को केशव ने जीव- जाग्रत (वि०गी०पृ०-२१,छं० ४२) लिखा है। सम्भवत: सम्पादन की भूल से ऐसा हो गया है। केशव के लक्षण अपेक्षाकृत अस्पष्ट हैं।

योगवाशिष्ठ के अनुसार अज्ञान की भूमियों का वर्णन इस प्रकार है—

तत्राऽऽरोपितमज्ञानं तस्य भूमीरिमा: शृणु।
बीजजाग्रत्तथा जाग्रन्महाजाग्रत तथैव च ॥
जाग्रत्स्वप्नस्तथा स्वप्न: स्वप्नजाग्रत्सुषुप्तकम्।
इति सप्तविधो मोह: पुनरेव परस्परम्[१] ॥

उस प्रत्यक् चैतन्य में अज्ञान का अनादिरूप से अध्यास किया गया है। इस समय उस अज्ञान की इन भूमियों को आप सुनिये— बीजजाग्रत, जाग्रत, महाजाग्रत, जाग्रत्स्वप्न, स्वप्न, स्वप्नजाग्रत और सुषुप्ति इस प्रकार सात तरह का मोह है। यह सात प्रकार का मोह परस्पर संश्लिष्ट होकर बहुत से

१- योगवाशिष्ठ : प्रथमोभाग:, सर्ग ११७, पृ०-१५२५,श्लो०सं० ११,१२

नामों को धारण करता है।

योगवाशिष्ठ की उपरोक्त पंक्तियों को आचार्य केशवदास निम्न शब्दों में लिखते हैं—

बीज जु जाग्रत एक अरु दूजी जाग्रत जानु।
महा जु जाग्रत तीसरी जाग्रत स्वप्न बखानु।
स्वप्न पांचई है समुझि, स्वप्नो जाग्रत षष्ठ।
प्रभा सुषुप्ता सातईं, सुनौ सदा मतिनिष्ठ।
सात भांति को मोह यह मिले अनेक प्रकार।
बांधि महाप्रभु आनिये मोहत भांति अपार।
सहित बासना गर्भ में प्रथम मोह अज्ञान।
बीजि जाग्रत नाम यह ताको नित्य बखान[1]॥

इसी प्रकार योगवाशिष्ठ में ज्ञान की भूमियों का भी विवेचन निम्न शब्दों में मिलता है—

ज्ञानभूमि: शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसा।
सत्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका।
पदार्थाभावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता[2]॥

पहली ज्ञानभूमि शुभेच्छा कही गई है, दूसरी का नाम विचारणा है, तीसरी तनुमानसा कही जाती है, चौथी सत्वापत्ति है, उसके बाद पांचवीं असंसक्ति नाम की योगभूमि है, छठी पदार्थाभावनी है एवं सातवीं तुर्यगा कहलाती है।

ज्ञान की इन सातों भूमियों का उल्लेख आचार्य केशवदास ने भी किया है—

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ०-२५०, छ०सं० ४४-४७

२- योगवाशिष्ठ : प्रथम भाग, सर्ग ११८, पृ०-१५३१, छ०सं० ५,६

प्रथम सुभेच्छा जानिबी, पुनि बिचारना जान ।
तीजो है तनमानसा, केसवराय प्रमान ।
चौथो सत्यापत्ति पुनि असंसक्तिको जानि ।
छठो अर्थ आभावना, सप्त तुर्य को मानि[1] ।।

विज्ञानगीता में शांति वेदसिद्धि से कहती है कि हे सखी, तुम्हें महाराज विवेक ने प्रेमपूर्वक बुलाया है तो वेद सिद्धि उत्तर देता है—

निष्ठुर प्रीतम त्यों सखी क्यों करिहौं अवलोक ।
इतर-जुबति जो जिन दयौ मोहि बिरहमय सोक[2] ।।

यहां केशव 'प्रबोधचन्द्रोदय' की निम्न पंक्तियों से प्रभावित दिखाई देते हैं—

उपनिषद्— सखि, कथं तथा निरनुक्रोशस्य स्वामिनो मुखमालोकयिष्यामि । येनाहमितरजनयोषेव सुचिरमेकाकिनी परित्यक्ता[3] ।

प्रबोधचन्द्रोदय की शान्ति उपनिषद् को उसके इस प्रश्न का उत्तर देती हुई समझाती है—

शान्तिः — सर्वमेतन्महामोहस्य दुर्विलसितम् । नात्र देवस्यापराधः । तेन मोहेन मनः कामादिद्वारेण प्रबोधयता त्वत्तो दूरीकृतो विवेकः । एतदेव कुलस्त्रीणां नैसर्गिकं शालं यद्विपन्मग्नस्य स्वामिनः समयप्रतीक्षणमिति । तदेहि दर्शनप्रियालापेन संभावय देवम् । संप्रत्यपहृता विद्विषः । संपूर्णास्ते मनोरथाः[4] ।

इन पंक्तियों का अनुवाद केशव ने इस प्रकार किया है—

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १७वां प्रकाश, पृ० -२५२, छं०सं० ५६-५७
२ - वही, सप्तदशे प्रकाश, पृ० - २४९, छं०सं० ७
३ - प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ० - २१०
४ - वही, पृ०-२११

देवी- यह अपराध अगाध सब महामोह को जानि ।
दोष कछू न विवेक को काल- चाल- अनुमानि ।।
शान्ति- सील है कुल नारि को यह आपदा सहि लेइ ।
काल काटति काल पै नहि नेकु काटन देइ ।।
हाव-भाव विभाव करिकै वश्य कै पति लेइ ।
जाइये सुप्रबोध पुत्रहि नित्य आनंद देइ[1] ।।

प्रबोधचन्द्रोदय में पुरुष कहता है—

अनुग्रहविधौ देव्या मातु महद्न्तरम् ।
माता गाढं निबन्धाति वन्धं देवी निकृन्तति[2]।।

इन पंक्तियों के आधार पर केशव ने निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं—

मातु है यह ज्ञानदा अब चित्त माँहि बिचार ।
देवि सों जननीन सों दिन दीह अंतर मानि ।
मातु बंधति मोहबंधन देवि काटति जानि [3]।।

पुन: प्रबोधचन्द्रोदय का पुरुष उपनिषद् से प्रश्न करता है—

पुरुष: - अम्ब, कथ्यताम् क्व भवत्या नीता एते दिवसा:[4]

इन पंक्तियों का छायानुवाद विज्ञानगीता में इस प्रकार मिलता है—

जीव— माता कहिये दिवस बहु कीने कहाँ व्यतीत [5]

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ० -२४२, छं०सं० ८,१०

२- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्क:, पृ०- २१४

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता, सप्तदश प्रकाश, पृ०- २४३, छं०सं० १२

४- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्क:, पृ० - २१४

५- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ० -२४३, छं०सं० १४

प्रबोधचन्द्रोदय में उपनिषद् पुरुष के इस प्रश्न का उत्तर निम्न शब्दों में देती है—

नीतान्यमूनि मठचत्वरशून्यदेवा—

गारेषु मुखैमूर्खैः सह वासराणि[1]।

विज्ञानगीता में ये पंक्तियां इस प्रकार मिलती हैं—

बेदग्रहनि मठसठनिमुख सुनि मुनि मानस मीत[2]।।

विज्ञानगीता में जीव प्रश्न करता है—

जीव— तत्व तुम्हारे तब तहां काहू समर्थौ मात[3]?

इसी प्रकार का प्रश्न प्रबोधचन्द्रोदय में पुरुष ने उपनिषद् से किया है—

पुरुषः — अथ ते जानन्ति किमपि भवत्यास्तत्वम्[4]।

इस प्रश्न का उत्तर प्रबोधचन्द्रोदय में उपनिषद् इस प्रकार देती है—

ते स्वेच्छया मम गिरां द्रविडाङ्गनोचित ।

वाचामिवार्थमविचार्य विकल्पयन्ति[5] ।।

इसका अनुवाद विज्ञानगीता में इस प्रकार हुआ है—

वेदसिद्धि— नहिं नहिं द्राविड़ दखिनी अपार स्वच्छ बचात[6]

`विज्ञानगीता` में वेदसिद्धि जीव से कहती है—

१- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ०- २४

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : पृ०- २४३, छं०सं० १४

३- वही, सप्तदश प्रकाश, पृ०- २४३, छं०सं० १५

४- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ०- २१४

५- वही, पृ०-२१५, श्लोक १२

६- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०-२४३, छं०सं० १५

धरें एनचर्मस्सदा देह सोरें । जहां अग्नि तीनौ ज्वालानि मोहैं ।
चहूं ओर जज्ञ क्रिया सिद्धिधारी । चले जात मैं बेदविद्या निहारी[1]।।

कदाचित इन पंक्तियों पर प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों का प्रभाव है—

कृष्णाजिनाग्निसमिदाज्यजुहूस्रुवादि -
पात्रैस्तथेष्टिपशु सोममुखैर्मखैश्च ।
दृष्टा मया परिवृताखिलकर्मकाण्ड—
व्यादिष्टपद्धतिरथा ध्वनि यज्ञविद्या[2]।।

विज्ञानगीता में विवेक कहता है कि यज्ञ विद्या अब कुतर्कों में पड़कर मलिन हो गई है तथा जिस प्रकार चुंबक की तेजस्विता से लोहा चेतन हो जाता है उसी प्रकार विष्णु की चेतना पाकर माया भी चेतन हो गई है—

जज्ञहु की बिद्या भई, निपट कुतर्कनिलान ।
होमधूम तें मलिनतनु, जद्यपि हुती प्रबीन ।।

-- -- --

ज्योति अद्भुत तें भए बिस्नु प्रेरक मानि ।
माय तें अवलोकियो जग भयो मायक जानि ।
जौं कहौ वह जानिये जड़ क्यों करै जग जोय।
पाय चुंबक तेज ज्यों जड़ लोह चेतन होय[3] ।।

ये छन्द प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों के आधार पर लिखे गये हैं—

राजा— अहो धूमान्धकारश्यामलितदृशो दुष्प्रज्ञत्वं यज्ञविद्याया: येनैवं कुतर्कैरुपहता ।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश,पृ०- २४३,छ०सं० १६
२-प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ०-२१५, श्लोक १३
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश,पृ०-२४५,छ०सं० २०, २१

अयः स्वभावादचलं बलाच्चलत्यचेतनं चुम्बकसंनिधाविव ।

तनोति विश्वेक्षितुरीक्षितेरिता जगन्ति मायेश्वरतेयमीशितुः[1] ।।

प्रबोधचन्द्रोदय में उपनिषद् कहती है—

उपनिषत्— ततः कर्मकाण्डसहचरी मीमांसा मया दृष्टा—

विभिद्य कर्माण्यधिकारभाञ्ज

श्रुत्यादिभिश्चानुगता प्रमाणैः ।

अङ्गैर्विचित्रैरभियोजयन्ती

प्राप्तोपदेशैरतिदेशकैश्च[2] ।।

इसके आधार पर विज्ञानगीता में निम्न पंक्तियाँ मिलती हैं—

यह सुनि तब हौं उठि चली ता जग्गनि की सृष्टि ।

एकदेस थित परि गई मीमांसा मम दृष्टि ।।

-- -- --

कर्तृ कर्म विभाग को अधिकार— भाजन पाय ।

बेद अंगन सौं मिली उपदेस देति बनाय[3] ।।

विज्ञानगीता में वेदसिद्धि कहती है—

एक जीव ब्रंघ एक जगत साखि कहत है ।

एक काम सहित एक नित्य काम रहित है ।

एक कहत परम पुरुष दंडान लीन है ।

एक कहत संग रहित क्रिया कर्महीन है[4] ।।

१- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ०- २१९, श्लोक १६

२- वही, पृ०-२२१, श्लोक १८

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०-२४६, छ०सं० २४, २५

४- वही, छ०सं०- २७

मीमांसकों के इस विचार पर प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों का प्रभाव है—

एक: पश्यति चेष्टितानि जगतामन्यस्तु मोहान्धधी—
कै: कर्मफलानि वाञ्छति ददात्यन्यस्तु तान्यर्थिने ।
एक: कर्मसु शिष्यते तनुभृतां शास्तेव देवोऽपरो ।
नि: सङ्ग: पुरुष: क्रियासु स कथं कर्तेति संभाव्यते[१] ।।

इसके उपरान्त उपनिषद् ने तर्कविद्या को देखा—

उपनिषद्— ततो मया बहुभि: शिष्यैरुपास्यमानास्तर्क विद्या अवलोकिता: ।

का चिच्छिष्ट विशेष कल्पनपरा न्यायै: परा तन्वती
वादं सच्छलजाति निग्रहमयैर्जल्पं वितण्डामपि ।
अन्या तु प्रकृतेर्विभज्य पुरुषस्योदाहरन्ती भिदां
तत्वानां गणनापरा महदहंकारादिसर्गक्रमै:[२] ।।

इन पंक्तियों के आधार पर केशव के निम्न दो छन्द मिलते हैं—

बिदा मांगि तबहीं चली हौं तिन तें अकुलाय ।
देखी बिधा तर्क की, बहुतसिष्य जुत जाय ।।
-- -- --
एक बिस्व बिसेषबस्तु बिकल्पना जिय जानि ।
एक न्यायपरायना अरु बादबृद्ध बखानि ।
एक थापत आपने परपक्ष दोष बितान ।
एक मायहि ईस स्यों कहि एक भिन्न प्रमानि[३] ।।

' प्रबोधचन्द्रोदय ' में उपनिषद् का कथन है—

१- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्क:, पृ०- २२४,२२५, श्लोक१६
२- वही, पृ०- २२६
३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश,पृ०-२४७,छ०सं०२८,२६

ततस्ताभिः सप्रकाशोपहासमुक्तम् — आः वाचाले, परमाणुभ्यो विश्वमुत्पद्यते। निमित्तकारणमीश्वरः। अन्यथाः तु सक्रोधमुक्तम् — आः पापे, कथमीश्वरमेव विकारिणं कृत्वा विनाशधर्मिणमुपपादयसि। ननु रे प्रधानादिष्वोत्पत्तिः[1]।

इन पंक्तियों के आधार पर केशव ने विज्ञानगीता में निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं—

उन मोसों उपहास सों बात बिचारि कही सु।
बिस्व होत परमानु ते निमित्त कारन ईस।।

यों अबिनास अरूप सो करिकै रूप प्रकार।
बिनासीन सों करत अब जुक्ता जुक्त बिचार[2]।।

' विज्ञानगीता ' में राजा विवेक कहते हैं—

एक तो विधा सबै यहौ न जानत मूढ़।
झूठौ तौ लौं सत्य सो जौ लौं सत्य न गूढ़।
भ्रम ही तें जो सुक्ति में होति रजत की जुक्ति।
' केसव ' संभ्रमनासतें प्रगट सुक्ति की सुक्ति।।
रजतजानि ज्यौं सुक्ति में भ्रम ते मन अनुरक्त।
भ्रम नासे ते रजत हूं छंवित नाहिं विरक्त।।
अविकारी जगदीस है भ्रम ही तें सविकार।
' केसव ' कारी रजुन में सूझत सर्प बिकार[3]।।

यहां केशव प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों से प्रभावित हैं—

१- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ०- २२८

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०- २४७, छं०-३१, ३२

३- वही, पृ०- २४८, छं० ३३, ३४, ३५, ३६

राजा— अहो कर्ममतयस्तर्कविद्या एतदपि न जानन्ति । सर्वं प्रमेयजातं घटादिवत्कार्यमिति परमाणुप्रधानोपादानकारणमप्युपेक्षणीयमेवेति । तथाहि—

अम्भः शीकरान्तरिक्षनगरस्वप्नेन्द्रजालादिवत्
कार्यं मेयमसत्यमेतदुदयध्वंसादियुक्तं जगत् ।
शुक्तौ रूप्यमिव स्रजीव भुजगः स्वात्मावबोधे हरा–
वज्ञाते प्रभवत्यथास्तमयते तत्त्वावबोधोदयात्[1] ।।

विज्ञानगीता में राजा विवेक ब्रह्म की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

निकलंक है सुनिरीह निर्गुन सांत ज्योति प्रकास ।
मानिहै मन मध्य ता कहं क्यों बिकार बिलास ।
होति बिम्बुपर्द न म्लान जु कल्मषादिक पाय ।
राहु छांह छिये न स्यामल सूर क्यों कहि जाय[2]।।

यह छन्द प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्तियों का भावानुवाद है—

शान्तं ज्योतिः कथमनुदितानन्दनित्यप्रकाशं
विश्वोत्पत्तौ व्रजति विकृतिं निष्कलं निर्मलं च ।
तन्नीलोत्पलदलरुचामम्बुवाहावलीनां
प्रादुर्भावे भवति नभसः कीदृशो वा विकारः[3]।।

विज्ञानगीता में देवी कहती हैं—

गहौ गहौ तब सबनि मिलि मो सों कह्यो रिसाय ।
गई दंडकारन्य हौं भांतिनि ते अकुलाय[4] ।।

१- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ०- २२८, २२९

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०-२४६, छ० ३७

३- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ०-२३०, श्लोक २३

४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०-२४६, छ० ३८

यह प्रबोधचन्द्रोदय की निम्न पंक्ति के आधार पर लिखा गया है—

उपनिषद्— ततोऽहं त्वरिततरं निष्क्रम्य दण्डकारण्यं प्रविष्टा[1]।

प्रबोधचन्द्रोदय में उपनिषद् का कथन है—

छिन्ना मुक्तावलिरपहृतं प्रस्तमङ्गाद्दुकूलं

भीता गीताश्रममथ गलन्नूपुराहं प्रविष्टा[2]।।

केशव के विज्ञानगीता की देवीने भी अपनी प्राण रक्षा के लिए गीता के घर में शरण ली—

लई रामरमा सबै हौं बचाय मुनि साखि।

कंठ लगाय लई लपकि गीता के गृह राखि[3]।।

गीता ने मन से कहा कि संसार के जीवों की जो माता है उसे तुमने झूठा समझा अतः तुम इस पाप के लिए कई जन्मों तक नरकगामी बनोगे—

अप्रमान मन तुम करी माता जे जग जंतु।

नरक परहिंगे जन्म बहु जिनको नाहीं अंतु।।

इहि विधि हौं अपनी कथा कहौं कहां लगि ईस।

तुम अन्तर्यामी सबै जानत हौ जगदीस[4] ।।

इसी प्रकार का कथन प्रबोधचन्द्रोदय में भी गीता द्वारा कहा गया है—

ये खलु त्वामप्रमाणीकृत्य यथेष्टमनुसरन्ति:

प्रचरिष्यन्ति तेषामीश्वर एव शास्ता। उक्तं चैतन

भगवता तानधिकृत्य। तथाच गीतायाम्— 'तानहं द्विषतः

क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु'।

इति[5]।

१- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ०-२३१

२- वही, श्लोक २४

३- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : सप्तदश प्रकाश, पृ०-२४६, छं० ३६

४- वही, छं०- ४०, ४१

५- प्रबोधचन्द्रोदय : षष्ठोऽङ्कः, पृ०-२३१

विज्ञानगीता के अष्टादश प्रभाव में उपनिषद् जीव के पूछने पर प्रह्लाद की कथा का उल्लेख करती है। एकोनविंश प्रभाव में उपनिषद् राजा बलि की कथा बताकर जीव को उपदेश देती है। इन दोनों कथाओं का आधार 'योगवाशिष्ठ' है। कथाएं अवश्य 'योगवाशिष्ठ' की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त रूप में दी गई हैं। प्रबोधचन्द्रोदय में ये कथाएं नहीं मिलतीं।

योगवाशिष्ठ के अनुसार प्रह्लाद ने भावना द्वारा अपने शरीर को नारायण रूप बनाकर भगवान् विष्णु की पूजा के लिए विचार किया।

> प्रह्लाद इति संचिन्त्य कृत्वा नारायणीं तनुम्।
> पुन: संचिन्तयामास पूजार्थमसुरेश्वर:[1] ।।

विज्ञानगीता में आचार्य केशव ने भी प्रह्लाद को विष्णु रूप होकर विष्णु भक्ति करते हुए दिखाया है।

> विस्नु ह्वै पुनि बिस्नु मूरति को हिये महं आनि।
> सर्व भावनि सर्वदा करि पूजियो हौं मानि[2] ।।

योगवाशिष्ठ के अनुसार प्रह्लाद द्वारा भगवान की भक्ति किए जाने से उसके नगर में सभी दैत्य विष्णुभक्त और सदाचारी हो गये।

> अथ तस्मिन् पुरे दैत्यास्तत: प्रभृति वैष्णवा:[3]।

आचार्य केशव के प्रह्लाद के राज्य की भी यही दशा थी।

> देस के अरु ग्राम के सब लोग एक प्रकार।
> बिस्नु भक्त भए महाचित माहि हीन विकार[4]।।

यह समाचार दूतों द्वारा अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक में पहुंचा कि दैत्य भगवान विष्णु का द्वेष करना छोड़कर उनके भक्त बन गये हैं। आश्चर्य में डूबे हुए देवता अमरावती का त्याग कर क्षीरसागर में शेषशय्या पर विराजमान

१- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भाग:, सर्ग ३२, श्लोक-१, पृ०- २३३१
२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टादश प्रकाश, पृ०-२५६, छं०-७
३- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भाग:, सर्ग ३२, पृ०-२३३३, श्लोक २०
४- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : अष्टादश प्रकाश, पृ०-२५६, छं०सं०- ८

युद्ध विजयी श्रीहरि के समीप गये ।

> जगाम वार्ता गगनं देवलोकमथाऽरिहन् ।
> विष्णोर्भिर्णा परित्यज्य मता दैत्याः स्थिता इति ।।
> क्षीरोदे भोगि भोगस्थं विबुधा विस्मयाकुला: ।
> जग्मुरम्बरमुत्सृज्य हरिमात्मशाशालिनम्[1]।।

यही वर्णन आचार्य केशव ने भी किया है—

> देवलोक प्रसिद्ध 'केसव ' हुवै गई यह बात ।
> क्षीर सागर कों गए सब देवता अवदात[2]।।

विज्ञानगीता के एकोनविंश प्रभाव में राजा बलि की कथा का वर्णन है । वह योगवाशिष्ठ में इस प्रकार दी गई है—

> अङ्गमङ्गेन सम्पीड्य मांसं मांसेन च स्त्रियः ।
> पुराऽस्मभवं प्रीतौ यन्मोहविजृम्भितम् ।।
> दृष्टान्तदृष्ट्यो दृष्टा भुक्तं भोक्तव्यमगात्म् ।
> आक्रान्तमखिलं भूतं जातं किमिव शोभनम्[3] ।।

राजा बलि सोचते है कि पहले मैं स्त्री के अंग से अंग का मांस से मांस का संमर्दन कर जो प्रसन्न हुआ था, वह मेरा अज्ञान विलास ही था । सब वैभवों के दृष्टान्त भूत महावैभव मैंने स्वयं देखे, बेरोक-टोक राज्यादि भोगों का भोग किया, सब प्राणियों को अपनी सामर्थ्य से नत कर दिया, फिर भी अविनाशी सुख क्या उत्पन्न हुआ ? भाव यह कि अनादि संसार में सभी का कभी ऐसा वैभव रहा होगा और मेरी भी अनेकों बार हजारों दुर्दशाएं हुई होंगी और आगे भी हो सकती है, फिर यह वैभव कौन- सा शोभन है ।

इसी प्रकार का वैराग्य विज्ञानगीता के बलि के मन में भी उत्पन्न होता है ।

१- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भाग:, सर्ग ३२, पृ०- २३३४, श्लोक २१,२३
२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता :अष्टादश प्रकाश, पृ०-२५६, छं०- ८
३- योगवाशिष्ठ :द्वितीयो भाग:, सर्ग २५, पृ०-२२८५,२२८६, श्लोक ७,८

भोग में बहु भोगिये तिहुं लोक को करि राज ।
तृप्ति होति न चित्त में यह कौन है दुख साज ।।

-- -- --

चढ़ि के बिमान दिसि दिसि जस मढ़ि मढ़ि,
बढ़ि बढ़ि जुद्ध जुरि बैरी बहु मारे हैं ।
'केसोदास' भूषन विधान परिधान पान,
भामिनी सहित तिहूं लोकनि बिहारे हैं ।
जल दल फल फूल मूल षटरसजुत,
व्यंजन अनेक अन्न खाय के बिगारे हैं ।
तदपि न लागी भूख चित्त न बिसुद्ध होत,
सकल सुगंध दुरगंध कै कै डारे हैं[1] ।।

योगवाशिष्ठ में बलि अपने गुरु से प्रश्न करते हैं—

भोगान् प्रति विरक्तोऽस्मि महासंमोहदायिनः ।
तत्त्वं ज्ञातुमिच्छामि महासंमोहहारि यत्[2] ।।

भगवान्, महामोह देने वाले भोगों के प्रति मैं विरक्त हूं जो अपने ज्ञानमात्र से महामोह का नाश करे, ऐसे तत्व को जानना चाहता हूं ।

विज्ञानगीता के बलि ने अपने गुरु से कुछ भिन्न ढंग से प्रश्न किया है—

सुनियै चित्त दै यह बात महागुरु । सब दूर करै सुरलोकन के सुर ।
अब मो मति लीन भई हर श्री हरि । बिधि बस्य करे बहु जज्ञनि कौं करि ।।
भय भागि दरीन दुर्यौ सुरनायक । और है जो तिबे कों कोउ लायक ।
कहिये सुकृपा करि ताहि करौं बस । अति घोत करौं जगती अपने जस[3] ।।

1- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकोनविंश प्रकाश,पृ०-२६७-६८, छ०सं० ६,७

2- योगवाशिष्ठ : द्वितीयो भाग:, सर्ग २६, पृ०-२२६०,श्लोक ८

3- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : एकोनविंश प्रकाश,पृ०-२६८-६६, छ०सं० - ६, १०

इसके आगे का वर्णन योगवाशिष्ठ में नहीं मिलता है ।

विंशति प्रभाव में सृष्टि की उत्पत्ति के कारण ईश्वर के बन्धन में पड़ने के कारण, विचारणा शुभेच्छा, तनुमानसा आदि भूमिकाओं का वर्णन और ब्रह्म के नाना प्रकार के नामों आदि के उल्लेख द्वारा जीव को ज्ञानोपदेश दिया गया है। इसका आधार भी 'योगवाशिष्ठ' ही है। इसके अतिरिक्त अन्य दार्शनिक विषय-सम्बन्धी ग्रन्थों का भी इस पर प्रभाव जान पड़ता है।

एकविंशति प्रभाव में उपनिषद् जीव को अहंकार के राजस तामस और सात्विक भेदों की चर्चा करती है और बताती है कि अहंकार के नाश होने पर ही जीव की भ्रान्तियाँ दूर होंगी और उसमें प्रबोधोदय होगा। इस प्रभाव में तो 'प्रबोधचन्द्रोदय' का आधार नाम-मात्र का ही प्रतीत होता है।

'विज्ञानगीता' में दी हुई गाधि-ऋषि, शुकदेव, राजा शिखिध्वज आदि कथाओं के अतिरिक्त केशव ने कुछ अन्य विचार भी 'योगवाशिष्ठ' के आधार पर लिखे हैं। इस प्रकार के कुछ विचार यहां प्रस्तुत किए जाते हैं। 'विज्ञानगीता' के अनुसार मुक्तिपुरी के चार द्वारपाल हैं— सत्संग, शम, सन्तोष तथा विचार। इनमें से एक को भी अपना लेने से सुखपूर्वक प्रभु-द्वार में प्रवेश प्राप्त हो जाता है। 'योगवाशिष्ठ' में भी यही लिखा है। अतः केशव इस सम्बन्ध में 'योगवाशिष्ठ' के ऋणी हैं। 'योगवाशिष्ठ' के अनुसार सन्तोष, सत्संगति, विचार और शान्ति ये ही चार संसार सागर में मग्न हुए लोगों के तरने के उपाय हैं।

संतोषः साधुसङ्गश्च विचारोऽथ शमस्तथा ।
एत एव भवाम्भोधावुपायास्तरणे नृणाम्[1] ॥

1- योगवाशिष्ठ : सर्ग १६, पृ०- ३६३, श्लोक १८

आचार्य केशवदास के अनुसार भी मुक्तिपुरी के ये ही चारों द्वारपाल हैं।

मुक्तिपुरी दरबार के चारि चतुर प्रतिहार।

साधुन के सुभ संग अरु सम संतोष विचार[1]।।

`योगवाशिष्ठ` के अनुसार इन चारों उपायों में से किसी एक का अभ्यास होने पर भी शेष चारों का अभ्यास हो जाता है। एक-एक भी इन सबकी उत्पत्ति भूमि है, जनक है, अतः सबकी सिद्धि के लिए एक का प्रयत्नपूर्वक आश्रय लेना चाहिए।

एकस्मिन्नेव वै तेषामभ्यस्ते विमलोदये।

चत्वारोऽपि किलाऽभ्यस्ता भवन्ति सुधियां वर।।

एकोऽप्येकोऽपि सर्वेषामेषां प्रसवभूरिह।

सर्वसंसिद्धये तस्माद् यत्नेनैकं समाश्रयेत्[2]।।

आचार्य केशवदास भी सत्संगति, शम, सन्तोष तथा विचार नामक चार द्वारपालों में से किसी एक को भी ग्रहण कर लेने पर ईश्वर की प्राप्ति सम्भव मानते हैं—

तिनमें जग एकहु जो अपनावै। सुख ही प्रभुद्वार प्रवेसहि पावै[3]।।

`योगवाशिष्ठ` में सृष्टि की उत्पत्ति समझाते हुए वशिष्ठ राम को बतलाते हैं कि कभी सृष्टि की उत्पत्ति सदाशिव से होती है, कभी ब्रह्मा से, कभी विष्णु से तथा कभी उसकी रचना मुनीश्वर कर लेते हैं। कभी ब्रह्मा कमल से उत्पन्न होते हैं, कभी जल से और कभी अण्डे से--- सृष्टि --- कभी पाषाणमयी होती है, कभी मांसमय, कभी सुवर्णमय। वशिष्ठ जी के इस कथन का सहारा लेकर केशव लिखते हैं—

1- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १४वां प्रकाश, पृ०-१६४, छ०सं० ५१

2- योगवाशिष्ठ : सर्ग १६, पृ०- ३६३-३६४, श्लोक २१,२२

3- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : १४वां प्रकाश, पृ०-१६५, छ०सं० ५२

कबहूं यह सृष्टि महाशिव ते सुनि,
कबहूं बिधि ते कबहूं हरि ते गुनि ।
कबहूं बिधि होत सरोरुह के मग,
कबहूं जल अंड ते अंबर तें जग ।
कबहूं धरणी फल में मय पाहन,
कबहूं जलमय मृन्मै अरु कंचन[१] ।।

इसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति के प्रकरण को भी केशव ने ` योगवाशिष्ठ ` में दिए हुए जगत् रूपी वृक्ष की उत्पत्ति के वर्णन को ही आधार मानकर लिखा है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव ने ` विज्ञानगीता ` में ` प्रबोधचन्द्रोदय ` तथा ` योगवाशिष्ठ ` आदि ग्रन्थों का सहारा लिया है पर साथ ही अपनी मौलिकता का भी अच्छा परिचय दिया है ।

विज्ञानगीता की मौलिकता :

आचार्य केशवदास की कथावस्तु प्रबोधचन्द्रोदय की अपेक्षा अधिक नाटकीय ढंग से प्रारम्भ होती है । वीरसिंह के प्रश्न के अतिरिक्त शिव-पार्वती संवाद भी आचार्य केशव ने अपनी ओर से जोड़ा है । आचार्य केशवदास ने नाटक में दिए हुए राजा ` विवेक ` तथा मति के संवाद को छोड़ दिया है । इस अंश का उल्लेख न करने से कथा के विकास में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती है । द्वितीय प्रभाव में काम और रति के कथोपकथन का आधार तो नाटक है, किन्तु कलि अथवा कलह तथा दिल्ली नगरी की कल्पना केशव की अपनी है । पेट का वर्णन आचार्य केशव के निजी हैं । पंचम प्रभाव में नाटक (अंक २, पृ० - ६१ - ६४) का आधार तो है पर वर्णन कुछ बदले गये हैं । जहां केशव

---

१ - आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : २१वां प्रकाश, पृ० -२००, छं० १२

को मिथ्या-दृष्टि ' महामोह ' को ' श्रद्धा ' को पाखण्ड के अर्पण करने का परामर्श देता है वहां कृष्ण मिश्र का ' महामोह ' स्वयं विचारता है कि यदि श्रद्धा को ' शान्ति ' से अलग कर दिया जाय तो ' शान्ति ' विरक्त हो जायगी ' मिथ्यादृष्टि ' के राजसी ठाट-बाट और वैभव का विशद वर्णन तथा वाराणसी के पापियों एवं पुण्यात्माओं के वर्णन आचार्य केशवदास ने अपनी ओर से जोड़े हैं। इस प्रकार का वर्णन ' प्रबोधचन्द्रोदय ' में नहीं मिलता। षष्ठं प्रभाव आचार्य केशव की मौलिक उद्भावना का परिचायक है। इसमें गंगा, शिव, वाराणसी तथा मणिकर्णिका के माहात्म्य का वर्णन किया गया है, जो नाटक में नहीं मिलता है। सप्तम प्रभाव में कलि की अवतारणा आचार्य केशव ने अपनी ओर से की है। नाटक में चार्वाक कलि का नाम तो लेता है पर उसमें उतना विस्तार नहीं है जितना विज्ञानगीता में किया गया है।

अष्टम प्रभाव में संन्यासी की कथा, नारी वेश की कथा, सती, वृन्दादेवी आदि की कथा आचार्य केशवदास ने अपनी ओर से जोड़ दिए हैं।

कृष्ण मिश्र की ' शान्ति ' पाखण्डियों के स्थलों को देखने के पूर्व ही चिता में जल मरने को उत्सुक होती है। जबकि आचार्य केशव की ' शान्ति ' पाखण्डियों के स्थानों में ' श्रद्धा ' की खोज न मिलने पर प्राणोत्सर्ग करने को उद्यत होती है जो कि अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक लगता है। नाटक में वर्णित तामसी तथा राजसी श्रद्धा आदि का उल्लेख आचार्य केशव ने नहीं किया है।

नवम् प्रभाव में केशव का ' संतोष ' ' क्रोध ' को जीतने के लिए उपयुक्त बताया गया है पर ' कृष्ण मिश्र ' का ' संतोष ' ' लोभ ' को जीतने में समर्थ कहा गया है—

राजा— वेगवति आहूयतां लोभस्य जेता संतोषः[१]।

१- प्रबोधचन्द्रोदय : अंक ४, पृ०- १५२

नाटक में ` क्रोध ` को विजय के लिए ` संतोष ` के स्थान पर ` क्षमा ` आया है—

राजा— वेगवति। क्रोधस्य विजयाय क्षमैवाहूयताम्[1]।

` उद्यम ` का नाटक में कोई उल्लेख नहीं है। दशम् प्रभाव की कथावस्तु में केशव की मौलिकता परिलक्षित होती है। वर्षा तथा शरद् ऋतुओं का वर्णन नाटक में नहीं है। ऋतुओं का समावेश आचार्य केशव की चमत्कारवादी दृष्टि का बोधक है।

एकादश प्रभाव में ` विश्वनाथ पंचक ` और ` गंगाष्टक ` का समावेश केशव की मौलिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप किया गया है। नाटक में पुत्र पौत्रादिक के शोक में ` मन ` का जीवनोत्सर्ग करने का विचार तथा ` विष्णुभक्ति ` द्वारा उसके रोकने एवं ` मन ` के हृदय में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए ` सरस्वती ` के भेजे जाने का निश्चय आदि बातों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। त्रयोदश प्रभाव में ` मन ` को दिया गया ` सरस्वती ` का ज्ञानोपदेश नाटक की अपेक्षा अधिक विस्तारपूर्वक वर्णित है। मन को माया की विचित्रता समझाने के निमित्त ` सरस्वती ` द्वारा कही गई गाधि ऋषि की कथा का आधार नाटक न होकर ` योगवाशिष्ठ ` है। केशव ने यह कथा ` योगवाशिष्ठ ` की अपेक्षा संक्षिप्त रूप में दी है। हां, कथा के अन्तिम अंश में, जिसमें कीर देश में पता लगाने जाने पर गाधि ऋषि के उसी वृतान्त के सुनने का उल्लेख किया है जिसका साक्षात्कार उन्होंने मोहावस्था में किया था, आचार्य केशव की मौलिकता प्रतिफलित हो रही है।

पंचदश प्रभाव में वर्णित शिव तथा वशिष्ठ के कथोपकथन के अन्तर्गत देवनिर्णय और उसकी पूजन-विधि आदि प्रसंगों का आधार नाटक न होकर ` योगवाशिष्ठ ` का शिव-वशिष्ठ आख्यान है। आचार्य केशव ने इस कथा

१- प्रबोधचन्द्रोदय : अंक ४, पृ०- १४८

में केवल प्रकृत विषय से सम्बन्ध रखने वाली बातों को ही लिया है। 'योगवाशिष्ठ' में यह आख्यान अधिक विस्तार के साथ तो अवश्य दिया गया है, किन्तु उतना सुबोध एवं सुस्पष्ट नहीं है।

विज्ञानगीता के वर्णन में आचार्य केशव की विशेषता यह है कि उन्होंने जो भी विषय अपनी ओर से जोड़े हैं वे अपने स्थान पर उसकी आवश्यकता रखते हैं। विज्ञानगीता के छठे प्रभाव में यह समस्या उठने पर कि जिस काशी में स्वयं शंकर जी दयापूर्वक सांसारिक भय से मुक्ति पाने के लिए तारक मंत्र का उपदेश देते हैं और जहां समाधि के लिए शुद्ध साधन का प्रयोग होता है वहां भला, प्रबोधोदय का नाश कैसे हो सकता है ? इस समस्या के समाधान रूप में आचार्य केशव ने पेट का वर्णन करते हुए एकमात्र उसी को प्रबोधोदय के विनाश में समर्थ बताया है।

बोध उदै के लोप को, एक पेट समर्थ[1]।।

इसका कारण भी केशव ने स्पष्ट रूप से दिया है—

केशव क्यों हूं भर्यो न परै अरु जो रे भरै भय की अधिकाई।
रीतत हौं रितयो न घरी कहुं रीति गई अति आरतताई[2]।।

केशवदास ने विज्ञानगीता के दसवें प्रभाव में वर्षा एवं शरद ऋतु का वर्णन किया है जो ऐसे स्थान पर वर्णित है जहां वह अपनी आवश्यकता रखता है। महामोह की रानी मिथ्यादृष्टि महामोह को काशी पर वर्षा काल में चढ़ाई करने से रोकती है उसके पश्चात् वर्षा एवं शरद ऋतु का केशव ने विस्तृत वर्णन किया है।

उन्नीसवें प्रभाव में ब्रह्म की प्राप्ति के लिए बलि द्वारा उपाय पूछे जाने

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तृतीय प्रभाव, पृ०- ५०, छं० २७

२- वही, छं० - २८

पर आचार्य केशव ने शुक्राचार्य के द्वारा ब्रह्मभक्ति एवं हरिभक्ति को ब्रह्म की प्राप्ति के लिए समर्थ बताया है। यहाँ ब्राह्मण के माहात्म्य का वर्णन इसीक्रम में नवधाभक्ति तथा नवों रसों का वर्णन केशव की प्रतिभा का द्योतक है। यह सभी विषय एक दूसरे से अलग होते हुए भी केशव की प्रतिभा के द्वारा एक स्थान पर लाए गये हैं। इन्हें पढ़ने से कथा के प्रवाह में कमी नहीं दिखाई देती।

विज्ञानगीता के सत्रहवें प्रभाव में वीरसिंह देव का यह प्रश्न कि यदि ज्ञान की प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय कोई भूमिका हो और इनकी साधना करते समय बीच ही में वह व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो उसकी क्या गति होगी ? बहुत ही स्वाभाविक है। यह भी ऐसे समय में जबकि कलियुग में अकाल मृत्यु बहुत ही आमबात होती है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आचार्य केशव ने विज्ञानगीता में पर्याप्त प्रभाव ग्रहण करते हुए भी अपनी मौलिकता को प्रदर्शित करने में पर्याप्त सफल हुए हैं। कथाओं को विभिन्न स्थानों से लेकर उन्हें एक स्थान पर संयोजित करने में तथा उस स्थान पर उस कथा की आवश्यकता महसूस कराने में केशव ने पूर्ण सफलता अर्जित की है।

—o—

अध्याय : ६ :

व्यावहारिक जीवन का प्रभाव (लोकतत्व)

व्यावहारिक जीवन का प्रभाव (लोकतत्व)

लोकाचार :

जन्म, विवाह, तथा मृत्यु तीनों ही प्रसंग मानवजीवन के महत्वपूर्ण प्रसंग रहे हैं, अतएव इन तीनों प्रसंगों को केन्द्र बनाकर मानव ने विविध प्रकार के लोकाचारों, अनुष्ठानों और प्रथाओं को जन्म दिया है, जिनका लोक सांस्कृतिक अनुशीलन तथा लोकमानस की सही प्रवृत्ति को जानने के लिए ज्ञान आवश्यक है।

जन्म और मृत्यु का सम्बन्ध आदिम मानव की आश्चर्य वृत्ति से था, तो दूसरी ओर विवाह का प्रसंग आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। शिशु का जन्म आदिम मानव मानस के लिए प्रभावकारी, मर्मस्पर्शी तथा आश्चर्यमय दृश्य था। शिशु की रक्षा के लिए तथा ऐसे अवसर पर अपनी प्रियतमा को कष्टावस्था में देखकर उसे अमानवीय संकटों तथा विपदाओं का भय भी लगा होगा। अतः इससे निवृत्ति के लिए आदिम मानव मानस से प्राचीन काल में ही विशेष प्रकार के कृत्यों तथा अनुष्ठानों को जन्म दिया होगा, जो अमानवीय संकटों से नवजात शिशु तथा उसकी जननी की रक्षा कर सकें और लाभकारी हो सकें। जन्म ही की भांति मृत्यु भी आदिम मानव मानस के लिए कष्टकर तथा उससे भी कहीं अधिक रहस्यमय बात थी। लोकमानस ने मृत व्यक्तियों के अर्थात् पितरों के लोक का भी स्थानलोकमानस के अनुसार ही ढूंढ निकाला है और उसके घनिष्ठ मित्रों ने, सम्बन्धियों एवं परिवार वालों ने यह कामना की कि वह अपने लोक में सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करे, उसे शांति मिले, उसे किसी प्रकार की असुविधा न हो इसके लिए आदिम मानव मानस ने विविध समाधान निकाले। इन्हीं को ही मृत्यु से सम्बन्धित लोकाचार कहा गया है।

जन्म तथा मृत्यु के अतिरिक्त लोकजीवन के लिए दूसरी सर्वाधिकमहत्वपूर्ण घटना विवाह है। विवाह स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए महत्वपूर्ण था, अतः ऐसे महत्वपूर्ण तथा शुभ अवसर पर लोकमानस को अनेक बुरे विचार वाले व्यक्तियों की दृष्टि-दोष का भय तथा अमानवीय संकटों का भय रहा होगा जो इसके विविध

लोक कृत्यों पर विघ्न उपस्थित कर सकते हैं। अत: ऐसे कष्टों की निवृत्ति के लिए उसने विविध अनुष्ठानों को जन्म दिया। इन विवाह सम्बन्धी लोकाचारों का भी लोकजीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। केशव ने लोकजीवन में जन्म, विवाह तथा मृत्यु आदि तीनों ही महत्वपूर्ण अवसरों पर किए जाने वाले विविध लोककृत्यों का उल्लेख किया है। परन्तु यहां उल्लेखनीय है कि केशव ने इन लोककृत्यों का कहीं तो विस्तृत वर्णन किया है और कहीं इसका उल्लेख मात्र कर दिया है।

विवाह सम्बन्धी लोकाचार :

विवाह सम्बन्धी लोकाचारों में वधू पक्ष के यहां सारे सम्बन्धियों के उपस्थित होने का, कन्यादान, ज्योनार तथा गारी गाने का भी विशेष महत्व है। ज्योनार का प्रथा विवाह के अवसर पर केवल भारत में ही नहीं वरन् विश्व भर में तथा अति प्राचीन काल में मिलती रही है। विवाह जैसे शुभ अवसर पर कुरुचिपूर्ण शब्द कहना लोकमानस की प्रवृत्ति की सूचना देता है। लोकमानस का विश्वास है कि शुभ अवसर पर अशुभ वाक्य कहना आवश्यक होता है, इससे विघ्न नहीं पड़ता और कार्य अच्छी तरह सम्पन्न होता है तथा शुभ कार्यों पर बुरी दृष्टि का इस ढंग से प्रभाव नहीं पड़ता, इसीलिए यह प्रथा प्रचलित है। इन लोकाचारों के अतिरिक्त कुछ अन्य विवाह सम्बन्धी लोकाचारों का भी उल्लेख हुआ है जो वधू के वर के यहां आने पर सम्पादित होते हैं। विवाह के समय बन्दनवार तथा तोरण बांधने का भी उल्लेख किया गया है।

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में राम के विवाह के समय उपर्युक्त लोकाचारों का वर्णन किया है। हर्षसूचक चिह्न बनाने का उल्लेख इस प्रकार किया है—

सब नगरी बहु सोभ रए। जहं तहं मंगलचार ठए[१]।

१- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ० - १२३, छं० - १

विवाह के समय आरती उतारने तथा सोना- चांदी आदि न्यौछावर करने का उल्लेख हुआ है। यह दोनों ही कृत्य पूर्णतया लोकानुष्ठानात्मक हैं। केशव ने इनका उल्लेख जनकपुरी तथा अयोध्या दोनों स्थानों पर किया है। विवाह के तुरन्त बाद जनकपुरी में बहुत से धन- धान्य निछावर किए गये।

हीर चीर गज बाजि लुटाये। सुन्दरीन बहु मंगल गाये[1]।

इसी प्रकार विवाहोपरान्त अयोध्या वापस आने पर माताओं ने चारों भाइयों का आरती उतारी तथा निछावर किया।

आरती उतारैं सरबसु वारैं अपनी अपनी पौरी[2]।

वधू के यहां वर पक्ष के लोगों का बरात लेकर जाने का उल्लेख भी केशव ने किया है।

पठई तबहीं लगन लिखि, अवधपुरी सब बात।
राजा दशरथ सुनत हीं, चल्यो चली बरात[3]।।

विवाह में सबसे महत्वपूर्ण लोकाचार कन्यादान व भांवर फेरने का होता है। यही आधार विवाह का पूरक है। इसका वर्णन केशव ने निम्न छन्द में किया है।

पावक पूज्यो समधि सुधारी। आहुत दीनी सब सुखकारी।
दै तब कन्या बहु धन दीन्हों। भांवरि पारि जगत जस लीन्हों[4]।।

विवाह के बाद ज्योनार तथा गाली गाने का वर्णन भी केशव ने किया है।

भांति भांति अन्न पान व्यंजनादि जेवहीं।
देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेवहीं[5]।।

१- रामचन्द्रिका : छठवां प्रकाश, पृ०- ७६, छं०- १०
२- वही, आठवां प्रकाश, पृ०-१२८, छं०- १६
३- वही, छठवां प्रकाश, पृ०- ७३, छं०- २
४- वही, पृ०- ७५, छं०- ६
५- वही, पृ०- ८२, छं०- २६

केशवदास ने रसिकप्रिया में प्राचीन काल में होने वाले स्वयंवर तथा कन्या की विदाई के समय उसको सखी अथवा दासी को भी भेंट के रूप में देने की प्रथा का उल्लेख किया है।

केसव कैसहु बाल भली वह भाल सु मेरे हियें पहिरावै।
तौहि सखा समेद संग वाके सु क्यों यह बात सबै बनिआवै[1]।।

जन्म सम्बन्धी लोकाचार :

जन्म के लोककृत्यों में जातक कर्म राई- नोन उतारने सोना- मुहर आदि न्यौछावर करने का उल्लेख हुआ है। न्यौछावर तथा राई- नोन उतारने के पीछे टोने- टोटके की ही भावना निहित है। `रामचन्द्रिका` में लव-कुश के जन्म के अवसर पर ऋषि वाल्मीकि द्वारा जातक कर्म किए जाने का उल्लेख केशव ने किया है।

मृत्यु सम्बन्धी लोकाचार :

मृत्यु सम्बन्धी लोकाचारों में तर्पण करने तथा पिण्डदान देने का केशव ने उल्लेख किया है। तर्पण तथा पिण्डदान के मूल में लोकमानस की इहलोक के ही समान परलोक की स्थिति में विश्वास करना है, जहां मरकर मृतक जाता है और इस लोक के ही समान आचरण और व्यवहार करता है। रिवर्स[2] आदि सभी विद्वानों का विचार है कि आदिम जातियों के मध्य यह विचार बहुत दृढ़ है कि जीव मरकर नष्ट नहीं होता वरन् वह दूसरे लोक को जाता है और वह लोक इसी संसार के समान है और मृतक को वहां भी उन्हीं वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, जिसकी इस लोक में आवश्यकता पड़ती है। तर्पण तथा पिण्डदान में जल देने के

१- रसिकप्रिया : अष्टम प्रभाव, पृ०-१६८, छं०- १६

२- Rivers W.H.R. Psycology and Ethnology. P.43,46

मूल में भी लोकमानस का यही विश्वास है कि इससे मृतक तृप्त होता है।

दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर राम ने उन्हें तिलांजलि दी इसका वर्णन केशव ने रामचन्द्रिका के निम्न छन्द में किया है—

धरि चित्त धीर। गये गंगतीर।
शुचि ह्वै शरीर। पितु तर्पि नीर[1]।।

लोकसज्जा :

लोकसज्जा के अन्तर्गत स्त्रियों द्वारा किए गये शृंगार का वर्णन होता है। केशव ने कविप्रिया के चौथे प्रभाव में नायिकाओं के सोलह शृंगार का वर्णन किया है।

सहज सिंगारत सुन्दरी, जदपि सिंगार अपार।
तदपि बखानत सकल कबि, सोरहई सिंगार[2] ।।

इन सोलहों शृंगार के केशव द्वारा दिए गये नाम निम्नलिखित हैं—

प्रथम सकल सुचि मज्जन, अमलबास,
जावक, सुदेश केशपासनि सुधारिबो।
अंगराग, भूषन विविध, मुख बास राग,
कज्जल कलित, लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि हंसनि चित्त-चातुरी चलनि चारु,
पल पल प्रति पतिव्रत परिपारिबो।
केशोदास सबिलास करहु कुंवरि राधे,
यहि बिधि सोरह सिंगारन सिंगारिबो[3]।।

१- रामचन्द्रिका : दसवां प्रकाश, पृ०- १५४, छं०- ३२

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ०- ३१, छं०- १६

३- वही, चौथा प्रभाव, पृ०- ३१, छं०- १७

लोकोक्तियां तथा मुहावरे :

लोकोक्तियां और मुहावरे लोकभाषा की रीढ़ हैं और इसलिए लोकभाषा में इनका प्रयोग बाहुल्य है। लोकभाषा में लोकोक्तियों द्वारा सजीवता और स्फूर्ति पैदा होती है। वे भाषा का शृंगार हैं। इनके द्वारा सामाजिक जीवन, पुराने रीति-रिवाज तथा नृशास्त्र विषय पर प्रकाश पड़ता है। लोकोक्तियों तथा मुहावरों के आधार पर लोकमानस, उसकी प्रवृत्ति तथा लोक संस्कृति पर विचार हो सकता है। लोकोक्तियां मानव स्वभाव का दर्पण हैं, लोक वर्ग की सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य बुद्धि का दुर्लभ निदर्शन है और ये ही लोकोक्तियां एक ग्रामीण के लिए पथप्रदर्शक, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए उद्बोधक हैं और चेतावनी के रूप में चिरकाल से विद्यमान हैं।

केशव की रचनाएं भी लोकोक्तियों और मुहावरों से भरी पड़ी हैं। मुहावरों का प्रयोग अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा 'रसिकप्रिया' में अधिक हुआ है। भाषा में चमक लाने के साथ ही इनका प्रयोग कवि की व्यवहारकुशलता, प्रयोग-नैपुण्य और सूक्ष्म-निरीक्षण का परिचायक है। विभिन्न ग्रन्थों में केशव द्वारा प्रयुक्त मुहावरे तथा लोकोक्तियों का कुछ उदाहरण यहां दिया जा रहा है।

मुहावरे :

राजसभा तिनुका करि लेखौं (रामचन्द्रिका, प्रकाश ४, छं० ८)

बांस बिसे ब्रत भंग भयो

बंचक कठोर ठेलि कीजि बाराबाट आठ

झूठ पाठ कंठ पाठकारी काठ मारिये (रामचन्द्रिका, प्रकाश २७, छं०-७)

बोलत बोल फूल से झरैं (,, ,, ३१, छं०-१७)

चाप चढ्यो नहिं आप चढ़े खर (,, ,, ३, छं०३३)

आये ह्वै बीर चले बनिता ह्वै (,, ,, छं०-३४)

बास बिसे बलवंत हुते जु (रामचन्द्रिका, प्र० १५, छं० ६)

रावण के वह कान पर्यो जब (,, प्र० ४, छं० ३०)

कीन्हों न सो कान (,, प्र० ४, छं० ७)

हों बहुत गुन मानिहों तेरो (,, प्र० १२, छं० ८)

सो यश लै किन युग-युग जीवै (,, प्र० ७, छं० १२)

अवधपुरी महं गाज परै (,, प्र० ६, छं० १०)

तन बिच देह बेला सांय गंभीर बानी (,, प्र० १३, छं० ६१)

आज संसार तो पाय मेरे परै (,, प्र० १६, छं० - २०)

अंगद तौं अंग अंगन फूलै (,, प्र० ३८, छं० - ८)

सपनेहु पावंड पै, श्रद्धा परै न हाथ (आ०कै०कृ० वि०गी० : अष्टम प्र०
पृ० - ६२, छं० - ७)

हरि त्यों टुक डीठि पसारत हा अंगुरिन पसारन लोक लगै

(वि०प्र० : प्र० १३, छं० - ४०)

पेटहि पोषत पेट फयो जू (आ०कै०कृ० वि०गी० : प्र० ३, छं० ३०)

पेट चढ़्यों पलना पलका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यो रे ।
चौक चढ़्यो चित्रसारि चढ़्यों गजबाजि चढ़्यो गढ़गर्व चढ़्यों रे ।।

(रामचन्द्रिका : प्रभाव १६, छं० - २४)

नाव नवाइ कै छांड़ि दियो (राम० प्र० १६, छं० १४)

सोच केत संकोचहू को पूरब-पछिम पंथ (रसिक० प्र० ४ छं० १७)

बिलोकनि में बिस बीस बिसे है (रसिक० प्र० ५ छं० २)

जीवहु तें अति बापहि भावै (,, प्र० ७ छं० ५)

तुम लोकनि में गाइ हौ (,, प्र० ७ छं० १६)

अंखियां अंखियान सों जोरी (,, प्र० ८ छं० ७)

कौन भए नहिं द्वै दिन ए दिन (,, प्र० १० छं० १६)

सोवतहूं महं जागति है (,, प्र० ११ छं० १५)

जाति अकासहिं ऐंठो

एक दो स्थलों पर केशव ने मुहावरों का मनमाना प्रयोग भी किया है यथा—

दुख दैख्यौ ज्यों काल्हि त्यौं आजहु देखौ ।

(रामचन्द्रिका, प्रभाव ६, छ० २१)

में बारात न्यौतनी के शुभ अवसर पर दुख देखने का प्रयोग अमांगलिक है । इसी प्रकार—

रघुनाथ पादुकनि, मन वच प्रभु गनि सेवत अंजुलि जोरे ।

(रामचन्द्रिका, प्रभाव २१, छ०- २२)

में ` अंजुलि जोरे ` का प्रयोग समीचीन नहीं हुआ है । यह मुहावरा हाथ जोड़ने के अर्थ में रूढ़ नहीं है ।

लोकोक्ति :

रामचन्द्रिका :

राज करै तेरी राजकुमारी (रामचन्द्रिका : प्रभाव४,छ० १६)

स्वाद कहिबे को समर्थन गूंग ज्यौं गुर खाय (,, ,, ६ छ० १६)

टूटै टूटनहार तरु वायुहिं दीजत दोष

(होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई

होय तिनूका बज्र- बज्र तिनुका ह्वै टूटै (राम०प्र० ७, छ० २०)

चंदन हूं में, अति तन घसिए, आगि उठे यह गुनि सब लीजे ।

(रामचन्द्रिका, प्रभाव ७, छ०- २२)

मति भूल गई तब, सोच करत अब, जब सिर ऊपर आई ।।

(रामचन्द्रिका, प्रभाव १५, छ०- ५)

जो सुत अपने बाप को, बैर न लेई प्रकाश

तानों जीवत ही मर्यो, लोक कहै तजि आस (रामं० प्र० १६,छं० १६)

विज्ञानगीता :

किबदंतिनि को गनै, वह झूठ होय को सांचु ।

(आ० के० कृ० वि० गी० : द्वितीय प्रभाव, पृ० - ४१,छं० - २१)

बैर बिमातनि में चलि आयौ । आजु नयो इनहीं न उपायौ ।

(आ० के० कृ० वि० गी० : द्वि० प्र०, पृ०-३८, छं० -१६)

करै बिनास जु और को, ताको निश्चय नास ।

(आ० के० कृ० वि० गी०,द्वि० प्र०, पृ० ४१, छं० २३)

कविप्रिया :

मित्र न नेगी कीजिए मूढ़ न कीजै मित्र ।

प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषण सहित कवित्त[१] ।।

तौलत तुल्य रहै न ज्यों कनक तुला तिल आधु (प्रि० प्र०,प्र० ३ ,छं० ११)

आग को तो दाध्यो अंग आग ही सिरातु है (,, प्र० ६,छं० ३८)

नाह के नेह के मामिले आपनी छांहहु का परतीति न कीजै ।

(प्रियाप्रकाश(कविप्रिया) : प्रभाव १२,छं० - ५)

रसिकप्रिया :

फटु रे हिय तोहि कहा न दरार फटी (रसिकप्रिया, प्र०१,छं० २४)

नीरहीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही तें,

छीर छिरके तें कहा धीरजु धिरातु है ।

आगि को तौ डाढ्यो अंगु आगिहीं सिरातु है

(रसिकप्रिया, प्र० १, छं० - २५)

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ० - १५, छं० - ६

आंखिनि जो देखियत सोई सांची केसवदास (रसिकप्रिया, प्र० २, छं ८)

आजु लौं तौ वैसेई हैं कालि की न जानिये (,, ,, छं० ८)

सो परतीक किधौं सपने (रसि० प्र० २, छं० १०)

प्रौढ़ि़ रूढ़ केसवदास नीके करि जाने हौ (रसिक० प्र० २, छं० - १३)

मामा पियै इनकी मेरी माइ को है हरि आठहुं गांठ अटार ।

(रसिकप्रिया, प्र० २, छं० - १५)

नाहिनै केसव साख जिन्है बकिके तिनसों दुखवै मुख को री ।

(रसिकप्रिया, प्र० २, छं० १७)

मानुसु कि पसु है (,, ,, छं० २६)

देखहु दै मधु को पुट कोटि मिटै न घटै विष की विषमाई

(रसिकप्रिया, प्र० ३, छं० ६४)

आंखिन सों बांधे अन्न काहू की बुझानी भूख ।

पानी को कहानी रानी प्यास क्यों बुझाय है ।।

(रसिक प्रियया, प्र० ४, छं० ६)

चाटे ओस अंसु क्यों सिरात प्यास- डाढ़े हैं (रसि०, प्र० ५, छं० १०)

सुधि काक ज्यों चुनत फिरौ (रसिक, प्र० ७, छं० १७)

काठहु तें हठ तेरो कठोर इतें बिरहानलहूं न जर्यो री ।

(रसिकप्रिया, प्र० ७, छं० २०)

गिरि गौ कछू गांठि तें छूटि छबीलो (रसिक०, प्र० ८, छं० ११)

तातो है नेक सिराइ धौं खाहू (,, प्र० ८, छं० १३)

कहि किहि बाइ बहे हैं ।

इत सीनो सी घालिकै चाहि रहे हैं (रसिक, प्र० ८, छं० १४)

तैं कान्ह ठगे कि तू कान्ह ठगी है (,, ,, छं० ४६)

ह्वैहै वहै हरि जो कछु होनै (,, ,, छं० ५०)

कागर के रूप काहू आगि की अंगीठी है(,, ,, ६, छं० ७)

मुख का मुख हाथ का हाथहिं (रसिक० पृ० ६, छं० ५)

मोहिहू लए सों ऐसे बोल बोलियत है ? (रसिक० पृ० ६, छं० ८)

जांघ उघारिकै आपही लाजनि को मरई (,, पृ० ६, छं० १७)

और सिरा२ न जानत खाई

कांचि का दाखहि चाखत चाख्यौ (रसिक०, पृ० ६, छं० १४)

मान है भेद कौ मूल महा अपने सहुं (,, ,,१०,छं० ४)

तिहिं पैंडे कहा चलियै कबहू जिहिं कांटो लगै पग पीर दुकौंहीं

प्रीति कुम्हैडे की बैंह जई सम (रसिक० पृ० १०, छं० ५)

काठ सौं तेरी कठेठी ये बातैं (,, ,, छं० १२)

बूझति हौं सखी सीख दिये तिनु (,, ,, छं० १५)

आवति लच्छि विचार न दीजै (,, ,, छं० १६)

बास बिसे बिष भई बास वाबे अंग का (रसिक० पृ० १२, छं० १०)

जिनि आगि लगैहूं न आंगन देख्यौ (,, ,, छं० १२)

काठ सौं कठेठी बातैं कैसे निकरति है (,, ,, छं० १५)

तातो है दूध सिराइ तौ पीजि (,, ,, १२, छं० २०)

प्यास बुझाइ न ओस के चाटें (,, ,, छं० २४)

सौने सिंगारहु सोंधे चढ़ावहु पीतर को पितराई न जाई

(रसिक०, पृ० १२, छं० - २८)

आप गिरा गुन जौ सिखवै तउन काक न कोकिल ज्यौं कल कूजै

(रसिक० पृ० १२, छं० - २६)

आम की साघ न आमिली पूजै(,, ,, १२, छं० - २९)

जानै सौ प्रबल पित दाखैं जिन चाखी हैं (रसिक० पृ० १४, छं० २६)

बारहमासा :

बारहमासा लोकगीतों का वह प्रकार है जिसमें किसी विरहणी के वर्ष के प्रत्येक मास में अनुभूत दुःखों तथा मनोवेदनाओं की विवृत्ति पाई जाती है। चूंकि इसमें वर्ष के बारहोमास में अनुभूत दुःखों का वर्णन होता है इसलिए इन्हें बारहमासा कहते हैं। इन गीतों की परम्परा प्राचीन है।

बारहमासा की उत्पत्ति कहां से हुई इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है सुकुमार सेन आदि का विचार है कि बारहमासी परम्परा कालिदास के ऋतु संहार से प्रारम्भ होती है और उसी का प्रभाव आगे के बारहमासा की शैलियों पर पड़ा है किन्तु आशुतोष मुकर्जी (Bengali Loksahitya-2nd Edition calcutta P.-62) आदि विद्वान बारहमासा की उत्पत्ति लोकगीतों से मानते हैं। वस्तुतः बारहमासा की लोकगीतों से उत्पत्ति मानना अधिक संगत है क्योंकि किसी व्यक्ति के मन में इस प्रकार की शैली का उद्भव जो अकृत्रिम है और जिसमें क्रम से प्रत्येक मास का वर्णन है अधिक स्वाभाविक है। बारहमासा की लोकगीतों से उत्पत्ति हुई यह अधिकांश विद्वान मानते हैं। बारहमासा की शैली किसी प्रकार लोक वर्ग से शिष्ट वर्ग में आ गई इस पर लेखकों ने विस्तार से विचार किया है। बारहमासा की शैली पूर्णतया लोकशैली है और इनमें वर्णित भाव भी लोक मानस की प्रकृति के अनुरूप ही अतिसाधारण है उनके भाव आरोपित नहीं प्रतीत होते हैं। प्रत्येक मास

The conclusion we suggest should be drawn is that the Baramasi originated in folk poetry; that owing to its intrinsic attractiveness and its great popularity in Bengal it found a place again and again in the classical literature ,being of course always reshaped and remoulded by various poets according to their poetic aims, imagination and creative ability; at the same time, however it followed its own course of development in folk poetry itself, being influenced in its turn by these forms and types created in the sphere of art and literature, especially in Vaishnava poetry-Folklore, Vol. III,NO 4P-163.

के वर्णन के बाद टेक की पुनरावृत्ति है। जो लोक शैली के पूर्णतया अनुरूप है और इन टेकों की पुनरावृत्ति से भाव का प्रभाव गम्भीरतर होता है। भाषा भी इसी शैली के अनुरूप लोकभाषा है। बारहमासे की लोकशैलीगत एक और विशेषता उल्लेखनीय है। बारहमासे में साल के बारहों महीने में विरहिणी की मनोदशाओं का वर्णन होता है किन्तु इनमें शैलीगत विशेषता यह है कि बारहों मासों के वर्णन के उपरान्त अन्त में एक और पद उसी बारहमासा की शैली में होता है जिसमें किसी महीने का वर्णन नहीं होता वरन् समाहार स्वरूप ' बारहमासा ' शब्द का उल्लेख मात्र होता है जो बारहमासे के समाप्त होने का सूचक समझना चाहिए।

केशव ने कविप्रिया के दशम प्रभाव में आक्षेप अलंकार के अनेक रूपों का निरूपण किया है। इनमें एक रूप है ' शिक्षाक्षेप '। इसके प्रसंग में उन्होंने बारहमासा उदाहृत किया है।

बारहमासे का सीधा सम्बन्ध न तो काव्यशास्त्र से है, और न शिक्षाक्षेप से है। वह केशव के कवि रूप से अधिक सम्बद्ध है। इस कवि रूप को हम कवि शिक्षा के रूप में भी स्वीकार कर सकते हैं। क्योंकि कवि शिक्षा कविप्रिया का एक सामान्य उद्देश्य रहा है। अतः इस बारहमासे का उदाहरण रूप में प्रस्तुतीकरण भी भाषा कवियों के लिए शिक्षा के रूप में भी समझा जा सकता है। यह बारहमासा वियोग वर्णन के रूप में नहीं है,जैसा कि प्रायः हिन्दी के बारहमासे पाये जाते हैं। नायक- नायिका से वियुक्त होकर विदेश जाना चाहता है। इस वियोगभय के प्रसंग से फिर भी इसका सम्बन्ध अवश्य है। नायिका प्रत्येक मास के तत्कालीन ऋतु- पदार्थों की उद्दीपनता सामने लाकर तथा अन्य व्यंजनापूर्ण ढंगों से नायक के विदेशगमन को रोक देती है। इसीलिए इस बारहमासे को शिक्षाक्षेप के अन्तर्गत रखा गया है।

इसी पद्धति पर विभिन्न ऋतुओं की उद्दीपन सामग्री द्वारा प्रत्येक मास में

नायक के विदेश-गमन को रोकने या आशीर्वाद प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। वर्णन चैत्र से प्रारम्भ होकर फाल्गुन पर समाप्त होता है।

अन्धविश्वास :

आचार्य केशव ने अपने ग्रन्थों में अपने समय में प्रचलित विभिन्न अंधविश्वासों यथा—भूत, प्रेत, जादू, टोना वशीकरण आदि को भी स्थान दिया है। ऐसे वर्णन रसिकप्रिया में अपेक्षाकृत अधिक हैं। यथा—

डीठि लगी, किधौं प्रेत लग्यो (रसि०, प्र० ४, छ० १३)

बीर की सौं मेरो बीर बारी है जु बारौं आनि,
नेक किन हसहि बलाय तेरी लीजिये ॥
(रसिक०,प्र०४, छ० १६)

केसव मंत्र करौ बसकारक हारक जंत्र कहां लौं गनाऊं।
(रसिक०, प्र० ५, छ०-१२)

बातहि प्रेत लग्यो किधौं प्रीति जगी है(,, प्र० ८, छ० ४६)

इसी प्रकार ' विज्ञानगीता ' के ' तेरहवें ' प्रभाव में जब यह निश्चित नहीं हो पाता कि गाधि ऋषि वास्तव में ब्राह्मण हैं या चाण्डाल तो वीर देश का राजा यह आदेश देता है कि यदि यह गर्म तेल में नहीं जलेगा तो ब्राह्मण मान लिया जाएगा और यदि चाण्डाल होगा तो निश्चय ही जल जाएगा।

डारौ याहि कराह में तप्त, तेल जब होय।
जौन जरै तौ बिप्र है, जरै चंडार सु होय[1]॥

राजा के इस आदेश को सुनकर लोगों ने कहा कि यह कड़ाह में जलेगा नहीं, क्योंकि इसके कर्म जल्दी समझ नहीं सकते, यह चाण्डाल अतिशय कौतुकी (जादूगर) है।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तेरहवां प्रभाव, पृ०-१७६, छ०-७०

जरिहिं नाहिं कराह मैं कौन राज विचार।

याको कर्म दुरंत है अति चेटको चंडार[1] ।।

इस चाण्डाल को क्या सजा दी जाय इसके लिए अनेक लोगों ने अपने-अपने मत व्यक्त किए।

हाथु पायनि एक काटन नाक काननि एक

आंखि काढ़न एक बोलत प्रान लेन अनेक।

बृद्ध बालक ज्वान जे जन जानिये नर नारि।

मारु-मारु रटि पढ़ै सब भांति भांतिन गारि।

मूडि सिखा उपबीति उतारौ गर्दभ याहि चढ़ाय सवारौ।

पायनि नाल करौ मुख कारौ। पर्वत ऊपर तें घर डारौ।

मूडतईं जू सिखा जल जानी। आप अकास मईं यह बानी।

भूतल भूप न भूलहु कोई। ब्राह्मण गाधि चंडार न होई[2]।।

विज्ञानगीता के तेरहवें प्रभाव में गाधि ऋषि के आश्रय में आये हुए अतिथि ब्राह्मण ने अपने आने का कारण निम्न शब्दों में बताया है।

संसर्ग दोष निवारिबे कहं विप्र जाय प्रयाग

स्नान दान अनेकधा तप साधियौ बड़ भाग

भजा ह्यां हम भवियौ मन इच्छि के सुख पाय

दु:ख दुर्बल ह्वै गए यह बात बनि न जाय[3]

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : तेरहवां प्रभाव, पृ०- १७६, छं०- ७१

२- वही, पृ०- १७७, छं०- ७६, ७७, ७८

३- वही, पृ०- १७३, छं० ५५

व्यावहारिक ज्ञान :

केशव ने अपने व्यवहारिक ज्ञान के माध्यम से दर्शन के जटिल सिद्धान्तों को सरल बनाकर सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इनके इस व्यवहारिक ज्ञान को विज्ञानगीता में अनेक स्थानों पर स्पष्टत: देखा जा सकता है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं। विज्ञानगीता के चौदहवें प्रभाव में सरस्वती मन को समझाती हुई कहती हैं—

> अनहो ठिक को ठग जानि न कुठौर ठौर ताही पै ठगावै ठेलि जाहि
> को ठगत है।
> याकों तो डरौ डर आन डगत डर डर कै डरनि डरि डोडी ज्यों
> डगत है।
> ऐसे बसबास तें उदास ताहि केसौदास केसौ न भजत कहि काहे को
> लगत है[1]।

इसी प्रकार संसार के प्राणियों के परस्पर मिलन के सम्बन्ध में केशव का कथन है कि—

> भूरिहुं भूरि नदीन के भूरनि नावन में बहुत बनि जैसे।
> केसवराय अकास के मेह बड़े बघरेन में तृन जैसे
> हाटनि बाटनि जात बरातनि लोग सबै बिछुरे मिलि ऐसे।
> लोभ कहा अरु मोह कहा जग जोग बियोग कुटुम्ब के तैसे[2]।।

केशव का मत है कि प्रतिष्ठाहीन व्यक्ति सफलता नहीं प्राप्त कर सकता—

> चंचलता सबकों उठि धावति। आदरहीन नहीं फल पावति।
> ज्यों कुलहा तिय वृद्ध बखानहु। लाज बिहीन यों तृष्नहि जानहु[3]।।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : चौदहवां प्रभाव, पृ०- १८१, छं०- ७

२- वही, पृ०- १८२, छं०- ८

३- वही, पृ०- १८५, छं०- १७

मन का सरस्वती के प्रति कथन है कि—

> गर्भ मिले रहे मन में जग आवत कोटिक कष्ट सहे जू ।
> को कहे पीर न बोलि परे बहु रोग निकेतन ताप रहे जू ।
> खेलत मात पितानि औ गुरु गेहन में गुरु दंड दहे जू ।
> दीरघ लोचनि देवि सुनो अब बाल-दशा दिन दुःख नहे जू[1]।।

यौवनकाल में बुद्धि में मलीनता आ जाती है मनुष्य ऐसे समय गर्व से युक्त होकर किसी को कुछ नहीं समझता ।

> जौबन में मति की मलिनाई । होति हियें चित की चपलाई ।
> काहू गने न सुगर्ब भरो यों । आवति है बरषा-सरिता ज्यों[2]॥

किसी वस्तु को जल में अच्छी तरह डुबोने के लिए उसमें भारी पत्थर बांध दिया जाता है । इस व्यावहारिक ज्ञान का उपयोग केशव ने निम्न छन्द में किया है ।

> या संसार समुद्र को सबै तरै मतिनिष्ट ।
> बांधी होय गरे न जो कुमती शिला गरिष्ट[3]।।

इस प्रकार केशव ने अपने व्यावहारिक ज्ञान के माध्यम से अनेक छन्दों की रचना की है ।

१- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : चौदहवां प्रभाव, पृ०- १८४, छ०- २०
२- वही, पृ०- १८८, छ०- २१
३- वही, पृ०- १८८, छ०- २४

अध्याय : सात

प्रबन्ध काव्यों का प्रभाव

प्रबन्ध काव्यों का प्रभाव

केशवदास जी ने रामचन्द्रिका की प्रस्तावना में लिखा है कि वाल्मीकि मुनि ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिए थे। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वाल्मीकि कृत रामायण से उन्हें अधिक सहायता मिली होगी, पर उनके ग्रन्थ को देखने से ज्ञात होता है कि उस रामायण की इन पर बहुत कम छाप पड़ी है। केशव की कथा का ढांचा अवश्य वाल्मीकि रामायण में मिलता-सा है पर यह साम्य अधिक नहीं है।

संस्कृत के दो नाटक ऐसे हैं जिनका बहुत गम्भीर तथा विस्तृत प्रभाव केशवदास पर पड़ा है। ये नाटक `प्रसन्नराघव` तथा `हनुमन्नाटक` हैं। केशवदास पर अपेक्षाकृत `प्रसन्नराघव` नाटक का अधिक प्रभाव पड़ा है। केशव का परशुराम संवाद `प्रसन्नराघव` से प्रभावित है। संस्कृत के इन दोनों नाटकों को मिलाकर पढ़ने से एक बात आश्चर्य में डाल देती है वह यह कि कुछ श्लोक इन दोनों ग्रन्थों में एक ही हैं या बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। किसने किससे लिया है इसका निर्णय करना कुछ कारणों से असम्भव सा है। प्राचीन विश्वास वालों की धार्मिक श्रद्धा भी निर्णय में बाधा डालती है। प्राय: वैष्णव गण यही मानते हैं कि `हनुमन्नाटक` स्वयं हनुमान जी की रचना है। इस नाटक में कथा का प्रवाह कहीं-कहीं कुछ खण्डित सा लगता है। नीचे कुछ श्लोक उद्धृत किए जाते हैं जो प्राय: एक ही रूप में दोनों नाटकों में मिलते हैं—

> भो ब्रह्मन्भवता समं न घटते संग्राम वार्तापि नो।
> सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थितामूर्धनि ।।
> यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजा ।
> मस्माकं भवतो यतो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम्[1]।।

1- हनुमन्नाटकम् : प्रथम अंक, पृ०-२१, छ० ४०, तथा प्रसन्नराघवम् :चतुर्थ अंक, पृ०- २१६-२१७

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम् ।
इत्थं विदेह तनयां मुहुरालपन्ती
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम[१] ।।

हार: कण्ठे विशतु यदि वा तीक्ष्णधार: कुठार:
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु वै कज्जलं वा जलं वा ।
सम्पश्यामो ध्रुवमपि सुखं प्रेतभर्तुर्मुखं वा
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीरा:[२] ।।

इस अन्तिम श्लोक को केशव ने इस रूप में लिखा है—

कंठ कुठार परै अब हार कि फूलै अशोक कि सोक समूरो ।
कै चितसारि चढ़ै कि चिता, तन चंदन चर्चि कि पावक पूरो ।।
लोक में लोक बड़ो अपलोक सु केसवदास जु होउ सु होऊ ।
विप्रन के कुल को भृगुनंदन, सूर न सूरज के कुल कोऊ[३] ।।

इन दो नाटकों के अतिरिक्त आचार्य केशव ने रामचन्द्रिका में बाणभट्ट की 'कादम्बरी'[४] के कथामुख के तीन चार छन्दों से प्रभाव ग्रहण किया है। महाकवि कालिदास विरचित 'रघुवंश'[५], भासकृत 'बालचरित'[६] और 'चारुदत्त'[७] नाटक के एक-एक छन्द भी रामचन्द्रिका के छन्दों से मिलते हैं।

१- हनुमन्नाटकम् : चतुर्थ अंक, पृ०- ६४, छ०-१४ तथा प्रसन्नराघवम् : पंचम अंक, पृ०-२६२, छ० - ४५
२- वही, प्रथम अंक, पृ०- २३, छ०-४४ तथा प्रसन्नराघवम् : चतुर्थ अंक, पृ०-२१४, छ०-२३
३- रामचन्द्रिका : छठां प्रकाश, पृ०-११८ छ०-३३
४- कादम्बरी कथामुख- शूद्रक वर्णन तथा जाबालि ऋषि आश्रम वर्णन
५- रघुवंश : प्रथम सर्ग, पृ०-३, श्लोक ५
६- बालचरितम् : प्रथमोऽङ्क:, पृ०- १२, श्लोक १५
७- चारुदत्तम् : ,, ; श्लोक १६

रामचन्द्रिका के छन्दों पर अनर्घराघव का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है।

हनुमन्नाटक का प्रभाव :

केशवदास जी ने संस्कृत ग्रन्थों से स्थल चुनते समय शब्दश: अनुवाद के सिद्धान्त का पालन नहीं किया है। उनका उद्देश्य भावों को काव्योचित ढंग से अपनी भाषा में व्यक्त करना मात्र था। केशव ने मूल के भावों को भी कभी-कभी ऐसे स्थानों पर रख दिया कि उनकी कान्ति बढ़ने के बदले और भी फीकी पड़ गई है। सुन्दर से सुन्दर भाव भी अनुकूल परिस्थितियों की आकांक्षा रखता है। जिन भावों को केशव ने परिस्थितियों अर्थात् कथा प्रसंगों के सहित उठा लिया है वहां तो ठीक है परन्तु जहां उन्होंने प्रसंग को खण्डित कर मनमानी भूमि पर मूल के भाव को खड़ा किया है वहां वह भाव मुंह बनाए हुए बैठा प्रतीत होता है। एक उदाहरण—

हनुमन्नाटक में जब रावण रणभूमि में जाता है तो महोदर से पूछता है—

रावण : महोदर ! राम कुत्रास्ते ?

महोदर : देव ! पश्य

> अङ्कं कृत्वोत्तमाङ्गं प्लवगबलपते: पादमक्षस्य हन्तु
> भूमौ विस्तारितायां त्वचि कनकमृगस्याङ्गशेषं निधाय
> बाणं रक्ष: कुलघ्नं प्रगुणित मनुजेनार्पितं तीक्ष्णमक्ष्णो:
> कोणेनो वीक्ष्यमाणस्त्वदनुजवचने दत्त कर्णोऽयमास्ते [१]।

इस भाव को केशव ने लिया है। `रामचन्द्रिका` में रावण अपने दूत को राम के पास कुछ समाचार लेने को भेजता है जब दूत लौटकर आता है तो रावण पूछता है कि तुमने राम को कैसे देखा ? दूत उत्तर देता है—

१- हनुमन्नाटक : एकादश अंक, पृ०-१७६, छं०-७

भूतल के इन्द्र भूमि पौढ़े हुते रामचन्द्र
मारिच कनकमृग छालहि बिछाए जू
कुंभहर- कुंभकर्न- नाथाहार- गोद सीस
चरन अकंप- अघा - अरि - डर लाए जू
देवान्तक- नरांतक- अंतक त्यौं मुसकात
विभीषन- बैन- तन कानन रुचाए जू
मेघनाद- मकराक्ष- महोदर- प्रानहर- बान
त्यौं बिलोकत परम सुख पाए जू[1] ।।

दोनों उद्धरणों में राम का प्रताप सूचित होता है परन्तु परिस्थिति भेद से एक में अनौचित्य है दूसरे में औचित्य तथा स्वाभाविकता हनुमन्नाटक में तो राम सामने बैठे हैं और महोदर उनको दिखाकर जैसा देखता है वैसा वर्णन करता है। रामचन्द्रिका में दूत को सामने बैठे हुए राम की ओर संकेत नहीं करना है। ऐसी अवस्था में उसका रावण के सामने राम का ऐसे प्रतापपूर्ण रूप में वर्णन करना ठीक नहीं हुआ। वह आखिर रावण का दूत था। उसी के सामने वह राम को ` भूतल का इन्द्र ` कहता है। इससे दूत में अशिष्टता- सी प्रतीत होती है।

` हनुमन्नाटक ` के राम- परशुराम- संवाद के अन्तर्गत परशुराम की प्रशंसा करते हुए राम के शब्द हैं—

स्त्रीषु प्रवीरजननी जननी तवैव,
देवी स्वयं भगवती गिरिजापि यस्यै।
त्वद्दोर्वशीकृत विशाखमुखावलोक-
व्रीडा विदीर्णहृदया स्पृहयां बभूव[2]।।

१- रामचन्द्रिका : १६वां प्रकाश, पृ०- ३१६, छ०- २०

२- हनुमन्नाटक : प्रथम अंक, पृ०- २३, छ०- ४३

अर्थात् ` वीर प्रसू स्त्रियों में एकमात्र आपकी माता ही है। आपके बाहुबल द्वारा पराजित स्वामिकार्त्तिकेय के मुख को देखकर स्वयं भगवती गिरिजा का हृदय लज्जा से विदीर्ण हो गया था और उनके हृदय में आपकी माता के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो गई थी ` ।

इस श्लोक के भाव के आधार पर आचार्य केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है। केशव के छन्द में स्पष्ट रूप से गिरिजा द्वारा रेणुका की प्रशंसा की गई है और ईर्ष्या व्यंग्य है। केशव का छन्द काव्य की दृष्टि से अधिक सुन्दर है।

जब हयो हैहयराज इन बिन क्षत्र छिति मंडल कर्‌यो ।
गिरि बेध षटमुख जीति तारकनन्द को जब ज्यों हर्‌यो ।
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनन्दिनी ।
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जगबंदिनी[१]।।

हनुमन्नाटक के परशुराम के मुख से कुठार के द्वारा किए हुए कठोर कर्मों की स्मृति दिलाए जाने पर राम के कहे हुए दो छन्द हैं--

जात: सोऽहं दिनकर कुले क्षत्रिय: श्रोत्रियेभ्यो
विश्वामित्रादपि भगवतो दृष्टदिव्यास्त्रपार:
अस्मिन्वंशे कथयतुजनो दुर्यशो वा यशो वा,
विप्रे शस्त्र ग्रहण गुरुण: साहसिक्याद्बिभेमि[२]।।

अर्थात् ` मैं सूर्यकुलोद्भव क्षत्रिय हूं जिसे श्रोत्रिय भगवान विश्वामित्र के समान व्यक्ति ने अपार दिव्यास्त्रों की शिक्षा दी है। तथापि मेरे वंश को यश की प्राप्ति हो अथवा अपयश की, मैं ब्राह्मण के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करने का महान् साहस करने से डरता हूं।

१- रामचन्द्रिका : छवां प्रभाव, छ० - २६
२- हनुमन्नाटक : प्रथम अंक, पृ० - २२, छ० - ४१

दूसरा छन्द है—

> हार: कंठे विशतु यदि वा तीक्ष्णधार: कुठार:
> स्त्रीणां नेत्राराण्यधिवसतु सुखं कज्जलं वा जलं वा ।
> सम्पश्यामो ध्रुवमपि सुखं प्रेतभर्तुर्मुखं वा
> यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीरा:[1]।।

अर्थात् 'हमारे कंठ में हार सुशोभित हो अथवा तीक्ष्णधार वाला कुठार स्त्रियों के नेत्रों में सुख का घोतक काजल शोभा पाए अथवा उनसे अश्रुधारा बहे, निश्चय ही हमें सुख की प्राप्ति हो अथवा यम का मुख देखना पड़े, चाहे जो कुछ भी हो हम लोग ब्राह्मणों के लिए वीर नहीं हैं।

इन दोनों छन्दों के मूलभाव को केशव ने निम्नलिखित एक ही छन्द में सफलतापूर्वक व्यक्त किया है—

> कंठ कुठार परै अब हार कि फूले अशोक कि सोक समूरो ।
> कै चितसार चढ़ै कि चिता, तन चंदन चर्चि कि पावक पूरो ।
> लोक मे लोक बड़ो अपलोक सु केसवदास जु होउ सु होऊ ।
> विप्रन के कुल को भृगुनंदन ! सूर न सूरज के कुल कोउ [2] ।।

राम वनवास तथा दशरथ की मृत्यु के बाद जब भरत लौटकर आते हैं तो वे राम के विषय में कैकेयी से समाचार पूछते हैं। उस स्थल पर प्रश्नोत्तर- समन्वित एक श्लोक ' हनुमन्नाटक ' में आया है जिसका बहुत सफल अनुवाद केशव ने किया है—

> मातस्तात: क्व यात: सुरपति भुवनं हा कुत: पुत्रशोकात् ।
> कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां त्वमवरजतया यस्य जात: किमस्य ।।
> प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिराकिं तथाऽसौऽभमाणे ।
> मद्वाग्बद्ध: फलं ते किमिह तव धराधीशता हा हतोऽस्मि[3] ।।

१- हनुमन्नाटक : प्रथम अंक, पृ०- २३, छं० ४४
२- रामचन्द्रिका : ७वां प्रकाश, पृ०-१११, छं०- ३३
३- हनुमन्नाटक : तृतीय अंक, पृ०- ४६, छं० -८

अर्थात् हे माता ! पिता कहां गये हैं ? स्वर्गलोक । क्यों ? पुत्रशोकवश । चारों पुत्रों में से वह कौन पुत्र है ? तुम्हारे बड़े भाई । कैसे ? वह वन चले गये हैं । क्यों ? राजा की आज्ञा से उन्होंने ऐसा क्यों कहा ? मुझसे वचनबद्ध होने के कारण । तुम्हें इससे क्या लाभ होगा ? तुम्हारा राज्याभिषेक । हा मैं हत हुआ ।

मातु कहां नृप ? तात गये सुरलोकहि क्यों ? सुत शोक लये ।
सुत कौन सु ? राम, कहां हैं अबैं ? बन लच्छमन सीय समेत गये ।।
बन काज कहा कहि ? केवल मो सुख, तोको कहा सुख यामें भये ?
तुमको प्रभुता, धिक तोको कहा अपराध बिना सिगरेई हये[1] ।।

` हनुमन्नाटक ` के अन्तर्गत पंचवटी का वर्णन करते हुए लक्ष्मण ने कहा है—

एषा पञ्चवटी रघूत्तम कुटी यत्रास्ति पञ्चावटी ।
पान्थस्यैक घटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी ।।
गोदा यत्र नटी तरङ्गिततटी कल्लोल चञ्चत्पुटी ।
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूत क्रिया दुष्कुटी[2] ।।

अर्थात् हे रघूत्तम, इस पांच वट वृक्षों से युक्त पंचवटी को कुटी बनाइए । पंचवटी क्षणभर के लिए पथिकों को विश्राम करने का निमन्त्रण देती है । इसका द्वार भाग सुशोभित है, इसकी भित्ति वट वृक्षों द्वारा ही निर्मित है । इसके निकट दिव्यामोद प्रदान करने वाली भवसागर पार करने के लिए पोत के समान तथा सामान्य उपायों द्वारा दुष्प्राप्य कल्लोल करती हुई तरंगों से युक्त गोदावरी नदी प्रवाहित है ।

इसी श्लोक के आधार पर केशव ने निम्न पंक्तियां लिखी हैं जिसमें ` सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जह एक घटी ` लिखकर पंचवटी की महिमा को और भी बढ़ा दिया है—

१- रामचन्द्रिका : ११वां प्रकाश, पृ० - १४७, छ० - ४

२- हनुमन्नाटक : तृतीय अंक, पृ० - ५५, छ० - २२

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जह एक घटी ।
निघटी रुचि मीचु घटी हु घटी जगजीव जतीन की छूटी तटी ।
अघ- ओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी ।
चहुं ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन- धूरजटी बन पंचवटी[१] ।।

केशव के इस छन्द में भाव साम्य की अपेक्षा भाषा साम्य अधिक है ।

` हनुमन्नाटक ` में रावण द्वारा कपटमृग का रूप धारण करने के लिए प्रेरित मारीच सोचता है—

रामादपि च मर्तव्यं रावणादपि ।
उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावण:[२] ।।

अर्थात् ` राम के द्वारा भी मृत्यु निश्चित है तथा रावण के द्वारा भी । जब दोनों के द्वारा मृत्यु निश्चित है तो रावण की अपेक्षा राम के हाथों से मरना अधिक उत्तम है ।`

इस श्लोक के आधार पर केशव ने इसी प्रसंग में लिखा है—

जानि चल्यौ मारीच मन, मरन दुहूं विधि आसु ।
रावण के कर नरक है हरि कर हरि- पुर- बास[३] ।।

हनुमन्नाटक से यह स्पष्ट नहीं किया है कि मरीच राम के हाथों मरना क्यों श्रेष्ठतर समझता है, केशव ने यह बात स्पष्ट करदी है ।

` हनुमन्नाटक ` के अन्तर्गत कपटमृग को मारकर लौटे हुए राम पर्णशाला में सीता को न पाकर कहते हैं—

बहिरपि न पादानां पंक्तिरन्तर्न किं मन्या
अहमपि किल नाथं सर्वथा राघवश्चेत्

१- रामचन्द्रिका : ११वां प्रकाश, पृ०- १६४, छं०- १८
२- हनुमन्नाटक : तृतीय अंक, पृ०- ५६, छं०- २४
३- रामचन्द्रिका : १२वां प्रकाश, पृ०- १७७, छं०- ११

क्षणमपि नहि सोढ़ा हन्त सीता वियोगम्[१]।।

अर्थात् न तो बाहर पैरों के चिह्न दिखाई देते हैं और न कुटी में कोई है, इसका क्या कारण है ? सीता कहां है अथवा यह कोई दूसरी कुटी है। या मैं स्वयं ही बदल गया हूं। इस प्रकार राम का हृदय क्षणभर भी सीता का वियोग न सहन कर सका।

मूलभाव ' हनुमन्नाटक ' के उपर्युक्त श्लोक से लेकर उसे और परिष्कृत कर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है—

निज देखौं नहीं शुभ गीतहि सीतहि कारण कौन कहौ अबहीं।
अति मो हित कै बन मांझ गई सुर मारग मै मृग मार्यो जहीं।
कटु बात कछु तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रही।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं[२]।।

केशवदास ने अपने छन्द की दूसरी तथा तीसरी पंक्ति में जो शंकाएं उठाई हैं, वह बहुत ही स्वाभाविक हैं।

' हनुमन्नाटक ' के अन्तर्गत सीता के वियोग के कारण उत्पन्न दुःख का वर्णन करते हुए राम का कथन है—

चन्द्रश्चण्ड करायते मृदुगति वातोऽपि वज्रायते।
माल्यं सूचिकुलायते मलयजो लेपः स्फुलिंगायते।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशत्प्राणोऽपि भारायते।
हा हन्त प्रमदावियोग समयः संहार कालायते[3]।।

अर्थात् ' हा हन्त, सीता- वियोग- काल प्रलयकाल के समान दुःखदायी है। इस समय चन्द्रमा, सूर्य के समान प्रतीत हो रहा है, मंद- मंद बहने वाली वायु वज्र के समान पीड़ा दे रही है, पुष्पमाल सुई की चुभन के समान कष्टप्रद है,

---

१- हनुमन्नाटक : पंचम अंक, पृ०- ६०, छ०- २

२- रामचन्द्रिका : १२वां प्रभाव, पृ०-२७६, छ०-२७

३- हनुमन्नाटक : पंचम अंक, पृ०- ७६, छ०- २६

चन्दन का लेप अग्नि के समान दग्ध करता है, रात्रि शत कल्पों के समान प्रतीत हो रही है, तथा विध्विश प्राण भार स्वरूप हो रहे हैं ।

इस श्लोक के भाव के आधार पर इसी प्रसंग में केशव ने राम के मुख से भी कहलाया है—

> हिमांशु सूर सो लगै सो बात बज्र सी बहै ।
> दिसा लगैं कृसानु ज्यों विलेप अंग को दहै ।।
> विसेस कालिरात्रि सौं कराल राति मानिये ।
> वियोग सीय को न काल लोकहार जानिये[1] ।।

'हनुमन्नाटक' के किष्किन्धा के पर्वत पर सुग्रीवादि द्वारा सीता के आभूषण दिखलाए जाने पर राम के शब्द हैं—

> जानक्या: एव जानामि भूषणानीति नान्यथा ।
> वत्स लक्ष्मण जानीषे पश्य त्वमपि तत्वत:[2] ।।

अर्थात् 'मैं यह आभूषण जानकी के ही समझता हूं किसी अन्य के नहीं । वत्स लक्ष्मण, तुम पहचानते हो जानकी के ही हैं न' । इस श्लोक के आधार पर केशव ने लिखा है—

> रघुनाथ जबै पटनूपुर देखे । कहि केशव प्राण समानहि लेखे ।
> अवलोकत लक्ष्मण के कर दीन्हे, उन आदर सो सिर लाइ के लीन्हें[3] ।।

'हनुमन्नाटक' के छन्द में कोई विशेषता नहीं है । केशव के छन्द में सीता के प्रति राम के प्रेम की स्वाभाविक व्यंजना तथा लक्ष्मण के आदर-भाव का भी प्रकटीकरण है ।

'हनुमन्नाटक' में मारीच के बध के पश्चात् जब राम लौटकर अपनी कुटी में आए तो वहां सीता जी को न पाकर बहुत दु:खी हुए, उस समय सीताजी के उत्तरीय को पाकर राम का कथन है—

१- रामचन्द्रिका : १२वां प्रकाश, पृ० -२३५, छं० -४२
२- हनुमन्नाटक : पंचम अंक, पृ० -७७, छं० ३५
३- रामचन्द्रिका : पृ० -२४३, छं० - ६१

द्यूते पण: प्रणयकेलिषु कंठपाश:
क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते ।
शय्या निशीथसमये जनकात्मजाया:
प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम्[१]।।

अर्थात् ` भाग्यवश मुझे यह उत्तरीय प्राप्त हो गया है। यह जुये का पांसा है, अथवा प्रणय केलि के समय का कंठपाश है या सुरति के पश्चात् रतिक्रीड़ा के परिश्रम को दूर करने के लिए पंखा है अथवा रात्रि के समय की सीता की शय्या है।

केशवदास ने मूलभाव उपर्युक्त श्लोक से लेकर उसे अपेक्षाकृत अधिक विस्तारपूर्वक निम्नलिखित छन्द में व्यक्त किया है। केशव ने हनुमन्नाटक से भिन्न स्थल में इस भाव का उपयोग किया है। किष्किन्धा के पर्वत पर सुग्रीव के द्वारा राम के सामने सीता का उत्तरीय उपस्थित किए जाने पर राम का कथन है—

` पंजर के खंजरीट नैनन को केशोदास,
कैधों मीन मानस को जल है कि जारु है।
अंग को कि अंग राग गेडुवा कि गलसुई,
किधौं कोट जीव ही को उर को कि हारु है।
बंधन हमारो काम केलि को कि ताडिबे को,
ताजनो विचार को, कै व्यजन विचारु है।
मान की जमनिका कै कंज मुख मूंदिबे को,
सीता जू को उत्तरीय सब सुख सारु है `[२]।

` हनुमन्नाटक ` के अन्तर्गत हनुमान द्वारा सीता के मुद्रिका प्राप्त करने पर

१- हनुमन्नाटक : पंचम अंक, पृ०- ६०, छ०- १
२- रामचन्द्रिका : १३वां प्रकाश, पृ०-२४३-२४४, छ०- ६२

सीता तथा हनुमान के प्रश्नोत्तर समन्वित श्लोक है—

> मुद्रि सन्ति सलक्ष्मणा : कुशलिन: श्री रामपादा: सुखं
> सन्ति स्वामिनि मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिन्तया ।
> एनां व्याहर मैथिलाधिप सुते नामान्तरेणाधुना
> रामस्त्वद्विरहेण कंकणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान[1] ।।

सीता जी मुंदरी से पूछती हैं कि हे मुंदरी ! रामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित कुशल से तो हैं ? हनुमान जी उत्तर देते हैं कि स्वामिनी ! इस चिन्ता से हृदय दुखी मत करो । वे सब सकुशल हैं । हे जानकी जी ! आज मुंदरी को भिन्न नाम से सम्बोधित कीजिए,आपके विरह में रामचन्द्र जी ने इसे चिरकाल से कंकण का स्थान प्रदान किया है ।

इस श्लोक के भाव को केशव ने निम्नलिखित छन्दों में प्रकट किया है । अन्तर केवल इतना ही है कि केशव ने हनुमान के मुख से मुंदरी के चुप रहने का कारण सीता के पूछने पर कहलाया है ।

> कहि कुसल मुद्रिके राम गात, सुभ लक्ष्मण सहित समान तात ।
> यह उतरु देत नहि बुद्धिवंत, केहिकारण धौं हनुमंत संत ।
>
> तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम ।
> कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहं राम[2] ।।

' हनुमन्नाटक ' के अन्तर्गत विभीषण रावण से सीता जी को लौटा देने का परामर्श देता हुआ कहता है—

> सुवर्णपंखा: सुभटा: सुतीक्ष्णा:
> वज्रोपमा वायुमन: प्रवेगा: ।

१- हनुमन्नाटक : षष्ठोऽङ्क: , पृ०-१०३, छं०- १६

२- रामचन्द्रिका : १३वां प्रकाश, पृ०-२८५, छं०- ८६- ८७

यावन्न ग्रहणन्ति शिरांसि बाणा:
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली[1]।

स्वर्ण पंखों से युक्त, दृढ़, तीक्ष्ण, वज्रोपम तथा वायु एवं मन के समान वेग वाले राम के बाण जब तक तुम्हारे शिरों को छिन्न-भिन्न नहीं कर देते तब तक राम को सीता जी को अर्पण कर दो।

इस श्लोक के भाव को केशव ने निम्नलिखित छन्दों में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से प्रकट किया है।

देखे रघुनायक धीर रहै, जैसे तरु पल्लव वायु बहै।
जौ लौं हरि सिंधु तरैं तरैं, तौ लौं सिय लै किन पाय परैं।।
जौ लौं नल नील न सिन्धु तरैं, जौ लौ हनुमंत न दृष्टि परैं।
जौ लौं नहि अंगद लंक दहौ, तौ लौं प्रभु मानहु बात कही।।
जौ लौं नहि लक्ष्मण बाण धरैं, जौ लौं सुग्रीव न क्रोध करैं।
जौ लौं रघुनाथ न सीस हरौं, तौं लौं प्रभु मानहु पाइ परौं[2]।।

'हनुमन्नाटक' के अन्तर्गत जिस समय अंगद रावण की सभा में पहुंचता है, रावण का प्रतिहार उसके प्रताप को सूचित करते हुए निम्नलिखित छन्द पढ़ता है—

ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णीं बहि: स्थीयतां।
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिण:।।
स्तोत्रं संहर नारद स्तुतिकुलालापैरलं तुम्बुरो।
सीतारल्लकभल्लभग्नहृदय: स्वस्थो न लंकेश्वर:[3] ।।

'ब्रह्मा! अध्ययन बन्द करो। यह इसका समय नहीं है बाहर चुपचाप ठहरो।

१- हनुमन्नाटक : सप्तम अंक, पृ०-११६, छ०- ८
२- रामचन्द्रिका : १५वां प्रकाश, पृ०-३१६-३२०, छ०- १०- १२
३- हनुमन्नाटक : अष्टम अंक, पृ०- १४४, छ०- ४५

वृहस्पति ! अधिक व्यर्थालाप मत करो । मूर्ख ! यह इन्द्र की सभा नहीं है । नारद स्तोत्र बन्द करो । तुम्बुर (गन्धर्व विशेष) स्तुति करना रोक दो । लंकेश्वर स्वस्थ नहीं है । सीता के सिन्दूर-रेखा-रूपी भाले से उसका हृदय भग्न हो गया है ।

इस श्लोक के भाव के आधार पर इसी प्रसंग में केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है—

> ` पढ़ौ विरंचि मौन बेद जीव सोर छंडि रे ।
> कुबेर बेर के कही न यज्ञ भीर मंडि रे ।
> दिनेश जाय दूरि बैठि नारदादि संगही ।
> न बोलु चंद मंद बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं[1] ।।

केशवदास जी ने रावण-अंगद-संवाद के अन्तर्गत कई छन्द ` हनुमन्नाटक ` के इसी प्रसंग में दिए हुए श्लोकों के भाव के आधार पर लिखे हैं । इस प्रकार के छन्द मूल श्लोक-सहित यहां उपस्थित किए जाते हैं । रावण और अंगद के प्रश्नोत्तर से समन्वित श्लोक है—

> सोऽपि त्वं कमिवावगच्छसि पुरा योऽदाहि लांगूलतो ।
> बद्धो मत्तनयेन हन्त स कथं मिथ्यावदन्नः पुरा ।
> किं लंकापुरदीपनं तव सुतस्तेनाहतोऽक्षो युधी-
> त्युक्तः कोपभयत्रपाभरवशस्तूष्णीमभूद्रावणः[2] ।।

क्या तुम उसको भी जानते हो जिसे कुछ दिवस पूर्व मेरे पुत्र ने बांधा था और जिसकी पूंछ में आग लगाई गयी थी । अंगद उत्तर में कहता है, क्या लंकापुरी को जलाने तथा तुम्हारे पुत्र अक्ष को युद्ध में उसके द्वारा मारे जाने की बात मिथ्या है । अंगद के यह कहने पर रावण कोप, भय तथा लज्जा से पराभूत

१- रामचन्द्रिका : सोलहवां प्रकाश, पृ०- ३३६,छ०- २

२- हनुमन्नाटक : अष्टम अंक, छ०-५, पृ०- १२७

हो चुप हो गया।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द के अन्तिम दो पद लिखे हैं—

> कौन हो पठये सो कौने ह्यां तुम्हें कह काम है।
> जाति बानर लंकनायक दूत, अंगद नाम है ।
> कौन है वह बांधि के हम देह पूंछ सबै दही ।
> लंक जारि संहारि अच्छ गयो सो बात वृथा कही[1]।।

> कस्त्वं वन्यपतेः सुतो वनपतिः कः सार्थिकस्त्वेकदा,
> यातः सप्तसमुद्रलंघन विधावहिन्को वेद्मि तं ।
> अस्ति स्वस्ति समन्वितो रघुवरे रुष्टेऽत्र कः स्वस्तिमान्
> को भूयादनरण्यकस्य मरणातीतो चिताम्बुप्रदः[2] ।।

तुम कौन हो ? बालि के पुत्र। कौन बालि ? मैं उसे जानता हूं ? एकबार एक ही दिन में तुमको लेकर सात सागर पार किए थे। वह कुशल से तो है ? संसार में राम के रुष्ट होने पर किसकी कुशल रह सकती है आदि।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखा है—

> कौन के सुत, बालि के वह कौन बालि न जानिये।
> कांख चांपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये।।
> है कहां वह, वीर अंगद देव लोक बताइयो ।
> क्यों गयो, रघुनाथ बान विमान बैठ सिधाइयो[3]।।

हनुमन्नाटक का रावण कहता है—

> कस्त्वं वानर राम राज भवने लेख्यार्थसंवाहको ।

१- रामचन्द्रिका : १६वां प्रकाश, पृ० - ३३७, छं० - ४

२- हनुमन्नाटक : अष्टम अंक, पृ० - १२६, छं० - १०

३- रामचन्द्रिका : १६ वाँ प्रकाश, पृ० - ३३८, छं० - ६

यातः कुत्र पुराऽऽगतः स हनुमन्निर्दग्धलंकापुरः ।
बद्धो राक्षस सूनुनेति कपिभिः संताडितस्तर्जितः ।
स व्रीडार्तिपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते[1] ।।

अर्थात् तुम कौन हो ? रामचन्द्र जी के राजभवन में पत्रवाहक वानर । वह हनुमान कहां गया जो कुछ दिनों पूर्व आया था और जिसने लंकापुरी जलाई थी ? राक्षस के पुत्र ने उसे बांधा था, यह कहकर बन्दरों द्वारा प्रताड़ित तथा तर्जना दिया गया, लज्जा, दुःख तथा पराभव का अनुभव करता हुआ वह वानर कहां है यह नहीं ज्ञात है ।

इस श लोक के आधार पर केशव का छन्द है—

कौन भांति रहौ तहां तुम, राज प्रेषक जानिये ।
लंक लाइ गयो जो वानर कौन नाम बखानिये ।
मेघनाद जो बांधियो वहि मारियो बहुधा तबै ।
लोक लाज दुर्यो रहै अति जानिये न कहां अबै[2] ।।

अंगद की रावण के प्रति उक्ति है—

आदौ वानरशावकः समतरद्दुर्लङ्घ्यमम्भोनिधिं ।
दुर्भेद्यान्प्रविविश दैत्यनिवहान्संपेक्ष्य लंकापुरीम् ।
क्षिप्त्वाद्वनरक्षिणो जनकजां दृष्ट्वा तु भुक्त्वा वनं ।
हत्वाऽक्षं प्रदहत्पुरीं च स गतो रामः कथं वर्ण्यते[3] ।।

राम के प्रताप का क्या वर्णन किया जाय । आरम्भ में उनके एक वानर-शावक ने दुर्लङ्घ्य सागर को पार किया, राक्षसों के दुर्भेद्य महलों में प्रवेश किया, लंकापुरी को देखा, अशोक वन के रक्षकों को मारा, सीता के दर्शन किए, वन

१- हनुमन्नाटक : अष्टम अंक, पृ० - १२७, छ० - ६

२- रामचन्द्रिका : १६वां प्रकाश, पृ० -३३८, छ० -५

३- हनुमन्नाटक : अष्टम अंक, पृ० - १३०, छ० - १२

का भोग किया, अक्षकुमार को मारा तथा लंकापुरी को जलाकर चला।

इस श्लोक का भाव केशव ने निम्नलिखित छन्द में प्रकट किया है—

श्री रघुनाथ को वानर केशव आयो हो एक न काहू हयो जू।
सागर को मद फारि चिकारि त्रिकूट की देह बिहारि गयो जू।
सीय निहारि संहारि कै राक्षस शोक अशोक वनीह दयो जू।
अक्षकुमारहि मारकै लंकहि जारिकै नीकेहि जात भयो जू[1]।।

रावण अंगद को राम के विरुद्ध उत्तेजित करते हुए कहता है—

धिग्धिगंगद मानेन येन ते निहत: पिता।
निर्मानो वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतत्वमागत:[2]।।

अंगद ! तुम्हारे अहंकार को धिक्कार है, जिसने तुम्हारे पिता को मारा तुम उसी के दूत होकर आए हो। तुम्हारी वीरवृत्ति आत्माभिमान से रहित है।

इस भाव को आचार्य केशवदास ने नीचे दिए हुए छन्द में प्रकट किया है। केशव का छन्द अपेक्षाकृत अधिक काव्योपयुक्त है। केशव के छन्द के अन्तिम पदों में रावण का चातुर्य तथा कूटनीति स्पष्ट है।

उरसि अंगद लाज कछू गहो। जनक घातक बात वृथा कहो।
सहित लक्ष्मण रामहि संहरौं। सकल बानर राज तुम्हें करौं[3]।।

अंगद रावण की भर्त्सना करता हुआ कहता है—

रे रे राक्षसवंश घात समरे नाराचचक्राहतं
रामोत्तुंग पतंग चापयुगले तेनाभिरा ऽ म्बरे।
मन्ये शौर्यमिदं त्वदीयमखिलं भूमंडले पातितं।
गृध्रैरालुण्ठितं शिवाकवलितं काकै: क्षतं यास्यति[4]।।

१- रामचन्द्रिका : १६वां प्रकाश, पृ०- ३३६-३४०, छ०-८

२- हनुमन्नाटक : अष्टम अंक, पृ०-१३६, छ०-२६

३- रामचन्द्रिका : १६वां प्रकाश, पृ०-३४६, छ०- १८

४- हनुमन्नाटक : अष्टम अंक, पृ०-१३३, छ०- २०

रे राक्षस वंश के घातक ! रामचन्द्र जी के धनुषबाण ग्रहण करने पर तेज से आपूरित समरस्थल में राम के बाणों से आहत तेरे सब शिर पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे और उन्हें गृद्ध लुंठित करेंगे, शृगालों कवल करेंगी तथा कौवे क्षत-विक्षत करेंगे ।

केशव के निम्नलिखित छन्द का भी यही भाव है—

नराच श्री राम जहीं धरेंगे । अशेष माथ कटि भू परेंगे ।

शिखा शिवा स्वान गहे तिहारी । फिरें चहूं ओर निरे बिहारी[1]।।

रावण अपने ऐश्वर्य को सूचित करता हुआ अंगद से कहता है—

मृत्युः पादान्तभृत्यस्तपति दिनकरो मन्दमन्दं ममाग्रे ।

ऽप्यष्ठौ ते लोकपाला मम भयचकिताः पादरेणुं वन्दुः ।

दृष्ट्वा तं चन्द्रहासं स्रवति सुरवधूपन्नगीनां च गर्भो ।

निर्लज्जौ तापसौ तौ कथमिह भवतो वानरान्मेलयित्वा[2]।।

मृत्यु मेरे चरणों में स्थित मेरी दासी है। मेरे सम्मुख सूर्य का ताप मन्द हो जाता है, लोकपाल मुझसे भयभीत होकर मेरे चरण-रज की वन्दना करते हैं तथा मेरी चन्द्रहास नामक खड्ग को देखकर सुरवधुओं तथा पन्नगियों का गर्भस्राव हो जाता है। वह दोनों निर्लज्ज तपस्वी (राम-लक्ष्मण) बन्दरों को एकत्रित कर मुझसे सीता को कैसे ले सकते हैं ।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्द लिखे हैं । केशव ने रावण के मुख से राम-लक्ष्मण की असामर्थ्य का उल्लेख न कराकर वानरराज सुग्रीव की अशक्ति का कथन कराया है और इस प्रकार अपने इष्टदेव राम के प्रभुत्व की रक्षा की है ।

१- रामचन्द्रिका : १६वां प्रकाश, पृ०- ३४७, छ०- २१

२- हनुमन्नाटक : अष्टम् अंक, पृ०- १३३, छ०- १६

केशव के छन्द हैं—

> महामीचु दासी सदा पांइ धोवै । प्रतीहार ह्वै के कृपा सूर जोवै ।
> कृपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको । करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको ।।
> सका मेघमाला शिखी पाककारी । करै कोतवाली महादंडधारी ।
> पढै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके । कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके[1] ।।

'हनुमन्नाटक' के अन्तर्गत रावण की आज्ञा से महोदर के कुम्भकर्ण को जगाने के लिए जाने के अवसर पर दो छन्द हैं—

> विरम विरम तूर्णं कुम्भकर्णस्य कर्णं
> न्नलु तव निनादैरेष निद्रां जहाति ।
> इति कथयति काचित्प्रेयसी प्रेक्ष्यमाणा
> मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम्[2] ।।

'ठहरो ठहरो, कुम्भकर्ण के कानों में तुम्हारे निनाद करने से उसकी नींद न टूटेगी । यह कहते हुए कुम्भकर्ण की किसी प्रेयसी के देखते ही देखते उसकी सांस के साथ ही हाथियों का यूथ उसके मुंह में समा गया' ।

तथा :

> निद्रां तथापि न जहौ यदि कुम्भकर्णः
> श्री कंठलब्धवर किन्नर कामिनीनाम्
> गन्धर्व यक्ष सुर सिद्धवरांगनाना
> माकर्ण्यगीतममृतं परमं विनिद्रः[3] ।।

फिर भी जिस कुम्भकर्ण की नींद न टूटी, वह किन्नर, यक्ष, देवता तथा सिद्धों की स्त्रियों के कंठ की सुरीली तानों को सुनकर जग गया । केशवदास ने

१- रामचन्द्रिका : १६वां प्रकाश, पृ०- २४७, छं०- २२, २३

२- हनुमन्नाटक : एकादश अंक, पृ०- १८१, छं०- १४

३- वही, पृ०-१८२, छं०- १५

इन श्लोकों के आधार पर निम्नलिखित छन्द लिखे हैं। केशव ने हाथियों के कुम्भकर्ण के मुख में समाने का उल्लेख न कर स्वाभाविकता की रक्षा की है।

राक्षस लाखन साधन कीने। दुन्दुभि दीह बजाइ नवीने।
मत्त अमत्त बड़े अरु बारे। कुंजरपुंज जगावत हारे।
आइ जहीं सुरनारि सभागी। गावन बीन बजावन लागी।
जागि उठो तब ही सुरदोषी। क्षुद्र क्षुधा बहु भक्षण पोषी[1]।।

' हनुमन्नाटक ' का कुम्भकर्ण युद्ध के लिए राम के सामने उपस्थित होने पर कहता है—

नाहं बाली सुबाहुर्न खरत्रिशिरसौ दूषण—
स्ताटकाऽहं नाहं सेतुः समुद्रे न च धनुरपि
त्र्यम्बकस्य त्वयात्तम। रे रे राम प्रतापानल—
कवल महाकालमूर्तिः किलाहं वीराणां मौलि—
शल्यः समरभुविधरः संस्थितः कुम्भकर्णः[2]।।

' न मैं बालि हूं न सुबाहु, न त्रिशिरा, न खरदूषण, न ताड़का ही हूं, न समुद्र का सेतु हूं और न शंकर जी का धनुष, जिसको तुमने सहज ही तोड़ डाला, राम के प्रताप की अग्नि का ग्रास करने वाला महाकाल, वीरों में अग्रणी, युद्ध स्थल में निर्भय विचरण करने वाला कुम्भकर्ण तुम्हारे सामने स्थित है। यही भाव प्रायः केशव के निम्नलिखित छन्दों का भी है—

न हौं ताड़का, हौं सुबाहौं न मानौ।
न हौं शम्भु को दंड सांची बखानौ।
न हौं ताउँ बाली खरै जाहि मारौ।

१- रामचन्द्रिका : १८वां प्रकाश, पृ०- ३७७, छ०- २३

२- हनुमन्नाटक : एकादश अंक, पृ०- १८६, छ०- २४

न हौं दूषणौ सिन्धु सूधे निहारौ ।
सुरी आसुरी सुन्दरी भोग करौं ।
महाकाल को काल हौं कुम्भकर्णौं ।
सुनौ राम संग्राम को तोहि बोलौं ।
बड़ो गर्व लंकहि आयै सु खोलौं[1] ।।

' हनुमन्नाटक ' में समरभूमि में रावण के महोदर से पूछने पर कि ' राम कहां हैं ' महोदर उत्तर देता है—

अंके कृत्वोत्तमांगं प्लवंगबलपते: पादमक्षस्य हन्तु-
र्भूमौ विस्तारितायां त्वचिकनकमृगस्यांगशेषं निधाय ।
वाणं रक्ष: कुलघ्नं प्रगुणित मनुजेनर्पितं तीक्ष्णमक्ष्णो:
कोणेनोद्वीक्ष्यमाणस्त्वदनुजवचनेदत्त कर्णोऽममास्ते[2]।।

राम पृथ्वी पर कनक मृगछाला बिछाये, सुग्रीव की गोद में सिर तथा हनुमान जी के अंक में पैर रखे लेटे हैं। परशुराम द्वारा अर्पित प्रगुणित धनुष पर राक्षस कुल—घातक बाण चढ़ा है और वह आंखों की कोर से तुम्हारे छोटे भाई विभीषण की ओर देखते हुए कान लगाए उसकी बातें सुन रहे हैं। इस भाव का उपयोग केशव ने भिन्न परिस्थिति में किया है। रावण का दूत संधि- प्रस्ताव लेकर राम के पास जाता है। वहां से वापस आने पर रावण के पूछने पर वह कहता है—

भूतल के इन्द्र भूमि पौढ़े हुते रामचंद्र
मारिच कनकमृग छालहि विछाए जू
कुंभहर- कुंभकर्न- नासाहर- गोद सीस
चरन अकंप- अक्ष- अरि- उर लाए जू

१- रामचन्द्रिका : अठारहवां प्रकाश, पृ०-३२७, छं०- २२, २३

२- हनुमन्नाटक : एकादश अंक, पृ०- १७९, छं०- ७

देवान्तक- नारान्तक- अंतक त्यों मुसकात
विभीषन- बैन- तन कानन रुखाए जू
मेघनाद- मकराक्ष- महोदर- प्रानहर- बान
त्यों बिलोकत परम सुख पाए जू[१] ।।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध है कि रामचन्द्रिका के बारहवें तथा सोलहवें प्रकाश को लिखने में केशव ने हनुमन्नाटक से पर्याप्त सामग्री ग्रहण की है। इसके अतिरिक्त दसवें, ग्यारहवें, तेरहवें, पन्द्रहवें, अट्ठारहवें तथा उन्नीसवें प्रकाश में एक अथवा दो छन्दों के लिखने में केशव ने हनुमन्नाटक का आधार ग्रहण किया है फिर भी इन छन्दों में केशव की कवि प्रतिभा स्पष्टत: देखी जा सकती है।

प्रसन्नराघव का प्रभाव :

'हनुमन्नाटक' के पश्चात् दूसरा संस्कृत भाषा का ग्रन्थ जिसकी रामचन्द्रिका ऋणी है, जयदेव कृत 'प्रसन्नराघव' नाटक है। रामचन्द्रिका के तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा सप्तम प्रकाश की सम्पूर्ण कथा का क्रम, मुख्य-मुख्य स्थल तथा सुन्दर उक्तियां सब 'प्रसन्नराघव' के आधार पर लिखी गई हैं।

तृतीय प्रकाश में स्वयंवर की प्रस्तावना है। जनक की सभा में दो वंदीजन थे जो राजाओं का वर्णन करते थे।

सभामध्य गुनग्राम, बंदी सुत द्वै सोमहीं।
सुमति विमति यहि नाम राजन को बनैन करहिं[२]।।

ये दोनों बंदीजन परस्पर प्रश्नोत्तर के क्रम से स्वयंवर में आए हुए राजाओं का

१- रामचन्द्रिका : १६वां प्रकाश, पृ०-३१६, छ०-२०

२- वही, तीसरा प्रकाश, पृ०- ३६, छ०- १७

वर्णन करते हैं तथा राजा जनक की प्रतिज्ञा की घोषणा करते हैं। यह सम्पूर्ण प्रसंग प्राय: इसी रूप में 'प्रसन्नराघव' के प्रथम अंक में आया है। भेद केवल इतना है कि वहां के नुपूरक तथा मंजीरक यहां सुमति- विमति हो गये हैं।

नटति नरकराग्रण्यग्रसूत्राग्रलग्न-
द्विपदशनशलाका मञ्चपाञ्चालिकेयम्
त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठितानां-
मतिरिव सवतीव क्ष्माभृतां चित्तवृत्ति:[1]

मंच पर स्थित राजाओं के स्पर्श से मंच में लगी हुई हाथीदांत की शलाकों के हिलने का वर्णन करते हुए कवि जयदेव का कथन है कि 'हाथीदांत से युक्त मंच- रूपी पांचालिका ठीक उसी प्रकार व्यग्रतापूर्वक नृत्य कर रही है, जिस प्रकार शिवधनु की प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए उत्सुक राजाओं की चित्तवृत्ति। इस श्लोक के आधार पर केशव ने लिखा है—

नचति मंच पंचालिका कर संकलित अपार
नाचति है जनु नृपन की चित्तवृत्ति सुकुमार[2]

'प्रसन्नराघव' का नुपूरक प्रश्न करता है—

वयस्य मञ्जीरक ! कोऽयं सीता कर ग्रह वासना वसन्त लक्ष्मी विलसत्पुलक मुकुल जाल मण्डित निज भुज सत्कारशाखियुगलं विलोकयंस्तिष्ठति[3]। अर्थात्— मित्र मंजीरक, सीता के पाणिग्रहण की वासना रूपी वसन्त श्री के कारण रोमांच के रूप में मुकुलित अपनी भुजारूपी दो सत्कार वृक्षों को यह कौन देख रहा है। इन पंक्तियों के आधार पर केशव का सुमति प्रश्न करता है—

१- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ४२, छ०- २८

२- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ०- ४७, छ०- १६

३- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ४२

को यह निरखत आपनी, पुलकित बाहु बिसाल ।

सुरभि स्वयंवर जनु करी, मुकलित साख रसाल[१]।।

`प्रसन्नराघव` का मंजीरक उत्तर देता है—

स एष निजयश: परिमल प्रमोदित चारण चंचरीक चयकोलाहल मुखरित दिक्चक्रलक्ष्मापाल कुन्तलालंकारी मल्लिकापीडो नाम[२]।

यह कुन्तल अलंकार पहने हुए मल्लिकापीड नामक राजा है जिसके यश रूपी परिमल से आमोदित चारण रूपी भंवरे दिशाओं को उसके यशगान द्वारा मुखरित करते फिरते हैं।

केशव के विमति का कथन है—

जेहि यश परिमल चंचरीक चारण फिरत ।

दिशि विदिशन अनुरक्त सु तौ मल्लिकापीड़ नृप[३]।।

`प्रसन्नराघव` के मंजीरक के शब्द हैं—

सोऽयं कुबेरदिगंगनाललाटतटविलासलम्पट: काश्मीर तिलक:[४]।

यह कुबेर की दिशा रूपी स्त्री के ललाटस्थल का लोभी काश्मीर का राजा है।

केशव का विमति कहता है—

राजराज दिगबाम भाल लाल लोभी सदा ।

अति प्रसिद्ध जग नाम काशमीर को तिलक यह[५]।।

१- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ० - ४८, छं० - १८

२- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ० - ४३

३- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ० - ४६, छं० - १६

४- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ० - ४४

५- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ० - ४६, छं० - २१

` प्रसन्नराघव ` के मंजीरक का कथन है—

स एष निजप्रतापप्रभापटल पिंजरितमलयाचलनितम्बतट: कांचीमंडनो वीरमाणिक्यनामनृपति:[1]।

यह कांची का अलंकार स्वरूप वीरमाणिक्य नामक राजा है जो अपने प्रताप के प्रभा मण्डल से मलयाचल अर्थात् दक्षिण दिशा—रूपी स्त्री के नितम्बों को प्रभापूर्ण करता है ।

केशव के विमति के शब्द हैं—

कोऽयं हर्षोल्लसत्पुलकविसंष्ठुलकपोल स्थल चलित कुंडल सदृश
निवेशनापदेशेन प्रकटित हरशरासन कर्णपूरमनोरथी राजते[2]।

हर्ष के कारण पुलकित कपोल- भाग पर हिलते हुए कुण्डलों के बहाने से शम्भु के शरासन को कानों तक खींचने की इच्छा रखने वाला यह कौन राजा है ।

आचार्य केशव का सुमति प्रश्न करता है—

कुंडल परसन मिस कहत, कहौ कौन यह राज ।
शंभु सरासन गुण करौं, करणालंबित आज[3]।।

` प्रसन्नराघव ` का मंजरिक बतलाता है—

` सोऽयम समरणामहार्णविकमकरो मत्स्यराज:[4] `

` यह सागर के ही समान रण स्थल के लिए मकर सदृश मत्स्यराज है ` ।

१- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ४४

२- वही, पृ०- ४४- ४५

३- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ०- ५०, छ०- २४

४- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ४५

केशव का विमति कहता है—

जानहि बुद्धि निधान, मत्स्यराज यहि राज को ।
समर समुद्र समान, जानत सब अवगाहि के[1] ।।

'प्रसन्नराघव' का मंजीरक घोषणा करता है—

आकर्णान्तं त्रिपुरमथनोद्दंड कोदंडदण्डं
मौर्वी गुर्वी वलय तिलक: कोऽपि य: कर्षतीह ।
तस्यायान्तो परिसरभुवं राजपुत्री पवित्री
कूजत्काञ्ची मुखर जघना श्रोत्रनेत्रोत्सवाय[2] ।।

जो राजा कर्ण पर्यन्त शिवधनु की प्रत्यंचा खींचेगा, मुखरित मेखला से आभूषित प्रांगण में आने वाली जानकी उस राजा के कानों तथा नेत्रों को सुख प्रदायिनी होगी ।

केशवदास का विमति भी प्राय: यही कहता है—

कोउ आज राज समाज में बल शम्भु को धनु कर्षि है ।
पुनि श्रीन के परिमान तानि सो चित्त में अति हर्षि है ।
वह राज होइ कि रंक केसवदास सो सुख पाइहै ।
नृपकन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहि नाइहै[3] ।।

'प्रसन्नराघव' का मंजीरक कहता है—

पश्य पश्य सुभटै: स्फुटभावं, भवितरेव गमिता न तु शक्ति: ।
अंजलिर्विरचितो न तु मुष्टिर्मौलिरेव नमितो न तु चाप:[4] ।।

१- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ०- ५१, छं०- २५
२- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ४६- ४७, छं०- २६
३- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ०- ५२, छं०- ३१
४- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ४८, छं०- ३१

देखो- देखो बड़े- बड़े वीरों ने भक्ति ही प्रदर्शित की शक्ति नहीं। उन्होंने अंजलि ही जोड़ी, मुष्टिका नहीं। उनका सिर ही झुका, धनुष नहीं।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशवदास का छन्द है—

शक्ति करी नहि भक्ति करी अब, सो न नयो तिल शीश नये सब।
देख्यो मैं राजकुमारन के बर, चाप चढ़्यो नहिं आप चढ़े खर[1]॥

'रामचन्द्रिका' के चौथे प्रकाश में रावण- बाणासुर संवाद है। यह अंश भी 'प्रसन्नराघव' के प्रथम अंक के आधार पर लिखा गया है। यहाँ समान अंश तुलना के लिए उपस्थित किए जाते हैं—

'प्रसन्नराघव' का बाण रावण से कहता है—

'यदीदृशं वीराडम्बरं तत्किमारोप्य हरकार्मुकं नानीयते सीता'[2]।
यदि वीरता का ऐसा आडम्बर है तो शिवधनु को चढ़ाकर सीता को क्यों नहीं ले जाते।

केशव के बाण का कथन है—

जपै जिय जोर, तजौ सब शोर।
सरासन तोरि, लहौ सुख कोरि[3]॥

'प्रसन्नराघव' के रावण के शब्द हैं—

'उद्दण्डभ्रमदण्डमुदण्डखंड
हेलाचला चलहराचलचारु कीर्ति,
को दृश्यशस्तुलित बाल्मृणालकांड,
को दंडकर्षण कथनयानया मे'[4]।

१- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ०- ५२, छ०- ३३
२- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७१
३- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५५, छ०- ८
४- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७१- ७२, छ०- ४८

सहज ही कैलाश पर्वत को उठा लेने वाली मेरी उद्दण्ड तथा प्रचण्ड भुजाओं की कीर्ति की बालमृणाल के समान कोमल धनु के कर्षण की इस कदर्थना से क्या तुलना।` यही भाव आचार्य केशव ने बाण द्वारा कथित निम्नलिखित छन्द में अपेक्षाकृत अधिक विस्तारपूर्वक प्रकट किया है—

वज्र को अखर्ब गर्ब गंज्यो जेहि पर्वतारि
जीत्यो है, सुपर्व सर्व भाजे लै लै अंगना ।
खंडित अखंड आशु कीन्हों है जलेश पाशु,
चंदन सी चंद्रिका सों कीन्हीं चन्द बंदना ।
दंडक में कीन्हों कालदंड हू को मानखंड,
मानो कीन्ही काल ही की कालखंड खंडना ।
केशव को दंड विषदंड ऐसो खंडे अब,
मेरे भुजदंडन की बड़ी है विडम्बना[१]।।

` प्रसन्नराघव ` का बाण रावण पर व्यंग्य करता हुआ कहता है—

बहुमुखता नाम बहुप्रलापितायाः कारणम्[२]।

अनेक मुख बहु-प्रलाप का कारण होता है ।

केशव का बाण भी इसी प्रकार कहता है—

` बहुत बदन जाके । विविध बचन ताके ` ।--[३]

प्रसन्नराघव के रावण का कथन है—

` आः कथं रे प्रलालभारनिःसारेण भुजभारेण वीरमन्योऽसि `[४]।

अर्थात् ` अरे, तू निस्सार भुजाओं के भार से अपने को वीर समझता है ` ।

१- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५६, छं०- ६
२- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७२
३- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५७, छं०- १०
४- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७२

केशव का रावण भी यही कहता है—

` अति असार भुज भार ही बली होहुगे बाण[1] `

` प्रसन्नराघव ` का बाण अपनी वीरता की प्रशंसा करता हुआ कहता है—

* पितु: पादाम्भोजप्रणतिरभसोत्तिवक्तहृदय:
प्रयात: पातालं न कतिकतिवारान्करवम्
सब्ये बाहूनां क्षितिवलयमासज्य सकलं
जगद्भारोद्वेला फण फलकमालाफणिपते:[2]।*

` पिता के चरण-कमलों की वन्दना करने की हृदगत इच्छावश पाताल जाते समय मैंने न जाने कितनी बार शेषनाग द्वारा फणों पर धारण की गई अखिल पृथ्वी को अपनी भुजाओं पर उठाया है ।

प्राय: यही भाव आचार्य केशवदास के निम्नलिखित छन्द का भी है—

हौं जब ही जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रणासी
देखि फिरौं तबहीं तब रावण सातौ रसातल के जे विलासी ।।
लै अपने भुजदण्ड अखंड करौं क्षितिमण्डल छत्र प्रभा सी ।
जानै को केशव केतिक बार मैं सेस के सीसन्ह दीन्ह उसासी[3]।।

`प्रसन्नराघव ` का बाण कहता है—

अलमलकिवाग्विग्रहेण । तदिदं धनुरावयोस्तारतम्यं निरूपयिष्यति[4]।

` व्यर्थ के वाग्विग्रह से कोई लाभ नहीं । यह धनुष हम दोनों के तारतम्य का निरूपण कर देगा ।`

१- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५७, छ०- ११
२- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७३, छ०- ४६
३- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ५७, छ०- १२
४- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७५

आचार्य केशव का बाण कहता है—

` हमहि तुमहि नहिं बूझिये विक्रम वाद अखंड ।
अब ही यह कहि देहगो मदन कदन कोदंड[1] ।।

प्रसन्नराघव के बाण का कथन है—

त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कंठिता धीर्मम न जनकपुत्री पाणिपद्मग्रहणाया अपि तु बहुलबाहुव्यूहनिर्व्यूढमाला, बलपरिमल हेला तांडवाडम्बराय[2]।।

` शिवधनु को चढ़ाने की उत्कण्ठा से पूर्ण मेरी मति जानकी के हस्त कमल को प्राप्त करने के लिए नहीं है, वरन् पिनाक को परिमल के समान सहज ही उठाकर शिव के समान तांडव नृत्य कर अपनी अनेक भुजाओं के बल- प्रदर्शन के लिए मैं व्यग्र हो रहा हूं । ` इस श्लोक के भाव को लेकर केशव का निम्नलिखित छन्द लिखा गया है—

केशव और ते और भई गति जानि न जाय कछू करतारी ।
सूरत के मिलिबे कहं आय मिल्यो दशकंठ सदा अविचारी ।
बाढ़ि गयो बकबाद वृथा यह भूल न भाट सुनावहि गारी ।
चाप चढ़ाइहौं कीरतिको यह राज करै तेरी राजकुमारी[3]।।

`प्रसन्नराघव ` का मंजीरक कहता है—

` बाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमान
मैदं धनुश्चलति किंचिदपीन्दुमौलेः।
कामातुरस्य वचसामिव संविधानै,
रभ्यर्थित प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्[4] ।।

१- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ६०, छ०- १६
२- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ७५, छ०- ५१
३- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ६४, छ०- १९

' बाण की भुजाओं से पीड़ित शिव जी का यह धनुष किंचित मात्र भी नहीं हिलता, जिस प्रकार से कामातुर के अभ्यर्थनापूर्ण वचनों से सती का स्वभाव से पवित्र हृदय नहीं डिगता है ' । इस श्लोक के भाव का किंचित् भेद से केशवदास ने निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयोग किया है—

' कोटि उपाय किये कहि केशव केहूँ न छाड़त भूमि रती को ।
भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यों न चलै चित योग यती को '[1]।

प्रसन्नराघव के रावण का कथन है—

अनाहृत्य हठात्सीता नान्यतो गन्तुमुत्सहे
न श्रृणोमि यदि क्रूरमाक्रन्दमनुजीविन:[2]।।

बिना सीता को हठपूर्वक लिए मैं किसी ओर से उस समय तक न जाऊंगा जब तक कि अपने किसी अनुगामी जन का क्रूर चिल्लाने का शब्द न सुनूंगा ।
यही भाव केशवदास के निम्नलिखित छन्द का भी है—

अब सीय लिये बिन हौं न टरौं । कहुं जाहुं न तो लगि नेम धरौं ।
जब लौं न सुनौं अपने जन को । अति आरत शब्द हते तन को[3] ।।

' रामचन्द्रिका ' के पांचवें प्रकाश में केशवदास ने लिखा है कि जब उपस्थित राजागण धनुष न चढ़ा सके तो सबको चिन्ता हुई कि अब सीता का विवाह किससे होगा । इसी अवसर पर एक ऋषिपत्नी एक चित्र बना लाईं, जिसमें सीता के साथ राम की मूर्ति अंकित थी । यह कल्पना ' प्रसन्नराघव ' ग्रन्थ के ही आधार पर दी गई है । अन्तर केवल इतना ही है कि उक्त नाटक में यह चित्र काल त्रयदर्शिनी सिद्धयोगिनी मैत्रेयी देवी ने लिखा है । 'रामचन्द्रिका '

१- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, पृ०- ४३ छ०- २६
२- प्रसन्नराघव : प्रथम अंक, पृ०- ८४, छ०- ६०
३- रामचन्द्रिका : चौथा प्रकाश, छ०- २९

के पांचवें प्रकाश के ही अन्तर्गत जनक, विश्वामित्र आदि के कथोपकथन पर ' प्रसन्नराघव ' के तीसरे अंक का प्रभाव दिखलाई देता है। समभाव रखने वाले स्थल यहां उद्धृत किए जाते हैं।

' प्रसन्नराघव ' के जनक की प्रशंसा में विश्वामित्र जी का कथन है—

> अंगैरंगीकृता यत्र षड्भिः सप्तभिरष्टभिः।
> त्रयी च राज्यलक्ष्मीश्च योगविद्या च दीव्यति[1]।।

' जनक ने वेद, वेद के षडांगों, राज्य के सात अंगों तथा योग के अष्ट अंगों को वश में कर लिया है। इस प्रकार वेदत्रयी, राज्यश्री और योगविद्या इनमें सुशोभित हैं।

केशव के विश्वामित्र के शब्द हैं—

> अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
> वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योगमई है[2]।।

' प्रसन्नराघव ' के जनक विश्वामित्र के सम्बन्ध में कहते हैं—

> ' यः कांचनमिवात्मानं निक्षिप्याग्नौ तपोमये।
> वर्णोत्कर्षं गतः सोऽयं विश्वामित्रो मुनीश्वरः[3] '।

जिन्होंने स्वर्ण के समान अपने शरीर को तप की अग्नि में तपाकर उच्चवर्ण को प्राप्त किया है, वह यह विश्वामित्र मुनि हैं।'

केशवदास का निम्नलिखित छन्द इस श्लोक का शब्दानुवाद है—

> जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।
> कीन्हों उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये[4]।।

१- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- १४५-१४६, छ०- ७
२- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ७६, छ०- १६
३- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- १४६, छ०- ८
४- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ७७, छ०- २०

'प्रसन्नराघव' के राम का कथन है—

> छत्रच्छाया तिरयति न यद्यन्न च स्प्रष्टुमीष्टे ।
> दृप्यद्गन्धद्विपमदमषी पंकनामा कलंक: ।।
> लीलालोल: शमयति न यच्चामराणां समीर: ।
> स्फीतं ज्योति: किमपि तदमी भूभुज: शीलयन्ति[1] ।।

इन निमिवंशी राजाओं की कीर्तिज्योति ऐसी है जिसको छत्र की छाया तिरोहित नहीं कर सकती, जिसका स्पर्श नहीं किया जा सकता, जिसे हाथियों के गंडस्थल से स्रवित मद का पंक पंकिल नहीं कर सकता तथा जिसे चमरों की वायु शमित नहीं कर सकती' ।

इस श्लोक के भाव के आधार पर आचार्य केशवदास के राम का कथन है—

> सब छत्रिन आदि दै काहू छुई न छुए विजनादिक बात डगै ।
> न घटै न बढ़ै निशि वासर केशव लोकन को तम तेज भगै ।।
> भव भूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै ।
> जल हू थल हू परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत जोति जगै[2] ।।

'प्रसन्नराघव' के जनक अपनी नम्रता दिखलाते हुए कहते हैं—

'भगवन् इदमस्मत्पूर्वेषु शोभते न तु मयि कतिपयग्रामटिका स्वामिनि'[3] ।

भगवन् ! यह कीर्ति हमारे पूर्वजों को ही शोभित थी, कतिपय छोटे-छोटे गांवों के स्वामी मुझे नहीं ।

केशव के जनक भी प्राय: यही कहते हैं—

१- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- १५१, छ०- १२
२- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ७७, छ०- २२
३- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- १५२

यह कीरति और नरेशन सोहै, सुनि देव अदेवन को मन मोहै ।
हम को बपुरा सुनिये ऋषिराई, सब गांउ छ सातक की ठकुराई[1]।।

'प्रसन्नराघव' के विश्वामित्र का कथन है—

अवनिमवनिपाला: संघश: पालयन्ता
भवनिपतियशस्तु त्वां बिना नापरस्य
जनक कनक गौरीं यत्प्रसूतां तनूजां,
जगति दुहितृमन्तं ममैवन्तं वितेने[2] ।।

हे जनक पृथ्वी का पालन अनेक राजा करते है किन्तु उनमें वास्तव में पृथ्वी का पालन करने का यश आपके अतिरिक्त दूसरे का नाम नहीं है, क्योंकि आपने ही संसार में पृथ्वी को दुहितावान किया है ।

प्राय: यही बात केशव के विश्वामित्र भी अधिक स्पष्ट रूप से कहते हैं—

आपने आपने ठौरनि तो भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई ।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुवपालि न जाई ।
भूपन का तुम ही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई ।
केशव भूषण की भवि भूषण भू तन से तनया उपजाई[3]।।

'प्रसन्नराघव' के जनक विश्वामित्र जी की प्रशंसा तथा अपनी नम्रता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं—

भगवन् नूतनशत भुवननिर्माणनिपुणस्य भगवत: कियतीमभिनववचनचातुरी नाम[4]।

१- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ७८, छं०- २३
२-प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- ४१, छं०- १३
३- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ७६, छं०- २४
४- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- १५३

भगवन, शत नूतन लोकों का निर्माण करने में निपुण आपकी वचनविदग्धता भी नवीन है।

इन शब्दों के आधार पर केशव के जनक कहते हैं—

इहि विधि की चित चातुरी तिनकी कहा अकत्थ।
लोकन की रचना रुचिर रचिबे को समरत्थ[1] ॥

'प्रसन्नराघव' के राम का विश्वामित्र के सम्बन्ध में कथन है—

रोषाभिभूत पुरुहूतपदाभिभूतं
दृष्ट्वा त्रिशंकुमयकोपविपाटलश्री:।
आकुड्मलो कृतकराम्बुराजिरम्या,
संध्येव दृष्टिरमरैर्यदुपासितास्य[2]॥

इन्द्र के स्थान स्वर्ग से त्रिशंकु को स्खलित देखकर कोप के कारण रक्त कमल के समान शोभा धारण करने वाली विश्वामित्र की दृष्टि की देवताओं ने हस्तरूपी कमलों की अंजलि बनाकर सन्ध्या के समान उपासना की थी।

इस श्लोक के आधार पर केशव का छन्द है—

केशव विश्वामित्र के रोषमयी दृग जानि।
संध्या सी तिहुं लोक के किहिन उपासी आनि[3]॥

'प्रसन्नराघव' के विश्वामित्र का जनक के प्रति कथन है—

जज्ञिपान्दशरथ: स हि राजा राममिन्दुमिव सुन्दरगात्रम्।
लोकलोचनविगाहनशीलां त्वं पुन: कुमुदिनीमिव सीताम्[4]॥

१- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ७६, छ०- २५
२- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- १५५, छ०- १६
३- रामचन्द्रिका : पांचवा प्रकाश, पृ०- ८०, छ०- २७
४- प्रसन्नराघव ? तृतीय अंक, पृ०- १६८, छ०- २६

राजा दशरथ ने चन्द्रमा के समान सुन्दर शरीर वाले राम को जन्म दिया है तथा आपने संसार के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाली कुमुदिनी के समान सीता को ।

इस श्लोक के भाव के आधार पर केशवदास ने निम्नलिखित छन्द लिखा है—

राजराज दशरत्थ तनै जू । रामचन्द्र भुवचन्द्र बने जू ।
त्यों विदेह तुम हूं अरु सीता । ज्यों चकोर तनया शुभ गीता[1] ।।

' प्रसन्नराघव ' के विश्वामित्र शिवधनु देखने की उत्सुकता प्रकट करते हुए राजा जनक से कहते हैं—

तेन तदानयनायादिश्यन्तां पुरुषाः अथवा किमन्यैः रामभद्र एवादिश्यताम्[2]।

उसे लाने के लिए लोगों को आदेश दीजिए । अथवा दूसरे लोगों की क्या आवश्यकता है, रामभद्र को ही आज्ञा दीजिए ।'

इन शब्दों के आधार पर केशव का कथन है—

अब लोग कहा करिबे अपार । ऋषिराज कही यह बार-बार ।
इन राजकुमारहि देहु जान । सब जानत हैं बल के निधान[3] ।।

' प्रसन्नराघव ' के विश्वामित्र का राम के प्रति कथन है—

' मारीचमारीचतुरं सुबाहोरपवारणम् न्यस्तां लक्ष्मणकरे ताटकाताडनं धनुः[4]।

१- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ८२, छ०- ३३
२- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- १६६
३- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ८३, छ०- ३५
४- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- ४६, छ०- ३२

मारीच को मारने वाले, सुबाहु का अपसारण करने वाले तथा ताड़का का हनन करने वाले धनुष को लक्ष्मण के हाथ में दे दो ।

इसी प्रकार केशव के विश्वामित्र भी कहते हैं—

> राम हत्यो मारीच जिहि अरु ताड़का सुबाहु ।
> लक्ष्मण को यह धनुष दे तुम पिनाक को जाहु[1]।।`

` प्रसन्नराघव ` के जनक का स्वगत कथन है—

> ` यस्य ख्याता जगति सकले विस्तमिस्रा तप: श्री
> मिथ्योत्कंठ: कथमिह भविता गाधिसूनुः ।
> बालो राम: किमपि गहनं कार्मुकं चन्द्रमौलेः ।
> दोलारोहं कलयति मुहुस्तेन मे चित्तवृत्ति:[2] ।।

जिनकी कालिमारहित तपश्री समस्त संसार में विख्यात है, उन विश्वामित्र की उत्कण्ठा मिथ्या कैसे हो सकती है। फिर भी राम बालक हैं तथा शिवधनु गहन है अतएव मेरी चित्तवृत्ति दोला के समान चंचल हो रही है।

इस श्लोक के भाव को केशवदास जी ने संक्षेप में निम्नलिखित छन्द में बड़ी सफलता तथा सुन्दरता से प्रकट किया है—

> ऋषिहि देख हरषै हियो, राम देखि कुम्हिलाय ।
> धनुष देख डरपै महा, चिन्ता चित्त डोलाय[3] ।।

` प्रसन्नराघव ` के अन्तर्गत धनुष टूटने पर जनक का शतानन्द के प्रति कथन है—

कथं पुनरेतावतीमति भूमिमवगाहमानोऽपि वत्सो रामभद्रो भवता न निवारिता[4]।`

१- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ० - ८४, छ० - ३९

२- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ० - १७४, छ० - ३५

३- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ० - ८६, छ० - ४०

४- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ० - १८८

पृथ्वीमण्डल को इस इस प्रकार के महान् शब्द से आपूरित करने पर भी आपने राम का निवारण क्यों न किया ।

इन शब्दों के आधार पर केशवदास के जनक का कथन है—

> शतानन्द आनन्द मति तुम जु हुते उन साथ ।
> बरज्यो काहे न धनुष जब तोर्यो श्री रघुनाथ[1] ।।

' रामचन्द्रिका ' के सातवें प्रकाश के कुछ अंशों पर भी ' प्रसन्नराघव ' नाटक का प्रभाव दिखलाई देता है । नाटक में परशुराम के यह पूछने पर कि धनुष किसने तोड़ा है, तांडायन ऋषि का कथन है—

> सुबाहु मारीचपुर: सर अमी
> निशाचरा: कौशिकयज्ञघातिन:
> वशे स्थिता यस्य[2]

' विश्वामित्र ' के यज्ञ को विध्वंश करने वाले सुबाहु मारीच आदि निशाचर जिसके वश में हैं ।

तांडायन ने यह शब्द राम के सम्बन्ध में कहे थे किन्तु परशुराम ने रावण से तात्पर्य समझा । केशव ने भी परशुराम के भ्रम का वर्णन किया है, किन्तु किंचित्भेद से ।

' रामचन्द्रिका ' के सातवें प्रकाश में वामदेव का कथन है—

> महादेव को धनुष यह, परशुराम ऋषिराज ।
> तोर्यो ' रा ' यह कहत ही, समुझ्यो रावण राज[3] ।।

इस कल्पना के अतिरिक्त कुछ अन्य स्थलों पर भी ' प्रसन्नराघव ' से भाव-साम्य

१- रामचन्द्रिका : पांचवां प्रकाश, पृ०- ८८, छ०- ४४

२- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- १९८

३- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १२२, छ०- ४

दिखलाई देता है। इस प्रकार के स्थल यहां उपस्थित किये जाते हैं।

'प्रसन्नराघव' के जामदग्न्य का कथन है—

नृपशत सुकुमार, कंठनाली कदनकला कुशल: परश्वधे मे।
दशनवदन कठोर कंठपीठी कदन विनोद विदग्धतां विधातु[1]।।

(सैकड़ों राजाओं के कोमल कंठों को काटने की कला में कुशल मेरे परसे, तू दशानन के कठोर कंठों को काटने का विनोदपूर्ण चातुर्य दिखला)।

केशवदास के परशुराम भी यही कहते हैं—

अति कोमल नृपसुतन की, ग्रीवा दली अपार।
अब कठोर दशकंठ के, काटहु कंठ कुठार[2] ।।

'प्रसन्नराघव' के जामदग्न्य द्वारा कथित श्लोक का अंश है—

कुठारस्य मे का श्लाघा दशकंठ कदलीकांडावली खंडने[3]।

'दशकंठ के कदली के समान कंठों को काटने में मेरे कुठार को क्या कीर्ति लाभ होगा।'

इस अंश का भावानुवाद केशवदास की निम्नलिखित पंक्ति है—

तोहि कुठार बड़ाई कहा कहि ता दसकंठ के कंठहि काटे[4]।

'प्रसन्नराघव' के जामदग्न्य के शब्द हैं—

अयंमुग्ध: खल्वयं जनो यदेनं काम इति वक्तव्ये राम इति जल्पति[5]।

१- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०-१६६, छं०- ६

२- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १२२, छं०- ५

३- प्रसन्नराघव : तृतीय अंक, पृ०- २००, छं०- १०

४- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०-१२२, छं०- ६

५- प्रसन्नराघव : चतुर्थ अंक, पृ०- २०५

निश्चय ही यह पुरुष अर्ध-मुग्ध है जो इन्हें कामदेव कहने के स्थान पर ` राम ` कहता है।

इन शब्दों के आधार पर केशव का प्रकारान्तर से कथन है—

बालक विलोकियत पूरण पुरुष गुन
मेरो मन मोहियत ऐसो रूपधाम है।
बैर जिय मानि बामदेव को धनुष तोरो,
जानत हौं बीस बिसे राम भेस काम है[1] ।।

` प्रसन्नराघव ` के लक्ष्मण- परशुराम के रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मौर्वी धनुस्तनुरियं च बिभर्ति मौञ्जी
बाणा कुशाश्च विलसन्ति करे सितायाः।
धारोज्ज्वलः परशुरेषकमंडलुश्च,
तद्वीर शान्त रसयोः किमयं विकारः[2]।

परशुराम, तर्कश, धनु तथा मेखला शरीर पर धारण किये हैं। एवं बाण तथा कुश इनके हाथों में शोभित हैं। तीक्ष्ण धार वाला कुठार तथा कमण्डल लिए हुए यह वीर पुरुष वीर तथा शान्त रस का विकार सा प्रतीत हो रहा है।

इस श्लोक के आधार पर केशव के भरत का कथन है—

कुशमुद्रिका समिधैं श्रुवा कुश औ कमंडल को लिये।
कटिमूल श्रोननि तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिये ।
धनुबान तिक्ष कुठार केशव मेखला मृग चर्म स्यों।
रघुबीर को यह देखिये रस वीर सात्विक धर्म स्यों[3]।।

१- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १२६, छ०- १४
२- प्रसन्नराघव : चतुर्थ अंक, पृ०- २०६, श्लो०- १५
३- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १२७, छ०- १५

' प्रसन्नराघव ' के राम परशुराम से पूछते हैं—

' मनोवृत्तिस्तु कीदृशी '[1]

आपकी मनोवृत्ति कैसी है।

आचार्य केशव के राम भी यही प्रश्न करते हैं—

भृगुवंश के अवतंस।
मनवृत्ति है केहि अंस[2]।।

' प्रसन्नराघव ' के भार्गव का राम के प्रति कथन है—

चंडीशकार्मुकविमर्द विवर्धमान
दर्पावलेपस विशेषविकाशभाजी :
बाह्वोस्तवाह्मघुना मधुना समानै
राराघयामि रुधिरै: कठिनं कुठारम्[3]।।

शिव जी के धनुष को तोड़ने के कारण बढ़े हुए दर्प रूपी अवलेप विशेष से विकसित तुम्हारी भुजाओं के मधु के समान रुधिर से आज मैं अपने कठोर कुठार का आराधन करूंगा।

इस श्लोक की छाया केशव के परशुराम तथा राम के प्रश्नोत्तर से समन्वित निम्नलिखित छन्द पर दिखलाई देती है—

तोरि सरासन संकर को सुभ सीय स्वयम्बर मांझ बरी।
ताते बढ़्यो अभिमान महा मन मेरियो नेक न संक करी।
सो अपराध परो हमसों अब क्यों सुधरै तुमही तो कहौ।
बाहु दै दोउ कुठारहि केशव आपने धाम को पंथ गहौ[4]।।

१- प्रसन्नराघव : चतुर्थ अंक, पृ०- २११
२- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १२८, छ०- १८
३- प्रसन्नराघव : चतुर्थ अंक, पृ०-२११, छ०- १६
४- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १२८, छ०- १६

` प्रसन्नराघव ` के परशुराम का कथन है—

दारैर्मुक्तकुचांशुकैः परिवृतं प्राचीनमेषान्नृपं
नाहिंसीद्यदसौ कुठारहतकस्तस्यैतदुज्जृम्भितम् ।
यन्नारीकवचान्वयप्रणयिनां क्षत्राधमानामिमा
दुर्वाचः प्रविशन्ति मे श्रवणयोर्धिक्क्षात्रगोत्रे कृपाम्[1]।।

भय के कारण खुले उरोजों के वस्त्र को सम्हालने की सुधि से रहित स्त्रियों से घिरे हुए इनके पूर्वज राजाओं को जो इस नीच कुठार ने नहीं मारा, उसका यह फल है कि नारियों के शरीर-रूपी कवच के प्रेमी राजाओं के इस प्रकार के दुर्वचन मेरे कर्ण कुहरों में प्रविश कर रहे हैं। क्षत्रियों पर कृपा करने को धिक्कार है।

इस श्लोक के आधार पर केशव के परशुराम कहते हैं—

लक्ष्मण के पुरिषान् कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई ।
वेष बनाय कियो बनितान को देखन केशव ह्यो हरई ।।
क्रूर कुठार निहारि तज्यो फल, ताको यहै जु हियो जरई ।
आजु ते तोकहं बन्धु महाधिक क्षत्रिय पै जु दया करई[2] ।।

` प्रसन्नराघव ` के राम का परशुराम के प्रति कथन है—

प्रसीदत्वं रोषाद्विरम कुरु मे चेतसि गिरं
चिरं यैरायासैर्बहुभिरिह वारं जितमभूत ।
यशोवित्तं कितव इव विप्रोभितरलं
तदेतस्मिन्वारे भृगुतिलक मा हारय मुधा[3] ।।

१- प्रसन्नराघव : चतुर्थ अंक, पृ०- २१६, श्लो०- २६

२- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १३७, छं०- ३६

३- प्रसन्नराघव : चतुर्थ अंक, पृ०- २२६, श्लो०- ३५

हे भृगुकुल तिलक ! प्रसन्न होइये तथा रोष का निवारण कर मेरी बात पर ध्यान दीजिए । आपने बड़े परिश्रम से अनेक बार में जिस यशरूपी धन का संचय किया है, उसे जुआरी के समान विदग्ध होकर व्यर्थ के लिए इस समय न हारिये ।

इस श्लोक के भाव के आधार पर आचार्य केशव के राम का कथन है—

> भृगुकुल कमल दिनेश सुनि, जीति सकल संसार ।
> क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ यशभार[1]।।

'प्रसन्नराघव' के परशुराम का राम के प्रति कथन है—

> ईशत्यक्त पुराण चापदलनप्रोद्भूम तावद्दति
> वयग्रस्त्वं कतरः स मे तव गुरुः सोढुं न शक्तः शरान्
> तुष्टादिष्टवर प्रदादवगतः पद्मासनात्सादरं
> मन्नाराचभयादयाचत किल ब्राह्मीं तनुं कौशिकः[2]।।

शंकर जी द्वारा त्यक्त पुराने चाप को तोड़ने से उत्पन्न गर्व से तुम व्यर्थ ही व्यग्र हो रहे हो । तुम्हारे गुरु विश्वामित्र भी मेरे बाणों को सहन न कर सके । उन्होंने ब्रह्मा के प्रसन्न होकर वर मांगने का आदेश देने पर, मेरे बाणों के भय से आदरपूर्वक ब्राह्मण का शरीर मांगा ।

इस श्लोक के आधार पर केशव के परशुराम का कथन है—

> बाण हमारेन के तनत्राण विचारि विचारि विरंचि करे हैं ।
> गोकुल, ब्राह्मण नारि, नपुंसक, जे जगदीन स्वभाव भरे हैं ।
> राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं ।
> गाधि के नंद, तिहारो गुरु जिनते ऋषि वेश किये उबरे हैं[3]।।

1- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- ६१, छ०- ३८

2- प्रसन्नराघव : चतुर्थ अंक, पृ०- २३०, छ०- ३७

3- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- १४१, छ०- ४१

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि केशव ने रामचन्द्रिका के तीसरे, चौथे, पाँचवें तथा सातवें प्रकाश के लिखने में 'प्रसन्नराघव' नामक नाटक का आधार ही नहीं ग्रहण किया है, अपितु दो चार स्थलों को छोड़कर, लगभग अनुवाद सा कर दिया है। सुमति- विमति- संवाद, रावण- बाण- संवाद, विश्वामित्र- जनक संवाद आदि पूरा का पूरा 'प्रसन्नराघव' का अनुवाद है।

वाल्मीकीय रामायण का प्रभाव :

वाल्मीकि रामायण तथा 'रामचन्द्रिका' की तुलना करने से ज्ञात होता है कि दोनों ग्रन्थों के कथानक में बहुत अधिक अन्तर है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित अनेक प्रसंगों को आचार्य केशव ने छोड़ दिया है। 'बालकाण्ड' में नारद- संवाद, अश्वमेध यज्ञ, रामादि का जन्मोत्सव, विश्वामित्र का राम को अस्त्र- शस्त्र की शिक्षा देना तथा चारों भाइयों के विवाह का वर्णन आदि वाल्मीकि रामायण में वर्णित प्रसंगों का आचार्य केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में 'अयोध्याकाण्ड' के अन्तर्गत वर्णित मन्थरा- प्रसंग 'अरण्यकाण्ड' के अन्तर्गत वर्णित शरभंग का प्राण त्याग, पंचवटी - निवास करने के पूर्व जटायु का मिलन, 'किष्किंधाकाण्ड' के अन्तर्गत बालि- वध के पश्चात् तारा विलाप तथा बालि की अन्त्येष्टि क्रिया, 'सुन्दरकाण्ड' में रावण के जाने के पश्चात् सीता का करुण क्रन्दन 'युद्धकाण्ड' में सीता का विलाप तथा सरमा द्वारा आश्वासन प्रदान, अंगद द्वारा वज्रदंष्ट्र तथा नरांतक का वध, देवान्तक महोदर- महापार्श्व- वध, लक्ष्मण द्वारा अतिकाय का वध, पुन: अंगद द्वारा कम्पन प्रजंघ- शोणिताक्ष का वध आदि प्रसंगों का 'रामचन्द्रिका' ग्रन्थ में कोई उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित अधिकांश कथा केशव ने छोड़ दी है। वाल्मीकि द्वारा वर्णित अनेक उपाख्यानों, कथाओं तथा गाथाओं का वर्णन भी 'रामचन्द्रिका' में नहीं मिलता है।

तथापि कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिनके लिखने में केशव को वाल्मीकि रामायण से विशेष प्रेरणा मिली प्रतीत होती है। यथा-`बालकाण्ड` के अन्तर्गत अयोध्या का विस्तृत वर्णन तथा बारात लौटते समय मार्ग में परशुराम का मिलना, `सुन्दरकाण्ड` में हनुमान का सीता की खोज में रावण के अन्तःपुर में भ्रमण तथा `उत्तरकाण्ड` में शत्रुघ्न का लवणासुर के वध के लिए जाना आदि। इन प्रसंगों का वर्णन वाल्मीकि रामायण में है, तुलसी के रामचरितमानस में नहीं है।

`रामचन्द्रिका` के वाल्मीकि रामायण से मिलते हुए स्थल निम्नलिखित हैं-

वाल्मीकि रामायण में अयोध्या नगरी का परिचय निम्न दो श्लोकों में दिया गया है-

> कोशलो नाम मुदित: स्फीतो जनपदो महान्।
> निविष्ट: सरयूतीरे प्रभूत धनधान्यवान ॥
> अयोध्या नाम नगरी तत्रासीलोकविश्रुता।
> मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्[1]॥

सरयू नदी के किनारे धन धान्य से परिपूर्ण कोशल नाम का एक प्रसिद्ध समृद्धशाली देश है। उस देश में अयोध्या नाम की एक प्रसिद्ध नगरी है जिसे महाराज मनु ने बसाई थी।

इन श्लोकों का आधार ग्रहण करते हुए आचार्य केशवदास ने अयोध्या का परिचय निम्न छन्द में दिया है-

----

१- वाल्मीकीय रामायण : बालकाण्ड, सर्ग-

सरयू सरिता तट नगर बसै अवध नाम यश धाम घर ।

अघ ओघ विनाशी सब पुर बासी अमर लोक मानहु नगर[१] ।।

वाल्मीकि रामायण में ऋषि विश्वामित्र जब राम व लक्ष्मण को लेकर अयोध्या से चलते हैं तो रास्ते में सरयू नदी की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं । आचार्य केशवदास ने भी सरयू नदी का वर्णन किया है परन्तु उन्होंने सरयू की महिमा का वर्णन ऋषि विश्वामित्र के मुख से उस समय कराया है जब वे अपने शिष्यों के साथ राम और लक्ष्मण को लेने अयोध्या जाते हैं ।

वाल्मीकि रामायण में अयोध्या नगरी का वर्णन निम्न शब्दों में हुआ है—

सूतमागधसंबाधां श्री मतीमतुल प्रभाम् ।

उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम्[२] ।।

उस नगरी में ऊंचे महलों पर ध्वजाएं शोभित थीं, अनेक सूत- मागध निवास करते थे और असंख्य तोपें लगी हुई थीं ।

इन शब्दों का आधार ग्रहण कर आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द लिखा है—

ऊंचे अवास । बहु ध्वज प्रकास ।

सोभा विलास । सोभै प्रकास[३] ।।

वाल्मीकि रामायण में बाग का वर्णन निम्नवत है—

वधूनाटक संघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम् ।

उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं साल मेखलाम्[४] ।।

१- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ०- ६, छं०- २३

२- वाल्मीकीय रामायण : बालकाण्ड, सर्ग ५, श्लोक ११, पृ०- ६०

३- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ०- १५, छं०- ३७

४- बालकाण्ड : सर्ग ५, पृ०- ६०, श्लोक १२

उसके चारों ओर भारी प्राकार था, जगह-जगह पर आम के बगीचे शोभित थे और कहीं-कहीं स्त्रियों की नाट्यशालाएं थीं।

आचार्य केशवदास ने भी 'रामचन्द्रिका' में अयोध्या के बाग का वर्णन किया है परन्तु यह वर्णन वाल्मीकि रामायण के वर्णन से भिन्न है।

देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय।
राजति रति की सखी सुबेषनि। मनहुं बहति मनमथ संदेशनि।।

फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत। मोदत महामोद उपजावत।
उड़त पराग न चित्त उड़ावत। भ्रमर भ्रमत नहिं जीव भ्रमावत[1]।।

वाल्मीकीय रामायण में अयोध्या का विस्तृत वर्णन के क्रम में उसकी दुर्भेद्यता तथा उसके पशुधन का उल्लेख निम्न शब्दों में हुआ है—

दुर्ग गम्भीर परिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।
वाजि वारणसंपूर्णां गोभि रुष्ट्रैः खरैस्तथा[2]।।

आचार्य केशव ने अयोध्या के पशुओं का वर्णन निम्नवत् किया है—

महिष मेष मृग वृषभ कहुं, भिरत मल्ल गजराज।
लरत कहूं पायक सुभट, कहुं निर्तत नटराज[3]।।

वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ की अधीनता स्वीकार करने वाले राजाओं का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

सामन्तराजसंघैश्च बलि कर्मभिरावृताम्।
नाना देशनिवासैश्च वणिग्भिरूप शोभिताम्[4]।।

१- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ०- १२, छ०- ३०,३१
२- बालकाण्ड, सर्ग ५, पृ०- ६०, श्लोक १३
३- रामचन्द्रिका : दूसरा प्रकाश, पृ०- २४, छ०- ३
४- बालकाण्ड : सर्ग ५, पृ०- ६०, श्लोक १४

वहाँ महाराज दशरथ को कर देने वाले अनेक सामन्त राजा निवास करते और अनेक देश के व्यापारी व्यापार करते थे।

रामायण के इस श्लोक से प्रेरणा लेकर आचार्य केशवदास जी ने निम्न छन्द लिखा है—

दीह दीह दिग्गजन के केशव मनहुं कुमार।
दीन्हे राजा दशरथहिं दिगपालन उपहार[1]।।

वाल्मीकि रामायण में अयोध्या के वीरों का वर्णन निम्नवत् मिलता है—

ये च बाणैर्न विध्यन्ति विविक्तमपरापरम्।
शब्दवेध्यं च विततं लघु हस्ता विशारदाः।।
सिंह व्याघ्रवराहाणां मत्तानां नदतां वने।
हन्तारो निशितैः शस्त्रैर्बलाद्बाहुबलैरपि।।
तादृशानां सहस्रैस्तामभिपूर्णां महारथैः।
पुरीमावासयामास राजा दशरथस्तदा[2]।।

महाराजा दशरथ ने उस नगरी में हजारों महारथी वीर बसाए थे, जो शब्दवेधी बाण चलाते और असहाय तथा भागते हुए मनुष्यों को कभी नहीं मारते थे। वे अस्त्र विद्या में निपुण और ऐसे फुर्तीले थे कि गरजते हुए सिंह, बाघ और वराह आदि जंगली पशुओं को तीक्ष्ण शस्त्रों और अपने बाहुबल से मार डालते थे।

आचार्य केशवदास ने अपने निम्न छन्द में अयोध्या के वीरों के अतिरिक्त अन्य गुणवान व्यक्तियों का भी वर्णन अपनी प्रतिभा के अनुसार ही किया है—

१- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ०- ११, छं०- २६

२- बालकाण्ड : सर्ग ५, पृ०- ६२, श्लोक २०- २२

जीति जीति कीरति लई, शत्रुन को बहु भांति ।
पुर पर बांधी शोभिजै, मानौ तिनको पांति[1]।।

कविकुल विद्याधर, सकल कलाधर, राजराज पर बेश बने ।
गणपति सुखदायक, पशुपति लायक, सूर सहायक कौन गने ।
सेनापति बुधजन, मंगलगुरुगण, धर्मराज मनबुद्धि घनी ।
बहु शुभ मनसाकर, करुणामय अरु, सुरतरंगिनी शोभसनी[2]।।

वाल्मीकि रामायण में विद्वान् व्यक्तियों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां द्विजोत्तमैर्वेदषडङ्गपारगैः ।
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षिकल्पैरृषिभिश्च केवलैः[3] ।।

उस नगरी में अग्निहोत्र करने वाले, गुणवान वेद वेदांग के पारंगत, महर्षियों के तुल्य महात्मा सत्यवादी हजारों ब्राह्मण और ऋषि निवास करते थे ।

उपर्युक्त श्लोक से प्रभावित हो आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द लिखा है—

पंडित गण मंडित गुण दंडित मति देखिये ।
क्षत्रियवर धर्म प्रवर क्रुद्ध समर लेखिये ।
वैश्य सहित सत्य रहित पाप प्रगट मानिये ।
शूद्र सकति विप्र भगति जीव जगत जानिये[4]।।

इसके अतिरिक्त आचार्य केशवदास ने अयोध्या के लोगों की विद्वत्ता का परिचय देते हुए एक अन्य छन्द भी लिखा है जो वाल्मीकि रामायण से कहीं अच्छा बन

१- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ० - १७, छ० - ४०
२- वही, पृ० - १८, छ० - ४२
३- बालकाण्ड : सर्ग ५, पृ० - ६२, श्लोक २३
४- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ० - १६, छ० - ४३

पड़ा है तथा केशव की प्रतिभा का द्योतक है—

> पण्डित अति सिगरी पुरी मानहु गिरागति गूढ़ ।
> सिंह चढ़ी जनु चण्डिका मोहति मूढ़ अमूढ़ ।
> मोहति मूढ़ अमूढ़ देवसंग ऽदिति ज्यौं सोहै ।
> सब श्रृंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै ।
> सबै सिंगार सदेह सकल सुखसुखमा मंडित ।
> मनो शची विधि रची विविध विधि वर्णत पंडित[1]।।

वाल्मीकि रामायण में दुष्ट एवं मूर्ख व्यक्तियों का अभाव निम्न श्लोक के द्वारा व्यक्त किया गया है—

> कामी वा न कदर्यो वा नृशंस: पुरुष: क्वचित् ।
> द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिक:[2]।।

कामी, लोभी, नृशंस, मूर्ख और नास्तिक मनुष्य तो अयोध्या में देखने को भी नहीं मिलता था ।

उपर्युक्त पंक्तियों का आधार ग्रहण कर आचार्य केशव ने भी अयोध्या नगरी को दुर्जन एवं नास्तिक लोगों से हीन बताया है जो रामायण की अपेक्षा अधिक सुन्दर है ।

> मूलन ही की जहां अधोगति केशव गाइय ।
> होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय ।
> दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में ।
> श्री फल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में[3] ।।

१- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ०- २१, छं०- ४७

२- वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड, सर्ग ६, पृ०- ६४, श्लोक ८

३- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ०- २१, छं०- ४८

वाल्मीकि रामायण में सर्वगुण सम्पन्न स्त्रियों का भी वर्णन किया गया है—

दीर्घायुषो नरा सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः ।
सहिताः पुत्र पौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे[1]।।

इससे आधार ग्रहण कर आचार्य केशव ने निम्न छन्द लिखा है—

अति चंचल जहं चलदलै, विधवा बनी न नारि ।
मन मोह्यो ऋषिराज को, अद्‌भुत नगर निहारि[2]।।

वाल्मीकि रामायण में परशुराम के दिखाई पड़ने से पूर्व ही वातावरण की भयंकरता को दिखाया गया है परशुराम बाद में आते हुए दिखाई देते हैं। इसके पहले जोर से आंधी चलने लगती है, बहुत से वृक्ष टूटकर गिर पड़ते हैं, पृथ्वी कांपने लगता है। धूल से चारों ओर अन्धकार हो जाता है और कुछ विशिष्ट लोगों को छोड़कर सभी लोग बेहोश हो जाते हैं। रामचन्द्रिका के परशुराम कुपित होते हैं परन्तु वाल्मीकि रामायण के परशुराम कुपित नहीं होते हैं।

ददर्श भीम संकाशं जटामण्डलधारिणम् ।
भार्गव जामदग्न्येयं राजा राज विमर्दनम्[3]।।

रामचन्द्रिका के परशुराम रास्ते में मिलते हैं—

विश्वामित्र विदा भये, जनक फिरे पहुंचाय ।
मिले आगिली फौज को, परशुराम अकुलाय[4]।।

रामचन्द्रिका के तेरहवें प्रकाश में हनुमान जी द्वारा लंका में प्रवेश, भ्रमण तथा लंकादहन आदि कथाओं का वर्णन मिलता है। वाल्मीकि रामायण के

१- बालकाण्ड : सर्ग ६, श्लोक १८, पृ०- ६६
२- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ०- २२, छ०- ४६
३- बालकाण्ड : सर्ग ७४, पृ०- ३८८, श्लोक-
४- रामचन्द्रिका : सातवां प्रकाश, पृ०- ६८, छ०- १

सुन्दरकाण्ड में हनुमान जी के द्वारा रावण के अन्त:पुर के भ्रमण का विस्तृत वर्णन है। आचार्य केशव ने भी इसका वर्णन किया है। दोनों वर्णनों में साम्य होने के साथ-साथ मुख्य रूप से जो वैषम्य दिखाई देता है वह यह कि वाल्मीकि रामायण में अन्त:पुर की स्त्रियों को अधिकतर सुप्तावस्था में वर्णित किया गया है। इसके विपरीत रामचन्द्रिका में रावण को छोड़कर उसके अन्त:पुर की सभी स्त्रियों को जाग्रतावस्था में वर्णन किया गया है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार हनुमान जी द्वारा देखा गया अन्त:पुर का दृश्य—

ननन्द दृष्ट्वा स च तान्सुरूपान्नानागुणानात्मगुणानुरूपान् ।
विद्योतमानान्स च तान्सुरूपान्ददर्श कांश्चिच्च पुनर्विरूपान्[1]।।

आचार्य केशव ने रावण के अन्त:पुर का वर्णन निम्न छन्द में किया है—

तब हरि रावन सोवत देख्यौ । मनिमय पलिका की छबि लेख्यौ ।।
तहं तरुणी बहु भांतिन गावैं । बिच बिच आवज बीण बजावैं[2]।।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार—

अन्या कनकसंकाशैर्मृदुपीनैर्मनोरमैः ।
मृदङ्गं परिपीड्याङ्गैः प्रसुप्ता मत्त लोचना[3]।।

उपर्युक्त पंक्तियों से प्रभावित होकर आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द लिखा है—

कहूं किन्नरी किन्नरी लै बजावै । सुरी आसुरी बांसुरी गीत गावैं ।
कहूं यक्षिणी पक्षिणी लै पढ़ावै, नगीकन्यका पन्नगी को नचावैं[4]।।

१- सुन्दरकाण्ड : सर्ग ४, पृ०- ९३, श्लोक १३
२- रामचन्द्रिका : तेरहवां प्रकाश, पृ०- २१४, छ०- ४८
३- सुन्दरकाण्ड : सर्ग ८, श्लोक ३९, पृ०- १००
४- रामचन्द्रिका : तेरहवां प्रकाश, पृ०- २१४, छ०- ५०

वाल्मीकि रामायण के अनुसार शत्रुघ्न राम से आज्ञा लेकर लवणासुर को मारने के लिए प्रस्थान करते हैं—

रामेण चाभ्यनुज्ञातः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ।
प्रदक्षिणां कृत्वा निर्जगाम महाबलः[1] ।।

इस प्रकार का वर्णन आचार्य केशव ने भी किया है—

विदा ह्वै चले राम पै शत्रुहंता । चले साथ हाथी रथी युद्ध रंता[2] ।।

रामायण के लवणासुर का कथन है—

ईदृशानी सहस्राणि सायुधानां नराधम ।
भक्षितानि मया रोषात्काले नानुगतो ह्यसि ।।
आहारश्चाप्य संपूर्णो ममायं पुरुषाधम ।
स्वयं प्रविष्टोऽद्य मुखं कथमासाद्य दुर्मते[3] ।।

हे नराधम, ऐसे धनुष लिए हुए हजारों मनुष्यों को हमने खा लिया है। जान पड़ता है, तुम्हारी मौत तुमको यहां लाई है। हे पुरुषाधम, यह जो आहार हम लाए हैं, सो हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। तुम अपने आप हमारे मुंह में आकर अब कैसे लौटने पाओगे ?

इन बातों का वर्णन आचार्य केशवदास जी ने निम्न छन्द में किया है—

धनु बाण लिये निकसे रघुनन्दनु । मद के गज को सुत के हरि को जनु ।।

लवणासुर—

सुन्यो तैं नहीं जो इहां भूलि आयो ।
बड़ो भाग मेरो बड़ो भक्ष पायो[4] ।।

१- उत्तरकाण्ड : सर्ग ६४, पृ०- २६६२, श्लोक १७
२- रामचन्द्रिका : चौंतीसवां प्रकाश, पृ०- ३२३, छं०- ५२
३- उत्तरकाण्ड : सर्ग ६८, पृ०- २६७१, श्लोक ६
४- रामचन्द्रिका : ३४वां प्रकाश, पृ०- ३२४, छं०- ५३- ५४

रामायण के शत्रुघ्न का कथन है—

उवाच च सुसंक्रुद्धः शत्रुघ्नः स निशाचरम् ।
योद्धुमिच्छामि दुर्बुद्धे द्वन्द्वयुद्धं त्वया सह[1] ।।

फिर वे बड़े क्रोध से बोले रे मूर्ख, हम युद्ध करने के लिए आए हैं, हमारे साथ द्वन्द्व युद्ध कर ।

इसी प्रकार का कथन रामचन्द्रिका के शत्रुघ्न का भी है—

महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसों ।
तजि देश को कै सजों युद्ध मोसों[2] ।।

रामायण के लवणासुर का कथन है—

मम मातृष्वसुर्भ्राता रावणो नाम राक्षसः ।
हतो रामेण दुर्बुद्धे स्त्री हेतोः पुरुषाधम[3] ।।

रावण हमारा मामा था जिसे स्त्री के कारण राम ने मार दिया ।
रामचन्द्रिका का लवणासुर भी रावण को अपना सम्बन्धी बताते हुए कहता है—

वहै रामराजा दशग्रीव हंता । सो तो बन्धुमेरे सुग्रीव रंता ।।
हतो तोहि वाको करो चित्त भायो, महादेव कीसों बड़ो भक्त पायो[4] ।।

रामायण के लवणासुर तथा शत्रुघ्न के बीच भयंकर युद्ध का वर्णन किया गया है—

एवमुक्तो महा वृक्षं लवणः क्रोध मूर्च्छितः ।
शत्रुघ्नोरसि चिक्षेप स च तं शतधाच्छिनत् ।।

१- उत्तरकाण्ड : सर्ग ६८, पृ०- २७७१, श्लो०- १०
२- रामचन्द्रिका : ३४वां प्रकाश, पृ०- ३२४, छं०- ५४
३- उत्तरकाण्ड : सर्ग ६८, पृ०- २७७२, श्लो०- १४
४- रामचन्द्रिका : ३४वां प्रकाश, पृ०- ३२४, छं०- ५५

तद्दृष्ट्वा विफलं कर्म राक्षसः पुनरेव तु ।
पादपान्सुबहून्गृह्य शत्रुघ्नायासृजद्बली[1] ।।

यह सुनकर लवणासुर ने एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़कर शत्रुघ्न के ऊपर चलाया किन्तु शत्रुघ्न ने उस वृक्ष के सौ टुकड़े कर दिये। उस प्रहार को व्यर्थ देखकर राक्षस ने और बहुत से वृक्ष चलाए ।

आचार्य केशव ने भी दोनों के बीच भयंकर युद्ध का वर्णन किया है—

भये क्रुद्ध दोऊ दुवो युद्ध रंता ।
दुवो अस्त्र शस्त्र प्रयोगी निहंता ।।
बली विक्रमी धीर शोभा प्रकाशी ।
नश्यो हर्ष दोऊ सबर्षी विनाशी[2] ।।

रामायण के अनुसार लवणासुर वध वर्णन—

स मुमोच महाबाणं लवणस्य महोरसि ।
उरस्तस्य विदार्याशु प्रविवेश रसातलम्[3] ।।

इसी प्रकार का वर्णन केशव ने भी किया है—

लीन्हों लवणासुर शूल जहीं मारेउ रघुनन्दन बाण तहीं ।
काट्यो शिर शूल समेत गयो । शूली कर सुःख त्रिलोक भयो[4] ।।

रामायण में शत्रुघ्न के विजयोपलक्ष्य में वर मांगने का कथन आया है—

वरदास्तु महाबाहो सर्व एव समागताः ।
विजयाकाङ्क्षिणस्तुभ्यममोघं दर्शनं हि नः[5] ।।

१- उत्तरकाण्ड : सर्ग ६६, पृ०- २६६३, श्लोक ८,९
२- रामचन्द्रिका : ३४वां प्रकाश, पृ०-३२४ , श्लोक ५६
३- उत्तरकाण्ड : सर्ग ६९, पृ०- २९७५, श्लोक ३४
४- रामचन्द्रिका : ३४वां प्रकाश, पृ०- ३२४, छं०- ५८
५- उत्तरकाण्ड : सर्ग ७०, पृ०- २९७६, श्लोक ३

इस प्रकार का वर्णन आचार्य केशव ने भी किया है—

कीन्हों बहु विक्रम या रण में, मांगी वरदान रुचै मन में[1]।

रामायण के शत्रुघ्न ने मधुपुरी को अपनी राजधानी होने का वरदान मांगा है—

इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देव निर्मिता ।

निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेऽस्तु वर: पर:[2]।।

देव- निर्मित यह मधुपुरी (मधुरा) शीघ्र हमारी राजधानी हो यही वरदान हम चाहते हैं ।

इसके विपरीत रामचन्द्रिका के शत्रुघ्न ने अपने राज्य में दूसरों को पीड़ित करने वाले व्यक्तियों के समूल नाश की इच्छा व्यक्त की है—

सनाढ्य वृत्ति जो हरै । सदा समूल सो जरै ।

अकालमृत्यु सो मरै । अनेक नर्क सो परै ।

सनाढ्य जाति सर्वदा । यथा पुनीत नर्मदा ।

भजैं सजैं जे संपदा । विरुद्धते असंपदा[3]।।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार शत्रुघ्न ने मधुपुरी को अपनी राजधानी बनाकर तब रामचन्द्र जी का दर्शन किया ।

तत: सताममर पुरोपमां पुरीं निवेश्य वै विविधजना भिसंवृताम् ।

नराधिपो रघुपतिपाददर्शने दधे मतिं रघुकुलवंश वर्धन:[4] ।।

उपरोक्त पंक्तियों को आधार बनाकर आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द लिखा है—

१- रामचन्द्रिका : ३४वां प्रकाश, पृ०- ३२५, छ०- ५६

२- उत्तरकाण्ड : सर्ग ७०, पृ०- ९७६

३- रामचन्द्रिका : ३४वां प्रकाश, पृ०-३२५,छ०- ६०, ६१

४- उत्तरकाण्ड : सर्ग ७०, पृ०- ९७७, श्लोक १७

मथुरामंडल मधुपुरी, केशव स्ववश बसाइ ।
देखे तब शत्रुघ्न जू, रामचंद्र के पाँइ[1] ।।

अनर्घराघवम् का प्रभाव :

आचार्य केशवदास ने रामचन्द्रिका के वर्णन में ` अनर्घराघव ` से कोई सहायता नहीं ली है । अनर्घराघव की कथा में उतना विस्तार नहीं है जितना रामचन्द्रिका में । अनर्घराघव में राम की कथा से अधिक प्रकृति वर्णन मिलता है । कथा में प्रवाह का अभाव है वह टूटी - टूटी - सी लगती है । जबकि रामचन्द्रिका में ऐसा नहीं है । आचार्य केशव ने ` रामचन्द्रिका ` के लिखने का प्रयोजन कुछ इस प्रकार दिया है—

न रामदेव गाईहैं न देवलोक पाईहैं[2] ।।

कुछ इसी प्रकार का प्रयोजन ` अनर्घराघव ` में भी मिलता है—

यदि क्षुण्णं पूर्वैरिति जहति रामस्य चरितं
गुणैरेतावद्भिर्जगति पुनरन्यो जयति कः ।
स्वमात्मानं तत्तद्गुण गरिम गम्भीर मधुर
स्फुरद्वाग्ब्रह्माणः कथमुपकरिष्यन्ति कवयः[3] ।।

यदि प्राचीन कवियों द्वारा वर्णित होने के कारण रामचन्द्र के चरित को अपनी काव्यकला का आधार नहीं बनायें तो दूसरा रामचन्द्र समान चरितनायक इस संसार में कहाँ पाया जाएगा और तब तत्त् गुण गरिमा तथा गम्भीरता

१- रामचन्द्रिका : ३४वां प्रकाश, पृ०- ३२५, छ०- ६२
२- रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश, पृ०- १०, छ०- १६
३- अनर्घराघवम् : प्रथमोऽङ्कः, पृ०- ११, श्लोक ६

से पूर्ण वाणी वाले कविगण अपने को महाचरित प्रदर्शन द्वारा कैसे उपकृत कर सकेंगे ? अनर्घराघव में विश्वामित्र के अयोध्या पहुंचने पर—

वामदेव: अहं तमुपेत्य श्रौतेन विधिना पुरस्कृत्य प्रवेशयामि तपोनिधिम्[1]।

वामदेव: मैं उनके पास जाकर वैदिक विधान से सत्कृत करके बुला लाता हूं।

विश्वामित्र के स्वागत के लिए वामदेव जाते हैं जबकि रामचन्द्रिका में राजा दशरथ विश्वामित्र के आगमन की बात सुनकर, स्वयं दौड़ पड़ते हैं—

उठि दौरे नृप सुनतहीं, जाइ गहे तब पाइ[2]।।

अनर्घराघव में राजा दशरथ के यश का वर्णन विश्वामित्र ने किया है, जबकि आचार्य केशव ने राजा दशरथ के यश का वर्णन स्वयं अपनी मौलिक कल्पना के आधार पर किया है।

अनर्घराघव में दिव्यास्त्र मंत्र की शिक्षा का ही उल्लेख हुआ है जबकि रामचन्द्रिका में मंत्रों के अतिरिक्त अस्त्र- शस्त्र सभी की शिक्षा का उल्लेख हुआ है।

शुन:शेप—रामभद्र इति कोऽप्ययं चतुरक्षरो राक्षसरक्षा सिद्धमन्त्र: विशेषेण पुनरिदानीं भगवता कौशिकेन ब्रह्म ज्योतिषस्तादृशं विवर्तमाश्चर्यं दिव्यास्त्रमन्त्र पारायणमध्यापित:[3]।

रामभद्र यह चार अक्षरों का राक्षस से रक्षार्थ सिद्ध मंत्र है, खास करके अब जबकि हमारे कुलपति ने रामभद्र को ब्रह्मज्योति के परिणाम रूप दिव्यास्त्र मंत्र की शिक्षा उन्हें दे दी है।

रामचन्द्रिका में राम द्वारा अस्त्र- शस्त्र ग्रहण का उल्लेख निम्न छन्द में हुआ है—

१- अनर्घराघवम् : प्रथमोऽङ्क:, पृ०- २१

२- रामचन्द्रिका : द्वितीय प्रकाश, पृ०- २१, छ०- ६

३- अनर्घराघवम् : द्वितीयोऽङ्क:, पृ०- ७२

वेदमंत्र तंत्र शोधि अस्त्र शस्त्र दै भले ।।
रामचन्द्र लक्ष्मण सो विप्र छिप्र ले चले ।।
लोभ छोह मोह गर्व काम कामना हरै ।।
नींद भूख प्यास त्रास वासना सबै गई[1] ।।

' रामचन्द्रिका ' में विश्वामित्र के आश्रम का जितना प्रभावशाली वर्णन हुआ है उतना अनर्घराघव में नहीं है ।

' अनर्घराघव ' के अनुसार विश्वामित्र का आश्रम वर्णन—

राम: - आर्द्रप्रसूतिरियमङ्गनयज्ञवेदि-
नेदिष्ठमेव हरिणी तृणुते तृणं च
वत्सीयतापसकुमारकरोपनीत-
नीवारनिर्वृतमपत्य मवेक्षते च[2]

अंगन में वर्तमान यज्ञवेदी के समीपस्थ तृण नई ब्याई हुई हरिणी चर रही है, उसके बच्चे जिसे तपस्वीकुमार अपने हाथों से नीवार खिलाते हैं, उन्हें यह स्वस्थ भाव से देख भी रही है ।

रामचन्द्रिका के अनुसार विश्वामित्र का आश्रय वर्णन—

कहुं हरिहरि हरहर रट रटहीं ।
कहुं मृगपति मृग शिशु पय पियहीं ।।
कहु मुनि गण चित्वत हरि हियहिं[3] ।

' अनर्घराघव ' में यज्ञभूमि में ताड़का का प्रवेश उस समय होता है जब राम-लक्ष्मण, विश्वामित्र से बातचीत कर रहे हैं, परन्तु रामचन्द्रिका में ताड़का यज्ञ शुरू होने पर आती है—

१- रामचन्द्रिका : द्वितीय प्रकाश, पृ०- २५, छ०- २६
२-अनर्घराघवम् : द्वितीयोऽङ्क:, पृ०- ८१, श्लोक २१
३- रामचन्द्रिका : तृतीय प्रकाश, पृ०- २७, छ०- ३

होन लागे होम के जहां तहां सबै विधान ।
भीम भांति ताड़कासो भंग लागि करन आई[1]।।

अनर्घराघव में जनक के पुरोहित शतानन्द ने राम और लक्ष्मण का परिचय प्राप्त किया है। परन्तु रामचन्द्रिका में स्वयं जनक ने राम और लक्ष्मण का परिचय पूछा है—

जनक— ए सुत कौनके शोभहि साजे ।
सुन्दर श्यामल गौर विराजे ।।
जनत हौ जिय सोदर दोऊ ।
कै कमलाविमलापति कोऊ[2]।।

अनर्घराघव में धनुष यज्ञभूमि की चर्चा नहीं आती जबकि रामचन्द्रिका में धनुषयज्ञ की विस्तृत चर्चा है। अनर्घराघव तथा रामचन्द्रिका की कथा में एक साम्य यह दिखाई देता है कि दोनों ग्रन्थों में विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण मिथिला तब पहुंचते हैं जब धनुषयज्ञ में भाग लेने हेतु विभिन्न देशों से आए हुए राजागण अपने पौरुष की आजमाइश कर निराश होकर अपने-अपने राज्यको वापस लौट जाते हैं। राम के मिथिला नगर में प्रवेश करते ही उन्हें शुभ संकेत मिलने लगे—

काहू को न भयो कहूं, ऐसो सगुन न होत ।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उदोत[3]।।

रामचन्द्रिका में लक्ष्मण ने राम से राजा जनक के विषय में प्रश्न पूछा है और राम ने उसका उत्तर दिया है—

१- रामचन्द्रिका : तृतीय प्रकाश, पृ०- २८, छं०- ६
२- वही, पृ०- ४८, छं०- २६
३- वही, पंचम प्रकाश, पृ०- ४२, छं०- ६

लक्ष्मण- जन राजवंत जग योगवंत । तिनको उदोत केहि भांति होत ।

श्रीराम- सब क्षत्रिन आदि दै काहू छुई न छुये
बिजनादिक बात डगै । न घटै न बढ़ै निशिबासर
केशव लोचन को तम तेज भगै ।।

भवभूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै ।
जलहूं थलहूं परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुतज्योति जगै ।।[1]

इस प्रकार का प्रश्न अनर्घराघव के लक्ष्मण ने भी किया है परन्तु उसे देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि केशव कहीं उससे प्रभावित हैं ।

लक्ष्मण:- (जनान्तिकम्) आर्य, अयमयं स राजा वैदेह: ।
पवित्रमपरिमेयाश्चर्यं वस्यावदानमु पाध्यायादनु श्रूयते[2]।

राम:- (सप्रमोदानुरागम्) वत्स, स एवाय शतपथकथाधिकारी
पुरुष: प्रणयियायान्तेवासिने यस्मै वाजसनेयो याज्ञवल्क्य:
सूक्तानि यजूंषि प्रोवाच[3]।

रामचन्द्रिका में रावण स्वयं यज्ञभूमि में जाता है परन्तु अनर्घराघव की कथा में रावण के पुरोहित शौष्कल जनक को, सीता का विवाह रावण से करने के लिए, राजी करने मिथिला आते हैं ।

अनर्घराघव में बारात के मिथिला आने और विवाह विधि सम्पन्न होने का मात्र संक्षिप्त उल्लेख सुपर्णखा द्वारा किया गया है-

शूर्पणखा- (उपविश्य)- आर्ये, दशरथ आगते कुमाराणां
गोदानमङ्गले च संवृत्ते तावान्मया प्राप्तं मिथिलानगरम्[4] ।

१- रामचन्द्रिका : पंचम प्रकाश, पृ०- ४६, छ०- २३
२- अनर्घराघव : तृतीयोऽङ्क:, पृ०- १४३
३- वही, पृ०- १४३
४- वही, चतुर्थोऽङ्क:, पृ०- १६८

रामचन्द्रिका में इसका अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन मिलता है।

अनर्घराघव की कथा में ऋषि परशुराम मिथिला में आकर राम के ऊपर क्रोधित होते हैं, परन्तु रामचन्द्रिका में परशुराम की राम से मुलाकात बारात लौटते समय रास्ते में होती है।

रामचन्द्रिका में धनुर्भंग के समय जब परशुराम क्रोधित होते हैं और राम के अनुनय-विनय करने पर भी उनका क्रोध शान्त नहीं होता, तब राम कुपित होते हुए कहते हैं—

भृगुनंद संभारु कुठार मैं कियो शरासन युक्त शरु[1]।।

राम के इस प्रकार कुपित हो जाने पर बीच-बचाव के लिए स्वयं महादेव उपस्थित होते हैं—

राम राम जब कोप कर्यो जू ।।
लोक लोक भये भूरि भर्यो जू ।
वामदेव तब आपुन आये ।
रामदेव दोउ समुझाये[2] ।।

महादेव के इस प्रकार आने की कथा केशव की अपनी मौलिक उद्भावना है। यह कथा 'अनर्घराघव' में नहीं मिलती।

अनर्घराघव में कैकेयी के वरदान मांगने की बात दशरथ को मिथिला में ही मन्थरा द्वारा लाए गये पत्र से मालूम होती है। मिथिला से ही राम-लक्ष्मण सीता को लेकर वन को चले जाते हैं। बारात के अयोध्या वापस आने की बात अनर्घराघव में नहीं मिलती।

१- रामचन्द्रिका : सप्तम प्रकाश, पृ०- ७८, छं०- ४३

२- वही, पृ०- ११७, छं०- ४३

अनर्घराघव में दशरथ के मरने, भरत के चित्रकूट आने तथा पादुका लेकर अयोध्या वापस जाने तथा नन्दिग्राम में निवास करने की कथा को मात्र कुछ पंक्तियों में उल्लेख श्रवणा द्वारा जाम्बवान् के प्रति किया गया है। जबकि रामचन्द्रिका में इन कथाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है।

'रामचन्द्रिका' में, चित्रकूट में भागीरथी द्वारा भरत को समझाने की कथा केशव की अपनी मौलिक उद्भावना है। यह कथा 'अनर्घराघव' में नहीं मिलती।

भागीरथीरुप अनूपकारी। चंद्राननी लोचनकंजधारी।
वाणी बखानी मुख तत्व सोध्यौं। रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यौ[1]।।

अनर्घराघव में राम के पंचवटी निवास, शूर्पणखा का नाक-कान काटा जाना, खर-दूषण -वध, सीता-हरण आदि कथाओं का मात्र उल्लेख श्रवणा द्वारा जाम्बवान के प्रति किया गया है। इन कथाओं का रामचन्द्रिका में पर्याप्त विस्तृत वर्णन मिलता है।

अनर्घराघव में रावण द्वारा सीता को लंका ले जाते समय सीता द्वारा गिराए गये उत्तरीय को हनुमान, लक्ष्मण मित्र, गुह को देते हैं और गुह उसे लाकर राम को सौंपते हैं।

गुह : यदुत्तरीयमुत्प्लुत्य हनूमानग्रहीत्, तदेतद्देव गुणानुरागिणा कुमारसुग्रीवेण समाजयितुमुपस्थितस्ततो मम हस्ते देवस्य प्राभृतीकृतम्[2]।

रामचन्द्रिका में सुग्रीव स्वयं अपने हाथ से सीता का उत्तरीय और नूपुर राम को सौंपते हैं।

१- रामचन्द्रिका : दशम प्रकाश, पृ०- १०१, छं०- ४०

२- अनर्घराघव : पंचमोऽङ्कः, पृ०- २६०

उठे राजसुग्रीव तब, तन मन अति सुख पाइ ।।
सीता जू के पटसहित, नूपुर दीन्हे आई[1] ।।

अनर्घराघवम् में राम को सीता का उत्तरीय पहले प्राप्त होता है उसके पश्चात् राम सुग्रीव से मित्रता करते हैं, जबकि रामचन्द्रिका में राम पहले सुग्रीव से मित्रता करते हैं तब सुग्रीव उन्हें सीता का उत्तरीय देते हैं ।

रामचन्द्रिका में राम और बालि में संवाद बालि को बाण लगने के बाद होता है जबकि अनर्घराघव में बालि जब युद्ध करने आता है तभी राम और बालि में संवाद होता है ।

रामचन्द्रिका में राम और सुग्रीव की मित्रता के पश्चात् वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन मिलता है । अनर्घराघव में इस प्रकार के वर्णन का अभाव है । रामचन्द्रिका में राम द्वारा हनुमान को मुद्रिका दिए जाने, सीता की खोज में वानरों के जाने, हनुमान का सीता के साथ संवाद, लंकादहन आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है जबकि अनर्घराघव में मात्र लंकादहन का उल्लेख हुआ है ।

माल्यवान् —(सर्वतोऽवलोक्य सखेदम्) अहहकष्टम् ।

दग्धाः प्रदीप्तपावकपरिचयपिण्डस्थेम्नैव श्मानः ।
शोणमुत्पुच्छयमाने हनुमति लङ्कापुरोद्देशाः[2] ।।

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आचार्य केशवदास ने अनर्घराघव से कोई सहायता नहीं ली है । इन ग्रन्थों के अतिरिक्त रामचन्द्रिका के तीन-चार छन्दों में आचार्य केशवदास ने बाणभट्ट द्वारा विरचित कादम्बरी से तथा एक-एक छन्द में महाकवि कालिदास कृत

१- रामचन्द्रिका : द्वादश प्रकाश, पृ०- १२१, छ०- ५८
२- अनर्घराघव : षष्ठोऽङ्कः, पृ०- ३१९, श्लोक-१

' रघुवंश ' तथा भास कृत ' बालचरित ' और ' चारुदत्त ' नाटक से प्रभाव ग्रहण किया है।

कादम्बरी का प्रभाव :

कादम्बरी कथामुख में शूद्रक वर्णन के अन्तर्गत राजा शूद्रक के प्रताप का वर्णन बाणभट्ट ने निम्न पंक्तियों में किया है—

कमलयोनिरिव विभानीकृत— राजहंस मण्डल: '[1]

उपरोक्त पंक्तियों का आचार्य केशव ने लगभग अनुवाद सा कर दिया है—

विधि के समान है बिमानीकृत राजहंस,[2]

शूद्रक के प्रभाव का वर्णन करते हुए बाणभट्ट आगे लिखते हैं—

गंगाप्रवाह इव भगीरथ पथ प्रवृत्त:[3]

इस पंक्ति का भी आचार्य केशव ने अनुवाद ही किया है—

भगीरथ- पथगामी गंगा कैसो जल है[4]।

' कादम्बरी ' में जाबालि ऋषि के आश्रम का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया गया है—

ताल- तिलक- तमाल- हिन्ताल- बकुल- बहुले:,

एला लता कुलित - नारिकेल - कलापै:   ।

१- कादम्बरी कथामुख : शूद्रक वर्णन, पृ०- २७

२- रामचन्द्रिका : दूसरा प्रकाश, पृ०- २५, छं०- १०

३ - कादम्बरी कथामुख : शूद्रक वर्णन, पृ०- २८

४ - रामचन्द्रिका : दूसरा प्रकाश, पृ०- २५, छं०- १०

आलोल- लोध्र- लवली - लवङ्ग पल्लवैः
उल्लसत्- चूत- रेणु- पटलैः,
अलिकुल- झङ्कार- मुखर- सहकारैः,
उन्मद - कोकिल - कुलकलालाप - कोलाहलिभिः,
उत्फुल्ल- केतकी - कुसुम- मञ्जरी - रजः पुञ्ज- पिञ्जरैः,
पूगीलता- दोलाधि रूढ- वनदेवतैः[1]

इसका प्रभाव ग्रहण कर आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द लिखा है—

तरु तालीस ताल तमाल हिंताल मनोहर
मंजुल बंजुल लकुच कैर नारियर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै।
सारी शुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै।
शुक राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र वन[2]।।

कादम्बरी में जाबालि- आश्रम का प्रभाव वर्णित करते हुए बाणभट्ट लिखते हैं—

यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु[3]

इस पंक्ति का आधार ग्रहण कर केशव ने निम्न पंक्ति लिखी है—

होम धूम मलिनाई जहाँ। अति चंचल चलदल है तहाँ[4]।

इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रथम सर्ग में लिखा है—

आसमुद्र क्षितीशानामानाकरथ वर्त्मनाम[5]।

१- कादम्बरी : कथामुख, जाबालि- आश्रम-वर्णन, पृ०- ३१५-१६
२- रामचन्द्रिका : तीसरा प्रकाश, पृ०-३३, छ०-९
३- कादम्बरी : कथामुख, जाबालि- आश्रम- वर्णन, पृ०-३३६
४- रामचन्द्रिका : २९वाँ प्रकाश, छ०-६
५- रघुवंशम् : प्रथम सर्ग, पृ०- ३, श्लोक- ५

इससे प्रभावित हो केशव ने निम्न पंक्तियां लिखी हैं—

> जनकराय पहिराइयो, राजा दशरथ साथ।
> छत्र चमर गज बाजि दै, आसमुद्र छितिनाथ[1]।।

इसी प्रकार महाकवि भास ने अपने बालचरित तथा चारुदत्त नाटक में निम्न पंक्तियां लिखी हैं—

> लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
> असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता[2] ।।

अन्धकार मेरे अंगों को पोत रहा है, मानो आकाश से अंजन बरसता है और दुराचारी पुरुष की सेवा की भांति मेरी दृष्टि निष्फल हो गई है।

इन पंक्तियों के आधार पर केशव ने रामचन्द्रिका में निम्न छन्द लिखा है—

> बरनत केशव सकल कवि, विषम गाढ़ तम-सृष्टि।
> कुपुरुष सेवा ज्यों भई, सन्तत मिथ्या दृष्टि[3]।।

रामचन्द्रिका की मौलिकता :

नवीन विषयवस्तु के समावेश तथा वर्णन वैचित्र्य की दृष्टि से केशव के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा 'रामचन्द्रिका' सबसे अधिक मौलिक रचना है। उनके कवि-व्यक्तित्व की छाप उस पर स्पष्ट रूप से अंकित हुई है। अलंकारप्रियता और राजसी वातावरण के साथ पौराणिक राम-भक्ति का निर्वाह इसकी असाधारण विशेषता है। कदाचित् इसीलिए पूर्वार्द्ध से उत्तरार्द्ध

१- रामचन्द्रिका : छठवां प्रकाश, पृ०- ६७, छं०- ६५

२- बालचरितम् : प्रथमोऽङ्कः, पृ०- १२, श्लोक-५ तथा चारुदत्तम् प्रथमोऽङ्कः, श्लोक १६

३- रामचन्द्रिका : १२वां प्रकाश, पृ०- २०५, छं०- २१

अधिक समृद्ध दिखाई देता है, जिसमें राजमहल का पूरा परिवेश समाहित कर लिया गया है। वाल्मीकि और तुलसी ने राम के राजसी रूप की अपेक्षा उनके वनवासी रूप को अधिक गौरवान्वित किया है, किन्तु केशव ने राजाश्रय के निजी अनुभव के आधार पर राम के राजसी रूप की गरिमा अधिक बढ़ा दी है। धर्म और राजनीति का समावेश तो उन्होंने अपने अन्य काव्यों में भी किया है।

रामचन्द्रिका के पहले प्रकाश में केशव ने गणेश-वन्दना, सरस्वती वन्दना, श्रीराम-वन्दना, वंश-परिचय, ग्रन्थ-रचनाकाल आदि बातों का वर्णन किया है जो कवि का निजी है। रामचन्द्रिका के दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें तथा सातवें प्रकाश के लिखने में केशव ने ` वाल्मीकि रामायण ` तथा ` प्रसन्नराघव ` का आधार ग्रहण किया है, परन्तु यहां भी यत्र-तत्र केशव की मौलिकता झलक ही जाती है। उदाहरण स्वरूप तीसरे प्रकाश का तेंतीसवां तथा चौथे प्रकाश का नौवां छन्द देखा जा सकता है किन्तु रामचन्द्रिका के छठे, आठवें, नौवें, दसवें तथा ग्यारहवें प्रकाश में केशव की मौलिकता देखी जा सकती है। यहां उल्लेखनीय है कि दसवें प्रकाश के चौथे छन्द, ग्यारहवें प्रकाश के अठारहवें छन्द में केशव हनुमन्नाटक से प्रभावित हैं। उन छन्दों को छोड़कर शेष पूरा प्रकाश केशव की मौलिक परिकल्पना है। बारहवें प्रकाश में केशव जहां हनुमन्नाटक का प्रभाव ग्रहण करते हैं वहीं तेरहवें प्रकाश के छियासीवें तथा सत्तासीवें छन्द में हनुमन्नाटक का तथा इक्कीसवें छन्द में भासकृत ` बालचरित ` तथा ` चारुदत्त ` नाटक का प्रभाव देखा जा सकता है। इन तीन छन्दों को छोड़कर पूरा प्रकाश केशव का अपना है। चौदहवें, पन्द्रहवें प्रकाश में भी केशव की मौलिकता देखी जा सकती है। पन्द्रहवें प्रकाश के दसवें, ग्यारहवें तथा बारहवें छन्द में हनुमन्नाटक का कुछ प्रभाव अवश्य है परन्तु यहां केशव की प्रतिभा हनुमन्नाटक की अपेक्षा अधिक मुखर है।

सोलहवें प्रकाश में केशव ने हनुमन्नाटक का प्रभाव ग्रहण किया है। सत्रहवां प्रभावपूर्णतया केशव का मौलिक है। अठारहवें प्रकाश का दूसरा, तीसरा, बारहवां तथा तेरहवां छन्द हनुमन्नाटक के आधार पर है। शेष पूरा प्रकाश केशव की कवित्व शक्ति का परिचायक है। उन्नीसवें प्रकाश के बीसवें छन्द पर हनुमन्नाटक का प्रभाव है, शेष पूरा प्रकाश केशव का अपना है। रामचन्द्रिका का बीसवां प्रकाश भी केशव का मौलिक है। केशव ने रामचन्द्रिका के पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध में अधिक मौलिकता का परिचय दिया है। यहां केशव ने अपनी उर्वर कल्पना से अधिक काम लिया है। रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध के अट्ठारहवें प्रकाश के आठवें, नवें छन्द को छोड़कर, जहां केशव बाणभट्ट की कादम्बरी से प्रभावित हैं, शेष पूरा उत्तरार्द्ध केशव का मौलिक है। चौंतीसवें प्रकाश में वर्णित मठधारियों की निन्दा के लिखने में केशव ने स्कन्धपुराण, पद्मपुराण, देवीपुराण आदि का प्रभाव ग्रहण किया है।

इस प्रकार कथाओं की दृष्टि से शिष्टाचार-रीति-वर्णन, पलकाचारवर्णन, राम का नख-शिख वर्णन, सीता का स्वरूप वर्णन आदि में केशव का आचार्यत्व तथा कविहृदय का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। छठें प्रकाश में जेवनार-वर्णन के अन्तर्गत केशव ने जो गाली का वर्णन किया है वह केशव के पांडित्य तथा कवि हृदय के रासायनिक परिपाक के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है।

वनगमन से पूर्व केशव ने राम के मुख से पुत्र-धर्म-वर्णन, नारि-धर्म-वर्णन, विधवा-धर्म-वर्णन कराकर अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। अपने संवादों के लिए जहां केशव हनुमन्नाटक तथा प्रसन्नराघव के ऋणी हैं वहीं उनके कुछ प्रमुख संवाद निजी कल्पना के फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार के संवादों में राम-जानकी-संवाद, राम-लक्ष्मण-संवाद, सूपर्णखा-राम-संवाद आदि उल्लेखनीय है।

वनगमन के अन्तर्गत केशव ने ग्रामवासिनी स्त्रियों के मुख से सीता के मुख

से जो सीता के मुख का वर्णन कराया है वह सहज रूप से केशव की बुद्धि, कला और कवि- हृदय का एक साथ परिचय देता है। निश्चित रूप से सीता-मुख वर्णन पूरी रामचन्द्रिका में अद्वितीय है तथा केशव को हृदयहीन कहने वालों को भी एक बार भाव-विभोर तथा कविता में पूर्णतया निमग्न कर देने में समर्थ है।

भरत का राम के पास से पादुका लेकर लौटना, दण्डक वन वर्णन, गोदावरी वर्णन, सीता जी के गान, वाघ का ग्रन्थ वर्णन आदि केशव के मौलिक हैं। तेरहवें प्रकाश में केशव ने वर्षा तथा शरद ऋतुओं का श्लेष के आश्रय से वर्णन किया है जो केशव के पांडित्य तथा कवित्व शक्ति का घोतक है। इसी प्रकार सीता की वियोगिनी मूर्ति, राम की विरहावस्था, लंकादहन, राम का लंकाको प्रयाण, समुद्र वर्णन, सेतु बन्धन, युद्धभूमि में रावण के वीरों का परिचय, लक्ष्मण को शक्ति लगना, कुम्भकर्ण वध, मकराक्ष वध, रावण मख- भंग, रावण वध, सीता की अग्नि परीक्षा आदि के वर्णन में केशव की प्रतिभा तथा कवि हृदय का अच्छा परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में राम के अभिषेक तथा उस समय राम तथा सीता के अपूर्व सौन्दर्य का जो वर्णन केशव ने किया है वह केशव का अपना है। राम के अभिषेक के बाद केशव ने अपनी कल्पना- शक्ति के द्वारा ब्रह्मा, शिव, पितर, अग्नि, वायु आदि से राम की स्तुति करवाई है। राम के राज्य का वर्णन करने में भी केशव ने अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। उन्तीसवें प्रकाश में केशव ने राम के चौगान खेलने का वर्णन किया है। सम्भव है यहाँ केशव तत्कालीन मुस्लिम राजाओं से प्रभावित हों।

राम के राज्य में शुकदेव जी का आना और राज्य के वैभव तथा ऐश्वर्य

का वर्णन तथा इसे सुनकर राम का अपने राज्य का अवलोकन, रंगमहल में संगीत, राम की दिनचर्या का वर्णन आदि बातों के वर्णन में केशव ने अपनी मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है।

तैंतीसवें प्रकाश में ब्रह्मा जी का आना, राम द्वारा सृष्टि रचना में बाधा डालने तथा अपने बेकार बैठने का संकेत करना राम द्वारा सनकादिक के मानसिक पुत्र ब्राह्मणों को किस स्थान पर भूमि दी जाय यह पूछना तथा ब्रह्मा का लवणासुर को मारकर मथुरा की भूमि देने की सलाह देना आदि के वर्णन में केशव ने अपनी निश्चय ही मौलिक उद्भावना-शक्ति का विनियोग किया है।

ज्ज्ज्ज्ज्

अध्याय : आठ

काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रभाव

काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रभाव

यों तो संस्कृत के अलंकारशास्त्र में काव्य की आत्मा के प्रश्न को लेकर भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय केशव के पूर्व ही पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुके थे पर केशव के समय के लगभग केवल रस तथा अलंकार-सम्प्रदायों का ही बोलबाला था। भामह, दण्डी, उद्भट आदि आचार्यों ने अलंकारों को काव्य के लिए अनिवार्य माना है। दण्डी ने अलंकारों को शोभा का कारण बताया है[1]। पर आगे चलकर मम्मटाचार्य ने काव्य में अलंकारों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा और काव्य की परिभाषा की —

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि[2]।

विश्वनाथ ने मम्मट की उक्त परिभाषा का भी खण्डन किया और रसात्मक वाक्य को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया[3]। इस प्रकार जब अलंकारों को हेय समझा गया और रसात्मक वाक्य को ही काव्य में प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई तो अलंकार-प्रिय लोगों को एक बड़ा भारी आघात पहुंचा। फलतः लोगों की रुचि फिर से अलंकारों की ओर गई। बस, फिर तो क्या था, अलंकार-ग्रन्थों का तांता-सा बंध गया। जयदेव ने अलंकार का पक्ष लेकर काव्य की परिभाषा इस प्रकार की —

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्[4]।।

१- काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते। काव्यादर्श; पृ०-८

२- काव्यप्रकाश : पृ०-४

३- वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। साहित्य-दर्पण; पृ०-२०, परिच्छेद १, कारिका ३१

४- चन्द्रालोक : मयूख १, श्लोक ७, पृ०-६

उन्होंने तो यहां तक कह डाला कि यदि कोई काव्य को अलंकाररहित मानता है तो अपने को पण्डित मानने वाला अग्नि को भी उष्णता- रहित क्यों नहीं मानता[1]। उनके अनन्तर अप्पय दीक्षित, केशव मिश्र आदि आचार्यों ने अलंकार पर विशेष रूप से ध्यान दिया। अप्पय दीक्षित ने अपने 'काव्य-दर्पण' में काव्य का जो लक्षण दिया है वह इस प्रकार है—

काव्यं ह्यदुष्टौ गुणौ शब्दार्थौ सदलङ्कृती[2]।

केशव मिश्र के 'अलंकारशेखर' की भी रचना अलंकार को दृष्टि में रखकर ही हुई है। उन्होंने विश्वनाथ के काव्य के लक्षण को और भी व्यापक एवं सरस बनाने का प्रयत्न किया है[3] और साथ ही सभी की परिभाषाओं को समेटने का जो प्रयास किया है वह श्लाघ्य है[4]।

नायक नायिका भेद (आधार ग्रन्थ) :

केशव द्वारा 'रसिकप्रिया' की रचना करने से पूर्व 'रसिकप्रिया' में वर्णित रस, नायक- नायिका- भेद आदि विषयों पर संस्कृत साहित्य में अनेक ग्रन्थों का निर्माण हो चुका था, जिनमें भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' धनंजय का 'दशरूपक,' 'भोज का 'सरस्वतीकुलकण्ठाभरण' और 'श्रृंगारप्रकाश,' विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण,' भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' और 'रसमंजरी,' रूपगोस्वामी की 'उज्ज्वलनीलमणि' तथा शिङ्गभूपाल का रसार्णवसुधाकर प्रमुख हैं। भरत के नाट्यशास्त्र के

१- अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
सो न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती ॥
—चन्द्रालोक, श्लोक ८, पृ० - ७

२- केशवदास : चन्द्रबली पाण्डेय, पृ०- १४२

३- काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुखविशेषकृत।
—अलंकार शेखर: प्रथम रत्न, प्रथम मरीचि, पृ०- २१

४- निर्दोषं गुणवत्काव्यमलङ्कृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् प्रीतिं कीर्तिं च विदन्ति ॥ वही, पृ० -३

अनन्तर काव्यप्रवाह के जिस ग्रन्थ में सर्वप्रथम नायिका भेद का उल्लेख मिलता है वह रुद्रट का काव्यालंकार है। रुद्रट के अनन्तर रुद्र या रुद्रभट्ट ने ' श्रृंगारतिलक ' नाम के ग्रन्थ में प्रधान रूप से श्रृंगार का और तदंतर्गत नायक- नायिका- भेद का पर्याप्त विवेचन किया है। अन्त में अन्य रसों का संक्षेप में निरूपण है। यही हिन्दी के श्रृंगारी ग्रन्थों की मूलवृत्ति है। विस्तार से श्रृंगार का विचार करना और संक्षेप में अन्य रसों का विवेचन कर देना।

केशव की रसिकप्रिया में प्रधानरूप से श्रृंगार और गौण रूप से अन्य रसों का विचार किया गया है। रस के प्रच्छन्न और प्रकाश भेद रुद्रभट्ट के श्रृंगारतिलक के अनुगमन पर रखे गये हैं[1]। नायिका भेद में नायिका की जाति का वर्णन कामशास्त्र के अनुसार पद्मिनी - चित्रिणी - शंखिनी - हस्तिनी किया गया है। मुग्धामध्यादि के विशेषण श्रृंगारतिलक के आधार पर हैं। केशव ने हावों का ग्रहण रसमंजरीकार के अनुकूल ही किया है।

(क) श्रृंगारतिलक का प्रभाव :

केशवदास ने ' रसिकप्रिया ' में अधिकांश विचारसरणि श्रृंगारतिलक के ही आधार पर रखी है। मंगलाचरण से ही अनुकथन का मंगलाचरण हो जाता है। श्रृंगारतिलक का मंगलाचरण इस प्रकार है-

> श्रृंगारी गिरिजानने सकरुणो रत्यां प्रवीरः स्मरे।
> वीभत्सोऽस्थिभिरुत्फणीति भयकृन्मूर्त्याद्भुत स्तुङ्गया।

1- सुभ संजोग बियोग पुनि द्वै सिंगार की जाति।
पुनि प्रच्छन्न प्रकाश करि दोउन द्वै द्वै भाँति।।
—रसिकप्रिया : प्रथम प्रभाव, छं० - १८

रौद्रो दक्षविमर्दनेन हसकृन्नग्न: प्रशान्तश्चिरा-

दित्थं सर्वरसाश्रय: पशुपतिर्भूयात्सतां भूतये[1] ।।

पार्वती के मुख के विषय में श्रृंगार-युक्त, रति (कामदेव की पत्नि) के विषय में सकरुण, कामदेव के लिए वीर, अस्थियां धारण करने से वीभत्स, ऊंचे फनवाले सांपों को धारण करने से भयानक, विशालमूर्ति होने से अद्भुत, दक्ष का मर्दन करने से रौद्र (रुद्रता युक्त), नग्न होने से हास्य उत्पन्न करने वाले और चिरकाल से प्रशान्त- इस प्रकार सभी (नौ) रसों के आश्रय शंकर सज्जनों को ऐश्वर्य सम्पन्न करें ।

इसमें शिव (नटराज) को सर्वरसाश्रय कहा गया है और रसिकप्रिया में ब्रजराज को नवरसमय बताया गया है-

श्री वृषभानुकुमारि हेत श्रृंगाररूप भय ।

बास हासरस हरे मातुबंधन करुनामय ।

केसी प्रति अति रौद्र बीर मारो बत्सासुर ।

भय दावानलपान पियो बीभत्स बकी उर

अति अद्भुत बंचि बिरंचिमति, सांत संतत सोच चित ।

कहि केसव सेवहु रसिकजन, नवरसमय ब्रजराज नित[2] ।।

लक्षणों का आधार प्राय: वही है । उदाहरणों में कहीं उसकी छाया है और बहुधा स्वतन्त्र निर्माण है । उदाहरण कहीं अनूदित नहीं है । जो विषय ' श्रृंगारतिलक ' में है और ' रसिकप्रिया ' में भी गृहीत है वह प्राय: विवेचन की दृष्टि से ज्यों का त्यों है । परकीया और गणिका के वर्णन में श्रृंगारतिलककार ने अधिक रुचि लिया है, पर रसिकप्रिया में गणिका का

१- श्रृंगारतिलक १ । १

२- रसिकप्रिया : प्रभाव प्रथम, पृ०- ५६, छ०- २

पूरा परित्याग है परकीया के वर्णन में भी अभिनिवेश लक्षित नहीं होता। श्रृंगारतिलक के अनुसार— श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त— ये नौ प्रकार के रस काव्य में होते हैं।

श्रृंगारहास्य करुणा रौद्रवीर भयानका:।
वीभत्साद्भुतशान्ताश्च काव्ये नव रसा: स्मृता:[1]।।

आचार्य केशव ने भी ये ही नवरस माने हैं, और उनका क्रम भी श्रृंगारतिलक के अनुसार ही है—

प्रथम सिंगार सुहास्य रस, करुना रुद्र सुबीर।
भय बीभत्स बखानिये, अद्भुत सांत सुधीर[2] ।।

श्रृंगारतिलक में श्रृंगाररस का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

चेष्टा भवति पुंनार्योर्या रत्युत्थानुरक्तयो:।
संभोगो विप्रलम्भश्च श्रृंगारो द्विविधो मत:[3]।।

रसिकप्रिया में भी श्रृंगार का लक्षण इसी प्रकार दिया गया है—

रति- मति की अति चातुरी, रतिपति- मंत्र विचार।
ताही सों सब कहत हैं, कबि कोविद श्रृंगार[4] ।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार श्रृंगाररस के संयोग तथा वियोग और पुन: इनके प्रच्छन्न तथा प्रकाश दो- दो भेद हैं—

१- श्रृंगारतिलक : पृ० - ३ १।६

२- रसिकप्रिया : प्रभाव १, पृ० -५८, छं० - १५

३ - श्रृंगारतिलक : पृ० - ५ १।२१

४ - रसिकप्रिया : प्रथम प्रभाव, पृ० - ५८, छं० - १७

संयुक्तयोश्च संभोगो विप्रलम्भो वियुक्तयो: ।

प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च पुनरेष द्विधा यथा[1] ।।

आचार्य केशवदास ने रसों के प्रच्छन्न तथा प्रकाश भेद श्रृंगारतिलक से ही लिया है—

सुभ संजोग बियोग पुनि द्वै सिंगार की जाति ।

पुनि प्रच्छन्न प्रकाश करि, दोऊ द्वै द्वै भांति[2] ।।

केशव ने श्रृंगार के जो उदाहरण दिये हैं वे श्रृंगारतिलक से नहीं मिलते हैं ।

श्रृंगारतिलक में नायक का लक्षण निम्नवत् है—

त्यागी कुलीन: कुशलो रतेषु कल्प: कलाविचक्षणो धनाढ्य: ।

भव्य: क्षमावान्सुभगोऽभिमानी स्त्रीणां मतज्ञ: किल नायक: स्यात्[3] ।।

त्यागी, कुलीन, रति-कार्यों में कुशल, कल्प (योग्य), कलाकार, युवा, धनाढ्य, भव्य, क्षमाशील, सुन्दर, अभिमानी और स्त्रियों के मन को जानने वाला (पुरुष) नायक होना चाहिए । आचार्य केशव ने नायक में जिन गुणों को होना स्वीकार किया है वे सभी श्रृंगारतिलक के अनुसार हैं—

अभिमानी त्यागी तरुन, कोककलानि प्रबीन ।

भव्य क्षमी सुंदर धनी, सुचिरुचि सदा कुलीन[4] ।।

श्रृंगारतिलक में नायक के चार भेद स्वीकार किए गये हैं—

तस्यानुकूलदक्षिणशठधृष्टा इत्यमत्त चत्वार: ।

भेदा: क्रिययोच्यन्ते तदुदाहृतयश्च रमणीया:[5] ।।

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५ १।२२

२- रसिकप्रिया : पृ०- ५८, १।१८

३- श्रृंगारतिलक : पृ०- ६,७ १।२७

४- रसिकप्रिया : पृ०- ६३,२।१

५- श्रृंगारतिलक : पृ० ७,१।२८

केशव ने भी नायक के चार भेद किए हैं—

> ये गुन केसव जासु में, सोई नायक जानि ।
>
> अनुकूल दक्ष सठ धृष्ट पुनि, चौविधि ताहि बखानि[१]।।

शृंगारतिलक के अनुसार जो अपनी स्त्री के प्रति सदा अनुकूल और अन्य स्त्री से विमुख रहे वह अनुकूल नायक कहलाता है ।

> अनुकूलतया नार्यां सदा त्यक्तपराङ्गनः[२]।

आचार्य केशव के अनुकूल नायक का लक्षण शृंगारतिलक के अनुसार ही है—

> प्रीति करै निज नारि सों, परनारी- प्रतिकूल ।
>
> केसव मन- बच कर्म करि, सो कहिये अनुकूल[३] ।।

शृंगारतिलक में दिये गये अनुकूल नायक के उदाहरण का भाव केशव के उदाहरण के भाव से मिलता है—

> अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं
>
> नो वक्रा गतिरुद्धतं न हसितं नैवास्ति कश्चिन्मदः ।
>
> किं त्वन्येऽपि जना वदन्ति सुभगोऽप्यस्याः प्रियो नान्यतो
>
> दृष्टिं निक्षिपतीति विश्वमियता मन्यामहे दुःस्थितम्[४]।।

(नायिका का सखी के प्रति कथन) हे सखि ! न तो मेरे वस्त्र ही सुन्दर हैं, न गले का आभूषण ही चमकीला है, न अटखेलियों से युक्त (मेरी) चाल है, न हंसने में कोई अल्हड़पन है और न मुझमें कोई मद (मस्ती) है

१- रसिकप्रिया : पृ०- ६३, २।२
२- शृंगारतिलक : पृ०- ७, १।२९
३ - रसिकप्रिया : पृ०- ६३, २।३
४ - शृंगारतिलक : पृ०- ७, १।३०

(अर्थात् प्रिय को रिझाने वाली कोई भी बात मुझमें नहीं है।) फिर भी, लोग ऐसा ही कहते हैं (मैं तो जानती ही हूं) कि सुन्दर होते हुए भी इसका प्रिय दूसरी नायिका की ओर दृष्टि नहीं डालता। इतने से ही मैं अपने अतिरिक्त सारे संसार को दुःखी मानती हूं। केशव द्वारा दिया गया अनुकूल का उदाहरण इस प्रकार है—

मेरे तो नाहिन चंचल लोचन नाहिन केसव बानी सुहाई।
जानौं न भूषन-भेद के भावनि भूलिहू मैं नहिं भौंह चढ़ाई।
भोरेहूं ना चितयौ हरि ओर त्यौं पैरुन करें इहिं भांति लुगाई।
रंचक तौ चतुराई न चित्तहि कान्ह भए बस काहे तें भाई[1]।।

शृंगारतिलक के अनुसार जो अन्य (स्त्री) में चित्त (अनुरक्ति) वाला होते हुए भी पहली स्त्री के प्रति गौरव, भय, प्रेम और दाक्षिण्य के भाव का त्याग नहीं करता, वह दक्षिण नायक कहलाता है।

यो गौरवं भयं प्रेम दाक्षिण्यं पूर्वयोषिति।
न मुञ्चत्यन्यचित्तोऽपि ज्ञेयोऽसौ दक्षिणो यथा[2]।।

आचार्य केशव द्वारा दिए गये दक्षिण नायक का लक्षण भी इसी प्रकार है—

पहिले सों हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि।
चित्त चलैहूं ना चले, दक्षिण-लच्छन जानि[3]।।

शृंगार तिलक में दक्षिण नायक का उदाहरण निम्नांकित है—

१- रसिकप्रिया : पृ०- ६४, २।६
२- शृंगारतिलक : पृ०- ७, १।३१
३- रसिकप्रिया : पृ०- ६५, २।७

सैवास्य प्रणतिस्तदेव वचनं ता एव केलिक्रिया
भीति: सैव तदेवनर्म मधुरं पूर्वानुरागोचितम्
कान्तस्याप्रियकारिणी च भवती तं ववित दोषाविलं
किं स्यादित्थमहर्निशं सखि मनो दोलायते चिन्तया[१]।।

(कोई सखी नायिका से कहती है—) हे सखि! (नायक की) नम्रता वही है, वही वाणी है, वही क्रीड़ा-सम्बन्धी क्रियाएं हैं, वही भय है, पूर्व प्रेम के अनुरूप वही मधुर नर्मव्यापार है, फिर भी अपने प्रियतम का अप्रिय चाहने वाली आप उसे दोष कलुषित ही बताती हैं। इस प्रकार दिन-रात आपका मन चिन्ता से दोलायमान रहता है। इससे क्या लाभ है?

केशव ने प्रकाश दक्षिण का जो उदाहरण दिया है वह श्रृंगारतिलक के उदाहरण के भाव से मिलता है।

चितचोप चितैबे की तैसिये है अरु तैसिये भांति उरात घनै।
अरु तैसेई कोमल बोल गुपाल के मोहत हैं तिहिं भांति मनै।
गुन तैसेई, हास-बिलास सबै हुते तैसेई केसव कौन गनै ।
सखि तू कहै आनवधू के अधीन हैं सो परतीक किधौं सपनै[२]।।

श्रृंगारतिलक में जो सामने प्रिय बोलता है और पीठ पीछे अत्यन्त अप्रिय कार्य करता है, अपराध करने पर भी चेष्टाओं से वैसा ज्ञान नहीं होता, वह शठ नायक कहा गया है। आचार्य केशव ने भी शठ नायक का लक्षण श्रृंगारतिलक के अनुसार ही दिया है—

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- ८, १।३२
२- रसिकप्रिया : पृ०- ६६, ३।६

प्रियं वक्ति पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम् ।
मुक्तापराधचेष्टश्च शठोऽसौ कथितो यथा[1] ।।

मुहं मीठी बातें कहै, निपट कपट जिय जानि ।
जाहि न डरु अपराध को सठ करि ताहि बखानि[2] ।।

श्रृंगारतिलक में अपराध करके भी निःशङ्क रहने वाला (नायिका के हाथ से) मार खाकर भी निर्लज्ज रहने वाला और अपराध पकड़ा जाने पर भी झूठ बोलने वाला (पुरुष) धृष्ट नायक कहा गया है । केशव के धृष्ट नायक का लक्षण श्रृंगारतिलक के अनुरूप ही है—

निःशङ्कः कृतदोषोऽपि निर्लज्जस्ताडितोऽपि सन् ।
मिथ्यावाग्दृष्टदोषोऽपि धृष्टोऽयं कथितो यथा[3] ।।

लाज न गारिहु मार की, छाँडि दई सब त्रास ।
देख्यौ दोष न मानहीं, धृष्ट सु कहियै तास[4] ।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार नायिकाएं तीन प्रकार की होती हैं—

स्वकीया परकीया च सामान्यवनिता तथा ।
कलाकलापकुशलास्तिस्रस्तस्येह नायिकाः[5] ।।

आचार्य केशव ने नायिकाओं के धर्मानुसार उपरोक्त तीन भेद ही स्वीकार किए हैं—

१- श्रृंगारतिलक : पृ० - ८, २।३३
२- रसिकप्रिया : पृ० - ६७, २।११
३- श्रृंगारतिलक : पृ० - ६, १।३६
४- रसिकप्रिया : पृ० - ६६, २।१४
५- श्रृंगारतिलक : पृ० - ११, १।४६

ता नायक की नायिका, ग्रंथनि तीनि प्रमान ।
स्वीया परकीया अवर, स्वीया- परकीया न[1]।।

शृंगारतिलक के अनुसार स्वकीया नायिका सुख, दु:ख तथा मरण में नायक का साथ नहीं छोड़ती —

संपत्तौ च विपत्तौ च मरणे या न मुञ्चति ।
सा स्वीया तां प्रति प्रेम जायते पुण्यकारिण:[2]।।

पौराचाररता साध्वी क्षमार्जवविभूषिता ।
मुग्धा मध्या प्रगल्भा च स्वकीया त्रिविधा मता[3]।।

पौर (नगरीय) आचार में तत्पर, साधु स्वभावयुक्त, क्षमा एवं सरलता से सुशोभित नायिका स्वकीया कहलाती है। यह मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन प्रकार की होती है।

केशव ने शृंगारतिलक में वर्णित स्वकीया के लक्षण को निम्न शब्दों में स्वीकार किया है—

संपति बिपति जो मरनहू, सदा एक अनुहारि ।
ताहि स्वकीया जानिये, मन- बच- कर्म बिचारि ।।
मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ गति, तिनको तीनि बिचारि ।
एक एक की जानियहु, चारि चारि अनुहारि[4] ।।

रुद्रभट्ट के अनुसार नववधू मुग्धा (कहलाती है) वह तीन प्रकार की होती है—

१- रसिकप्रिया : पृ०- ७५, ३।१४

२- शृंगारतिलक : पृ०- २३, १।८६

३- ,, पृ०- ११, १।४७

४-रसिकप्रिया : पृ०- ७५, ३।१५- १६

(१) नवयौवनविभूषिता

(२) नवानङ्गरहस्या अर्थात् जिसके लिए काम का रहस्य नया हो और

(३) लज्जाप्रायरति अर्थात् जो रति में विशेष लज्जा का अनुभव करे।

मुग्धा नववधूस्तत्र नवयौवनभूषिता।

नवानङ्गरहस्या च लज्जाप्रायरतिर्यथा[1]।।

आचार्य केशव ने मुग्धा के चार भेद स्वीकार किए हैं—

नवलबधू नवजोबना, नवलअनंग नाम।

लज्जा लिये जु रति करै, लज्जाप्राय सु बाम[2]।।

रुद्रभट्ट ने मुग्धा के नवलवधू नामक भेद को स्वीकार नहीं किया है। केशव ने मुग्धा-शयन तथा मुग्धा के सुख का जो वर्णन किया है वह शृंगारतिलक में नहीं है। केशव ने मुग्धा के मान का भी वर्णन किया है वह शृंगारतिलक के मुग्धा के मान से नहीं मिलता है। शृंगारतिलक में मध्या नायिका के चार भेद बताए गए हैं—

आरूढयौवना मध्या प्रादुर्भूतमनोभवा।

प्रगल्भवचना किं चिद्विचित्रसुरता यथा[3]।।

आरूढयौवना, प्रादुर्भूतमनोभवा, किंचित्प्रगल्भवचना और विचित्रसुरता नायिकाएं मध्या (कहलाती हैं)

केशव ने भी मध्या नायिका के ये ही चार भेद स्वीकार किए हैं—

१- शृंगारतिलक : पृ०- १२, १।४८

२- रसिकप्रिया : पृ०- ६५, ३।१९

३- शृंगारतिलक : पृ०- १५, १।५८

मध्या आरूढ़जोबना, प्रगल्भबचना जानि ।

प्रादुर्भूतमनोभवा, सुरतिबिचित्रा आनि[1]।।

केशव ने मध्या नायिका के इन चारों भेदों के जो उदाहरण दिए हैं वे शृंगारतिलक से नहीं मिलते हैं। केशव ने सात बहिरति तथा सात अंतररति का वर्णन किया है वह भी शृंगारतिलक में वर्णित नहीं है। इसके अतिरिक्त केशव द्वारा किया गया सोलहशृंगार तथा सुरतांत का वर्णन भी शृंगारतिलक में नहीं है।

शृंगारतिलक में मध्या के तीन भेद किए गये हैं—

सा धीरा वक्ति वक्रोक्त्या प्रियं कोपात्कृतागसम् ।

मध्या वदत्युपालम्भैरधीरा परुषं तथा[2] ।।

(मध्या नायिकाओं में) धीरा वह है जो अपराधी प्रिय से क्रोध से वक्रोक्ति के द्वारा बोलती है। मध्या वह है जो उपालम्भपूर्ण वचनों से बोलती है,और अधीरा कटु वचन बोलती है। आचार्य केशव ने भी मध्या नायिका के ये ही भेद व लक्षण कहे हैं—

सिगरी मध्या तीन बिधि, धीरा और अधीर ।

धीराधीरा तीसरी, बरनत हैं कबि धीर ।

धीरा बोलै बक्र बिधि, बानी बिषम अधीर ।

प्रिय सों देइ उराहनो, सो धीरा न अधीर[3]।।

आचार्य केशव ने धीरादि के जो उदाहरण दिए हैं वे शृंगारतिलक के अनुसार नहीं हैं।

१- रसिक प्रिया : पृ०- ८२, ३।३२

२- शृंगारतिलक : पृ०- १७, १।६५

३ - रसिकप्रिया : पृ०- ८७, ३।४५,४६

श्रृंगारतिलक के अनुसार प्रगल्भा नायिका लब्धायति, समस्तरतिकोविदा, आक्रान्तनायका और विराजद्विभ्रमा (चार प्रकार की) होती हैं ।

लब्धायति: प्रगल्भा स्यात्समस्तरतिकोविदा ।
आक्रान्तनायका बाढं विराजद्विभ्रमा यथा[1] ।।

केशव ने भी प्रौढ़ा नायिका के उपरोक्त चार भेद ही स्वीकार किए हैं—

सुनि समस्तरस कोबिदा, चित्तविभ्रमा जाति ।
अति आक्रामित नाइका, लब्धायति शुभ भांति[2] ।।

केशव ने प्रौढ़ा नायिका के इन भेदों के जो उदाहरण दिए हैं वे श्रृंगारतिलक से नहीं मिलते हैं । इसके अतिरिक्त केशव ने इन भेदों के अलग- अलग लक्षण भी दिए हैं । श्रृंगारतिलक में इन भेदों के अलग- अलग लक्षण नहीं दिए गए हैं,। सीधे उदाहरण ही दे दिए गए हैं ।

श्रृंगारतिलक में धीरा प्रगल्भा वह है जो उसके (नायक के) अपराध करने पर भी क्रोध से उसका आदर करती है । (क्रोध के) आकार को छिपा करके वह सुरत कार्य में उदासीन हो जाती है ।

कृतदोषे ऽपि सा धीरा तस्मिन्नाद्रियते रुषा ।
आकारसंवृति चापि कृत्वोदास्ते रतौ यथा[3] ।।

केशव द्वारा दिया गया प्रौढ़ा धीरा का लक्षण भी इसी प्रकार है—

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- १८, १।६६

२- रसिकप्रिया : पृ०- ८६, ३।५०

३- श्रृंगारतिलक : पृ०- २०, १।७६

आदर मांझ अनादरै, प्रकट करै हित होइ ।

आकृति आप दुरावई, प्रौढ़ा धीरा सोइ[1]।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार प्रगल्भा के मध्या प्रगल्भा व्यङ्ग्य भरे अप्रिय लगने वाले प्रिय वचनों से नायक पर चोट करती है, लेकिन अधीरा प्रगल्भा क्रोध से तर्जना देकर प्रिय को मारती है ।

मध्या प्रतिभिनत्येनं सोल्लुण्ठैः साधुभाषितैः ।

अधीरा तु रुषा हन्ति संतर्ज्य दयितं यथा[2]।।

केशव ने भी प्रौढ़ा- धीरा- धीरा तथा प्रौढ़ा- अधीरा के उपरोक्त लक्षण ही दिए हैं—

पति को अति अपराध गनि, हतन कहैं हित मानि ।

कहत अधीरा प्रौढ़ तिहि, केसवदास बखानि ।।

मुख रूखी बातैं कहै, जिय में पिय की भूख ।

धीरा धीरा जानिये, जैसो मीठी ऊख[3] ।।

श्रृंगारतिलक में अन्यकीया दो प्रकार की होती हैं—कन्या और ऊढा । दोनों ही प्रिय होती हैं, वे देखने या सुनने मात्र से भी कामातुर हो जाती हैं ।

अन्यकीया द्विधा प्रोक्ता कन्योढा चेति ते प्रिये ।

दर्शनाच्छ्रवणाद्वापि कामार्ते भवतो यथा[4] ।।

१- रसिकप्रिया : पृ० - ६२, ३।५६

२- श्रृंगारतिलक : पृ०- २१, १।७६

३- रसिकप्रिया : पृ०- ६४- ६५, ३।६३, ६५

४- श्रृंगारतिलक : पृ० - २३, १।८७

आचार्य केशव ने भी परकीया के ऊढ़ा और अनूढ़ा दो भेद स्वीकार किए हैं। केशव की अनूढ़ा शृंगारतिलक की कन्या नायिका ही है।

परकीया द्वै भांति पुनि, ऊढ़ा एक अनूढ़।
जिन्हैं देखि सुनि होत बस, संतत मूढ़ अमूढ़[१]।।

शृंगारतिलक में कन्या का जो उदाहरण दिया गया है उसका भाव केशव के अनूढ़ा के उदाहरण के भाव से मिलता है। फिर भी केशव का उदाहरण अधिक प्रभावशाली है।

किमपि ललितैः स्निग्धैः किं चित्किमप्यभिकुञ्चितैः
किमपि वलितैः कन्दर्पपूर्णसद्भिरिवेक्षणैः।
अभिमतमुखं वीक्षां चक्रे नवाङ्गनया तथा
ललितकुशलो ऽप्यालीलोको यथातिविसिस्मिये[२] ।।

नयी नायिका ने अपने प्रिय को कुछ सुन्दर, स्निग्ध, कुछ टेढ़ी कुछ चंचल और कामदेव के बाणों का उपहास करने वाली नजरों से कुछ इस प्रकार देखा कि विलास कुशल सखियां भी अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गईं।

केशव द्वारा दिया गया उदाहरण निम्नवत् है :

बैठी हुती ब्रजनारिन में बनि श्री वृषभानुकुमारि समागी।
खेलति ही सखि चौपर चारु भई तिहिं खेल खरी अनुरागी।
पीछे तें केशव बोलि उठे सुनि कै चित चातुरी आतुरी जागी।
जानी न काहू कबै हरि के सुर- मारगहीं सर सी दृग लागी[३]।।

१- रसिकप्रिया : पृ०- ६६, ३।६८

२- शृंगारतिलक : पृ०- २४, १।८८

३- रसिकप्रिया : पृ०- ६६, ३।७१

शृंगारतिलक के अनुसार प्रिय का दर्शन साक्षात् चित्र में या स्वप्न में तीन प्रकार से होता है। उसी प्रकार उसका श्रवण भी देश में, समय पर या हाव-भाव से होता है।

साक्षाच्चित्रे तथा स्वप्ने तस्य स्याद्दर्शनं त्रिधा।
देशे काले च भंग्या च श्रवणं चास्य तथथा[1] ॥

आचार्य केशव ने उपर्युक्त श्लोक के आधार पर चार प्रकार का दर्शन स्वीकार किया है—

एक जु नीके देखिये, दूजें दरसन चित्र।
तीजे सपने देखिये चौथें श्रवननि मित्र[2]॥

केशव ने इन दर्शनों के प्रकाश एवं प्रच्छन्न भेद करके नायक एवं नायिकाओं की दशाओं का अलग-अलग उदाहरण द्वारा वर्णन किया है जो शृंगारतिलक में नहीं मिलता है। शृंगारतिलक में 'चेष्टा' का वर्णन है परन्तु यह संक्षिप्त है। केशव ने 'दम्पति चेष्टा' का अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन किया है। केशव का यह चेष्टा वर्णन शृंगारतिलक से नहीं मिलता। केशव ने रसिकप्रिया के पंचम प्रभाव में स्वयंदूतत्व का वर्णन किया है, जिसका वर्णन शृंगारतिलक में नहीं है।

शृंगारतिलक में अवस्था के अनुसार आठ प्रकार की नायिकाएं मानी गई हैं—

स्वाधीनपतिकोत्का च तथा वासकसज्जिका।
अभिसंधिता विप्रलब्धा खण्डिता चाभिसारिका ॥

१- शृंगारतिलक : पृ०- २४, १।६२

२- रसिकप्रिया : पृ०- ९६, ४।२

प्रोषितप्रेयसी चैव नायिका: पूर्वसूचिता: ।
ता एवात्र भवन्त्यष्टावस्थाभि: पुनर्यथा[1]।।

आचार्य केशव ने भी ये ही आठों प्रकार माने हैं :

स्वाधिनपतिका, उत्कहीं, बासकसज्जा नाम ।
अभिसंधिता बखानिये, और खंडिता बाम ।
केशव प्रोषित प्रेयसी लब्धाविप्र सु आनि ।
अष्टनायिका ये सकल अभिसारिका सु जानि[2]।।

रुद्रभट्ट के अनुसार जिसके रतिगुण से आकृष्ट पति कभी संग नहीं छोड़ता और जो विचित्र हाव-भाव से युक्त तथा पति में आसक्त रहती है, उसे स्वाधीनपतिका कहते हैं ।

यस्या रतिगुणाकृष्ट: पति: पार्श्वं न मुञ्चति ।
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्वाधीनपतिर्यथा[3] ।।

आचार्य केशव ने भी स्वाधीनपतिका के ये ही लक्षण बताए हैं ।

केसव जाके गुन बंध्यो, सदा रहै पति संग ।
स्वाधिनपतिका तासु कों, बरनत प्रेम-प्रसंग[4]।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार जिसके संकेतस्थल पर प्रियतम नहीं आता, जो उसके न आने के कारण को व्याकुल होकर सोचती है, उसे उत्का कहते हैं ।

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- ३४, १।१३१-१३२
२- रसिकप्रिया : पृ०- १४५, ७।२-३
३- श्रृंगारतिलक : पृ०- ३४, १।१३३
४- रसिकप्रिया : पृ०- १४६, ७।४

उत्का भवति सा यस्या: संकेतं नागत: प्रिय: ।

तस्यानागमने हेतुं चिन्तयत्याकुला यथा[1] ।।

केशव द्वारा दिए गये उत्का के लक्षण श्रृंगारतिलक के अनुसार ही है—

कौनहुं हेत न आइयो, प्रीतम जाके धाम ।

ताकों सोचति सोचि हिय, केसव उत्का बामे[2] ।।

उत्का नायिका का जो उदाहरण केशव ने दिया है वह श्रृंगारतिलक की अपेक्षा अधिक भावपूर्ण तथा स्वाभाविकता लिए हुए है ।

श्रृंगारतिलक के अनुसार वासकसज्जा नायिका वह है, जो अपने अंगों एवं रतिकक्ष को सजाकर पति के आगमन का निश्चय करके द्वार की ओर आंख लगाये रहती है :

भवेद्वासकसज्जासौ सज्जिताङ्गरतालया ।

निश्चित्यागमनं भर्तुर्द्वारेक्षणपरा यथा[3] ।।

केसव के वासकसज्जा का भी यही लक्षण है :

वासकसज्जा होइ सो, कहि केसव सबिलास ।

चितवै रतिगृहद्वार त्यों पिय-आपन की आस[4] ।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार जो (पैरों पर) पड़े हुये प्रिय को भी पहले क्रोध से झटक देती है और फिर उसके बिना बेहाल हो जाती है, उसे अभिसन्धिता कहते हैं ।

१- श्रृंगारतिलक : पृ० - ३५, १।१३५

२- रसिकप्रिया : पृ० - १४७, ७।७

३- श्रृंगारतिलक : पृ० - ३६, १।१३७

४- रसिकप्रिया : पृ० - १४८, ७।१०

निरस्तो मन्युना कान्तो नमन्नपि यया पुरा ।

दु:स्थिता तं विना साभिसंधिता कथिता यथा[1]।।

केशव द्वारा दिया गया अभिसंधिता नायिका का लक्षण श्रृंगारतिलक के अनुसार ही है :

मान मनावतहूं करै, मानद को अपमान ।

दूनौ दुख तिन बिन लहै अभिसंधिता बखान[2]।।

श्रृंगारतिलक की खण्डिता नायिका वह है जिसका पति कहीं से नहीं आता—

कुतश्चिन्नागतो यस्या उचिते वासके प्रिय: ।

तदनागमसंतप्ता खण्डिता सा मता यथा[3]।।

केशव की खण्डिता नायिका का पति रात्रि व्यतीत होने पर प्रात: लौटकर आता है :

आवन कहि आवै नहीं, आवै प्रातम प्रात ।

जाके घर सो खंडिता कहै जु बहु बिधि बात[4]।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार प्रोषितपतिका वह नायिका कहलाती है जिसका पति लौटने की अवधि का निर्देश करके किसी कारण विदेश चला जाता है ।

कुतश्चित्कारणाद्यस्या: पतिर्देशान्तरं गत: ।

दत्त्वावधिं भृशार्ता सा प्रोषितप्रेयसी यथा[5]।।

---

१ - श्रृंगारतिलक : पृ० - ३६, १।१३६

२ - रसिकप्रिया : पृ० - १४६, ७।१३

३ - श्रृंगारतिलक : पृ० - ३७, १।१४३

४ - रसिकप्रिया : पृ० - १५०, ७।१६

५ - श्रृंगारतिलक : पृ० - ३६, १।१४७

केशव की प्रोषितपतिका का लक्षण भी उपरोक्त ही है—

जाको दै अवधि, गयो कौनहूं काज ।

ताकों प्रोषितप्रेयसी, कहि बरनत कबिराज[१]।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार जिस नायिका का प्रिय स्वयं दूती भेजकर और संकेतस्थल बताकर भी नहीं आता, उसके (नायक के) बिना बेहाल वह (नायिका) विप्रलब्धा कहलाती है ।

प्रेष्य दूतीं स्वयं दत्वा संकेतं नागत: प्रिय: ।

यस्यास्तेन विना दु:स्था विप्रलब्धा तु सा यथा[२]।।

केशव ने भी विप्रलब्धा का यही लक्षण दिया है—

दूती सौं संकेत कहि लैन पठाई आप ।

लब्धविप्र सो जानियै, अनआए संताप[३]।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार जो बहुत अधिक मस्ती या कामभाव के कारण निर्लज्ज होकर प्रिय के पास जाती है, उसे अभिसारिका कहते हैं—

या निर्लज्जीकृता बाढ मदेन मदनेन वा ।

अभियाति प्रियं साभिसारिकेति मता यथा[४]।।

केशव ने अभिसारिका नायिका का भी लक्षण श्रृंगारतिलक के आधार पर ही दिया है—

१- रसिकप्रिया : पृ०- १५२, ७।१६

२- श्रृंगारतिलक : पृ०- ३७, १।१४१

३- रसिकप्रिया : पृ०- १५१, ७।२२

४- श्रृंगारतिलक : पृ०- ३८, १।१४५

हित तें के मद मदन तें, पिय पै मिलि जु जाइ ।
सो कहिये अभिसारिका, बरनी त्रिबिध बनाइ[1] ।।

केशव ने अभिसारिका नायिका के प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका तथा कामाभिसारिका नामक तीन भेद किए हैं जो कि श्रृंगारतिलक में नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त केशव ने इन अष्ट नायिकाओं का वर्णन प्रच्छन्न तथा प्रकाश भेद से किया है जबकि श्रृंगारतिलक में ये भेद नहीं मिलते हैं।

श्रृंगारतिलक के अनुसार कुलजा (स्वकीया) अभिसारिका अपने को खूब ढंक करके, डरी हुई, लज्जा के साथ नायक के कक्ष में जाती है, किन्तु परकीया अभिसारिका चारों ओर यह देखकर कि उसे कोई देख नहीं रहा है, नायक के पास जाती है।

कुलजा संवृता त्रस्ता सव्रीडा तद्गृह व्रजेत् ।
नायकं परनारी तु समन्तादनपेक्षिता[2] ।।

केशव द्वारा दिया गया स्वकीया अभिसारिका का लक्षण श्रृंगारतिलक से मिलता है परन्तु परकीया अभिसारिका का लक्षण श्रृंगारतिलक से नहीं मिलता है।

अति सलज्ज पग मग धरै, चलत बधुन के संग ।
स्वकीया को अभिसार यह, भूषन भूषित अंग[3] ।।

रुद्रभट्ट ने इन सभी नायिकाओं को उत्तम, मध्यम, और अधम के भेद से तीन प्रकार की माना है। इस तरह से रुद्रभट्ट ने नायिकाओं के ३८४ भेद माने हैं।

पुनश्च तास्त्रिधा सर्वा उत्तमामध्यमाधमा: ।
इत्थं शतत्रयं तासामशीतिश्चतुरुत्तरा[4] ।।

१- रसिकप्रिया : पृ० - १५४, ७।२५
२- श्रृंगारतिलक : पृ० - ४०, १।१५२
३- रसिकप्रिया : पृ० - १५४, ७।२६
४- श्रृंगारतिलक : पृ० - ४०, १।१५५

केशव ने भी उत्तम, मध्यम और अधम भेद स्वीकार किया है परन्तु उन्होंने ३८४ भेद के स्थान पर ३६० भेद ही स्वीकार किया है।

उत्तम मध्यम अधम अरु, तीन तीन बिधि जान।
प्रकट तीन सौ साठ तिय, केसवदास बखान[१]।।

शृंगारतिलक के अनुसार जो नायक के दोष के अनुरूप क्रोध करती है, फिर उसके मनाने पर प्रसन्न हो जाती है, पति से बहुत प्यार करती है और गुणों द्वारा आकृष्ट की जा सकती है, उसे उत्तमा कहते हैं।

दोषानुरूपकोपा यानुनीता च प्रसीदति।
रज्यते च भृशं नाथे गुणहार्योत्तमेति सा[२]।।

केशव की उत्तमा नायिका भी शृंगारतिलक के अनुरूप ही है—

मान करै अपमान तें, तजै मान तें मान।
पिय देखें सुख पावई, ताहि उत्तमा जान[३]।।

शृंगारतिलक के अनुसार नायक के थोड़े दोष पर भी जो क्रोध करती है, बहुत कष्ट से सन्तुष्ट होती है और किसी कारणवश प्यार करती है, उसे मध्यमा कहते हैं।

दोषे स्वल्पे ऽपि या कोपं धत्ते कष्टेन तुष्यति।
प्रयाति कारणाद्रागं मध्यमा सा मता यथा[४]।।

१- रसिकप्रिया : पृ०- १५८, ७।३४

२- शृंगारतिलक : पृ०- ४०, १।१५६

३- रसिकप्रिया : पृ०- १५८, ७।३५

४- शृंगारतिलक : पृ०- ४१, १।१५८

रसिकप्रिया की मध्यमा नायिका का लक्षण भी उपर्युक्त ही है :

मान करै लघु दोष तें छोड़ै बहुत प्रनाम ।
केसवदास बखानिये ताहि मध्यमा बाम[1] ।।

रुद्रभट्ट के मतानुसार जो बिना किसी दोष के ही पति पर क्रोध करती है और बिना मनाये ही प्रेम करने लगती है, बिना किसी कारण के प्रसन्न होती है और जिसका चंचल चित्त होता है, उसे अधमा कहते हैं ।

या कुप्यति विना दोषैः स्निह्यत्यनुनयं विना ।
निर्हेतुकप्रवृत्तिश्च चलचित्तापि साधमा[2] ।।

केशव की अधमा भी इन्हीं लक्षणों से युक्त है ।

रूठै बारहि बार जो, तूठै बेही काज ।
ताही सौं अधमा सबै, कहि बरनत कबिराज[3] ।।

श्रृंगारतिलक के दूसरे परिच्छेद में विप्रलम्भ श्रृंगार का विस्तृत वर्णन है ।

विप्रलम्भाभिधानोऽयं श्रृंगारः स्याच्चतुर्विधः
पूर्वानुरागो मानाख्यः प्रवासः करुणात्मकः[4] ।।

यह विप्रलम्भ (१) पूर्वानुराग, (२) मान, (३) प्रवास और (४) करुणात्मक (करुणा) भेद से चार प्रकार का होता है । केशव ने रसिकप्रिया के आठवें प्रभाव में विप्रलम्भ के उपरोक्त चार भेद ही स्वीकार किए हैं ।

१- रसिकप्रिया : पृ०- १५६, ७।३७

२- श्रृंगारतिलक : पृ०- ४२, १।१६०

३- रसिकप्रिया : पृ०- १६०, ७।३६

४- श्रृंगारतिलक : पृ०- ४४, २।१

विप्रलंभ सिंगार को चारि प्रकार प्रकास ।
प्रथम पूर्व- अनुराग पुनि, करुना, मान, प्रवास[1]।।

दंपत्योर्दर्शनादेव प्रूढगुरु रागयो: ।
ज्ञेय: पूर्वानुरागो ऽयमप्राप्तौ स मेथथा[2]।।

रुद्रभट्ट का मत है कि परस्पर दर्शन से ही प्रूढ़ और महान् प्रेम वाले नायक और नायिका का पूर्वानुराग समझना चाहिए । यह (पूर्वानुराग) अप्राप्ति (प्राप्ति या मिलने से पूर्व की अवस्था) में होता है ।

केशव के पूर्वानुराग का भी यही लक्षण है :

देखतहीं दुति दंपतिहि, उपजि परत अनुराग ।
बिन देखे दुख देखिये, सो पूरब अनुराग[3] ।।

पूर्वानुराग का जो उदाहरण केशव ने दिया है वह श्रृंगारतिलक की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है ।

श्रृंगारतिलक के अनुसार दर्शन और बातचीत से बढ़े हुए प्रेम से व्याकुल चित्त वाले नायक और नायिका की अप्राप्ति की दशा में काम की दस दशाएं होती हैं—

आलोकालापसंरूढरागाकुलितचेतसो: ।
तयोर्मेदसंप्राप्तौ दशावस्थ: स्मरो यथा[4]।।

केशव ने भी दस दशाओं को स्वीकार किया है—

१- रसिकप्रिया : पृ०- १६१, ८।२

२- श्रृंगारतिलक : पृ०- ४४, २।२

३- रसिकप्रिया : पृ०-१६१,८।३

४- श्रृंगारतिलक : पृ०- ४५, २।६

अवलोकनि आलाप तें मिलिबे कौं अकुलाहिं ।
होत दसा दस बिनु मिले केसव क्यों कहि जाहिं[1] ।।

ये दस अवस्थाएं हैं—

अभिलाषो ऽथ चिन्ता स्यात्स्मृतिश्च गुणकीर्तनम्
उद्वेगो ऽथ प्रलाप: स्यादुन्मादो व्याधिरेव च ।
जड़ता मरणं चैव दशमी जायते क्रमम् ।
असंप्राप्तौ भवन्त्येतास्तयोर्दश दशा यथा[2] ।।

केशव ने भी उपर्युक्त दस दशाओं को स्वीकार किया है :

अभिलाष सु चिंता गुनकथन स्मृति उद्वेग प्रलाप ।
उन्माद व्याधि जड़ता भए होत मरन पुनि आप[3] ।।

शृंगारतिलक के अनुसार जिस अवस्था में संकल्प से व्याकुल चित्त होने के कारण मिलन की आशा से उद्योग (प्रयास) होता है उसे अभिलाष कहते हैं ।

व्यवसायो भवेयत्र बाढं तत्संगमाशया ।
संकल्पाकुलचित्तत्वात्सो ऽभिलाष: स्मृतो यथा[4] ।।

केशव भी मिलने की इच्छा को अभिलाष कहते हैं—

नैन बैन मन मिलि रहै, चाहै मिलन सरीर ।
कहि केसव अभिलाष यह बरनत है मतिधीर[5] ।।

---

१ - रसिकप्रिया : पृ० - १६३, ८।८
२ - शृंगारतिलक : पृ० - ४५, २।७८
३ - रसिकप्रिया : पृ० - १६३, ८।६
४ - शृंगारतिलक : पृ० - ४५, २।६
५ - रसिकप्रिया : पृ० - १६४, ८।१०

' वह प्रिय कैसे प्राप्त होगा,' उसकी प्रसन्नता के लिए मैं क्या करूं ' वह मेरे वश में कैसे हो ' इस प्रकार के विचारों को चिन्ता कहते हैं ।

कथं स वल्लभः प्राप्यः किं कुर्यां तस्य तुष्टये ।
कथं ममैदसौ वश्य इति चिंता भवेद्यथा[1] ।।

केसव के द्वारा दिया गया चिन्ता का लक्षण श्रृंगारतिलक के अनुसार ही है—

कैसें कै मिलिये, मिलें हरि कैसे बस होइ ।
यह चिन्ता चित चेत कै, बरनत हैं सब कोइ[2] ।।

रुद्रभट्ट के अनुसार ' सुन्दरता, हंसी और बातचीत करने में उसके समान दूसरा युवक नहीं है । इस प्रकार की बात जब हो, तो उसे गुणकीर्तन कहा जाता है ।

सौन्दर्यहसितालापैर्नास्त्यन्यस्तत्समो युवा ।
इति वाणी भवेयत्र तदिदं गुणकीर्तनम्[3] ।।

केशव के गुणकथन का लक्षण श्रृंगारतिलक से मिलता है—

जहं गुनगन गुनि देह्दुति, बरनत बचन बिसेषि ।
ताकहं जानहु गुनकथन, मनमथ- मथन सु लेखि[4] ।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार जब अन्य कार्यों के प्रति द्वेष होता है, मन उसी (नायक) में एकाग्र रहता है, श्वासों एवं मनोरथों से ही चेष्टा होती है, तो ऐसी अवस्था को स्मृति या स्मरण कहते हैं ।

द्वेषो यत्रान्यकार्येषु तदैकाग्र्यं च मानसम् ।
श्वासैर्मनोरथैश्चापि चेष्टा तत्स्मरणं यथा[5] ।।

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- ४६, २।११
२- रसिकप्रिया : पृ०- १६६, ८।१५
३- श्रृंगारतिलक : पृ०- ४७, २।१५
४- रसिकप्रिया : पृ०- १६६, ८।२०
५- श्रृंगारतिलक : पृ०- ४७, २।१३

केशव ने भी स्मृति का लक्षण कुछ इसी प्रकार दिया है :

और कछू न सुहाइ जहं, भूलि जाहि सब काम ।
मन मिलिबे की कामना ताही स्मृति है नाम[१]।।

रुद्रभट्ट के मतानुसार जब न कुछ अच्छा लगे न बुरा, कुछ भी आनन्ददायक न मालूम हो, जीने में भी घुटन मालूम हो तो उस अवस्था को उद्वेग कहते हैं ।

'यस्मिन्नभ्यमरम्यं' स्यान्न च हृष्याय किंचन ।
प्रद्वेषः प्राणितव्येऽपि स उद्वेगः स्मृतो यथा[२]।।

केशव के उद्वेग का लक्षण रुद्रभट्ट के लक्षण से मिलता है ।

दुखदायक ह्वै जात जहं सुखदायक अनयास ।
सो उद्वेग दसा दुसह, जानहु केसवदास[३] ।।

शृंगारतिलक के अनुसार अत्यन्त उत्सुकता से जब मन बहुत अधिक इधर-उधर घूमता है और प्रियतम से सम्बन्धित ही वाणी निकलती है, तो उस अवस्था को 'प्रलाप' कहते हैं—

बम्भ्रमीति मनो यस्मिन्नत्यौत्सुक्यादितस्ततः
वाचः प्रियाश्रिता एव स प्रलापः स्मृतो यथा[४]।।

केशव द्वारा दिया गया प्रलाप का लक्षण :

भ्रंवत रहै मन भौंर ज्यों, है तन-मन-परिताप ।
बचन कहै प्रिय पक्ष सों, तासों कहत प्रलाप[५]।।

१- रसिकप्रिया : पृ०-१७१, ८।२५

२- शृंगारतिलक : पृ०-४८, २।१७

३- रसिकप्रिया : पृ०-१७३, ८।३०

४- शृंगारतिलक : पृ०-४८, २।१६

५- रसिकप्रिया : पृ०-१७५, ८।३५

शृंगारतिलक के अनुसार जब श्वास (दीर्घनि:श्वास), रोने, कम्पन, जमीन पर कुछ लिखने इत्यादि से उपलक्षित व्यापार होते हैं, तो उस अवस्था को उन्माद कहते हैं ।

श्वासप्ररोदनोत्कम्पवसुधोल्लेखनैरपि ।
व्यापारो जायते यत्र स उन्माद: स्मृतो यथा[1]।।

केशव के उन्माद का लक्षण शृंगारतिलक से मिलता है—

तरकि उठै पुनि उठि चलै, चितै रहै मुख देखि ।
सो उन्माद जनावहीं, रोवै हंसै बिसेषि[2]।।

शृंगारतिलक के अनुसार जिसमें बहुत सन्ताप और कष्ट होता है, दीर्घ नि:श्वास निकलते हैं, शरीर कृशित हो जाता है, वह व्याधि नामक आठवीं अवस्था है ।

संतापवेदनाप्रायो दीर्घश्वाससमाकुल: ।
तनूकृततनुर्व्याधिरष्टमो जायते यथा[3]।।

केशवदास के व्याधि का लक्षण शृंगारतिलक के अनुसार ही है—

अंग- बरन बिबरन जहां, अति ऊंचे उस्वास ।
नैननीर परिताप बहु, व्याधि सु केसवदास[4]।।

शृंगारतिलक के अनुसार बिना किसी बात के हुंकारी भरना, निश्चल- दृष्टि होना कृशता ये सब बातें जब हों तब जड़ता नामक अवस्था होती है ।

१- शृंगारतिलक : पृ०- ४६, २।२१
२- रसिकप्रिया : पृ०- १७८, ८।४०
३- शृंगारतिलक : पृ०- ४६, २।२३
४- रसिकप्रिया : पृ०- १८०, ८।४५

अकाण्डे यत्र हुंकारो दृष्टि: स्तब्धा गतास्मृत: ।
श्वास: समधिक: कार्श्यं जडतेयं स्मृता यथा[१] ।।

केशव द्वारा दिया गया जड़ता का लक्षण रुद्रभट्ट से मिलता है।

भूलि जाइ सुधि बुधि जहां, सुख दुख होइ समान ।
तासों जड़ता कहत हैं, केसवदास सुजान[२] ।।

रुद्रभट्ट के अनुसार यदि विभिन्न उपायों से भी कामबाण से आहत नायिका का (प्रिय से) समागम (मिलन) नहीं होता है, तो उसका ` मरण ` हो जाता है।

उपायैर्विविधैर्नार्या यदि न स्यात्समागम: ।
कन्दर्पशरभिन्नाया मरणं जायते तत:[३] ।।

केशव के मरण का लक्षण भी इसी प्रकार है—

बनै न क्योंहूं मिलन जहं, छलबल केसवदास ।
पूरन- प्रेम- प्रताप तें, मरन होत अनयास[४]।।

रुद्रभट्ट के अनुसार यह स्वभाव- सुन्दर स्थिति है, कि पहले स्त्री अनुरक्त हो, फिर उसके इशारों से पुरुष बाद में आसक्त हो।

पूर्वं नारी भवेद्रक्ता पुमान्पश्चात्तदिङ्गितै: ।
तत: संभोगलीलेति स्वभावसुभगा स्थिति:[५]।।

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५०, २।२५
२- रसिकप्रिया : पृ०- १८२, ८।४८
३- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५०, २।२७
४- रसिकप्रिया : पृ०- १८४, ८।५३
५- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५१, २।३१

आचार्य केशव ने भी स्त्रियों में रति की उत्पत्ति प्रथमतया स्वीकार की है :

रति उपजै रमनीन के, पहिलैं केसवदास ।

तिनको इंगित देखि सखि, करत सुप्रेम प्रकास[1] ।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार पुरुषों का अन्य स्त्री में आदर से या भय से भी छिप करके प्रेम करना सुन्दर है। सज्जनों में भी यह होता है।

बहुमानाद्भयाद्वापि नृणामन्यत्र योषिति ।

प्रच्छन्नकामिता रम्या सतामपि भवेद्यथा[2] ।।

केशव ने भी रसिकप्रिया में उपरोक्त बातों का वर्णन किया है :

अति आदर अति लोभ तें, अति संगति तें मित्त ।

साधुनिहू के होत हैं, केसव चंचल चित्त[3] ।।

रसिकप्रिया के नौवें प्रभाव में केशव ने `मान` का वर्णन किया है। केशव ने `मान` का जो लक्षण दिया है वह श्रृंगारतिलक से नहीं मिलता है। केशव ने पूर्णप्रेम के प्रभाव से अभिमान तथा अभिमान की छटा के उद्रेक से `मान` की उत्पत्ति स्वीकार किया है[4]। जबकि श्रृंगारतिलक में रुद्रभट्ट ने अन्य स्त्री के संग आदि दोष के कारण जब नायिका ईर्ष्या से नायक के प्रति विकार धारण करती है, तो उसे मान कहा है[5]।

१- रसिकप्रिया : पृ०- १८४, ८।५५

२- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५२, २।४२

३- रसिकप्रिया : पृ०- १८४, ८।५६

४- पूरन-प्रेम प्रताप तें, उपजि परत अभिमान । — रसिकप्रिया : पृ०-१८५, ९।१
   ताको छबि के छोभ तें, केसव कहियत मान ।।

५- स मानो नायिका यस्मिन्नीर्ष्यया नायकं प्रति ।
   धत्ते विकारमन्यस्त्रीसङ्गदोषवशाद्यथा ।।
   — श्रृंगारतिलक : पृ०- ५३, २।४४

श्रृंगारतिलक के अनुसार नायक का दोष देखकर उसके प्रति कामिनियों का मान प्राय: तीन प्रकार का होता है—

(१) गरीयान्(या गुरु), (२) मध्यम और (३) लघु ।।

स प्रायशो मतस्त्रेधा कामिनीनां प्रियं प्रति ।
अवेक्ष्य दोषमेतस्य गरीयान्मध्यमो लघु:[१]।।

केशव ने भी ` मान ` के उपरोक्त तीन प्रकार ही माने हैं—

प्रकटहि पिय प्रति मानिनी, गुरु लघु मध्यम मान ।
प्रकटहिं पाय प्रियानि प्रति, केसवदास सुजान[२] ।।

रुद्रभट्ट का मत है कि प्रिय के अन्य नारी के पास जाने पर, नखचिह्न स्वयं देखकर, उसका वस्त्र देखने पर, या नायक के मुंह से उसका नामोच्चारण सुनने पर नायिका का जो मान होता है, उसे गुरुमान कहते हैं ।

प्रतिनार्यां गते कान्ते स्वयं दृष्टे नखाङ्किते ।
तद्वासोदर्शने गोत्रस्खलिते च गुरुर्यथा[३]।।

केशव के गुरुमान का भी यही लक्षण है—

आन नारि के चिह्न लखि, अरु सुनि स्रवननि नाउं ।
उपजत है गुरुमान तहं, केसवदास सुभाउं[४] ।।

यहां यह उल्लेखनीय है कि केशव ने नायक में भी ` मान ` का होना स्वीकार किया है तथा नायक के लिए ` मान ` के तीनों प्रकारों का अलग- अलग

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५३, २।४६
२- रसिकप्रिया : पृ०- १८५, ६।२
३- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५४, २।४७
४- रसिकप्रिया : पृ०- १८५, ६।३

लक्षण दिया है जबकि शृंगारतिलक में केवल नायिका में ही ` मान ` का होना स्वीकार किया गया है नायक में नहीं । शृंगारतिलक के अनुसार प्रियतम को अन्य नायिका के साथ प्रेम से बात करते हुए देखकर तथा उसके दोष को किसी सखी के कहने पर (सुनकर) नायिका का जो मान होता है, उसे मध्यम मान कहते हैं ।

दृष्टे प्रियतमे रागादन्यया सह जल्पति ।
सख्याख्याते तथा दोषे मानो ऽयं मध्यमो यथा[1] ।।

मध्यममान का उपर्युक्त लक्षण केशव ने भी लिखा है :

बात कहत पिय और सों, देखै केसवदास ।
उपजत मध्यममान तहं, मानिनि के सविलास[2] ।।

रुद्रभट्ट ने किसी अन्य नायिका को विलासपूर्ण एवं फड़कती आँखों से देखते हुए प्रिय, अथवा कुछ अनमने हुए प्रिय पर नायिका का जो मान होता है उसे लघुमान कहा है ।

सविलासस्फुरच्चक्षुर्वीक्षमाणो ऽपरां प्रिये ।
किंचिदन्यमनस्के च जायते स लघुर्यथा[3] ।।

केशव ने भी लघुमान का यही लक्षण दिया है—

देखत काहू नारि- त्यों, देखै अपने नैन ।
तहं उपजत लघुमान कै, सुनैं सखी के बैन[4] ।।

१- शृंगारतिलक : पृ०- ५४, २।६५
२- रसिकप्रिया : पृ०- १६१, ६।१५
३- शृंगारतिलक : पृ०- ५४- ५५, २।५१
४- रसिकप्रिया : पृ०- १८८, ६।६

शृंगारतिलक में मानमोचन छः प्रकार के माने गये हैं— (१) साम, (२) दान, (३) भेद, (४) उपेक्षा, (५) प्रणति, (६) प्रसंगविभ्रंश

साम दानं च भेदः स्यादुपेक्षा प्रणतिस्तथा ।

तथा प्रसङ्गविभ्रंशो दण्डः शृङ्गारहा न तु[१] ।।

केशव ने मानमोचन के उपर्युक्त छः प्रकार ही बताए हैं—

मान तजहिं प्रीतम प्रिया, कहि केसव करि प्रीति ।

बरनि सुनाऊं सुनहु सब, मैं जु सुनी षट रीति[२]।।

सामदान भनि भेद पुनि, प्रनति उपेक्षा मानि ।

पुनि प्रसंग विध्वंस अरु, दंड होइ रस- हानि ।।

केशव ने साम का जो लक्षण दिया है वह शृंगारतिलक से नहीं मिलता है । केशव ने किसी भी प्रकार नायिका को मोहित कर लेने से जो मान छूट जाता है उसे ` साम ` की संज्ञा दी है[3]। जबकि शृंगारतिलक के अनुसार जहां नायक, ` हे सुन्दर भौंहोंवाली ! मैं दुष्ट होते हुए भी तुझ क्षमाशील के द्वारा पालन के योग्य हूं । ऐसा वाक्य कहता है, वहां उसे ( कथन को ) ` साम ` कहते हैं[४]।

शृंगारतिलक के अनुसार दान उसे कहते हैं, जब नायक किसी कारण को लक्ष्य करके नायिका को प्रसन्न करने के लिए गहने आदि देता है ।

१- शृंगारतिलक : पृ० - ५७, २।६२- ६३

२- रसिकप्रिया : पृ० - १६५, १०।१,२

३- ज्यों क्योंहू मन मोहिये, छूटि जाइ जहं मान ।
 सोई साम उपाय कहि, केशवदास बखान ।।
 —रसिकप्रिया : पृ० - १६५, १०।३

४- दुर्विनीतो ऽपि पाल्यो ऽहं त्वया सुभ्रु क्षमाभृता ।
 इति वाक्यं भवेद्यत्र तत्सामेति निगद्यते ।।
 — शृंगारतिलक : पृ० - ५७, २।६४

अलंकारादिकं दद्यान्नायको यत्र तुष्टये ।

उद्दिश्य कारणं किं चिद्दानं तत्स्याच्च तद्यथा[1]।।

केशव ने भी ` दान ` का इसी प्रकार लक्षण दिया है :

केसव कौनहुं व्याज- मिस, दै जु छुटावै मान ।

बचन- रचन मोंहि मनहिं, तासों कहियै दान[2]।।

रुद्रभट्ट के अनुसार, जब प्रियतम नायिका के खुश किए गये परिजनों को आकृष्ट करके उन्हीं के माध्यम से उसे प्राप्त करता है, तो इसे भेद कहते हैं ।

यस्मिन्परिजने तस्याः समावर्ज्य प्रसादितम् ।

ते नैव लभते कान्तां कान्तो भेदः स उच्यते[3]।।

केशव ने भी सखियों के द्वारा छुड़ाए गये मान को ` भेद ` की संज्ञा दी है-

सुख दैके सब सखिनि कहं, आपु लेइ अपनाइ ।

तब सु छुड़ावै मान को, बरनौं भेद बनाइ[4]।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार केवल दीनता का आश्रयण करके नायिका के चरणों में गिर जाना ही प्रणति (या नति) है । यह बात स्त्रियों को बहुत अभीष्ट एवं सुन्दर लगती है ।

केवलं दैन्यमालम्ब्य पादपातो नतिर्मता ।

अभीष्टा सा भृशं स्त्रीणां ललिता भवेद्यथा[5]।।

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५८, २।६६

२- रसिकप्रिया : पृ०- १६६, १०।६

३- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५८, २।६८

४- रसिकप्रिया : पृ०- १६६, १०।११

५- श्रृंगारतिलक : पृ०- ५६, २।७२

केशव ने भी प्रिय को प्रिया के पैरों पड़ने को 'प्रणति' माना है—

अति हित तें अति काम तें, अति अपराधहिं जानि ।

पाइ परै प्रीतम प्रिया, ताकों प्रनति बखानि[1] ।।

रुद्रभट्ट ने, प्रसन्न करने के ढंग को छोड़कर जब नायक अन्यार्थसूचक वाक्यों से नायिका को प्रसन्न करता है, तो इस उपाय को उपेक्षा नाम दिया है।

प्रसादनविधिं त्यक्त्वा वाक्यैरन्यार्थ सूचकैः ।

यस्मिन्प्रसाद्यते योषिदुपेक्षा सा मता यथा[2]।।

केशव ने भी अन्यार्थ सूचक वाक्यों से नायिका को प्रसन्न करने को उपेक्षा नाम से अभिहित किया है—

मान-मुचावन बात तजि, कहिये और प्रसंग ।

छूटि जात जहं मान सो, कहत उपेक्षा अंग[3]।।

आचार्य रुद्रभट्ट ने, अचानक भय, हर्ष आदि की भावना उत्पन्न हो जाने से क्रोध के नष्ट हो जाने को प्रसंगविभ्रंश माना है।

अकस्माज्जायते यत्र भयहर्षादिभावना ।

सोऽयं प्रसङ्गविभ्रंशः कोपभ्रंशात्मको यथा[4]।।

आचार्य केशव ने भी भय के कारण चित्तविभ्रम होने से मान के छूट जाने को प्रसंगविध्वंस माना है—

१- रसिकप्रिया : पृ०- २०१, १०।१४

२- शृंगारतिलक : पृ०- ५६, २।७०

३- रसिकप्रिया : पृ०- २०३, १०।२०

४- शृंगारतिलक : पृ०- ६०, २।७४

उपजि परै भय चित्तभ्रम, छूटि जाइ जहं मान ।

सो प्रसंगविध्वंस कबि केसवदास बखान[1] ।।

रुद्रभट्ट के अनुसार कामियों के लिए कष्ट साध्य भी स्त्रियों का सद्य: उत्पन्न क्रोध देश और काल के प्रभाव से सुखसाध्य हो जाता है ।

देशकालबलात्कोप: प्राय: सद्यो ऽपि योषिताम् ।

जायते सुखसाध्यो ऽयं कृच्छ्रसाध्यो ऽपि कामिनाम[2]।।

केशव के अनुसार भी, देश, समय, सुन्दरध्वनि आदि से सहज ही मान छूट जाता है—

देश काल बुधि बचन तें, कल धुनि कोमल गान ।

सोभा सुभ सौंगंध तें, सुख ही छूटत मान[3]।।

रुद्रभट्ट का मत है कि नायिका को क्रुद्ध पति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए—

इत्युपायान्प्रयुञ्जीत नायिकापि प्रियं प्रति ।

क्रुद्धं नोपेक्षते कि चित्तत्रान्यत्कारणं भवेत्[4]।।

केशवदास ने नायिका के लिए आवश्यकता से अधिक हठ को वर्जित किया है—

प्रिया न प्रीतम सौं करै, अति हठ केसवदास ।

बहुर्यौ हाथ न आवई, जौ ह्वै जाइ उदास[5]।।

रुद्रभट्ट के मतानुसार स्नेह के बिना भय नहीं होता और ईर्ष्या के बिना काम

१- रसिकप्रिया : पृ० - २०५, १०।२३

२- श्रृंगारतिलक : पृ० - ५५, २।५३

३- रसिकप्रिया : पृ० - २०७, १०।२६

४- श्रृंगारतिलक : पृ० - ६०, २।७८

५- रसिकप्रिया : पृ० - २०८, १०।२६

नहीं होता। इसलिए यह मान का प्रकार दोनों (नायक और नायिका) के ~~प्रेम का प्रकार दोनों (नायक और नायिका)~~ के प्रेम को बढ़ाने वाला होता है।

स्नेहं विना भयं न स्यान्मन्मथो नेर्ष्यया विना।
तस्मान्मानप्रकारोऽयं द्वयोः प्रीतिप्रवर्धनः[1] ।।

केशव ने भी भय के बिना प्रीति की स्थिति को स्वीकार नहीं किया है :

प्रीति बिना भय होय नहिं, भय बिनु होइ न प्रीति।
प्रीति रहै जहं भय रहै, यहै मान की रीति[2] ।।

रुद्रभट्ट का मत है कि गर्व से व्यसन से, बुराई करने से, कठोर वचन बोलने से, लोभ से, और अधिक दिनों तक प्रवास करने से पति स्त्रियों के लिए द्वेष के योग्य हो जाता है।

गर्वाद्व्यसनात्त्यागाद्विप्रियकरणाच्च निष्ठुराद्वचनात्।
लोभदतिप्रवासात्स्त्रीणां द्वेष्यः प्रियो भवति[3] ।।

इन बातों को केशव ने भी निम्न पंक्तियों के द्वारा स्वीकार किया है—

गर्ब, व्यसन, धन, त्याग तें, निष्ठुर बचन प्रवास।
लालन बिप्रियकरन तें, पिय तें होइ उदास[4] ।।

यहां यह उल्लेखनीय है कि केशव ने जहां मान के राधा तथा कृष्ण के भेद से दो-दो-प्रकार माने हैं, तथा प्रणति के प्रेम से प्रणति, काम से प्रणति,

---

१- शृंगारतिलक : पृ०- ६१, २।७६
२- रसिकप्रिया : पृ०- २०८, १०।३१
३- शृंगारतिलक : पृ०- ६१, २।८२
४- रसिकप्रिया : पृ०- २०८, १०।३२

अपराध में प्रणति और अति हित से प्रणति नामक चार भेद किए हैं। जबकि श्रृंगारतिलक में ऐसा नहीं है। केशव ने विरह के करुणा तथा प्रवास दो प्रकारों का वर्णन किया है। श्रृंगारतिलक में केवल प्रवास का वर्णन किया गया है। केशव ने इन दो प्रकारों के भी प्रच्छन्न एवं प्रकाश तथा इनके भी राधा तथा कृष्ण के लिए पुनः दो-दो भेद किए हैं। श्रृंगारतिलक में ऐसा वर्णन नहीं है वहां केवल प्रवास तथा करुणा का लक्षण एवं उदाहरण दिया गया है।

रुद्रभट्ट के मतानुसार किसी कारण से प्रिय जब अन्य स्थान पर चला जाता है तो ` प्रवास ` की अवस्था कहलाती है और यह अवस्था दोनों (नायक और नायिका) के लिए कष्टदायक होती है।

परदेशं व्रजेधत्र कुतश्चित्कारणात्प्रियः।
स प्रवास इति स्यातः कष्टावस्थो द्वयोरपि[१]।।

केशव ने भी प्रवास का यही लक्षण दिया है—

केसव कौनहु काज तें, पिय परदेसहिं जाइ।
तासों कहत प्रवास सब, कवि कोबिद समुझाइ[२]।।

रुद्रभट्ट ने, जब एक (नायक या नायिका) के मरने पर दूसरा मृतप्राय हो जाता है, उनमें से नायक प्रेम के कारण प्रलाप करता है, इसे करुणा विप्रलम्भ श्रृंगार माना है।

यत्रैकस्मिन्मृते ऽप्यन्यो मृतकल्पो ऽथवद्रुतः।
नायकः प्रलपेत्प्रेम्णा करुणो ऽसौ स्मृतो यथा[३]।।

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- ६१, २।८३

२- रसिकप्रिया : पृ०- २१२, ११।७

३- श्रृंगारतिलक : पृ०- ६४, २।९२

केशव ने सुख के सभी उपायों के समाप्त हो जाने को करुणा विरह के नाम से अभिहित किया है।

छूटि जात केसव जहां, सुख के सबै उपाय।
करुनारस उपजत तहां, आपुन तें अकुलाय[1]।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार—(१) कारू (धोबिन आदि), (२) दासी, (३) नटी, (४) धात्री, (५) प्रतिवेश्या (पड़ोसिन), (६) शिल्पिनी, (७) बाला और (८) प्रव्रजिता— ये नायिका की सखियां होती हैं।

कारुदासी नटी धात्री प्रतिवेश्याथ शिल्पिनी।
बाला प्रव्रजिता चेति स्त्रीणां ज्ञेयः सखीजनः[2]।।

केशव ने नायिका की सखियों में कुछ नाम तो श्रृंगारतिलक के अनुसार रखे हैं और कुछ नाम अपनी ओर से जोड़ दिए हैं—

धाइ, जनी, नाइन, नटी, प्रगट परोसिनि नारि।
मालिनि, बरइनि, सिल्पिनी, चुरिहेरनी, सुनारि।।
रामजनी, संन्यासिनी, पटु पटुवा की बाल।
केसव नायक नायिका, सखी करहिं सब काल[3]।।

श्रृंगारतिलक में मनोरंजन, श्रृंगार करके सजाना, शिक्षा, उलाहना देना, प्रसन्न करना, समागम कराना और विरह की दशा में आश्वासन देना आदि सखियों के कार्य बताए गये हैं।

१- रसिकप्रिया : पृ०- २०८, ११।१
२- श्रृंगारतिलक : पृ०- ६६, २।१०२
३- रसिकप्रिया : पृ०- २२०, १२।१,२

विनोदो मण्डनं शिक्षोपालम्भो ऽथ प्रसादनम् ।
संगमो विरहश्वास: सखीकर्मेति तद्यथा[1] ।।

केशव ने भी नायिका की सखी के उपर्युक्त कर्म ही बताए हैं—

सिक्षा, बिनय, मनाइबो, मिलबै करि सिंगार ।
फुकि अरु देइ उराहनो, यह तिनको व्योहार[2] ।।

श्रृंगारतिलक के तीसरे अध्याय में रसों का संक्षिप्त वर्णन मिलता है। रुद्रभट्ट के अनुसार विकृत, अङ्ग, वाणी, चेष्टा और वेश से रस उत्पन्न होता है। चूंकि यह हासमूलक है, इसलिए इसे हास्य कहते हैं (यह) तीनों (उत्तम, मध्यम अधम) प्रकार के पात्रों में रहता है।

विकृताङ्गवचेष्टावेषोम्यो जायते रस: ।
हास्यो ऽयं हासमूलत्वात्पात्रत्रयगतो यथा[3] ।।

आचार्य केशव के हास्य रस का लक्षण श्रृंगारतिलक से भिन्न है।

नयन नयन कछु करत जब, मन को मोद उदोत ।
चतुर चित्त पहिचानियै, तहां हास्य रस होत[4] ।।

श्रृंगारतिलक में हास्य के तीन भेद उत्तम, मध्यम, तथा अधम किया गया है जबकि केशव ने हास्य के मंदहास, कलहास, अतिहास तथा परिहास नामक चार भेद किया है।

श्रृंगारतिलक में उत्तम हास्य का जो लक्षण है वह केशव के मंदहास के

---

१ - श्रृंगारतिलक : पृ० - ६६, २।१०४
२ - रसिकप्रिया : पृ० - २४०, १३।१
३ - श्रृंगारतिलक : पृ० - ६६, ३।१
४ - रसिकप्रिया : पृ० - २५२, १४।१

लक्षण से मिलता है।

किं चिद्विकसितगण्डैः किं चिद्विस्फारितेक्षणैः।
किं चिल्लक्ष्यद्विजैः सो ऽप्युत्तमानां स्मितं यथा[1]।।

कपोलों के कुछ खिल जाने से, आंखों के कुछ विस्फारित हो जाने से और दांतों के कुछ दिखाई पड़ने से (उपलक्षित) जो हास्य है वह उत्तम पात्रों का होता है

केशव के मंदहास का भी यही लक्षण है—

बिगसहिं नयन, कपोल कछु, दसन, दसन के साथ।
मंदहास तासों कहत, कोविद केसौदास[2] ।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार मध्यम पात्रों का हास होता है, जिसमें मुख कमल खुल जाता है और नीच पात्रों के हास में आंसू आ जाते हैं तथा हंसी की आवाज सुनाई पड़ती है।

मध्यमानां भवत्येष विवृताननपङ्कज।
नीचानां नियतद्रावणः श्रूयमाणध्वनिर्यथा[3]।।

इसके विपरीत केशव के कलहास में मधुर ध्वनि होती है और अतिहास में निःशंक हंसने से मुख की सुगन्ध निकलने लगती है।

जहं सुनिये कलध्वनि कछू, कोमल बिमल बिलास।
केसव तन मन मोहिये, बरनहु कबि कलहास ।।
जहां हंसहिं निरसंक ह्वै, प्रगटहिं सुख मुखबास ।
आधे आधे बरन पद, उपजि परत अतिहास[4] ।।

१- श्रृंगारतिलक : पृ० - ६६, ३।२
२- रसिकप्रिया : पृ० - २५२, १४।३
३- श्रृंगारतिलक : पृ० - ६६, ३।४
४- रसिकप्रिया : चतुर्दश प्रभाव, २५४, २५६, छ०-८,१२

शृंगारतिलक के अनुसार करुणरस किसी प्रिय व्यक्ति, नौकर या धन का नाश होने से होता है और यह शोकात्मक होता है। इसमें नायक भाग्य का मारा और दु:ख का पात्र होता है।

शोकात्मा करुणो ज्ञेय: प्रियभृत्यधनक्षयात् ।
तत्रस्थो नायको दैवहत: स्याद्दु:खभाजनम्[1] ।।

केशव के अनुसार प्रिय के लिए अप्रिय कार्य करने से करुणरस होता है।

प्रिय के बिप्रिय करन तें, आनि करुनरस होत ।
ऐसो बरन बखानियै, जैसे तरुन कपोत[2] ।।

शृंगारतिलक के अनुसार शत्रुओं को सहन न करने वाला क्रोधस्वरूप रौद्र (रस) होता है। इसमें नायक अत्यन्त भयंकर विग्रह (युद्ध या शरीर) वाला प्राय: राक्षस होता है—

क्रोधात्मको भवेद्रौद्र: प्रतिशत्रूनमर्षणा: ।
रक्ष: प्रायो भवेदत्र नायको ऽत्युग्रविग्रह:[3] ।।

केशव के रौद्ररस का लक्षण भी उपर्युक्त ही है—

होहि रौद्ररस क्रोधमय, विग्रह उग्र सरीर ।
अरुन बरन बरनत सबै, कहि केसव मतिधीर[4] ।।

१- शृंगारतिलक : पृ० - ७१, ३।८

२- रसिकप्रिया : पृ० - २५६, १४।१८

३- शृंगारतिलक : पृ० - ७१, ३।११

४- रसिकप्रिया : पृ० - २६१, १४।२१

रुद्रभट्ट के अनुसार वीर रस उत्साहात्मक और दया-दान आदिपूर्वक होता है।

उत्साहात्मा भवेद्वीरो दयादानादिपूर्वक: ।
त्रिविधो नायकस्तत्र जायते सत्वसंयुत:[१] ।।

केशव ने भी वीर को उत्साह से युक्त माना है—

होहि बीर उत्साहमय, गौर बरन दुति अंग ।
अति उदार गंभीर कहि केशव पाइ प्रसंग[२]।।

श्रृंगारतिलक के अनुसार भय के स्थायीभाव वाला भयानक रस शब्द आदि के विकार से उत्पन्न होता है। इसका नायक बालक, स्त्री या नीच होता है।

भयानको भयस्थायिभावो ऽसौ जायते रस: ।
शब्दादिविकृतादात्र बालस्त्रीनीचनायक:[३] ।।

केशव ने भयानक को स्याम शरीर युक्त माना है जिसको देखकर अथवा सुनकर भय उत्पन्न होता है।

होइ भयानक रस सदा, केसव स्याम शरीर ।
जाको देखत सुनतहीं, उपजि परति भयभीर[४]।।

केशव का वीभत्स रुद्रभट्ट से नहीं मिलता है। रुद्रभट्ट ने अशोभन वस्तु को देखने, सुनने या वर्णन करने से जो जुगुप्सा (घृणा) होती है, उससे वीभत्स रस की उत्पत्ति मानी है[५]। जबकि केशव ने वीभत्स रस उसे माना है जहां

१- श्रृंगारतिलक : पृ०- ७२, ३।१४
२- रसिकप्रिया : पृ०- २६३, चतुर्दश प्रभाव, छं०- २४
३- श्रृंगारतिलक : पृ०- ७४, ३।२०
४- रसिकप्रिया : पृ०- २६४, १४।२७
५- श्रृंगारतिलक : पृ०- ७५, ३।२५

देखते ही अथवा सुनते ही तन मन उदास हो जाता है[1]।

शृंगारतिलक के अनुसार- रसज्ञ लोगों को जानना चाहिये कि अद्‌भुत रस विस्मयात्मक होता है और (वह) माया, इन्द्रजाल, दिव्य स्त्री और जंगल आदि से उत्पन्न होता है।

विस्मयात्माद्भुतो ज्ञेयो रसो रसविचक्षणैः।
मायेन्द्र जालदिव्यस्त्री विपिनाद्युद्भवो यथा[2]।।

केशव ने भी अद्‌भुत रस में विस्मय की स्थिति को स्वीकार किया है।

होइ अचंभो देखि सुनि, सो अद्‌भुत रस जानि।
केसवदास बिलासनिधि, पीत बरन बपु मानि[3]।।

रुद्रभट्ट के अनुसार नायक मोह, राग आदि के नष्ट हो जाने के कारण इच्छारहित होता है। वहां शान्त रस की उत्पत्ति होती है।

सम्यग्ज्ञानोद्भवः शान्तः समत्वात्सर्वजन्तुषु।
गतेच्छो नायकस्तत्र मोहरागपरिक्षयात्[4] ।।

आचार्य केशव ने भी मन के सभी वस्तुओं से उदास होने अर्थात् वैराग्य उत्पन्न होने की स्थिति में शम रस की उत्पत्ति को स्वीकार किया है।

सब तें होइ उदास मन, बसै एक ही ठौर।
ताही सों समरस कहैं, केसव कबि- सिरमौर[5]।।

----

१ - रसिकप्रिया : पृ० - २६६, १४।३०
२ - शृंगारतिलक : पृ० - ७६, ३।२८
३ - रसिकप्रिया : पृ० - २६६, १४।३३
४ - शृंगारतिलक : पृ० - ७६, ३।३१
५ - रसिकप्रिया : पृ० - २७०, १४।३७

रुद्रभट्ट के अनुसार कौशिकी, आरभटी, सात्वती तथा भारती — ये चार वृत्तियां ही रस की अवस्थिति को सूचित करती हैं।

कौशिक्यारभटी चैव सात्वती भारती तथा।
चतस्रो वृत्तयो ज्ञेया रसावस्थानसूचिका:[१] ।।

केशव ने रसिकप्रिया के पन्द्रहवें अध्याय में इन चारों वृत्तियों का उल्लेख किया है—

प्रथम कौसिकी भारती, आरभटी मनि भांति।
कहि केसव सुभ सात्वती, चतुर चतुर बिधि जाति[२]।।

रुद्रभट्ट का मत है कि शृंगार, हास्य और करुण रस के आधिक्य की सिद्धि के लिए विद्वानों को प्रयत्नपूर्वक कौशिकी वृत्ति का प्रयोग करना चाहिए।

शृंगारहास्यकरुणारसातिशयसिद्धये।
एषा वृत्ति: प्रयत्नेन प्रयोज्या विबुधैर्यथा[३]।।

केशव के कौशिकी का लक्षण रुद्रभट्ट से मिलता है—

कहियै केसौदास जहं, करुन हास सिंगार।
सरल बरन सुभ भाव जहं, सो कैसिकी बिचार[४]।।

रुद्रभट्ट ने भारती वृत्ति को प्रधान पुरुषों वाली, सुन्दर वक्रोक्ति से युक्त और वीर, हास्य तथा अद्भुत रस में रहने वाली माना है।

१- शृंगारतिलक : पृ०- ७६, ३।५२
२- रसिकप्रिया : पृ०- २७३, १५।१
३- शृंगारतिलक : पृ०- ८०, ३।५४
४- रसिकप्रिया : पृ०- २७४, १५।२

प्रधानपुरुषा सङ्कोचितनिरन्तरा ।
भारतीयं भवेद्वृत्तिर्वीरहास्याद्भुताश्रया[1]।।

केशव ने भी रुद्रभट्ट की तरह भारती को वीर, हास्य तथा अद्भुत रस से युक्त माना है ।

बरनिय जामें बीररस, अरु अद्भुत रस हास ।
कहि केसव सुभ अर्थ जहं, सो भारती प्रकास[2]।।

रुद्रभट्ट के अनुसार विद्वान् लोग रौद्र, भयानक और वीभत्स रस में काव्य की शोभा बढ़ाने वाली आरभटी वृत्ति का प्रयोग करते हैं ।

रौद्रे भयानके चैव बीभत्से च विचक्षणैः ।
काव्यशोभाकरी वृत्तिरियमित्थं प्रयुज्यते[3]।।

केशव ने भी आरभटी का उपर्युक्त लक्षण दिया है ।

केशव जामें रौद्ररस, भय बीभत्सहि जान ।
आरभटी आरंभ यह, पद पद जमक बखान[4]।।

रुद्रभट्ट के अनुसार सात्वती श्रवणसुखद शब्दों से मन को भाने वाली, अत्यन्त गूढ़ अर्थों से युक्त नहीं होती । यह वीर, रौद्र, अद्भुत और शान्त रस में अभिमत है ।

नातिगूढार्थसंपत्तिः श्रव्यशब्दमनोरमा ।
वीरे रौद्रेऽद्भुते शान्ते वृत्तिरेषा मता यथा[5]।।

१- शृंगारतिलक : पृ०- ८३, ३।६६
२- रसिकप्रिया : पृ०- २७५, १५।४
३- शृंगारतिलक : पृ०- ८१, ३।५६
४- रसिकप्रिया : पृ०- २७५, १५।६

केशव की सात्वती की परिभाषा शृंगारतिलक के अनुसार ही है।

अद्भुत बीर सिंगाररस, समरस बरनि समान।
सुनतहि समुझत भाव जिहिं, सो सात्वती सुजान[१]।।

रुद्रभट्ट ने शृंगारतिलक में वृत्तियों का विस्तृत विवेचन किया है। जबकि केशव द्वारा किया गया वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है।

आचार्य रुद्रभट्ट का मत है कि सज्जन लोग विरस, विरुद्ध, दुःसन्धियुक्त रसवाले, नीरस और पात्र दोषों से युक्त काव्य की प्रशंसा नहीं करते।

विरसं प्रत्यनीकं च दुःसंधानरसं तथा।
नीरसं पात्रदुष्टं च काव्यं सद्भिर्न शस्यते[२]।।

ठीक ऐसा ही मत केशव ने भी प्रकट किया है।

प्रत्यनीक नीरस बिरस केसव दुस्संधान।
पात्रादुष्ट कबित्त बहु, करहिं न सुकबि बखान[३]।।

इन सभी का केशव ने लक्षण और उदाहरण दोनों दिए हैं जबकि शृंगारतिलक में ` विरस ` को छोड़कर शेष सभी के केवल उदाहरण दिए गये हैं। शृंगारतिलक के अनुसार जिस प्रबन्ध में एक ही रस निरन्तर अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता है, उसे कुछ (विद्वान्) ` विरस ` कहते हैं[४]। जबकि केशव का मत है कि ज्यों ही कोई कवि शोक में भोग- विलास का वर्णन उल्लास के साथ

---

१ - रसिकप्रिया : पृ० - २७६, १५।८
२ - शृंगारतिलक : पृ० - ८४, ३।७४
३ - रसिकप्रिया : पृ० - २७७, १६।१
४ - शृंगारतिलक : पृ० - ८४, ३।७६

करने लगता है, त्यों ही विरस दोष हो जाता है। इस प्रकार केशव की 'रसिकप्रिया' में वर्णित विषयों के लक्षण तो शृंगारतिलक के अनुसार हैं परन्तु उनके एक भी उदाहरण शृंगारतिलक से नहीं मिलते। एकाध छन्दों में भाव साम्य अवश्य है परन्तु वह संयोगवश भी कहा जा सकता है।

रसमंजरी का प्रभाव :

रसिकप्रिया और रसमंजरी का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि केशव रसमंजरी से प्रभावित नहीं हैं। क्योंकि दोनों ग्रन्थों में वर्णित विषय यदि एक दूसरे से मिलते हैं तो उनके भेद और उदाहरण एक-दूसरे से भिन्न हैं।

केशव ने नायक के चार भेद किए हैं[1] जबकि रसमंजरीकार ने पति, उपपति तथा वैशिक के रूप में तीन भेद किए हैं। रसमंजरीकार ने पति नायक के पुनः चार भेद किए हैं[2] जो केशव के नायक के चार भेद अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट से मिलता है।

अनुकूल-दक्षिण-धृष्ट-शठ भेदात्पतिश्चतुर्धा[3]।

रसमंजरी के अनुसार पराई स्त्री से सर्वदा पराङ्मुख रहने वाला (और अपनी में) सर्वदा अनुराग रखने वाला नायक अनुकूल कहलाता है।

सार्वकालिकपराङ्गनापराङ्मुखत्वे सति सर्वकाल मनुरक्तो ऽनुकूलः[4]।

केशव के अनुकूल का भी यही लक्षण है—

१- अनुकूल दच्छ सठ धृष्ठ पुनि चौबिधि ताहि बखानि।
—रसिकप्रिया : प्रभाव २, छं० २

२- स च त्रिविधः— पतिरुपपति वैशिकश्चेति —रसमंजरी, पृ०- ६८

३- रसमंजरी : पृ०- ६६

४- वही,

प्रीतिकरै निज नारि सों, परनारी प्रतिकूल ।
केसव मन-बच कर्म, सो कहिये अनुकूल[१] ।।

भानुदत्त के अनुसार अपनी समस्त नायिकाओं में बराबर और अकृत्रिम अनुराग रखने वाला नायक दक्षिण कहलाता है ।

सकलनायिका विषयक समसहजानुरागी दक्षिण:[२]

केशव के दक्षिण नायक का भी यही लक्षण है ।

पहिले सों हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि ।
चित्त चलेहूं ना चलै, दच्छिन-लच्छन जानि[३] ।।

बार-बार अपराध करके भी निडर रहने वाला, बार-बार रोके जाने पर भी बार-बार अनुनय - विनय में लगा हुआ नायक धृष्ट कहलाता है ।

भूयो निश्शङ्कृतदोषो ऽपि भूयो निवारितो ऽपि भूय: प्रश्रय-परायणों धृष्ट:[४] ।

केशव के धृष्ट नायक का लक्षण रसमंजरी के अनुसार ही है—

लाज न गारिहु मार की, छांड़ि दई सब त्रास ।
देख्यो दोष न मानहीं, धृष्ट सु कहिये तास[५] ।।

भानुदत्त ने अपराधी होने पर भी कामिनी को ठग लेने में चतुर नायक को शठ नायक की संज्ञा दी है ।

१- रसिकप्रिया : पृ० - २, छ० ३
२- रसमंजरी : पृ० - ९९
३- रसिकप्रिया : प्रभाव २, छ० ७
४- रसमंजरी : पृ० - १०१
५- रसिकप्रिया : प्रभाव २, छ० १४

कामिनीविषयककपट पटु: शठ:[1]।

केशव ने भी शठ नायक का लक्षण इसी प्रकार दिया है—

मुंह मीठी बातैं कहै, निपट कपट जिय जानि ।

जाहि न डरु अपराध को, सठ करि ताहि बखानि[2]।।

भानुदत्त ने अन्य आधारों पर भी नायक के भेद किए हैं परन्तु केशव ने केवल उपर्युक्त भेद ही स्वीकार किए हैं ।

आचार्यों ने नायिका भेद को मुख्य रूप से चार वर्गों में विभाजित किया है । धर्म के अनुसार नायिका भेद, जाति के अनुसार नायिका भेद, दशा के अनुसार नायिका भेद तथा गुण के अनुसार नायिका भेद । आचार्य केशव ने नायिका भेद के इन चारों प्रकारों का वर्णन किया है । धर्मानुसार नायिका के तीन भेद माने गये हैं ।

सा च त्रिविधा—स्वीया, परकीया, सामान्या चेति[3]।

केशव ने भी धर्मानुसार नायिका के ये ही तीनों भेद स्वीकार किए हैं—

स्वीया परकीया अवर, स्वीया- परकीया न[4]।

रसमंजरी के अनुसार जो अपने ही पति से अनुराग करे उसे स्वीया कहते हैं ।

तत्र स्वामिन्येवानुरक्ता स्वीया[4]

केशव की स्वकीया सम्पत्ति व विपत्ति दोनों में अपने पति का साथ देती है—

१- रसमंजरी : पृ०- १०१

२- रसिकप्रिया : प्रभाव २, छं० ११

३- रसमंजरी : पृ०- ४

४- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं०- १४

संपति बिपति जो मरनहू, सदा एक अनुहारि ।

ताहि स्वकीया जानिये, मन- बच- कर्म बिचारि[1]।।

रसमंजरीकार ने स्वकीया के तीन भेद स्वीकार किए हैं—

स्वीया तु त्रिविधा- मुग्धा, मध्या, प्रगल्भाचेति[2]।

केशव की स्वकीया के भी उपर्युक्त तीन भेद ही हैं ।

मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ गति तिनकी तीनि बिचारि[3]।

केशव द्वारा किया गया मुग्धा मध्या तथा प्रौढ़ा के भेद रसमंजरी से नहीं मिलते हैं । भानुदत्त ने स्वीया भेद के अन्तर्गत मध्या और प्रगल्भा नायिकाओं के मान की अवस्था में अर्थात् अपने पति को अनासक्त जानकर कोप के तीन भेद किए हैं ।

मध्या प्रगल्भे प्रत्येकं मानावस्थायां त्रिविधा ।

धीरा, अधीरा धीराधीरा चेति[4] ।।

इन तीनों भेदों को केशव ने भी स्वीकार किया है

सिगरी मध्या तीन विधि, धीरा और अधीर ।

धीरा धीरा तीसरी, बरनत है कबि धीर[5] ।।

केशव द्वारा दिए गये धीरा और अधीरा के लक्षण तो रसमंजरी से मिलते हैं परन्तु धीराधीरा के नहीं मिलते । रसमंजरी के अनुसार मध्या धीरा के कोप को व्यंजित करने वाली वाणी होती है, वाणी से यहां तात्पर्य वक्रोक्ति से

१- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं० १५

२- रसमंजरी : पृ० - ७

३- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं०- १६

४- रसमंजरी : पृ०- १८

५- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं०- ४५

है। मध्या अधीरा कोप की अवस्था में परुष या अप्रिय शब्दों का प्रयोग करती है एवं मध्या- धीरा- धीरा वक्रोक्तिपूर्ण रुदन करने लगती है।

मध्याया धीरायाः कोपस्य व्यंग्योक्तिका। अधीरायाः परुषवाक्। धीराधीरायाश्च वचनरुदिते कोपस्य प्रकाशके[1]।

केशव के अनुसार—धीरा बोलै वक्र बिधि, बानी बिषम अधीर।

धीरा धीरा तीसरी, बरनत हैं कबि धीर[2]।।

केशव द्वारा दिया गया प्रगल्भा धीरा का लक्षण रसमंजरी से भिन्न है। केशव प्रगल्भा धीरा का लक्षण आदर में अनादर भाव प्रकट करने को मानते हैं जबकि भानुदत्त नायकापराध से कुपित होकर सुरत में उदासीन भाव का आचरण करना प्रगल्भा धीरा का लक्षण मानते हैं।

प्रगल्भाधीराया रतौदास्यम्[3]।

रसमंजरी के अनुसार प्रगल्भा अधीरा तर्जन अर्थात् डांट- डपट, फटकार और मार- पीट हाथापाई भी करने लग जाती है। प्रगल्भा धीराधीरा रत में उदासीन और तर्जन- ताडन दोनों करती है।

धीरायास्तर्जनताडनादि। धीराधीराया रतौदास्यं तर्जनताडनादि च कोपप्रकाशम्[4]

केशव के प्रगल्भा अधीरा का लक्षण तो रसमंजरी से मिलता है, परन्तु प्रगल्भा धीराधीरा का लक्षण रसमंजरी के अनुसार नहीं है।

१- रसमंजरी : पृ०- २०

२- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं० ४६

३- रसमंजरी : पृ०- २०

४- वही,

पति को अति अपराध गनि, इतन कहुं हित मानि ।
कहत अधीरा प्रौढ़ तिहि, केसवदास बखानि[1] ।।

मुख रूखी बातैं कहै, जिय में पिय को भूख ।
धीराधीरा जानिये जैसी मीठी ऊख[1] ।।

भानुदत्त ने परकीया के परोढा और कन्यका नामक दो भेद किए हैं ।

सा द्विविधा परोढा कन्यका च[2]।

केशव ने भी परकीया के दो भेद किए हैं परन्तु उनके नाम रसमंजरी से भिन्न हैं ।

परकीया द्वै भांति पुनि, ऊढ़ा एक अनूढ़[3]।

भानुदत्त ने जाति के आधार पर नायिका भेद का वर्णन नहीं किया है । भानुदत्त ने प्रिय- दर्शन के तीन प्रकार माने हैं-

स्वप्नचित्रसाक्षाद्भेदेन दर्शनं त्रिधा[4]।

केशव ने दर्शन के चार भेद किए हैं । उपर्युक्त तीन भेदों के अतिरिक्त श्रवण दर्शन नामक चौथा भेद भी माना है ।

एक जु नीके देखिये, दूजें दरसन चित्र ।
तीजें सपने देखिये, चौथे श्रवननि मित्र[5]।।

रसमंजरी में चित्रदर्शन का जो उदाहरण दिया गया है उसका भाव केशव के उदाहरण का भी है ।

१- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं०- ६३, ६५

२- रसमंजरी : पृ०- २८

३- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं०- ६८

४- रसमंजरी : पृ०- १२४

५- रसिकप्रिया : प्रभाव-४, छं० २

इत्थं पटे विलिखितं दयितं विलोक्य ।

बाला पुरेव न जहार विहारशङ्काम[1]।।

तथा,

चित्रहु में हरि- मित्रहि देखत यों सकुचों जनु बाँह गही है[2]।

रसिकप्रिया के सप्तम प्रभाव में केशव ने अष्टनायिकाओं का वर्णन किया है । इन अष्टनायिकाओं के लक्षण तो रसमंजरी से मिलते हैं परन्तु उनके भेद और उदाहरण रसमंजरी के अनुसार नहीं हैं । भानुदत्त ने इन अष्टनायिकाओं का मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया तथा सामान्या के अन्तर्गत वर्णन किया है । जबकि केशव ने प्रच्छन्न और प्रकाश के अन्तर्गत । भानुदत्त ने समय के अनुसार अभिसारिका नायिका के ज्योत्स्ना ऽभिसारिका, तमिस्राभिसारिका तथा दिवसाभिसारिका किया है । केशव ने अभिसारिका नायिका का वर्णन स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अन्तर्गत किया है । इसके अतिरिक्त केशव ने अभिसारिका के गर्वाभिसारिका, प्रेमाभिसारिका, कामाभिसारिका नामक तीन भेद किए हैं । इन तीनों का वर्णन केशव ने प्रच्छन्न तथा प्रकाश भेद से किया है । भानुदत्त ने प्रोषितभर्तृका, खण्डिता, कलहन्तरिता, विप्रलब्धा, उत्का, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका के अतिरिक्त प्रवत्स्यत्पतिका नामक एक अन्य भेद भी माना है (जिसका पति प्रवास पर जाने वाला है) केशव ने इसका उल्लेख नहीं किया है ।

रसमंजरी में गुण के अनुसार नायिका के तीन भेद—उत्तमा, मध्यमा एवं अधमा किये गये हैं । आचार्य केशव ने भी इन भेदों को स्वीकार किया है परन्तु

१- रसमंजरी : पृ० - १२४, श्लोक १३५

२- रसिकप्रिया : प्रभाव ४, छं० ८

इनके लक्षण भिन्न ढंग से दिए हैं। रसिकप्रिया के अष्टम प्रभाव में केशव ने विप्रलम्भ श्रृंगार में कामजन्य नायिका और नायक की दशविध दशाओं का वर्णन किया है। इन दश दशाओं के लक्षण रसमंजरी से मिलते हैं, परन्तु इनके उदाहरण केशव ने राधा और कृष्ण के लिए प्रच्छन्न और प्रकाश भेद से भिन्न प्रकार से दिया है जो रसमंजरी में नहीं मिलता। रसमंजरी में उद्वेग का जो उदाहरण दिया गया है उसकी प्रथम पंक्ति केशव द्वारा दिए गये राधिका जू को प्रच्छन्न उद्वेग के उदाहरण की प्रथम पंक्ति से मिलता है। विरह की दशा में नायक अथवा नायिका को चन्द्रमा मण्डल विषवृक्ष का मूल प्रतीत होता है।

गरलद्रुमकन्दमिन्दुबिम्बं करुणापारिज वारणो वसन्तः[१]।

केशव की नायिका को भी ऐसा ही आभास होता है।

चंद नहीं बिषकंद है केसव राहु इहीं गुन लीलि न लीनो[२]

केशव ने रसिकप्रिया में सखी की परिभाषा नहीं दी है। लेकिन उसके कर्मों का वर्णन किया है। यह वर्णन रसमंजरी से नहीं मिलता है। रसमंजरी में सखी के केवल चार कर्मों का वर्णन है जबकि केशव ने सखीजन कर्म का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से वर्णन किया है।

दशरूपक का प्रभाव :

दशरूपककार ने नायक के ललित, शान्त, उदात्त और उद्धत नामक चार भेद स्वीकार किए हैं जिसका वर्णन केशव ने नहीं किया है। दशरूपक में श्रृंगारी नायकों के अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ नामक चार भेद किए गये हैं। इनके

१- रसमंजरी : पृ० - १२०, श्लोक १२८

२- रसिकप्रिया : प्रभाव ८, छं० - ३१

लक्षण और केशव द्वारा दिए लक्षण समान हैं, परन्तु इनके उदाहरण भिन्न हैं। दशरूपककार ने नायिका को स्वकीया, परकीया और साधारण स्त्री नामक तीन वर्गों में विभाजित किया है।

स्वस्त्री, परस्त्री साधारणस्त्रीत्यनेन विभागेन त्रिधा[1]।

केशव ने भी इन्हीं तीन भेदों को स्वीकार किया है। दशरूपक में स्वकीया के पुनः मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा नामक तीन भेद हुए हैं।

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक्[2]।।

केशव ने स्वकीया के इन तीनों भेदों को तो स्वीकार किया है परन्तु इनके उपभेद दशरूपक से नहीं मिलते। परकीया दो प्रकार की होती है— कन्या तथा किसी दूसरे की विवाहिता स्त्री। दशरूपककार का मत है कि प्रधान रस का आलम्बन परोढ़ा (अन्य की विवाहिता स्त्री) को नहीं बनाना चाहिए। कन्या के अनुराग को इच्छानुसार प्रधान और अप्रधान दोनों प्रकार के रसों का आलम्बन बनाया जा सकता है।

अन्य स्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित्।
कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम्[3] ।।

आचार्य केशव ने भी परकीया के यहाँ दो भेद किए हैं। परन्तु इनके उदाहरण दशरूपक से भिन्न हैं। केशव द्वारा दिए गये अष्टनायिकाओं के लक्षण दशरूपक से मिलते हैं परन्तु उदाहरणों में केशव की मौलिकता परिलक्षित होती है। दशरूपक के अनुसार शृंगार के सहित अल्प बोलना और भौंहें तथा नेत्रों में कटाक्ष

१- दशरूपकम् : द्वितीय प्रकाश, पृ० - १२७
२- वही, श्लोक १५
३- वही, पृ० - १४०, श्लोक २० - २१

आदि विकारों के उत्पन्न हो जाने को ` हाव ` कहते हैं।

अल्पालापः सशृङ्गारो हावोऽक्षिभ्रूविकारकृत्[1]।

केशव द्वारा दिया गया हाव का लक्षण इस प्रकार है—

प्रेम राधिका कृस्न को, है तातें सिंगार।
ताके भाव प्रभाव तें, उपजत हाव बिचार[2]॥

दशरूपक में युवावस्था में युवतियों में सत्व से उत्पन्न होने वाले बीस अलंकार माने गये हैं। उनमें— (१) भाव, (२) हाव, (३) हेला ये तीन शरीरज (शारीरिक) अलंकार हैं। (१) शोभा, (२) कांति, (३) दीप्ति, (४) माधुर्य, (५) प्रगल्भता, (६) औदार्य एवं धैर्य ये सात भाव अयत्नज (अर्थात् बिना प्रयास के उत्पन्न होने वाले) अलंकार हैं।

(१) लीला, (२) विलास, (३) विच्छित्ति, (४) विभ्रम, (५) किलकिञ्चित, (६) मोट्टायित, (७) कुट्टमित, (८) बिब्बोक, (९) ललित और (१०) विहृत ये दस भाव (स्त्रियों के) स्वभावज हैं अर्थात् स्त्रियों में ये स्वभावतः वर्तमान रहते हैं।

केशव ने इन सभी का वर्णन हाव के भेदों के रूप में किया है।

हेला लीला ललित मद, बिभ्रम बिहृत बिलास।
किलकिंचित बिच्छित्ति अरु कहि बिब्बोक प्रकास॥
मोट्टाइत सुनि कुट्टमित, बोधकादि बहु हाव।
अपने अपने बुद्धिबल बरनत कबि कबिराव[3]॥

१- दशरूपकम् : द्वितीय प्रकाशः, पृ० - १५५

२- रसिकप्रिया : षष्ठ प्रभाव, छं० - १५

३-. वही, छं० - १६, १७

इन सभी के लक्षण दशरूपक से मिलते हैं परन्तु उदाहरण केशव के अपने हैं ।

रसिकप्रिया के पन्द्रहवें प्रभाव में केशव ने वृत्तियों का वर्णन किया है । केशव द्वारा दिया गया लक्षण दशरूपक से नहीं मिलता । दशरूपक में यह बताया गया है कि इन वृत्तियों का वर्णन किन रसों में किया जाना चाहिए । यह अंश केशव से मिलता है । दशरूपककार का मत है कि कौशिकी को शृंगार रस में सात्वती का वीररस में तथा आरभटी का रौद्र एवं वीभत्स रस में प्रयोग करना चाहिए । भारती - वृत्ति का प्रयोग सभी रसों में किया जाता है ।

नाट्यशास्त्र का प्रभाव :

केशव द्वारा वर्णित नायक और नायिका भेद नाट्यशास्त्र से नहीं मिलता । नाट्यशास्त्र में नायक के (१) धीरोद्धत, (२) धीरललित, (३) धीरोदात्त तथा (४) धीरप्रशान्त नामक चार भेद किए गये हैं[1] जो केशव से नहीं मिलते हैं । इसी प्रकार नायिका के भी भरतमुनि ने चार भेद किए हैं[2] जो केशव से भिन्न हैं । केशव ने नायिका के उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा भेद किया है । नाट्यशास्त्र में भी स्त्री और पुरुषों को उत्तम, मध्यम तथा अधम की कोटि में रखा गया है[3] । परन्तु भरतमुनि तथा केशव द्वारा दिए गये लक्षण परस्पर भिन्न हैं । भरतमुनि के अनुसार वाणी, अंग, मुखराग तथा सत्व के अभिनय द्वारा इष्ट भावों का भावन करवाने को भाव कहा जाता है ।

---

१ - धीरोद्धता धीरललिता धीरोदात्तास्तथैव च ।।
धीरप्रशान्तकाश्चैव नायकाः परिकीर्तिताः ।।
— नाट्यशास्त्रम् :चतुस्त्रिंशोऽध्यायः, श्लोक १८,१९

२ - दिव्या च नृपपत्नी च कुलस्त्री गणिका तथा   वही, श्लोक २६

३ - समासतस्तु प्रकृतिस्त्रिविधा परिकीर्तिता ।
स्त्रीणाञ्च पुरुषाणाञ्च उत्तमा मध्यमाधमाः ।। वही, श्लोक २

वागङ्गमुखरागैश्च सत्वेनाभिनयेन च ।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते[1]।।

केशव ने भी भाव का यहीं लक्षण दिया है ।

आनन लोचन बचन मग प्रगटत मन की बात ।
ताही सों सब कहत हैं, भाव कबिन के तात[2]।।

भरतमुनि ने जो ' हाव ' शृंगार रस के आश्रित होकर ललित शारीरिक चेष्टाओं का अभिव्यंजक है उसे हेला नाम दिया है । जबकि केशव ने हेला को हाव के भेद के रूप में स्वीकार किया है । भरतमुनि ने स्त्रियों के दस स्वभावज अलंकारों का वर्णन किया है,जिसे केशव ने हाव के भेद के रूप में वर्णित किया है । केशव ने इन दस भेदों के अतिरिक्त ' मद ' नामक अन्य भेद भी माना है । इस प्रकार केशव ने हाव के तेरह भेद माने हैं । केशव द्वारा दिए गए हाव के भेदों के लक्षण भरतमुनि के दस स्वभावज अलंकारों के लक्षण से मिलते हैं ।

केशव की अष्टनायिकाओं का लक्षण भरत के अनुसार है । इसी प्रकार केशव द्वारा वर्णित नायक नायिकाओं की दस दशाओं का लक्षण भी नाट्यशास्त्र से मिलता है परन्तु भरतमुनि ने वृत्तियों के जो लक्षण दिये हैं वे केशव द्वारा दिए गए वृत्तियों के लक्षण से भिन्न हैं ।

केशव ने भाव का जो लक्षण दिया है वह भरत के नाट्यशास्त्र के चौबीसवें अध्याय में वर्णित तीन अंगज अलंकारों भाव, हाव और हेला के अन्तर्गत भाव का जो लक्षण दिया है उससे मिलता है । शेष विभाव और अनुभाव का लक्षण केशव की निजी कल्पना है ।

१- नाट्यशास्त्रम् : चतुर्विंशोऽध्याय:, श्लोक ८

२- रसिकप्रिया : प्रभाव ६, छ० १

कामसूत्र का प्रभाव :

वात्स्यायन ने कामसूत्र में नायक के पति, उपपति तथा वैशिक नामक तीन भेद किए हैं।

एक एव तु सार्वलौकिको नायकः। प्रच्छन्नस्तु द्वितीयः।
विशेषालाभात्। उत्तमाधममध्यमतां तु गुणागुणतो विद्यात्।
तांस्तूभयोरपि गुणागुणान्वैशिके वक्ष्यामः।[1]॥

एक लक्ष्य होना आध्यात्मिक नायक का गुण है[2]। कामसूत्र का पति-नायक भी अपनी पत्नी को ही लक्ष्य में रखता है। यही साहित्य के अनुकूल नायक का बीज है। केशव के अनुसार अनुकूल नायक मन, वचन और कर्म से निज पत्नी रत होता है। परस्त्री का चिन्ह कल्पना भी नहीं करता है[3]। साथ ही वात्स्यायन ने `प्रच्छन्न` नायक की भी कल्पना की है। (प्रच्छन्नस्तु द्वितीयः विशेषालाभात्।) पर इसका लक्ष्य प्रेमसुख नहीं कोई अन्य लाभ होता है। (कामसूत्र १।५।२८ पर यशोधर की व्याख्या)। इस प्रकार `प्रच्छन्न` नायक की कल्पना में उपपति की कल्पना के बीज मिल जाते हैं।

वात्स्यायन ने अगम्या नायिकाओं का वर्णन किया है। ये अगम्य नायिकाएं हैं— (१) कोढ़िन, (२) पागल, (३) जाति- समाज या धर्म से पतित, (४) रहस्य को न छिपा सकने वाली, (५) निर्लज्ज, (६) ढली हुई उम्र की, (७) अत्यधिक सफेद रंग की, (८) अत्यधिक काली, (९) जिसके शरीर से दुर्गन्धि निकलती हो, (१०) रिश्तेदारिन, (११) सखी,

---

१- कामसूत्रम् १।५।२८

२- बृहदारण्यक ४।४।२१

३- रसिकप्रिया २।३

(१२) संन्यासिनी और (१३) कुटुम्बियों, मित्रों, वेदपाठी ब्राह्मणों तथा राजघराने की स्त्रियां ।

केशव ने भी अगम्या नायिकाओं का वर्णन किया है जिसका आधार कामसूत्र ही है ।

तजि तरुनी संबंध की, जानि मित्र द्विजराज ।
राखि लेइ दुख भूख तें, ताकी तिय तें भाज ।।
अधिक बरन अरु अंग घटि, अंत्यज जन की नारि ।
तजि बिधवा अरु पूजिता रमियहु रसिक बिचार[१]।।

केशव ने जाति के आधार पर नायिकाओं के चार भेद किए हैं—

प्रथम पद्मिनी चित्रिनी, जुवती जाति प्रमान ।
बहुरि संखिनी हस्तिनी, केसवदास बखान[२] ।।

केशव के इस भेद का आधार कामसूत्र की निम्न पंक्ति कही जा सकती है ।

नायिका पुनर्मृगी बडवा हस्तिनी चेति[३]।।

आचार्य केशव ने `रसिकप्रिया` के तीसरे प्रभाव में सात बहिर्रति तथा सात अंतर्रति का वर्णन किया है जिसका आधार कामसूत्र के द्वितीय अधिकरण का छठा अध्याय है, जहां वात्स्यायन ने इसका विस्तृत वर्णन किया है । केशव ने इनके केवल नाम गिनाए हैं, लक्षण नहीं दिए हैं ।

अनंगरंग का प्रभाव :

`रसिकप्रिया` का तीसरा सम्पूर्ण प्रकाश नायिका-भेद-वर्णन को

१- रसिकप्रिया : ८।४२-४३

२- वही, ३।१

३- कामसूत्रम् : २।१।१

अर्पित है। इसका प्रारम्भ जाति के अनुसार नायिकाओं के पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी नामक चार भेदों के वर्णन से होता है। इन भेदों का उल्लेख संस्कृत भाषा के किसी भी आचार्य के ग्रन्थ में नहीं उपलब्ध होता। कामशास्त्र- सम्बन्धी अनंगरंग, रतिरहस्य आदि ग्रन्थों में अवश्य इनका वर्णन मिलता है अत: स्पष्ट है कि केशव ने इन भेदों को इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर लिखा है। अनंगरंग में पद्मिनी नायिका का लक्षण निम्नवत है—

भ्रान्तारक्तकुरंगशावनयना पूर्णेन्दुतुल्यानना
पीनोत्तुङ्गकुचा शिरीषमृदुला स्वल्पाशना दक्षिणा।
फुल्लाम्भोजसुगंधिकामसलिला लज्जावती मानिनी
श्यामा चापि सुवर्णचम्पनिभा देवादि पूजारता।।
उन्निद्राम्बुजकोश तुल्यमदनच्छत्रा मरालस्वना
तन्वी हंसवधूगतिः सुललितं वेषं सदा बिभ्रती।।
मध्यं चापि वलित्रयांकितमसौ शुक्लाम्बराकांक्षिणी
सुग्रीवा शुभनासिकेति गदिता नार्युत्तमा पद्मिनी[1]।।

केशव के लक्षण की कुछ बातें अनंगरंग से मिलती हैं।

सहज सुगन्ध स्वरूप शुभ, पुण्य प्रेम सुखदान।
तनु तनु भोजन रोष रति, निद्रा मान बखान।।
सलज सुबुद्धि उदार मृदु हास वास शुचि अंग।
अमल अलोम अनंगयुत, पद्मिनी हाटक रंग।।

१- अनंगरंग : पृ०- २-३, श्लोक ८- ६

२- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं०- २- ३

अनंगरंग के अनुसार चित्रिणी नायिका का लक्षण इस प्रकार है—

तन्वङ्गी गजगामिनी चपल दृक् संगीत शिल्पान्विता,
नो ह्रस्वा न बृहत्तराऽथ सुकृशा मध्ये मयूरस्वरा ।
पीनश्रोणिपयोधरा सुललिते जंघे वहन्ती कृशे,
कामाम्भोमधुगन्ध्यथौष्ठमपि सा विम्बोपमं वत्सला ।।
कामागारमसान्द्रलोमसहितं मध्ये मृदु: प्रायशो
विभ्राणोल्लसितं च वर्तुलमथो रत्यम्बुनार्द्रं सदा ।
भृंगा श्यामलकुन्तला च जलजग्रीवोपभोगे रता,
चित्रा शवितमतो रतेऽल्परुचिका ज्ञेयांगना चित्रिणी[1] ।।

केशव के लक्षण में नायिका की दृष्टि का चंचल होना, मुख की सुगन्ध, शरीर पर रोमों का कम होना, मदनजल का अधिक होना आदि बातों का आधार अनंगरंग है ।

नृत्य गीत कविता रुचै, अचल चित्त चलिदृष्टि ।
बहिरति रत अति सुरति जल, मुख सुगंध की सृष्टि ।।
विरल लोम तन मदन-गृह, भावत सकल सुवास ।
मित्र चित्रप्रिय चित्रिणी, जानहु केशवदास[2] ।।

अनंगरंग के अनुसार शंखिनी नायिका—

दीर्घं बाहुं शिर: कृशं पृथुमथो देहं वहन्ती तथा
पादौ दीर्घतरौ कटिं च बृहतीं स्वल्पस्तनी कोपिनी ।
गुह्यं क्षारविगन्धिना स्मरजलेनाल्पेन सान्द्रै: कचै—
रानिम्नं, कुटिलेक्षणा द्रुतगति: सन्तप्तगात्रा भृशम् ।।

१- अनंगरंग : पृ०-३, श्लोक १०-११

२- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं० ५-६

सम्भोगे करजक्षतानि बहुशो यच्छत्यनंगाकुला,।
न स्तोकं न च भूरि मस्तकं ज्ञाति सदा प्रायो भवेत् पिच्छला ।।
प्रश्वेत्राण्यरुणानि वा कृतिदयाहीना च पैशून्यभूत
पिंगा दुष्टमनाश्च धर्मरमहारुक्षस्वरा शंखिनी[1] ।।

केशव द्वारा दिए गये शंखिनी के कुछ लक्षण, जैसे उसका कोपशील, कपटी तथा अधीर होना, शरीर का तप्त होना, सुरत में नखदान तथा लाल वस्त्रों के पहनने में रुचि होना आदि ' अनंगरंग ' के समान हैं।

कोपशील कोविद कपट, सजल सलोम शरीर।
अरुण वसन नखदान रुचि, निलज निःशंक अधीर ।।

क्षारगंधयुत मारजल, तप्त भूर भग होइ।
सुरतारति अति शंखिनी, वरणत कविजन लोइ[2]।।

अनंगरंग के अनुसार हस्तिनी नायिका के लक्षण निम्नवत हैं—

स्थूला पिंगलकुन्तला च बहुभुक्क्रूरा त्रपाधर्जिता,
गौरांगी कुटिलांगुलीकचरणा, ह्रस्वा नमत्कन्धरा ।।
विघ्राणोभमदाम्बुगन्धि रतिजं तोयं भृशं मन्दगा,
दुःसाध्या सुरतेति गद्गदस्वरा स्थूलोष्ठिका हस्तिनी[3]।।

केशव की हस्तिनी के कुछ गुण, यथा नायिका के केशों का भूरा होना, कटु बोल, मंदगति, अधरों का स्थूल होना, मदनजल से हाथी के मद की - सी गन्ध आना आदि । अनंगरंग के अनुसार है।

१- अनंगरंग : पृ० ३, श्लो १२- १३

२- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छ० ८- ९

३- अनंगरंग : पृ०- ४, श्लोक १४

थूल अंगुली चरण मुख, अधर भृकुटी कटु बोल ।
मदन-सदन रद कंधरा, मंद चाल चित लोल ।।
स्वेद मदनजल द्विरदमद, गंधित भूरे केश ।
अति तीक्षण बहु लोम तन, मनि हस्तिनि हि वेश[1]।।

रसिकप्रिया की मौलिकता :

रसिकप्रिया लक्षण ग्रन्थों में केशव की सबसे प्रथम कृति है । केशवदास ने ' शृंगारतिलक ' का प्रधान रूप में आधार लेकर रसिकप्रिया का निर्माण किया है । सामग्री कामशास्त्र से भी ली गई है, पर बहुत थोड़ी । अधिकतर लक्षणों का आधार शृंगारतिलक ही है । उदाहरणों में कहीं-कहीं उसकी छाया और बहुधा स्वतन्त्र निर्माण है । उदाहरण कहीं अनूदित नहीं है । जो विषय ' शृंगारतिलक ' में हैं और रसिकप्रिया में भी गृहीत है वह प्राय: विवेचन की दृष्टि से ज्यों का त्यों है । नायक-नायिका भेद में निरूपित मध्या, प्रौढ़ा आदि नायिकाओं के लक्षण शृंगारतिलक के अनुसार है परन्तु उनके उदाहरण केशव की निजी परिकल्पना है । केशव ने मुग्धा नायिका के चार भेद—नवलवधू, नवयौवनाभूषिता, नवलअनंगा और लज्जाप्रायरति— किए हैं । इनमें से तीन तो शृंगारतिलक के अनुसार है, परन्तु नवलवधू नामक भेद संस्कृत के किसी आचार्य से नहीं मिलता है । इन भेदों के अतिरिक्त केशव ने मुग्धा के शयन, सुरति और मान का लक्षण भी सोदाहरण दिया है जो शृंगारतिलक में नहीं मिलता । केशव ने तीसरे प्रभाव में सोलह शृंगार तथा सुरतांत का वर्णन किया है जिसका वर्णन संस्कृत के आचार्यों ने नहीं किया है । संस्कृत के सभी आचार्यों ने दर्शन के तीन भेद साक्षात् चित्र तथा स्वप्न माना है । केशव ने दर्शन का एक और भेद श्रवण दर्शन माना है । रसिकप्रिया

१- रसिकप्रिया : प्रभाव ३, छं० ११, १२

का पांचवां प्रभाव केशव की मौलिक उद्भावना है। इसमें वर्णित स्वयंदूतत्व, प्रथम मिलन स्थान आदि का वर्णन केशव की विलक्षण प्रतिभा का द्योतक है। केशव द्वारा किया गया अभिसारिका नायिका का भेद भी केशव की निजी कल्पना है। संस्कृत के सभी आचार्यों ने व्यभिचारी भावों की संख्या ३३ मानी है जबकि आचार्य केशव ने ३४ व्यभिचारी भाव माना है। ` आधि ` नामक व्यभिचारी भाव केशव का अपना है। इसी प्रकार ` बोध ` हाव भी संस्कृत के किसी आचार्य से नहीं मिलता है। इन सब बातों के अतिरिक्त रसिकप्रिया में केशव की सबसे बड़ी मौलिकता यह है कि केशव ने रसिकप्रिया में वर्णित अधिकतर विषयों को प्रकाश और प्रच्छन्न भेद से राधा और कृष्ण के लिए अलग-अलग किया है।

000

अध्याय : नव

संस्कृत के अलंकार ग्रन्थों का प्रभाव (आधार ग्रन्थ)

संस्कृत के अलंकार ग्रन्थों का प्रभाव (आधार ग्रन्थ)

` कवि प्रिया ` कवि शिक्षा की पुस्तक है, इसमें संस्कृत के अलंकार सम्प्रदाय— वाले आचार्यों का अनुगमन है । इसके मुख्य आधार- ग्रन्थ हैं— `काव्यादर्श, ` काव्यकल्पलतावृत्ति ` और ` अलंकारशेखर ` । आरम्भ में अंधबधिरादि दोष पिंगल के काव्यप्रवाह से ले लिए गए हैं । ` बारहमासा` लोकप्रवाह से आया है और ` नखशिख ` की परम्परा फारसी की है । यद्यपि केशव के पूर्व संस्कृत में ध्वनि की स्थापना भलीभांति हो चुकी थी तथापि इन्होंने अलंकारों की पुरानी धारणा को ही प्रधानता दी । इन्होंने ` अलंकार` शब्द को उसी व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है जिसमें उसको ` दण्डी,` `वामन ` आदि प्राचीन आचार्यों ने लिया है । इसी से पारिभाषिक अर्थ के अनुसार ` विशेषालंकार ` के अतिरिक्त इन्होंने ` सामान्यालंकार ` के अन्तर्गत काव्य की शोभा बढ़ाने वाली सभी सामग्री जुटा दी है ।

(क) काव्यादर्श का प्रभाव :

` कविप्रिया ` के नौवें प्रभाव से लेकर पन्द्रहवें प्रभाव तक काव्य के वास्तविक अलंकारों का वर्णन है, जिनका नाम केशव ने `विशेषालंकार ` रखा है । इन्होंने सब मिलाकर सैंतीस अलंकार माने हैं । इनमें प्राय: अलंकारों की परिभाषाएं तथा उदाहरण ` दण्डी ` के ` काव्यादर्श ` से मिलते हैं । दण्डी ने बहुत से अलंकारों को तो प्राचीन मम्मटादि आलंकारिकों के अनुसार माने हैं, परन्तु अनेक अलंकारों का स्वरूप उन्होंने भिन्न प्रकार से माना है ।

` कविप्रिया ` के नौवें प्रभाव में निम्नलिखित छ: अलंकारों का वर्णन है— स्वभावोक्ति, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष तथा उत्प्रेक्षा ।
` स्वभावोक्ति ` अलंकार दण्डी से मिलता है । दण्डी ने स्वभावोक्ति की

परिभाषा इस प्रकार दी है—

> नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती ।
> स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालङ्कृतिर्यथा[1] ।।

अर्थात् भिन्न- भिन्न अवस्थाओं में स्थित पदार्थों के रूप में स्थित, पदार्थों के रूप को प्रत्यक्ष करके दिखाने वाली अलङ्कृति स्वभावोक्ति या जाति नाम से प्रथित है, अर्थात् जिसमें पदार्थों का ऐसा सजीव स्वाभाविक वर्णन हो जिससे उनका प्रत्यक्ष- सा दर्शन होने लगे उस अलंकार का नाम 'स्वभावोक्ति' या जाति है।

आचार्य केशव ने 'स्वभावोक्ति' की परिभाषा इस प्रकार दी है—

> जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज ।
> तासों जानि स्वभाव सब कहि बरणत कविराज[2] ।।

इस रूप में स्पष्ट है कि केशव ने 'स्वभावोक्ति' के केवल रूप और गुण नामक दो ही भेद किए हैं और दो ही उदाहरण भी दिए हैं जबकि आचार्य दण्डी ने स्वभावोक्ति के चार उदाहरण जाति, गुण, क्रिया, द्रव्य की स्वभावोक्ति के भेद से दिए हैं। आचार्य दण्डी की 'जाति स्वभावोक्ति' केशव की 'रूप स्वभावोक्ति' है जैसा कि परिभाषा से ही स्पष्ट है।

आचार्य दण्डी ने 'विभावना' की परिभाषा इस प्रकार दी है—

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद, पृ०- ७७, श्लोक ८

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) ६वां प्रभाव, पृ०- १०३, छं०सं०- ८

प्रसिद्ध हेतुव्यावृत्त्यायत् किञ्चित् कारणान्तरम् ।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना[1] ।।

अर्थात् जहां पर प्रसिद्ध कारण का अभाव बताकर कुछ कवि कल्पित कारण का अनुसन्धान किया जाय, अथवा किसी भी कारण के "नहीं ज्ञायमान होने से कार्य के स्वाभाविकत्व का अन्दाज किया जाय, उसे ' विभावना ' नामक अलंकार कहा जाता है ।

आचार्य केशव ने भी ' विभावना ' अलंकार की परिभाषा भी कुछ इसी प्रकार दी है—

कारज को बिनु कारणहि, उदौ होत जेहि ठौर ।
तासौं कहत विभावना, केशव कवि शिरमौर[2] ।।

दण्डी ने विभावना के दो भेद माने हैं— ' कारणान्तर विभावना ' और ' स्वाभाविकत्वं विभावना ' । आचार्य केशवदास ने भी दण्डी के अनुसार दो ही भेद माने हैं । केशव ने दण्डी के उदाहरण का अनुवाद नहीं किया है परन्तु अपने उदाहरण को उनके भावों के आधार पर बनाया है । आचार्य दण्डी के अनुसार 'कारणान्तर विभावना ' का उदाहरण निम्न है—

अपीतक्षीबकादम्बमसंमृष्टामलाम्बरम् ।
अप्रसादितशुद्धाम्बु जगदासीन्मनोहरम्[3] ।।

इस उदाहरण में मत्तता निर्मलता और शुद्धता के कारण मधपान, संमार्जन

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद; पृ०- १४७, श्लोक १६६

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०- १०४, छं० सं० ११

३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद; पृ०- १४७, श्लोक २००

और प्रसादन के अभाव में भी उन कार्यों की उत्पत्ति होती है, कार्य-कारण तो होना ही चाहिए। अतः शरद् रूप कारण की विभावना— कल्पना की जाती है, यही कारण है कि इसे विभावना अलंकार कहा जाता है।

'कारणान्तर विभावना' की परिभाषा और उदाहरण केशव ने कुछ इस प्रकार दिया है—

कारण कौनहु आनते, कारज होय जु सिद्ध।
जानौ अन्य विभावना, कारण छांड़ि प्रसिद्ध[1]।।

इसका उदाहरण केशव ने इस प्रकार दिया है—

नेकहु काहू न्हाई न बानी न्हाये बिना ही सु बक्र भई है।
लोचन श्री बिझुकाये बिना बिझुकी-सी, रंग बिनु राग मई है।।
केशव कौन की दीनी कहौ यह चंदमुखी गति मंद लई है।
छोली न, छीही गई कटि छीन सु यौवन की यह युक्ति नई है[2]।।

'स्वाभाविकत्व विभावना' वह है जहां बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति हो।

अनञ्जिताऽसिता दृष्टिर्भ्रूरनावर्जितानता।
अरञ्जितोऽरुणश्चायमधरस्तव सुन्दरि[3]।।

इस उदाहरण में कालापन, नतत्व और लाली के प्रसिद्ध कारण अञ्जन लगाना, आकृष्ट करना और रंगना निषिद्ध कर दिए गये हैं, इससे उन कार्यों की

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०- १०५, छं०सं० १३
२- वही, ,, ,, छं०सं० १४
३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १४७, श्लोक २०१

स्वाभाविकता विभावित होती है। इसको स्वाभाविक विभावना कहते हैं।

इसी को आचार्य केशव ने इस प्रकार लिखा है—

भृकुटी कुटिल तैसी जैसी न करे हू होहिं,
आंजी ऐसी आंखि केशौराय हेरि हारे हैं।
काहे को सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग बिनाही सिंगार के सिंगारे हैं[1] ।।

आचार्य दण्डी ने हेतु अलंकार का लक्षण नहीं कहा है, केवल भेद बताना प्रारम्भ कर दिया है, जिसका अभिप्राय यह है कि हेतु अपने नाम से ही अपना लक्षण कह रहा है।

निर्वर्त्ये च विकार्ये च हेतुत्वं तदपेक्षया।
प्राप्ये तु कर्मणि प्राय: क्रियापेक्षैव हेतुता[2]।।

हेतु दो प्रकार के हैं— क्रियार्थ सम्पादक और कर्मार्थ सम्पादक। क्रियार्थ सम्पादक हेतु कारक ज्ञापक भेद से दो प्रकार का होता है, उनमें भी कारक हेतु के उत्पत्ति— निवृत्ति रूप विषय- भेद दो प्रकार होंगे।

आचार्य केशवदास ने भी हेतु अलंकार के दो भेद माने हैं। एक 'सभाव हेतु' दूसरा 'अभाव हेतु'। 'सभाव हेतु' दण्डी के 'कारकहेतु' से मिलता है। आचार्य दण्डी ने 'कारक हेतु' के दो उपभेद किए हैं— (१) भावसाधन में 'कारक हेतु'; (२) अभाव साधन में 'कारक हेतु'।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वाँ प्रभाव, पृ०- १०५, क्र०सं० १२
२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १६६, श्लोक २४०

अभावसाधनायालमेवंभूतो हि मारुतः ।
विरहज्वरसंभूतमनोज्ञारोचके जने:[1] ।।

चन्दारण्य को कंपाकर और मलयाचलपाती निर्फर को छूकर आने वाली वायु विरह सन्ताप से खिन्न होकर रमणीय वस्तु पर द्वेष रखने वाले वियोगी जन के अभाव के लिए समर्थ है, यहां इतना जानना आवश्यक है जिस प्रकार भावकार्य के प्रति ललितकारणोपन्यास में हेतु अलंकार होता है, उसी प्रकार से अभाव कार्य- निवृत्ति में ललितकारणोपन्यास में भी होता है ।

आचार्य केशवदास ने ` अभाव साधन ` में कारक हेतु को अभाव हेतु मानकर जो उदाहरण दिया है वह बतलाता है कि उन्होंने उसका भाव नहीं समझा उनका उदाहरण ` विभावना ` अलंकार का उदाहरण हो गया है—

जान्यौ न मैं मद यौवन को उतर्यौ कब, काम को काम गयौ ई ।
छांड़न चाहत जीव कलेवर जोर कलेवर छांड़ि दियौ ई ।
आवत जात जरा दिन लीलत रूप जरा सब लीलि लियौ ई ।
केशव राम ररौं न ररौं अनसाधे ही साधन सिद्ध भयौ ई[2] ।।

बिना साधन के कार्य होना विभावना अलंकार का क्षेत्र है । आचार्य केशवदास ने स्वयं ऐसा ही माना है—

कारज को बिनु कारणहि, उदौ होत जेहि ठौर ।
तासों कहत विभावना, केशव कवि शिरमौर[3] ।।

आचार्य केशव द्वारा दिए गये उदाहरण में ` अनसाधे ही साधन सिद्ध भयौ ई `

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०-१६६, श्लोक २३६

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ९वां प्रभाव, पृ०- १०६, छं०सं० १७

३- वही, ,, पृ०- १०४, छं०सं० ११

स्पष्ट घोषणा करता है कि यह विभावना अलंकार है।

आचार्य दण्डी ने ` विरोधाभास ` अलंकार को अलग नहीं माना है, विरोध के अन्तर्गतही लिया है। केशव ने यद्यपि ` विरोधाभास ` अलग माना है, परन्तु उनका ` विरोध ` का उदाहरण ` विरोधाभास ` का उदाहरण हो गया है। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने उदाहरण को आचार्य दण्डी की छाया पर बनाया है। आचार्य दण्डी के विरोध का उदाहरण है—

> कृष्णार्जुनानुरक्ताऽपि दृष्टि: कर्णावलम्बिनी।
> याति विश्वसनीयत्वं कस्य ते कलभाषिणि[1] ।।

अर्थात् हे मधुरभाषिणि, तुम्हारे ये नयन कृष्णार्जुनानुरक्त—कृष्ण एवं अर्जुन पर अनुराग रखने वाले होकर भी कर्ण का अवलम्बन करते हैं, इन पर कौन विश्वास करेगा ? तुम्हारे नयन काले·उजले और प्रान्तभाग में रक्तवर्ण हैं, श्वेत—श्यामरतनार हैं, फिर भी कान तक आए हैं, इनका विश्वास कौन करेगा ?

इस उदाहरण में कृष्णार्जुनानुरक्त का कर्णाश्रित होना विरुद्ध है, यह श्लेषाकृत विरोध है, श्वेतश्यामरतनार नयन आकर्ण व्याप्त हैं, इस अर्थ में विरोध परिहार हो जाता है।

आचार्य केशवदास ने ` विरोधालंकार ` का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

> एरी मेरी सखी तेरी कैसे कै प्रतीत कीजे,
> कृशनानुसारी दृग करणानुसारी हैं[2] ।।

आचार्य केशवदास द्वारा दिए गए बिरोधालंकार के इस उदाहरण में विरोध सा प्रतीत होता है, परन्तु बिचार करने से बिरोध नहीं रहता, केवल बिरोध का आभास मात्र है। अत: यह ` विरोधाभास ` अलंकार हो गया है। आचार्य

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- २०८, श्लोक ३३६

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०-१०७, छं०सं० २०

केशवदास की निम्नलिखित परिभाषा के अनुसार भी यह विरोधाभास ही ठहरता है—

> बरनत लगै विरोध- सो, अर्थ सबै अविरोध ।
> प्रगट विरोधाभास यह, समझत सबै सुबोध ।।

` विरोध ` तथा ` विरोधाभास ` में आचार्य केशव ने बहुत अस्पष्टता कर दी है। उनका तात्पर्य न तो उदाहरण से ज्ञात होता है न लक्षणों से । ` विरोध ` का जो दूसरा उदाहरण आचार्य केशव ने दिया है वह ` विभावना ` अलंकार का हो गया है। ` लाला भगवानदीन ` जी ने भी उस उदाहरण को विभावना का ही माना है। उन्होंने लिखा है— ` पर चूंकि पुस्तक में यह छन्द विरोध के उदाहरण में दिया गया है, अतः कोई चारा नहीं[1]।`

आचार्य केशव के ` विशेषालंकार ` का लक्षण ` विभावना ` के एक भेद सा हो गया है—

> साधक कारण बिकल जहं, होय साध्य की सिद्धि ।
> केशवदास बखानिये, सो विशेष परसिद्धि[2] ।।

इसी प्रकार की उनकी ` विभावना ` की परिभाषा है—

> कारज को बिनु कारणहि, उदो होत जेहि ठौर ।
> तासों कहत विभावना, केशव कवि शिरमौर[3] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ० - १०८, छं० सं०
२- वही, ,, पृ० - ११०, छं० सं० २४
३- वही, ,, पृ० - १०४, छं० सं० ११

`साधक कारण विकल जहं` में `विकल` का अर्थ यदि अभाव न लें केवल `अपूर्ण` लें तो भी यह `विभावना` ही रहेगी क्योंकि अपूर्ण कारण से कार्य होने में भी एक प्रकार की विभावना है।

आचार्य केशवदास का `उत्प्रेक्षालंकार` आचार्य दण्डी से नहीं मिलता

`कविप्रिया` के दसवें प्रभाव में `आक्षेप` अलंकार का वर्णन है इसका विस्तार केशव ने आचार्य `दण्डी` के अनुसार किया है। परन्तु केशव प्राय: किसी अलंकार का प्राणतत्व नहीं समझ पाते थे। यही बात `आक्षेप` अलंकार के प्रकरण में हुई है। `आक्षेप` अलंकार का लक्षण आचार्य दण्डी` ने इस प्रकार दिया है—

प्रतिषेधोक्तिराक्षेपस्त्रैकाल्यापेक्षया त्रिधा।
अथास्य पुनराक्षेप्यभेदानन्त्यादनन्तता[१] ।।

आचार्य `दण्डी` विशेषाभिधानेच्छा से इष्ट वस्तु के निषेधाभास को `आक्षेप` नामक अलंकार मानते हैं। यह तीन प्रकार का है क्योंकि निषेध तीन काल सम्बन्धी पदार्थों का सम्भव है, अत:— `अतीताक्षेप,` `वर्तमानाक्षेप` और `भविष्यदाक्षेप` नामक तीन भेद सिद्ध हुए हैं। इन तीन भेदों के भी अनन्त भेद किए जा सकते हैं; क्योंकि निषेध्यपदार्थ धर्मधर्मिकार्य कारणादि भेद से अनन्त हो सकते हैं।

आचार्य दण्डी के इस परिभाषा की व्याख्या `श्री जीवानंद विद्यासाग ने यों की है—

`वक्तुं प्रारब्धस्यापि विशेषद्योतनार्थं निषेध भाषणं, न तु तत्वत: प्रतिषेध: तात्विकत्वे वैचित्र्याभावात्`।

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १२०, श्लं०सं० १२०

अर्थात् वास्तविक निषेध में अलंकार की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक वैचित्र्य का अभाव रहता है। परन्तु आचार्य केशव ने वास्तविक निषेध को ही आक्षेप समझ लिया था जैसा कि उनके भूतकाल प्रतिषेध के उदाहरण से प्रतीत होता है—

बर्ज्यौ हौं हरि, त्रिपुरहर, बारक करि भ्रूभंग।
सुनौ मदन मोहनि! मदन ह्वैही गयो अनंग[1]।।

यहां पर 'बर्ज्यौ' के द्वारा व्यक्त होने वाला निषेध वास्तविक है जो अलंकार के लिए आवश्यक नहीं। ऐसा ही आगे भी प्राय: स्थलों पर हुआ है। दण्डी ने आक्षेप के चौबीस भेद किए हैं। आचार्य केशव ने केवल बारह माने हैं। आचार्य केशव के छ: भेदों का आचार्य दण्डी से नाम साम्य है। वर्तमानाक्षेप, भविष्यदाक्षेप, संशयाक्षेप, आशिषाक्षेप, धर्माक्षेप, उपायाक्षेप इनमें से चार आशिषाक्षेप, उपायाक्षेप, वर्तमानाक्षेप, भविष्यदाक्षेप नाम तथा लक्षण और उदाहरण में आचार्य दण्डी से मिलते हैं। शेष दो का केवल नाम साम्य है। वास्तव में उनके लक्षण तथा उदाहरण आचार्य दण्डी से भिन्न हैं। आचार्य दण्डी के अनुसार भविष्यदाक्षेप का उदाहरण निम्नवत् है—

सत्यं ब्रवीमि न त्वं मां द्रष्टुं वल्लभ लप्स्यसे।
अन्य चुम्बनसङ्क्रान्तलाक्षारक्तेन चक्षुषा[2]।।

अर्थात् हे प्रिय, मैं सत्य कहती हूं, तुम दूसरी नायिका के नेत्र चुम्बन करने पर उसके अधरलिप्त लाक्षा द्वारा रंजित हुए नेत्रों से मुझे देखने का अवसर नहीं पा

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव, पृ० - ११४, छं०सं० ३

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - १२२, श्लोक १२५

सकोगे, जभी मुझे पता चलेगा कि तुमने मुझसे दूसरी नायिका के साथ सम्पर्क स्थापित किया है, तभी मैं तुमको अपने पास नहीं फटकने दूंगी ।

इस उदाहरण में अतिमानिनी नायिका ने अपने प्रिय को पहले ही मनाकर दिया है जिससे वह दूसरी नायिका के साथ सम्पर्क स्थापना रूप अपराध न कर सके, इसमें भविष्य में किए जाने वाले अपराध का ही प्रतिषेध किया गया है । अत: यह भविष्यदाक्षेप है ।

इसके विपरीत आचार्य केशव ने ' भविष्यदाक्षेप ' का निम्न उदाहरण दिया है—

तातें गौरि न कीजियै कौनहु बिधि भ्रूभंग ।
को जाने ह्वै है कहा प्राणनाथ के अंग[1] ।।

आचार्य दण्डी के अनुसार वर्तमानाक्षेप का उदाहरण निम्नवत् है—

कुत: कुवलयं कर्णे करोषि कलभाषिणि ।
किमपाङ्गमपर्याप्तमस्मिन् कर्मणि मन्यसे ।।
स वर्तमानाक्षेपोऽयं कुर्वत्येवासितोत्पलम् ।
कर्णे काचित् प्रियेणैवं चाटुकारेण रुध्यते[2] ।।

अर्थात्, हे मधुरभाषिणि तुम अपने कानों में नीलकमल क्यों धारण कर रही हो ? क्या तुम अपने नेत्रप्रान्त (कटाक्ष) को इस कर्णशोभा सम्पादन रूप कार्य में अक्षम मानती हो ?

यहां नील कमल धारण करती हुई कोई सुन्दरी ठकुरसुहाती बोलने वाले प्रियतम के द्वारा नीलकमल धारण करने से रोकी जा रही है, इसमें

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव; पृ०- ११४, छं०सं० - ४
२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १२२, श्लोक १२३, १२४

वर्तमानकाल में होते हुए नीलकमल धारण रूप कार्य का प्रतिषेध किया गया है, अत: वर्तमानाक्षेप नामक आक्षेप प्रभेद हुआ ।

आचार्य केशवदास ने वर्तमानाक्षेप का उदाहरण निम्न शब्दों में दिया है—

कोविद ! कपट कटाक्षशर लगत न लजहि उछाह ।
प्रतिफल नूतन नेह को पहिरैं नाह सनाह।[1]

आचार्य दण्डी के अनुसार ' आशिषाक्षेप ' का उदाहरण इस प्रकार है—

गच्छ गच्छसि चेत् कान्त पन्थान: सन्तु ते शिवा: ।
ममापि जन्म तत्रैव भूयाद्यत्र गतो भवान्[2] ।।

अर्थात् हे कान्त, आप जाते हैं तो अवश्य जायं, भगवान आपके मार्ग को कल्याणमय करें । मेरी भी यही इच्छा हैकि (आपके चले जाने पर विरह की असह्यता से प्राण त्याग करने के बाद) मेरा जन्म उसी स्थान पर हो जहां आप गये हों ।

इस उदाहरण में नायिका ने आशीर्वाद के रास्ते मेरा जन्म वहीं हो जाय जहां आप गये हों— इस इच्छा को व्यक्त करने के द्वारा अपनी अवस्था— विरह में प्राणधारण करने की अक्षमता को सूचित करके कान्त की यात्रा का प्रतिषेध किया है अत: आशीर्वचनाक्षेप है ।

आचार्य केशव के अनुसार भी अपना दु:ख छिपाकर, कार्य के लिए अपनी प्रसन्नता प्रकट करना ' आशिषाक्षेप ' है—

आशिष पिय के पंथ को, दीजै दु:ख दुराय ।
आशिष को आक्षेप यह, कहत सकल कविराय[3] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव, पृ०- ११५, छं०सं० ५
२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - १२७, श्लोक १४१
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव, पृ० -११८, छं०सं० १७

इस ` आशिषाक्षेप ` का उदाहरण आचार्य केशव ने निम्नलिखित छन्द के द्वारा दिया है—

> कीन्हों जो पयान नाथ क्षमिये सो अपराध,
> रहिये न पल आध, बंधिये न लाज सों ।
> हौं न कहौं, कहत निगम सब अब तब,
> राजन परम हित आपने ही काज सों[1] ।।

यहां स्पष्ट है कि आचार्य केशव का यह उदाहरण अपने अलंकार को पूर्णतया स्पष्ट करने में अक्षम है ।

आचार्य दण्डी ने ` उपायाक्षेप ` का निम्न उदाहरण दिया है—

> सहिष्ये विरहं नाथ देह्यदृश्याञ्जनं मम ।
> यदक्तनेत्रां कन्दर्पः प्रहर्तुं मां न पश्यति[2] ।।

अर्थात्, हे नाथ, मैं आपका विरह सह लूंगी परन्तु आप मुझे अदृश्यांजन देते जाइए, जिससे अंजन को आंखों में लगाने के बाद प्रहार करने वाला कामदेव मुझे नहीं देख सकेगा ।

इस उदाहरण में अदृश्यांजन—प्रदान रूप अतिकठिन जीवनोपाय बताकर प्रियतम की यात्रा का प्रतिषेध किया गया है, इस तरह के आक्षेप को उपायाक्षेप कहते हैं ।

आचार्य केशव के अनुसार भी कार्यारम्भ में बाधा डालने के लिए किसी ऐसे उपाय की शर्त लगाई जाय, जिसका पूरा होना असम्भव हो उसे ` उपायाक्षेप ` कहते हैं ।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव, पृ०- ११६, छं०सं० १८

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १३०, श्लोक १५१, १५२

आचार्य केशवदास की नायिका भी आचार्य दण्डी की नायिका के समान ही प्रार्थना कर रही है—

मूरति मेरी अदीठ कै ऐंठ चलौ, कै रहो जो कछू मन मानै ।
प्रेमिनि छेमिनि आदि दै केशव, कोउ न मोहिं कहूं पहिचानै[1]।।

आचार्य ' दण्डी ' के ' धर्माक्षेप ' का तात्पर्य आचार्य केशव ने नहीं समझा । आचार्य दण्डी का धर्म शब्द से कोमलता इत्यादि गुणों का तात्पर्य है, परन्तु आचार्य केशव ने पातिव्रत धर्म इत्यादि तात्पर्य समझा है । आचार्य ' दण्डी ' का उदाहरण यह है—

न तन्वङ्गि ! मिथ्यैव रूढमङ्गेषु मार्दवम् ।
यदि सत्यं मृदून्येव किमकाण्डे रुजन्ति माम्[2]।।

अर्थात्, हे कृशाङ्गि तुम्हारे अंगों की प्रसिद्ध मृदुता मिथ्या है, यदि तुम्हारे ये अंग यथार्थ में सुकुमार होते तो मुझे सहसा क्यों पीड़ित करते ? मृदु तो पीड़ा नहीं किया करते ।

आचार्य ' दण्डी ' के अनुसार—

धर्माक्षेपोऽयमाक्षिप्तमङ्गनागात्रमार्दवम् ।
कामुकेन यदत्रैवं कर्मणा तद्विरोधिना[3] ।।

इस उदाहरण में कामुक नायक ने अंगों के सुकुमारताविरुद्ध व्यथाकरण रूप कर्म से उस नायिका के शरीर की सुकुमारता का प्रतिषेध किया है, अतः यह

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव; पृ०- १२०; छ०सं०- २२
२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद, पृ०- १२३, श्लोक १२७
३- वही, ,, श्लोक १२८

' धर्माक्षेप ' है, यहां पर नायिका—गात्रमार्द्वरूप धर्म का आक्षेप प्रतिषेध हुआ है।

आचार्य केशव ने ' धर्माक्षेप ' का तात्पर्य क्या समझा है यह उनके लक्षण से स्पष्ट हो जाता है—

> राखत अपने धर्म को, जहां काज रहि जाय।
> धर्माक्षेप सदा यहै, बरनत सब कबिराय[1] ।।

आचार्य केशव के अनुसार किसी की धर्म- निर्वाह- क्रिया ही दूसरे के कार्य की बाधक हो जाय वही ' धर्माक्षेप ' है।

आचार्य केशव के ' मरणाक्षेप ' का नाम तो आचार्य दण्डी से नहीं मिलता परन्तु उदाहरण से ज्ञात होता है कि यह दण्डी के ' मूर्च्छाक्षेप ' के स्थान पर लिखा गया है। उदाहरण के लिए आचार्य दण्डी के अनुसार—

> मुग्धा कान्तस्य यात्रोक्तिश्रवणादेव मूर्च्छिता।
> बुद्ध्वा वक्ति प्रियं दृष्ट्वा किं चिरेणागतो भवान ।।
> इति तत्कालसंभूत मूर्च्छयऽऽक्षिप्यते गतिः।
> कान्तस्य कातरादया यन्मूर्च्छाक्षेपः स ईदृशः[2] ।।

अर्थात्, प्रियतम की यात्रा की बात सुनते ही वह भोली नायिका मूर्च्छित हो गई, (उसका प्रियतम नहीं जा सका, उपचार करने पर जब) वह चेतना में आई, तब उसने प्रियतम से पूछा कि आप बड़ी देर से आए हैं या अभी आ रहे हैं, आपको आए कितना समय हुआ।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव; पृ०- ११६, छं०सं० १६

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद; पृ०- १३१, श्लोक १५५- १५६

इस उदाहरण में कातरनयना वह भोली नायिका प्रियतम के जाने की बात सुनते ही मूर्च्छित होकर प्रियतम के गमन का प्रतिषेध सद्य: संजात स्वमूर्च्छा द्वारा करती है अत: इसे ` मूर्च्छाक्षेप ` कहा गया ।

आचार्य केशवदास के अनुसार मरणाक्षेप वहां होता है जहां—

मरण निवारण करत जहं, काज निवारण होत ।
जानहु मरणाक्षेप यह, जो जिय बुद्धि उदोत[1] ।।

अमरता सूचक शब्दों में मरण सूचक व्यंग्य द्वारा कार्यारम्भ में बाधा दी जाय, तो वहां ` मरणाक्षेप ` है ।

न्यारे न्यारे नारिदान मूंदिहों भरोखे जाल,
जाइहै न पानी, पौन आवन न पावैगी ।
माधव तिहारे पीछे मोपहं मरण मूढ़,
आवन कहत सो धौं कौन पैंडे आवैगी[2] ।।

शब्दार्थ तो यह है कि मौत आने न पावैगी, पर व्यंग्य यह है कि तुम्हारे जाते ही प्राण छोड़ दूंगी । मरण का भय दिखाकर गमन को रोकना ही मरणाक्षेप है ।

` कविप्रिया ` के ग्यारहवें प्रभाव में केशव ने निम्नलिखित तेरह अलंकारों का वर्णन किया है— क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, ऊर्जस्वि, रसवत्, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, अपह्नुति ।

आचार्य दण्डी ने ` क्रम ` अलंकार का ही दूसरा नाम ` यथासंख्य ` माना है ।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव, पृ०- ११८, छं०सं०- १५
२- वही, ,, छं०सं०- १६

उद्दिष्टानां पदार्थानामनूद्देशो यथाक्रमम् ।
यथासङ्ख्यमिति प्रोक्तं संख्यानं क्रम इत्यपि[१]।।

उद्दिष्ट— पहले कहे गये पदार्थों का क्रमश: यदि आगे कहे गये पदार्थों में समन्वय हो, जिस पौर्वापर्य क्रम से पहले कहे गये हों उसी क्रम से यदि आगे कहे गये पदार्थों में अन्वय किया जाय तो क्रम नामक अलंकार होता है। क्रम को केवल इतने से ही अलंकार माना गया है कि यहां पहले और पीछे वर्णन किए गये पदार्थों में यथाक्रम सम्बन्ध होने के एक प्रकार का वैचित्र्य चमत्कार प्रतीत होता है, नहीं तो यहां पदार्थों में कुछ उपमानोपमेयभाव, कार्यकारणभाव या समर्थ्य समर्थक भाव आदि नहीं रहता है। प्राचीन आचार्यों ने इसे यथासंख्य और संख्यान नाम से व्यवहृत किया है।

आचार्य केशव का 'क्रम' आचार्य दण्डी से नहीं मिलता। इनका 'क्रम' 'एकावली' अलंकार हो गया है। जिसे केशव ने 'गणना अलंकार माना है, उसमें कुछ भी अलंकारत्व नहीं है। उसे हाल के आचार्य अलंकार ही नहीं मानते। आचार्य केशव ने क्रमालंकार की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है—

आदि अंत भरि बरणियै सो क्रम केशवदास।
गणना गणना सों कहत जिनके बुद्धि प्रकास[२]।।

अपने इस 'क्रमालंकार' का उदाहरण आचार्य केशवदास इस प्रकार देते हैं—

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १७६, श्लोक २७३

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ग्यारहवां प्रभाव; पृ०- १२६, छ०सं०- १

धिक मंगन बिन गुनहिं, गुण सु धिक सुनत न रीझिय ।

रीझ सु धिक बिन मौज, मौज धिक देत जु खीझिय[1] ।।

आचार्य केशवदास के इस उदाहरण से स्पष्ट है कि उनका यह उदाहरण ' एकावली ' या ' श्रृंखला ' का उदाहरण हो गया है ।

आचार्य केशवदास का ' आशिषालंकार ' आचार्य दण्डी का ' आशीरलंकार ' है । आचार्य दण्डी के अनुसार—

आशीर्नामाभिलषिते वस्तुन्याशंसनं यथा ।

पातु वः परमं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम्[2] ।।

अपने तथा अपने इष्टजनों की अभिलषित वस्तु के सम्बन्ध में स्वेच्छाप्रकाशन को ' आशीः ' नामक अलंकार माना जाता है ।

आचार्य केशव ने अपने ' आशिषालंकार ' की परिभाषा इस प्रकार दी है—

मातु, पिता, गुरु, देव, मुनि कहत जु कछु सुख पाय ।

ताही सों सब कहत हैं आशिष कबि कविराय[3] ।।

अपनी इस परिभाषा के द्वारा आचार्य केशव ने इसके क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया है । आचार्य दण्डी ने इस अलंकार का क्षेत्र केवल वहीं माना है जहां कोई व्यक्ति अभिलषित वस्तु की प्राप्ति का इच्छा प्रकट करे अथवा प्रार्थना करे । परन्तु आचार्य केशव ने सब प्रकार के आशीर्वादों में चमत्कार मानकर उन्हें इस अलंकार के अन्तर्गत मान लिया है ।

आचार्य केशव का प्रेमालंकार आचार्य दण्डी के प्रेयस् से मिलता है ।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ० - १२६, छं० - २

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - २१६, श्लोक ३५७

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) ११वां प्रभाव, पृ० - १३३, छं० - २४

आचार्य दण्डी ने प्रेयस् नामक अलंकार की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है—

प्रेय: प्रियतराख्यानं रसवद्रसपेशलम् ।
ऊर्जस्वि रूढाहङ्कारं युक्तोत्कर्षं चतत्त्रयम्[१] ।।

प्रियतर-भाव की अभिव्यक्ति होने से श्रोता तथा वक्ता की प्रीति करने वाले आख्यान-उक्ति विशेष को ' प्रेय: ' नामक अलंकार मानते हैं ।

आचार्य केशवदास के अनुसार किसी मनोभाव का कपट रहित वर्णन ही प्रेमालंकार कहलाता है ।

कपट निपट मिटि जाय जहं, उपजै पूरण छौम ।
ताही सों सब कहत हैं, केशव उत्तम प्रेम[२] ।।

आचार्य केशवदास का ' ऊर्जालंकार ' आचार्य दण्डी का ' ऊर्जस्वि ' नामक अलंकार है । आचार्य दण्डी के अनुसार—

अपकर्ताऽहमस्मीति हृदि ते मा स्म भूद्भयम् ।
विमुखेषु न मे खड्ग: प्रहर्तुं जातु वाञ्छति ।।
इति मुक्त: परो युद्धे निरुद्धो दर्पशालिना ।
पुंसा केनापि तज्ज्ञेयमूर्जस्वीत्येवमादिकम्[३] ।।

तुमने मेरा अपकार किया है इसलिए तुम्हें मुझसे डरने की आवश्यकता नहीं है । जब तुम युद्ध विमुख हो गये हो, तब हमारा अपकार करने पर भी

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १८०, श्लोक- २७५

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३४, छ०सं०- २७

३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १८८, श्लोक २९३, २९४

हमारा यह खड्ग कभी भी तुम पर प्रहार नहीं करना चाहेगा ।

इस उदाहरण में महाभिमानी किसी वीर पुरुष ने युद्ध में बन्दी बनाए गये शत्रु को उपर्युक्त प्रकार से लज्जित करने वाली बातें कहकर मुक्त कर दिया, इसलिए इस तरह के सगर्व कथनों में ऊर्जस्वी अलंकार होगा ।

आचार्य केशवदास के अनुसार ऊर्जालंकार की परिभाषा इस प्रकार है—

तजै न निज हंकार को, यद्यपि घटै सहाय ।

ऊर्ज नाम तासों कहैं, केशव सब कबिराय[1] ।।

अपने इस अलंकार का आचार्य केशव ने उदाहरण निम्नवत दिया है—

श्री रघुनाथ के गातनि सुंदरि

जानहि तूं कुशलात न तो लौं ।

शाल सबै दिगपालन को कर

रावण के करवाल है जौ लौं[2] ।।

सहाय हीन होने पर भी रावण अपने स्वाभिमान को नहीं छोड़ता । ऐसे ही वर्णन में ऊर्जालंकार माना जायेगा ।

आचार्य केशवदास ने श्लेष अलंकार के सम्पूर्ण उपभेद आचार्य दण्डी के अनुसार ही दिए हैं । यद्यपि आचार्य केशव ने श्लेष के उपभेदों की परिभाषाएं अलग-अलग नहीं दी हैं, परन्तु उनके उदाहरणों से लक्षणों का पता लगाया जा सकता है । आचार्य दण्डी ने ` श्लेष ` की परिभाषा इस प्रकार दी है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) ? ११वां प्रभाव, पृ०- १५२, छ०सं० ५१

२- वही, ,, छ०सं० ५२

श्लिष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वितं वचः ।
तदभिन्नपदं भिन्नपदप्रायमिति द्विधा[1] ।।

अनेकार्थक—अभिधावृत्ति द्वारा एक ही साथ एकाधिक अर्थ को कहने वाले, एवं एक रूपान्वित—अर्थ भेद होने पर भी अभिन्न प्रयत्नोच्चार्य होने से एक रूप वचन को श्लिष्ट ' श्लेषालंकार ' युक्त कहते हैं ।

आचार्य केशव के अनुसार श्लेषालंकार की परिभाषा इस प्रकार है—

दोय तीनि अरु भाँति बहु आनत जामें अर्थ ।
श्लेष नाम तासों कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ[2] ।।

आचार्य दण्डी के अनुसार श्लेष दो प्रकार का है—अभिन्नपद और अभिन्नपदप्राय । आचार्य केशव ने भी श्लेष के दो भेद माने हैं—

तिन में एक अभिन्न पद, अपर भिन्न पद जानि ।
श्लेष सुबुद्धि दुभेद के, केशवदास बखानि[3] ।।

आचार्य दंडी ने श्लेष के इन दो प्रकारों के अतिरिक्त अन्य प्रकार भी माने हैं—

अस्त्यभिन्नक्रियः कश्चिदविरुद्धक्रियो परः ।
विरुद्धकर्मा चास्त्यन्यः श्लेषो नियमवानपि ।।
नियमाक्षेपरूपोक्तिरविरोधी विरोध्यपि ।
तेषां निदर्शनेष्वेव रूपमाविर्भविष्यति[4] ।।

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १६५, श्लोक- ३१०

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३५, छ०सं०- २६

३- वही, १४३, छ०सं०- ३४

४- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १६८, श्लोक ३१४, ३१५

अभिन्न क्रिय: श्लेष, अविरुद्धक्रिय श्लेष, विरुद्ध क्रियश्लेष सनियम श्लेष, नियमाक्षेप— रूपोक्तिश्लेष, अविरोधी श्लेष, विरोधी श्लेष इस प्रकार से और भी श्लेष हैं।

आचार्य केशव ने भी आचार्य ` दण्डी ` के अनुसार ही श्लेष के और भी बहुत से भेद बताए हैं—

बहुर्यो एक अभिन्न क्रिय और भिन्न क्रिय जान।
पुनि विरुद्ध कर्मा अपर, नियम विरोधी मान।[1]

आचार्य दण्डी ने अपने ` काव्यादर्श ` में अभिन्न क्रिय श्लेष का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

वक्रा: स्वभाव मधुरा: शंसन्त्यो रागमुल्वणम्।
दृशो दूत्यश्च कर्षन्ति कान्ताभि: प्रेषिता: प्रियान्[2]।।

प्रियतमा द्वारा क्षिप्त तथा प्रेषित, वक्र—तिरछी तथा वक्रोक्तिनिपुण, स्वभावत: सुन्दर तथा मधुर प्रकृति वाली बढ़े हुए रक्तत्व एवं अनुराग को प्रकट करने वाली दृष्टियां तथा दूतियां नायकों को आकर्षित करती हैं।

इस उदाहरण में दृष्टि और दूती कर्षण स्वरूप एक क्रिया में अन्वय से होने वाली तुल्योगिता है, वक्रादिपद में वर्तमान श्लेष उसका अंग है, इस तरह के श्लेष को अभिन्नक्रिय श्लेष कहते हैं।

आचार्य केशवदास ने ` अभिन्नक्रिय श्लेष ` का निम्न उदाहरण दिया है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १४६, छं०सं० ३६

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १६६, श्लोक ३१६

प्रथम प्रयोगियतु बाजि द्विजराज प्रति,
सुवरण सहित न विहित प्रमान है ।
सजल सहित अंग विक्रम प्रसंग रंग,
कोष ते प्रकाशमान धीरज निधान है ।।
दीन को दयाल प्रतिभटन को शाल करै,
कीरति को प्रतिपाल जानत जहान है ।
जात हैं विलीन ह्वै दुनी के दान देखि राम—
चन्द्र जू को दान कैधौं केशव कृपान है[1] ।।

आचार्य केशव ने इसका नाम अभिन्न क्रिया इस हेतु रखा है कि इसमें दानपक्ष और कृपाणपक्ष दोनों के लिए " प्रयोगियतु " एक ही क्रिया आई है, परन्तु दोनों पक्षों का फल विरुद्ध है ।

स्पष्टत: आचार्य केशव का यह उदाहरण आचार्य दण्डी के उदाहरण से नहीं मिलता है परन्तु आचार्य केशव के इस उदाहरण से अभिन्न क्रिया श्लेष की जो परिभाषा निकलती है वह दण्डी की परिभाषा से मिलती है ।

आचार्य दण्डी का विरुद्धक्रिय श्लेष आचार्य केशव का भिन्न क्रिय श्लेष है । आचार्य दण्डी ने विरुद्धक्रिय श्लेष का निम्न उदाहरण दिया है—

रागमादर्शयन्नेष वारुणीयोगवर्द्धितम् ।
तिरोभवति घर्मांशुरङ्गजस्तु विजृम्भते[2] ।।

वारुणी – पश्चिम दिशा के सम्बन्ध से बढ़ी हुई लालिमा को प्रकटित करता हुआ यह सूर्य छिप रहा है और मदिरापान से बढ़ी हुई लालिमा को प्रकटित करता हुआ कामदेव उदीप्त हो रहा है ।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ० - १४६, छ०सं० - ४०

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - १६६, श्लोक ३१८

इस उदाहरण में छिपना और उदीप्त होना परस्पर विरुद्ध हैं अतः यह विरुद्धक्रियश्लेष है, आचार्य दण्डी का यह ` विरुद्धक्रियश्लेष' आचार्य केशव का ` विरुद्ध कर्माश्लेष ` है, जिसका उदाहरण आचार्य केशव ने इस प्रकार दिया है—

दोऊ भगवंत तेजवंत बलवंत दोऊ,
दुहुन को बेदन बखानी बात ऐसी है।
दोऊ जानै पुण्य पाप, दुहुन के ऋषि बाप,
दुहुन को देखियत मूरति सुदेसी है ।।
सुनौ देवदेव बलदेव, कामदेव, प्रिय,
केशोराय की सौं तुम कहौ तैसी जैसी है।
बारुणी को राग होत सूरज करत अस्त,
उदौ द्विजराज को जु होत यह कैसी है[1] ।।

इस उदाहरण में भी ` राग होत ` क्रिया एक है, पर उसके फल दोनों के लिए (सूर्य और चन्द्रमा) के लिए परस्पर अति विरुद्ध हैं, अर्थात् एक का ` अस्त ` दूसरे का ` उदय ` है।

आचार्य दण्डी ने नियम श्लेष के लिए निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

निस्त्रिंशत्वमसावेव धनुष्येवास्य वक्रता ।
शरेष्वेव नरेन्द्रस्य मार्गणत्वं च वर्तते[2] ।।

इस नरेन्द्र की तलवार में ही निस्त्रिंशता तीस अंगुली से अधिक परिमाणता अथवा निर्दयता है हृदय में निर्दयता नहीं, धनुष में ही कुटिलता(आकर्षणादिकृत

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ० - १४८, छ०सं० ४२

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - २००, श्लोक ३१६

है मन में नहीं, बाणों में ही मार्गणता—याचकता है प्रजाजन में नहीं ।

इस उदाहरण में प्रत्येक वाक्य स्थित एवकार से द्वितीय वस्तु का व्यवच्छेद होता है अत: इसे सनियम श्लेष कहा जाता है ।

आचार्य दण्डी के इस उदाहरण के भाव के आधार पर आचार्य केशव ने अपने ' नियम श्लेष ' का निम्न उदाहरण दिया है—

बैरी गाय ब्राह्मन को काले सब काल जहाँ
कबि कुल ही को सुबरणहर काज है ।
गुरु सेजगामी एक बालकै विलोकियत,
मातंगनि ही को मतवारे को सो साज है ।।
अरि नगरीन प्रति होत है अगम्या गौन,
दुर्गन ही केशोदास दुर्गति सी आज है ।।
राजा दशरथ सुत राजा रामचन्द्र तुम,
चिरु चिरु राज करौ जाको ऐसो राज है[1] ।।

अपने इस उदाहरण में आचार्य केशवदास ने सुबरणहर, गुरुसेजगामी, मतवारे, अगम्यागौन दुर्गति इत्यादि शब्दों को श्लिष्ट बना दिया है। इनके प्रचलित अर्थों को नियमन करके एक विशेष अर्थ में बद्ध (सीमित) कर दिया है, अत: इसका नाम आचार्य केशव ने ' नियम श्लेष ' रखा है ।

आचार्य केशवदास का भिन्न क्रियाश्लेष आचार्य दण्डी का अविरुद्धक्रिय श्लेष है । आचार्य दण्डी ने अविरुद्धक्रिय श्लेष का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

१- प्रियाप्रकाश (कबिप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १४६, छ०सं०- ४३

मधुरारागवर्धिन्य: कोमला: कोकिलागिर: ।
आकर्ण्यन्ते मदकला: श्लिष्यन्ते चासितेक्षणा:[1] ।।

कानों को भली लगने वाली, उद्दीपक होने से आसक्ति को बढ़ाने वाली सुकुमारी तथा सौभाग्यान्विता असितेक्षणा सुन्दरियां लिपटायी जाती हैं, आलिङ्गित होती हैं ।

इसमें आश्लेष और आकर्णन रूप क्रियाएं अविरुद्ध हैं अत: अविरुद्धक्रिय श्लेष है, यहां भी श्लेष तुल्योगिता का अंग है ।

कुछ इसी प्रकार का उदाहरण आचार्य केशव ने अपने ' भिन्न क्रिया श्लेष ' नामक अलंकार में दिया है—

कहु कान्ह सुनौ कल कूकति कोकिल काम की कीरति गावति सी ।
पुनि बातें कहै कल भाषिनि कामिनि केलि कलानि पढ़ावति सी ।।
सुनि बाजति बीन प्रवीन सुराग हिये उपजावति सी ।
कहि केशवदास प्रकास बिलास सबै बन शोभ बढ़ावति सी[2] ।।

यहां कोकिल का कूकना, मंजु भाषिणी कामिनी की बातें करना और किसी प्रवीण के हाथ से नवीन बीन का बजना (जंगल में), उस स्थान की शोभा ही बढ़ावेगा । अर्थात् अनेक क्रियाओं का फल एक ही होगा ।

आचार्य दण्डी ने विरोधी श्लेष का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

अच्युतोऽप्यवृषच्छेदी राजाप्यविदितक्षय: ।
देवोऽप्यविबुधो जज्ञे शङ्करोऽप्यभुजङ्गवान्[3] ।।

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १६६, श्लोक ३१७

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १४७, छं०सं० ४१

३ - काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- २०१, श्लोक ३२२

यह विरोधिश्लेष प्रधान्येन प्रतीत होने वाले विरोधाभास का अंगभूत है ।

आचार्य केशवदास ने भी विरोधी श्लेष का उदाहरण भी इसी प्रकार का दिया है—

कृष्ण हरेहरये हरैं संपति, शंभु बिपत्ति यहै अधिकाई ।
जातक काम अकामन के हितु, घातक काम सकाम सहाई ।।
छाती में लच्छि दुरावत वेतो, फिरावत थे सबके संग धाई ।
यद्यपि केशव एक तऊ हरि ते हर सेवक को सत भाई[1] ।।

इस उदाहरण में काम, अकाम, सकाम इत्यादि शब्द श्लिष्ट हैं, इन्हीं के द्वारा हरि और हर में विरोध निकाला गया है ।

आचार्य केशवदास का 'सूक्ष्मालंकार' तथा उसके दो उपभेद आचार्य दण्डी के अनुसार हैं । 'इंगितलक्ष्य सूक्ष्म' के उदाहरण में आचार्य दण्डी ने जो श्लोक दिया है उसी का भावानुवाद आचार्य केशव ने किया है । आचार्य दण्डी के अनुसार—

कदा नौ सङ्गमो भावीत्याकीर्णे वक्तुमक्षमम् ।
अवेक्ष्य कान्तमबला लीलापद्मं न्यमीलयत्[2] ।।

इस उदाहरण में मदनबाणविह्वल पतिदेव को धीरज देने के लिए उस कामिनी ने कमल सङ्कोचन रूप इङ्गित के द्वारा रात्रि में हमारा मिलन होगा यह बात सूचित कर दी । यहां कमलनिमीलन— रूप इङ्गित से मिलन समय सूक्ष्मतया कहा गया है अतः यह सूक्ष्म का पहला भेद हुवा ।

आचार्य केशवदास ने इस प्रकार का उदाहरण दिया है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) ११वां प्रभाव, पृ०- १४६, क्र०सं०- ४४

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १७५, श्लोक २६१

सखि सोहत गोप सभा महं गोबिन्द बैठे हुते दुति को धरिकै ।
जनु केशव पूरण चंद लसै चित चारु चकोरन को हरिकैं ॥
तिनको उलटो करि आनि दियो केहु नीरज नीर नयो भरिकै ।
कहु काहे ते नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करिकै[१]॥

लेश अलंकार का लक्षण भी आचार्य केशव ने आचार्य दण्डी से ही लिया है परन्तु आचार्य केशवदास का लक्षण उतना स्पष्ट नहीं हो पाया है । आचार्य दण्डी ने लेश का लक्षण इस प्रकार व्यक्त किया है—

लेशो लेशेन निर्भिन्नवस्तु रूप निगूहनम् ।
उदाहरण स्वास्य रूपमाविर्भविष्यति[२]॥

आचार्य केशव का लक्षण इस प्रकार है—

चतुराई के लेश ते, चतुर न समझै लेश ।
बरनत कबि कोबिद सबै ताको केशव लेश[३]॥

आचार्य दण्डी ने लेश अलंकार का निम्न उदाहरण दिया है—

राजकन्यानुरक्तं मां रोमोद्भेदेन रक्षकाः ।
अवगच्छेयुराज्ञातमहो शीतानिलं वनम्[४] ॥

आचार्य केशवदास ने लेश अलंकार का जो उदाहरण दिया है वह आचार्य दण्डी के

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५०, छ०सं० ४६
२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १७६, छ०सं० २६५
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५१, छ०सं०- ४७
४- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १७७, श्लोक २६६

उदाहरण से अधिक श्रेष्ठ एवं सुन्दर बन पड़ा है। आचार्य केशव लेश अलंकार का उदाहरण देते हुए लिखते हैं—

खेलत हे हरि आगे बने जहं बैठी प्रिया रति ते अति लोनी।
केशव कैसेहुं पीठ में दीठिपरी कुच कुंकुम की रुचि रोनी।।
मातु समीप दुराईं भले तिहि सात्विक भावन की गति होनी।
धूरि कपूर की पूरि विलोचन संधि सरोरुह ओढ़ि ओढ़ौनी[1]।।

आचार्य केशवदास का निदर्शना अलंकार का लक्षण भी आचार्य दण्डी के ही अनुसार है। आचार्य दण्डी के निदर्शना अलंकार का लक्षण इस प्रकार है—

अर्थान्तरप्रवृत्तेन किञ्चित तत्सदृशं फलम्।
सदसद्वा निदर्श्यैत यदि तत्स्यान्निदर्शनम्[2]।।

किसी कार्यन्तर में प्रवृत्त कोई कर्ता यदि स्वक्रियमाण कार्ययोग्य किसी सत् या असत् कार्य का बोधन करे वहां निदर्शन अलंकार होता है।

आचार्य केशवदास ने निदर्शना अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है—

कौनहु एक प्रकार ते, सत अरु, असत समान।
करिये प्रगट, निदर्शना, समुझत सकल सुजान[3]।।

भले काम से भली शिक्षा और बुरे काम से बुरी शिक्षा का प्रकट करना ही आचार्य केशवदास के अनुसार निदर्शना अलंकार है।

आचार्य केशवदास के रसवत् अलंकार का लक्षण भी आचार्य दण्डी से मिलता है।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ० - १५१, छ०सं० - ४८

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - २१२, श्लोक ३४८

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ग्यारहवां प्रभाव, पृ०-१५१, छ०-४६

आचार्य दण्डी के अनुसार रसवत् अलंकार का लक्षण निम्नवत है—

प्राक्प्रीतिर्दर्शिता सेयं रतिः श्रृंगारतां गता ।
रूप बाहुल्ययोगेन तदिदं रसवद्वचः[१] ।।

इस उदाहरण में रति की विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों से पुष्टि हो गई है, अतः वह रति रसरूप श्रृंगाररसत्व को प्राप्त हो गई है, इसीलिए यह रसवत् है ।

आचार्य केशवदास के अनुसार रसवत् अलंकार का लक्षण इस प्रकार है—

रसमय होय सु जानिये, रसवत केशवदास ।
नव रस को संक्षेप ही, समुझौ करत प्रकाश[२] ।।

आचार्य दण्डी के अनुसार जब रति विभावादिपरिपुष्ट होने से श्रृंगार रस बन जाती है तब वह रसवत् का विषय होता है जबकि आचार्य केशवदास ने रस वर्णन को ही रसवत् माना है । जहां कोई रस किसी अन्य रस या भाव का अंग होकर उसे पोषण करे तथा उसकी शोभा बढ़ावे, वहां उस पोषणकारी रस के वर्णन को (गुणीभूत वा अप्रधान अंग होने के कारण) हाल के आचार्य रसवत् अलंकार कहते हैं । परन्तु केशव ने तो रस वर्णन ही को रसवत् मानकर रसमय होय ` परिभाषा की है । उदाहरण भी वैसे ही दिए हैं । बहुत से लोग इसे अलंकार ही नहीं मानते, क्योंकि अन्य अर्थालङ्कारों के अभाव में ही इसकी ओर दृष्टि जाती है, अन्यथा नहीं ।

आचार्य केशवदास के वीभत्स रसवत् का उदाहरण उतना श्रेष्ठ नहीं है जितना आचार्य दण्डी का है । आचार्य दण्डी का उदाहरण निम्नवत् है—

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १८३, श्लोक २८१

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५३, छ०सं०- ५३

पायं पायं त्वारीणां शोणितं पाणि सम्पुटैः ।
कौणपाः सह नृत्यन्ति कबन्धैरन्त्रभूषणाः[1] ।।

आंतों की मालाएं धारण करने वाले राक्षसगण बिना सिर के कबन्धों के साथ आपके शत्रुओं के शोणित पाणिपुट से पी-पी कर नाच रहे हैं ।

आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया उदाहरण इस प्रकार है—

सिगरे नरनायक असुर विनायक राकस पति हिय हारि गये ।
काहु न उठायो, गहि न चढ़ायो, टर्यो न टारे भीत भये ।।
इन राजकुमारन अति सुकुमारन लै आए हौं पैज करै ।
व्रत भङ्ग हमारो भयो तुम्हारो ऋषि तप तेज न जानि परै[2] ।।

शेष उदाहरण भी आचार्य केशव ने आचार्य दण्डी की परिभाषा के अनुसार किए हैं परन्तु वे मौलिक हैं ।

आचार्य केशव ने अपने 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार के उपभेदों के नाम तो आचार्य दण्डी के अनुसार रखे हैं, परन्तु इनकी परिभाषाएं तथा उदाहरण आचार्य दण्डी से नहीं मिलते । ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य केशवदास इसे समझ नहीं सके ।

'कविप्रिया' का 'व्यतिरेक' भी आचार्य दण्डी के अनुसार ही है । आचार्य दण्डी ने व्यतिरेक अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है—

शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयोः ।
तत्र यद्भेदकथनं व्यतिरेकः सः कथ्यते[3] ।।

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- , श्लोक
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५७, छ०सं०- ६०
३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १४०, छ०सं० १८०

जहाँ पर उपमान और उपमेय का सादृश्य इवादि वाचक शब्द प्रयोग के होने से शब्दत: कथित हो, अथवा तुल्यादिशब्द प्रयोग होने से लक्षणा द्वारा प्रतीत हो या पूर्वापर पर्यालोचना से प्रतीत हो वहाँ यदि भेद कहा जाय किसी धर्म विशेष से उपमानापेक्षया उपमेय का उत्कर्ष बताने के लिए अन्तर कहा जाय तब व्यतिरेक नामक अलंकार होता है।

आचार्य केशव के अनुसार व्यतिरेकालंकार का लक्षण इस प्रकार है—

तामें आनिभेद कछु, होयं जु बस्तु समान।
सो व्यतिरेक सुभांति द्वै युक्ति सहज परमान[1]।।

आचार्य केशव के अनुसार बराबर वाली दो वस्तुओं में कुछ भेद दिखलाना व्यतिरेक है।

आचार्य दण्डी चार प्रकार के व्यतिरेक मानते हैं—

(१) उपमान का अपकर्ष और उपमेय का उत्कर्ष दोनों के उपादान में।

(२) उपमान के अपकर्षमात्रोपादान में।

(३) उपमेय के उत्कर्षमात्रोपादान में।

(४) उभयनुपादान में।

आचार्य दण्डी का एकव्यतिरेक ही केशव का युक्ति व्यतिरेक है। आचार्य दण्डी का सापेक्ष सप्रतिषेध व्यतिरेक आचार्य केशव का सहज व्यतिरेक है क्योंकि आचार्य केशव द्वारा दिए गये निम्न उदाहरण में नायक की आँखें छोटी होने के रूपधर्म से नायिका सादृश्य प्रतिषेध होता है और उससे नायिका का उत्कर्ष सिद्ध होता है। अत: इसे सापेक्ष-सप्रतिषेध व्यतिरेक कहा जा

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वाँ प्रभाव, पृ०- १६४, छ०सं० ७८

सकता है। आचार्य केशव का सहज व्यतिरेक का उदाहरण इस प्रकार है—

गाय बराबरि धाम सबै धन जाति बराबर ही चलि आईं।
केशव कंस वितान पितान बराबर ही पहिरावनि पाईं ।।
बैस बराबरि दीपति देह बराबर ही विधि बुद्धि बढ़ाईं।
ये अलि आजु ही होहुगी कैसे बड़ी तुम आंखिन ही की बड़ाईं[१]।।

आचार्य केशव का 'अपह्नुति' अलंकार का लक्षण तो आचार्य दण्डी के अनुसार ही है, परन्तु इस अलंकार के लिए जिस प्रकार की गोपनक्रिया आवश्यक है वैसी उदाहरण में न आ सकी। आचार्य केशव का उदाहरण 'मुकरी' हो गया है वह 'अपह्नुति' नहीं रह गया है। आचार्य दण्डी ने अपह्नुति का लक्षण निम्न शब्दों में दिया है—

अपह्नुतिरपह्नुत्य किञ्चिदन्यार्थदर्शनम्।
न पञ्चेषुः स्मरस्तस्य सहस्रं पत्रिणामिति[२]।।

वर्णनीय वस्तु के गुणक्रियादि धर्म को असत्य बताकर अपलपित करके यदि दूसरे धर्म-गुण क्रियादि का आरोप किया जाय तो अपह्नुति अलङ्कार होता है, धर्मी का निषेध करके धर्म्यन्तर के आरोप में दण्डी ने तत्वापह्नवरूपक नाम का अलङ्कार बताया, अतः उससे भेद करने के लिए धर्मनिषेधपूर्वक धर्मान्तरारोप को अपह्नुति कह रहे हैं।

आचार्य केशव द्वारा दिया गया 'अपह्नुति' का लक्षण निम्नवत् है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १६५, छ०सं० ८०

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०-   , श्लोक

मन की बात दुराय मुख, और कहिये बात ।
कहत अपह्नुति सकल कबि, ताहि बुद्धि अवदात[1] ।।

आचार्य केशव ने इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है—

सुन्दर ललित गति बलित सुबास अति,
सरस सुवृत्त मति मेरे मन मानी है ।
अमल अदूषित सुभूषननि भूषित,
सुबरण, हरनमन, सुर सुखदानी है ।।
अंग अंग ही को भाव, गूढ़ भाव के प्रभाव,
जाने को सुभाव रूप रुचि पहिचानी है ।
केशोदास देवी कोउ देखी तुम ? नाहीं राज,
प्रगट प्रबीनराय जू की यह बानी है[2] ।।

बारहवें प्रभाव में आचार्य केशवदास ने नौ अलंकार माने हैं । वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति, सहोक्ति व्याजस्तुति इत्यादि दण्डी से मिलते हैं । आचार्य दण्डी ने विशेषोक्ति अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है—

गुणजाति क्रियादीनां यत्त वैकल्यदर्शनम् ।
विशेषदर्शनायैव सा विशेषोक्तिरिष्यते[3] ।।

जहाँ पर वर्णनीय वस्तु के वीर्याधिक्य को प्रदर्शित करने के लिए (कार्यसिद्धि में अपेक्षित) गुणजाति क्रियादि का वैकल्य वर्णित हो उसे विशेषोक्ति नामक

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ० - १६६, छ०सं० ८१
२- वही, ,, ,, छ०सं० ८२
३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - २०१, श्लोक ३२३

अलंकार कहते हैं।

आचार्य केशव द्वारा दिया गया ` विशेषोक्ति ` का लक्षण इस प्रकार है—

विद्यमान कारण सकल, कारज होय न सिद्ध।
सोई उक्ति बिशेष मय, केशव परम प्रसिद्ध[1]।।

आचार्य केशव के अनुसार पुष्ट कारण रहते हुए भी कार्य सिद्ध न हो, तो ` विशेषोक्ति ` है। आचार्य दण्डी ने विशेषोक्ति के पांच भेद माने हैं—

(१) गुणवैकल्य विशेषोक्ति:

(२) जाति वैकल्य विशेषोक्ति:

(३) क्रिया वैकल्य विशेषोक्ति:

(४) द्रव्य वैकल्य विशेषोक्ति:

(५) हेतुविशेषोक्ति:

आचार्य केशव ने इसके भेद तो नहीं बताए हैं परन्तु चार- पांच उदाहरण दिए हैं। कौन- सा उदाहरण किस उपभेद के अन्तर्गत है यह विशेष स्पष्ट नहीं होता। आचार्य केशव का निम्न उदाहरण जाति वैकल्य विशेषोक्ति के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

कर्ण से दुष्ट ते पुष्ट हुते भट पाप औ कष्ट न शासन टारे।
सोदर सैन कुयोधन से सब साथ समर्थ भुजा उसकारे ।।
हाथी हजारन को बल केशव ऐंचि थको पट को डर डारे।
द्रौपदी को दुश्शासन पै तिल अंग तऊ उघर्यो न उघारे[2]।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १७२, छ०सं० १४

२- वही, ,, ,, छ०सं० १५

वर्णनीय द्रौपदी को जाति वैकल्य से विशेष बताया गया है अत: इसे जाति वैकल्य विशेषोक्ति कह सकते हैं ।

इसी प्रकार आचार्य ` केशवदास ` का निम्न उदाहरण आचार्य `दण्डी ` के ` हेतु विशेषोक्ति ` के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

कर्ण कृपा द्विज द्रोण तहां जिनको पन काहु पै जात न टारो ।
भीम गदाहि धरे धनु अर्जुन, युद्ध जुरे जिनसों यम हारो ।।
केशवदास पितामह भीष्म मीचु करी बश लै दिसि चारो ।
देखत ही तिनके दुरयोधन द्रौपदी सामुहें हाथ पसारो[1] ।।

इस उदाहरण में भीम, अर्जुन आदि की मौजूदगी से यह बताया गया कि दुर्योधन असाधारण बल रखते हैं ।

आचार्य ` दण्डी ` ने ` सहोक्ति ` अलंकार की परिभाषा यों की है—

सहोक्ति: सहभावेन कथनं गुणकर्मणाम् ।
अर्थानां यो विनिमय: परिवृत्तिस्तु सा स्मृता[2]

गुण, क्रिया, द्रव्य के सहभाविन कथन को सहोक्ति अलंकार कहते हैं, जहां सम्बन्धि भेदेन भिन्न होने वाले भी गुण-क्रियादि सहार्थक शब्द के बल से एक साथ कहे जाते हों उसको ` सहोक्ति ` माना जाता है ।

आचार्य केशव के अनुसार—

हानि बुद्धि शुभ अशुभ कछु, कहिये गूढ़ प्रकास ।
होय सहोक्ति सु साथ ही, बरणत केशवदास[3] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १२वां प्रभाव, पृ०- १७३, क्र०सं० १७
२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- २१३, क्र०सं० ३५१
३ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १२वां प्रभाव, पृ०- १७४, क्र०सं० २०

आचार्य ` केशवदास ` ` सहोक्ति ` वहां मानते हैं जहां किसी वस्तु की कमी बढ़ी, शुभ व अशुभ गुण या गुप्त तथा प्रगट होना वर्णन करना हो, तो उसके साथ एक और घटना का भी उल्लेख कर दिया जाय ।

आचार्य ` दण्डी ` ने ` व्याजस्तुति ` की परिभाषा इस प्रकार दी है—

यदि निन्दन्निव स्तौति व्याजस्तुतिरसौ स्मृता ।
दोषमासा गुणा एव लभन्ते ह्यत्र सन्निधिम्[१] ।।

यदि आपाततः निन्दा- सी प्रतीत हो, लेकिन उससे स्तुति प्रकट होती हो तो उसे ` व्याजस्तुति ` मानते हैं, इस अलंकार में दोषाभास के समान प्रतीत होने वाले गुण ही प्रधान कारण होते हैं ।

आचार्य केशवदास ने ` व्याजस्तुति ` और ` व्याजनिन्दा ` अलंकारों का लक्षण निम्नवत् दिया है—

स्तुति निन्दा मिस होत जहं, स्तुति मिस निन्दा जान ।
व्याजस्तुति निन्दा वहै, केशवदास बखान[२] ।।

निन्दा- द्योतक शब्दों से जहां स्तुति निकले वहां ` निन्दाव्याज स्तुति ` और स्तुतिसूचक शब्दों से जहां निन्दा भासित हो वहां ` स्तुतिव्याजनिन्दा `, अथवा संक्षेप से ` व्याजस्तुति ` और ` व्याजनिन्दा ` कहते हैं ।

आचार्य दण्डी ने ` व्याजस्तुति ` का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

तापसेनापि रामेण जितेयं भूतधारिणी ।
त्वया राज्ञापि सैवेयं जिता माभून्मदस्तव[३] ।।

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- २१०, श्लोक ३४३

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १७५, छं०सं० २२

३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- २११, श्लोक ३४४

तपस्वी होकर भी परशुराम ने जिस पृथ्वी को विजय की थी, आपने राजा होकर भी उसी पृथ्वी की विजय की है, अतः आपको पृथ्वी जीतने का गर्व नहीं होना चाहिए।

इस उदाहरण में आपाततः निन्दा प्रतीत होती है परन्तु है यह स्तुति, अतएव इसे निन्दा व्याजेन स्तुति— 'व्याजस्तुति' कहा गया है। आचार्य केशवदास की 'व्याजस्तुति' आचार्य दण्डी के समान है पर केशव के उदाहरण आचार्य दण्डी के उदाहरण से अधिक प्रभावशाली है। निम्नलिखित उदाहरण ऐसा सुन्दर है कि इसी एक छन्द में 'व्याजस्तुति' और 'व्याजनिन्दा' दोनों उदाहरण मिल जाते हैं। यह केशव का कमाल है। इसमें श्रीकृष्ण की निन्दा और नायिका की स्तुति व्याज से निकलती है।

शीतल हू हीतल तुम्हारे न बसति वह,
तुम न तजत तिल ताको उर ताप गेहु।
आपनो ज्यौं हीरा सो पराये हाथ ब्रजनाथ,
दै कै तौ अकाथ साथ मैन ऐसा मन लेहु।।
एते पर केशोदास तुम्है परवाह्नाहिं,
वाहै जक लागी भागी भूख सुख भूल्यो गेह।
मांडो मुख छांडो छिन छल न छबीले लाल,
ऐसी तौ ग्वारिन सों तुम ही निबाहो नेहु[१]।।

आचार्य केशवदास का 'युक्त' अलंकार उन्हीं के 'स्वभावोक्ति' से मिल जाता है। उनके इन दोनों अलंकारों के लक्षण इस प्रकार हैं—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १२वां प्रभाव, पृ०- १७५, छ०सं० २३

युक्त अलंकार :

जाको जैसो रूप बल, कहिए ताही रूप ।
ताको कवि कुल युक्त कहि, बरणत विविध सरूप[1] ।।

स्वभावोक्ति :

जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज ।
तासों जानि स्वभाव सब कहि बरणत कबिराज[2] ।।

` कविप्रिया ` के तेरहवें प्रभाव में आठ अलंकारों का वर्णन किया गया है । समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत रूपक, दीपक, प्रहेलिका और परिवृत्ति । इनमें से तीन अलंकारों का वर्णन आचार्य दण्डी ने नहीं किया है । वे अलंकार हैं— सुसिद्ध, प्रसिद्ध और विपरीत । बचे हुए पांच अलंकार आचार्य दण्डी के अनुसार हैं । आचार्य दण्डी ने ` समाहित ` का लक्षण इस प्रकार दिया है—

किञ्चिदारभमाणस्य कार्यं दैववशात् पुन: ।
तत्साधनसमापत्तिर्या तदाहु: समाहितम् ।।
मानमस्या निराकर्तुं पादयोर्मे पतिष्यत: ।
उपकाराय दिष्ट्येदमुदीर्णं घनगर्जितम्[3] ।।

कर्त्ता किसी कार्य में अपेक्षित साधन को लेकर उस कार्य को प्रारम्भ करे, भाग्यवश यदि उसी समय उस कार्य के साधक अन्य साधन मिल जायं तब कार्य सुकर हो जाय, इसे समाहित अलंकार मानते हैं । नवीन आचार्य इसे ` समाधि ` नाम से व्यवहृत करते हैं, `समाहित ` तो उनके अनुसार भावशान्ति में होता है ।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १७६, छं०सं० ३१
२- वही, ६वां प्रभाव, पृ०-१०३, छं०सं० ८
३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- १६०, श्लोक २६८, २६६

` समाहित ` अलंकार का लक्षण आचार्य केशवदास ने इस प्रकार दिया है—

होत न क्योंहू, होय तहं, दैव योग ते काज ।
ताहि समाहित नाम कहि, बरणत कबि सिरताज[1] ।।

आचार्य ` केशवदास ` तथा आचार्य ` दण्डी ` के लक्षणों का भाव एक ही है। आचार्य केशव ने ` समाहित ` का जो उदाहरण दिया है वह भी आचार्य दण्डी के उदाहरण का ` छायानुवाद ` ही है।

` रूपक ` अलंकार के आचार्य ` दण्डी ` ने १६ भेद माने हैं परन्तु आचार्य ` केशव ` ने केवल ये तीन भेद माने हैं—अद्भुत रूपक, विरुद्धरूपक और रूपक- रूपक। आचार्य केशव का ` अद्भुत- रूपक ` अधिकताद्रूप्य रूपक हो गया है। आचार्य दण्डी ने भी ` विरुद्ध- रूपक ` माना है परन्तु केशव का विरुद्ध - रूपक दण्डी से नहीं मिलता। केशव का विरुद्ध- रूपक, रूपक नहीं है, रूपकातिशयोक्ति है जिसमें केवल उपमानों का कथन किया जाता है। विरुद्ध- रूपक का आचार्य केशव का यह उदाहरण है—

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरनों सु न बुद्धि सकै छ्वै ।
` केसवदास ` मनोज मनोहर ताहि फले फल श्री फल से व्वै ।।
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चलै च्वै ।
ता पर एक - सुवा सुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै[2] ।।

रूपक- रूपक नामक एक भेद आचार्य दण्डी ने भी माना है और उसका उदाहरण इस प्रकार दिया है—

मुखपङ्कजरङ्गेऽस्मिन् भ्रू लतानर्तकी तव ।
लीला नृत्यं करोतीति रम्यं रूपक रूपकम्[3] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १८०, छं०सं० १
२- वही, ,, पृ०- १८५, छं०सं० १८
३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ११०, श्लोक ६३

तुम्हारे इस मुख कमलरूपी रङ्ग स्थल पर भ्रूलता रूपी नर्तकी विलास नृत्य कर रही है, यह चमत्कार कारक होने से रूपक-रूपक कहा जाता है।

आचार्य केशवदास ने रूपक-रूपक का उदाहरण यों दिया है—

काढ़े सितासित काछनी केशव पातुरि ज्यों पुतरीनि विचारो ।
कोटि कटाक्ष चलैं गति भेद नचावत नायक नेह निनारो ॥
बाजत है मृदु हास मृदंग, सुदी - पति दीपन को उजियारो ।
देखत हौ हरि ! देखि तुम्हैं यह होत है आंखिन ही में अखारो[1]॥

आचार्य ' केशवदास ' ने अपने इस उदाहरण में आचार्य ' दण्डी ' के उदाहरण की छाया लाने का यत्न किया है। परन्तु उन्होंने ' दण्डी ' का तात्पर्य नहीं समझा अतः उनका रूपक-रूपक एक साधारण रूपक रह गया है। उपभेद की कल्पना किसी विशेष चमत्कार को लक्ष्य में रखकर की जाती है। आचार्य ' दण्डी ' के अनुसार ' रूपक-रूपक ' वहां होता है जहां रूपक के द्वारा किसी प्रस्तुत पर एक अप्रस्तुत का आरोप करने के बाद फिर एक और अप्रस्तुत का आरोप पहले के अप्रस्तुत पर किया जावे अर्थात् पहले के अप्रस्तुत को प्रस्तुत मान फिर से अप्रस्तुत-विधान किया जाये। आचार्य ' दण्डी ' के उदाहरण से यह स्पष्ट है। आचार्य दण्डी के उदाहरण में मुख पर कमल का आरोप किया गया है और उस पर फिर रंगशाला का। इसी प्रकार ' भ्रूलतानर्तकी ' इत्यादि में भी। आचार्य केशव ने समझा कि इस उपभेद का सार यही ' लीला नृत्य ' है, अतः इसी को अपने उदाहरण में ढालने का प्रयत्न किया, परन्तु इस उपभेद का मुख्य आधार उनके हाथ से निकल गया है।

दीपक अलंकार के दण्डी ने अनेक भेदोपभेद माने हैं परन्तु आचार्य केशव ने केवल दो भेद किए हैं— ' मणिदीपक ' तथा ' मालादीपक '। परन्तु ' दीपक ' के अनेक भेदों का होना उन्होंने भी माना है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०-१८५, छं०सं० २०

दीपक रूप अनेक हैं, मैं बरनौं द्वै रूप।
मणि माला तिनसों कहु, केशव सब कवि भूप[1]।।

दीपकालंकार की साधारण परिभाषा आचार्य केशव ने इस प्रकार दी है—

वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को, बरनहु करि इक ठौर।
दीपक दीपति कहत है, केशव कवि सिरमौर[2] ।।

आचार्य ' केशव ' का यह लक्षण आचार्य ' दण्डी ' के लक्षण से मिलता है—

जातिक्रिया गुण द्रव्य वाचिनैकत्रवर्तिना।
सर्ववाक्योपकारश्चेत् तमाहुर्दीपकं यथा[3] ।।

एक वाक्य में अवस्थित जात्यादिवाचक पद यदि स्वसंसृष्ट वाक्य का उपकार करके स्वार्थ द्वारा अन्य वाक्यों का भी उपकार करता हो तो ' दीपक ' अलंकार होता है। दीप के समान होने से ही इसका नाम दीपक है।

आचार्य ' केशवदास ' के ' मणिदीपक ' का द्वितीय उदाहरण आचार्य ' दण्डी ' के ' जाति दीपक ' के उदाहरण से मिलता है। आचार्य ' दण्डी' के 'जाति दीपक ' का उदाहरण निम्नवत् है—

पवनो दक्षिणः पर्णं जीर्णं हरति वीरुधाम्।
स एवावनताङ्गीनां मानभङ्गाय जायते[4] ।।

इसी भाव को विस्तार से आचार्य ' केशव ' ने यों लिखा है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १८६, छ०सं० २२
२- वही, ,, पृ०- १८६, छ०सं० २१
३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ११२, श्लोक ६७
४- वही, पृ०- ११३, श्लोक ६८

दक्षिण पवन दक्षि यक्षिणी रमण लगि,

लोलन करत लौंग लवता लता को फरु ।

केशोदास केसर कुसुम कोश—रसकण,

तनु तनु तिनहू को सहत सकल भरु ।

क्यों हूं कहूं होत हठि साहस बिलास बस,

चंपक चमेली मिलि मालती सुबास हरु ।

शीतल सुगंध मंद गति नंदनंद की सौं,

पावत कहां ते तेज तोरिबे को मानतरु[1] ।।

आचार्य `दण्डी` ने `मालादीपक` का वर्णन इस प्रकार किया है—

शुक्ल: श्वेतार्चिषो वृद्धयै पक्ष: पञ्चशरस्य स: ।

स च रागस्य रागोऽपि यूनां रत्युत्सव श्रिय: ।।

इत्यादिदीपकत्वेऽपि पूर्वपूर्वव्यपेक्षिणी ।

वाक्यमाला प्रयुक्तेति तन्मालादीपकं मतम्[2] ।।

शुक्लपक्ष चन्द्रमा की वृद्धि के लिए होता है, चन्द्रमा कामदेव की वृद्धि के लिए होता है, कामदेव स्त्री विषयक आसक्ति के लिए होता है, और वह आसक्ति युवजनों के रागरङ्ग की वृद्धि के लिए हुआ करती है। इस उदाहरण में `वृद्धयै` यह प्रथमवाक्यस्थ पद सभी वाक्यों में अन्वित हुआ है अत: यह आदिदीपक है, तथापि इसमें पूर्वपूर्ववाक्य की अपेक्षा करने वाली वाक्यमाला प्रयुक्त हुई है, अत: इसे मालादीपक मानते हैं। यह मालादीपक— सभी वाक्यों में अन्वित होने वाला पद सापेक्ष वाक्य स्थित हो तभी होता है यह कोई खास आवश्यक बात नहीं है।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १८८, छ०सं० २६

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ११६, श्लोक १०७- १०८

आचार्य ` केशव ` ने अपने ` मालादीपक ` का वर्णन आचार्य दण्डी के अनुसार ही किया है—

सबै मिलि जहं बरनिये, देश काल बुधिवंत ।
माला दीपक कहत हैं, ताके भेद अनंत[1]।।

आचार्य ` केशवदास ` का ` प्रहेलिका ` अलंकार का लक्षण भी आचार्य `दण्डी` के अनुसार है। आचार्य ` दण्डी ` ` प्रहेलिका ` वहां मानते हैं जहां—

` प्रहेलिका सामान्य लक्षणम्— प्रहेलिका तु सा ज्ञेया वच: संवृतकारि यत् । विशेष प्रकाराणां लक्षणानि पुरो यथावसरं निर्देक्ष्यन्ते[2]।

` प्रहेलिका ` का सामान्य लक्षण है—जिसमें कुछ छिपाकर कहा जाय ` इसका प्रख्यात नाम पहेली है, जो अतिप्रसिद्धार्थ है। परन्तु आचार्य `दण्डी ` ` प्रहेलिका ` को अलंकार नहीं मानते हैं—

क्रीडा गोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्ण मन्त्रणे ।
परव्यामोहने चापि सोप योगा: प्रहेलिका:[3]।।

प्रहेलिका रस के आस्वाद में परिपन्थी होने के कारण अलंकार नहीं है, तथापि आमोद गोष्ठी में विचित्र तरह के वाग्व्यवहारों से मनोविनोद में, लोगों से भरी भीड़ में, गुप्त भाषण करने में तथा दूसरों को अर्थानभिज्ञ बनाकर उपहासपात्र बना देने में इसका उपयोग होता है, अत: इसका निरूपण निरर्थक नहीं है।

आचार्य ` केशवदास ` ` प्रहेलिका ` का लक्षण लिखते हुए कहते हैं—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १८८, छ०सं० २७

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- २६२, २६३

३- वही, तृतीय परिच्छेद, पृ०- २६३, श्लोक ९७

बरनिय बस्तु दुराय जहं, कौनहु एक प्रकार ।
तासों कहत प्रहेलिका, कबि कुल बुद्धि उदार[1] ।।

आचार्य ` दण्डी ` ने ` प्रहेलिका ` के अनेक भेदोपभेद किए हैं परन्तु आचार्य ` केशवदास ` ने ` प्रहेलिका ` के भेदों के नाम नहीं दिए हैं वरन् सात- आठ उदाहरण दिए हैं। कौन- सा उदाहरण किस उपभेद के अन्तर्गत आएगा यह स्पष्ट नहीं होता। आचार्य ` केशव ` का ` परिवृत्ति ` अलंकार आचार्य दण्डी के इसी नाम के अलंकार से नहीं मिलता। आचार्य केशव के इस अलंकार के उदाहरणों को देखने से यह पता नहीं चलता कि वास्तव में उनका लक्षण क्या है।

चौदहवें प्रभाव में केशव ने ` उपमालंकार ` का वर्णन किया है। आचार्य केशव ने कुल मिलाकर बाईस प्रकार की उपमाएं मानी हैं और आचार्य ` दण्डी ` ने बत्तीस प्रकार की। आचार्य ` केशव ` की पन्द्रह उपमाएं आचार्य ` दण्डी ` के नामों तथा लक्षणों से मिल जाती हैं। वे निम्नलिखित हैं—

संशयोपमा : आचार्य ` दण्डी ` के अनुसार—

किं पद्ममन्तर्भ्रान्तालि किन्ते लोलेक्षणं मुखम् ।
मम दोलायते चित्तमितीयं संशयोपमा[2] ।।

क्या यह मध्यभाग में घूमते हुए भ्रमर से युक्त कमल है या चञ्चलनेत्रों वाला तुम्हारा मुख है? इस दुविधा में हमारा हृदय घूम रहा है। यहां पर संशयोपमा नामक उपमा भेद हुआ। अर्वाचीन आचार्यगण इसे सन्देहालंकार मानते हैं।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तेरहवां प्रभाव, पृ० - १६०, छं० - ३०

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - ८५, श्लोक २६

आचार्य `केशवदास` के अनुसार—

संशयोपमा :

जहां नहीं निरधार कछु, सब सन्देह सरूप ।
सो संशय उपमा सदा, बरनत हैं कबि भूप[1] ।।

आचार्य `दण्डी` के अनुसार—

हेतूपमा :

कान्त्या चन्द्रमसं धाम्ना सूर्यं धैर्येण चार्णवम् ।
राजन्ननु करोषीति सैषा हेतूपमा मता[2] ।।

हे राजन ! आप कान्ति से चन्द्रमा का, तेज से सूर्य का और धैर्य से समुद्र का अनुकरण करते हैं, यह हेतूपमा है, क्योंकि इसमें चन्द्रादि के साथ राजा की तुलना के हेतु कान्त्यादि निर्दिष्ट हैं ।

आचार्य केशव के अनुसार—

होत कौनहू हेत ते, अति उत्तम सोउ हीन ।
ताही सों हेतूपमा, केशव कहत प्रवीन[3] ।।

आचार्य केशव के अनुसार जहां उपमान साधारणत: उपमेय से हीन जंचे, वहां हेतूपमा होता है ।

आचार्य `दण्डी के अनुसार—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १६३, छ०सं० ५
२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ६४, श्लोक ५०
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १६४, छंसं० - ७

अभूतोपमा :

सर्वं पद्मप्रभासार: समाहृत इव क्वचित् ।
त्वदाननं विभातीति तामभूतोपमां विदु:[1] ।।

तुम्हारा मुख ऐसा मालूम पड़ता है मानो ब्रह्मा ने सकल कमलकान्तिपुञ्ज को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया हो, इसे अभूतोपमा कहते हैं। अभूतत्व निष्पन्न उपमान के साथ सादृश्यप्रकाशन होने के कारण इसे अभूतोपमा कहते हैं।

आचार्य ` केशव ` के अनुसार—

उपमा जाय कही नाहीं, जाको रूप निहारि ।
सो अभूत उपमा कहीं, केशवदास विचारि[2] ।।

आचार्य ` दण्डी ` के अनुसार—

अद्भुतोपमा :

यदि किञ्चिद् भवेत पद्मं सुभ्रु विभ्रान्त लोचनम् ।
तत्ते मुखश्रियं धत्तामित्यसावद्भुतोपमा[3] ।।

हे सुभ्रु सुन्दरी, यदि कमल चञ्चलनयन हो जाय, तब वह तुम्हारे मुख की शोभा प्राप्त करे, यह अद्भुतोपमा अलंकार है। चञ्चल नयनत्व धर्म मुख का ही है। चाटूक्ति परायण नायक ने संभावना द्वारा उसे कमल में कहा है, यही चमत्कार का स्थान है इसे आचार्य दण्डी ` अद्भुतोपमा ` कहते हैं।

आचार्य ` केशव ` के अनुसार—

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ६०, श्लोक ३८

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १६४, छ०सं० ६

३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८४, छ०सं० २४

जैसी भई न होति अब, आगे लखै न कोय ।
केशव ऐसे बरनिये, अद्भुत उपमा सोय[1] ।।

आचार्य केशव ने अद्भुतोपमा का जो उदाहरण दिया है वह आचार्य ` दण्डी ` के उदाहरण का भावानुवाद है—

प्रीतम को अपमान न माननि, गान सयानन रीझि रिझावै ।
बंक बिलोकनि बोल अमोलनि बोलि कै केशव मोद बढ़ावै ।।
हाव हू भाव प्रभाव सुभावनि प्रेम प्रयोगनि चित्त चोरावै ।
ऐसे विलास जु होंहि सरोज में तो उपमा मुख तेरे की पावै[2]।।

आचार्य ` दण्डी ` के अनुसार—

विक्रियोपमा :

चन्द्रबिम्बादिवोत्कीर्णं पद्मगर्भादिवोद्धृतम् ।
तव तन्वङ्गि वदनमित्यसौ विक्रियोपमा[3] ।।

हे कृशाङ्गि तुम्हारा मुख ऐसा लगता है मानो चन्द्र-मण्डल से उत्कीर्ण- खचित हो, कमलपुष्पगर्भ से निकाला गया हो, इसे ` विक्रियोपमा ` कहते हैं। यहां पर उपमानभूत चन्द्रबिम्ब और पद्मगर्भ प्रकृति है और वदन विकृति है, प्रकृति के साथ विकृति का साम्य अवश्यंभावी है, अतः यह ` विक्रियोपमा ` हुई ।

आचार्य ` केशव ` के अनुसार—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १९५, छ०सं० ११
२- वही, ,, ,, छ०सं० १२
३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ६१, श्लोक ४१

क्यों हूं क्योंहू बरनिये, कहि न एक प्रकार ।
विक्रिय उपमा होति तहं, केशव बुद्धि उदार[1] ।।

उपमेय एक ही पर उपमान में कभी कुछ और कभी कुछ कहे, तो 'विक्रियोपमा' होता है। आचार्य 'केशव' के 'विक्रियोपमा' का उदाहरण आचार्य 'दण्डी' के उदाहरण से भाव साम्य रखता है—

इंदु के उदोत तें उकीरी हीं सी काढ़ी, सब ।
सारस सरस, शोभासार ते निकारी सो[2] ।।

आचार्य 'दण्डी' के अनुसार—

<u>मोहोपमा :</u>

शशी त्युत्प्रेक्ष्य तन्वङ्गि त्वन्मुखं त्वन्मुखाशया ।
इन्दुमप्यनुधावामीत्येषा मोहोपमा स्मृता[3] ।।

हे तन्वङ्गि, तुम्हारे मुख को मैंने चन्द्रमा समझ लिया और तुम्हारे विरह में तुम्हारे मुख को देखने की स्पृहा से चन्द्रमा का अनुधावन किया करता हूं, इसमें 'मोहोपमा' नामक अलंकार है। मोह- भ्रम- सादृश्यावशात् चन्द्रमा में मुख भ्रम तन्मूलकतया इसे 'मोहोपमा' कहते हैं। यह प्राचीनों का नामकरण है। अर्वाचीन आचार्यों ने इसे 'भ्रान्तिमान' नामक अलंकार कहा है।

आचार्य 'केशव' के अनुसार—

रूपक के अनरूपकहि, जानि कतहुं मन जाय ।
ताही सों मोहोपमा, कहत सकल कबिराय[4] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १६६, छ०सं० १३
२- वही, ,, ,, छ०सं० १४
३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८५, श्लोक २५
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १६८, छ०सं० १६

उपमान को देखकर उसे ही उपमेय समझना मोहोपमा है। आचार्य केशव का उदाहरण आचार्य दण्डी के उदाहरण का छायानुवाद है—

जानि जानि चंद मुख केशव चकोर सम,
चंदमुखी ! चंद ही के बिंब त्यौं चितै रहैं[1]।।

आचार्य ' दण्डी ' के अनुसार—

नियमोपमा :

त्वन्मुखं कमलेनैव तुल्यं नान्येन केनचित् ।
इत्यन्यसाम्यव्यावृत्तिरियं सा नियमोपमा[2]।।

तुम्हारा मुख कमल के समान है, दूसरी किसी भी वस्तु के समान नहीं है, इस वाक्य में दूसरी वस्तुओं से सादृश्य का प्रतिषेध हो जाता है अत: इसे नियमोपमा नामक अलंकार कहते हैं। किसी भी वर्णनीय वस्तु का यदि उपमान बाहुल्य हो तो उसका अपकर्ष प्रतीत होता है, इसी दृष्टिकोण से यदि एक उपमान बताकर उपमानान्तर प्रतिषेध कर दिया जाय तब उसे नियमोपमा नाम से व्यवहृत किया जाता है।

आचार्य ' केशव ' के अनुसार—

एकै सम जहं बरनिये, मन क्रम बचन बिशेष ।
केशवदास प्रकाश बस, नियमोपमा सुलेख[3] ।।

आचार्य ' केशव ' ने इसका बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है परन्तु वे आचार्य ' दण्डी ' से प्रभावित भी हैं—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १६६, छ०सं० २०

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८२, श्लोक १६

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १६६, छ०सं० २१

सुन्दर सुबास अरु कोमल अमल अति,

सीता जू को मुख- सखि ! केवल कमल सो[१]।।

आचार्य ` दण्डी ` के अनुसार—

<u>अतिशयोपमा :</u>

त्वय्येव त्वन्मुखं दृष्टं दृश्यते दिवि चन्द्रमा: ।

इत्येव भिदा नान्येत्यसावतिशयोपमा[२] ।।

तुम्हारा मुख केवल तुममें ही दीखता है, और चन्द्रमा आकाश में दीखता है। दोनों में केवल आश्रयमात्रकृत भेद है अन्य भेद नहीं है, यह अतिशयोपमा कहलाती है। उपमान चन्द्र और उपमेय मुख में यद्यपि बहुत भेद है, तथापि आश्रयभेदमात्र का प्रदर्शन करके अन्य भेद छिपा दिए गये हैं, और अभेदाध्यवसाय कर दिया गया है,जिससे उपमेय गुण- क्रिया का अतिशय प्रतीत होता है, इसलिए इसे अतिशयोपमा कहते हैं।

आचार्य ` केशवदास ` के अनुसार—

एक कछू एकै बिसे, सदा होय रस एक ।

अतिशय उपमा होति तहं, कहत सुबुद्धि अनेक[३]।।

आचार्य ` केशव ` जहां उपमानों को महज साधारण वस्तु ठहराकर निरादृत करते हुए उपमेय की अति उत्कृष्टता वर्णित हो, वहां अतिशयोपमा मानते हैं। इसके उदाहरण में आचार्य केशव आचार्य दण्डी से कुछ प्रभावित से दिखाई देते हैं।

तेरो सो बदन सीता ! तोही विषै देखिये[४]

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) १४वां प्रभाव, पृ०- १६६, छ०सं० २२

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८३, श्लोक २२

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २००, छ०सं० २५

४- वही, " पृ०- २०१, छ०सं० २६

आचार्य ` दण्डी ` के अनुसार—

उत्प्रेक्षितोपमा :

मय्येवास्या मुख श्रीरित्यलमिन्दोर्विकत्थनैः ।
पद्मेऽपि सा यदस्त्येवेत्यसा वुत्प्रेक्षितोपमा[1] ।।

इस नायिका के मुख की शोभा के सदृश शोभा केवल मुझमें ही है इस प्रकार चन्द्रमा की आत्मश्लाघा व्यर्थ है क्योंकि कमल में भी इसके मुख की शोभा के समान शोभा वर्तमान है, इस वाक्य में उत्प्रेक्षितोपमा नाम का अलंकार है। चन्द्रमा में इस तरह की आत्मश्लाघा की सम्भावना तो केवल नायक की चाटूक्ति परायणता से ही हुई है, अतः इसे उत्प्रेक्षितोपमा कहते हैं।

आचार्य केशव के अनुसार—

केशव दीपति एक ही, होय अनेकन मांह ।
उत्प्रेक्षित उपमा सोई, कहि कबिन के नाह[2] ।।

उपमेय के जिस गुण का वर्णन करना हो, वह गुण अनेकों में पाया जाय, तो उत्प्रेक्षितोपमा होता है।

आचार्य ` दण्डी ` के अनुसार—

श्लेषोपमा :

शिशिरांशुप्रतिस्पर्धि श्रीमत्सुरभिगन्धि च ।
अम्भोजमिव ते वक्त्रमिति श्लेषोपमा स्मृता[3] ।।

तुम्हारा मुख कमल की तरह चन्द्रप्रतिपक्षि, श्रीमत् एवं सुरभिगन्धयुत है, इसमें

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८३, श्लोक २३

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २०१, छ०सं० २७

३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८६, श्लोक २८

श्लेषोपमा नामक अलंकार है, यहां पर चन्द्रप्रतिस्पर्द्धि, श्रीमत् और सुरभिगन्धि यह तीनों विशेषण श्लिष्ट हैं अत: इसे श्लेषोपमा नामक अलंकार कहा जाता है।

आचार्य केशव के अनुसार—

जहां स्वरूप प्रयोगिये, शब्द एक ही अर्थ।
केशव तासों कहत हैं, श्लेषोपमा समर्थ[1]।।

आचार्य ` दण्डी ` के अनुसार—

धर्मोपमा :

अम्भोरुहमिवाताम्र मुग्धे करतल तव।
इति धर्मोपमा साक्षात्तुल्यधर्म प्रदर्शनात्[2]।।

हे मुग्धे, तुम्हारा करतल कमल के समान रक्तवर्ण है, यह धर्मोपमा हुई क्योंकि इस वाक्य में शब्दत: आताम्रत्वरूप तुल्यधर्म प्रकाशित किया गया है।

आचार्य केशव के अनुसार—

एक धर्म को एक अंगु, जहां जानियतु होय।
ताही सों धर्मोपमा, कहत सयाने लोय[3]।।

जहां किसी वस्तु (रूप, रस, गंध, गुण, द्रव्यादि) का केवल एक अंग जाना जाता हो, वहां धर्मोपमा होता है।

आचार्य ` दण्डी ` के अनुसार

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २०२, क्र०सं० २६

२- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८०, क्र०सं० १५

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव; पृ०- २०३, क्र०सं० ३१

निर्णयोपमा :

न पद्मस्येन्दु निग्राह्यस्येन्दुलज्जाकरी द्युति: ।
अतस्त्वन्मुखमेवेदमित्यसौ निर्णयोपमा[1] ।।

जिस पद्म को चन्द्रमा ने अभिभूत कर दिया था उस पद्म की द्युति चन्द्रमा को लज्जित करने वाली नहीं हो सकती है अत: यह तुम्हारा मुख ही है, इसको निर्णयोपमा कहते हैं ।

आचार्य केशवदास के अनुसार—

उपमा अरु उपमेय को, जहं गुण दोष बिचार ।
निर्णय उपमा होति तहं, सब उपमन को सार[2] ।।

इसके अन्तर्गत उपमान के दोषों और उपमेय के गुणों का निर्णय करके समता करते हैं । आचार्य केशवदास ने निर्णयोपमा का जो उदाहरण दिया है वह आचार्य दण्डी के उदाहरण से अधिक सुन्दर बन पड़ा है ।

देखे मुख भावै अनदेखे ई कमल चन्द,
ताते मुख मुखै, सखि कमलै न चन्द रौ[3] ।।

आचार्य दण्डी के अनुसार—

असम्भावितोपमा :

चन्द्रबिम्बादिव विषं चन्दनादिवपावक: ।
परुषा वागितो वक्त्रादित्यसंभावितोपमा[4] ।।

इस तुम्हारे मुख से कठोर वाणी का निकलना उसी प्रकार होगा जैसे चन्द्रमण्डल

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८६, छ०सं० ३७
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २०४, छ०सं० ३५
३- वही, ,, ,, छ०सं० ३६
४-काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८०, श्लोक ३८

से विष का निकलना और चन्दनकाष्ठ से आग का निकलना। अर्थात् यदि चन्द्रबिम्ब और चन्दन से विष और आग का निकलना सम्भव हो, तभी तुम्हारे मुख से कठोर वाणी का निकलना सम्भव हो सकता है। इसमें असम्भावित वस्तु के साथ सादृश्य वर्णन किया गया है अतः यह असम्भावितोपमा है।

आचार्य 'केशव' के अनुसार—

जैसो भाव न सम्भवत, तैसो करत प्रकास।
होत असंभावित तहां, उपमा केशवदास[1]।।

आचार्य केशवदास ने असम्भावितोपमा अलंकार का जो उदाहरण दिया है वह आचार्य दण्डी के उदाहरण का भावानुवाद है। अन्तर केवल इतना है कि आचार्य दण्डी ने केवल चन्द्रमा और चन्दन को ही उपमान बनाकर अपना उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है, और केशव ने इन दोनों के अतिरिक्त किंजल्क और कमल को भी उपमान बनाया है।

जैसे अति शीतल सुबास मलयज मांहि,
अमल अनल बुद्धि बल पहिचानिये।
जैसे कौनो कालवश कोमल कमल माहिं,
केशरै ई केशोदास कण्टक से जानिये।।
जैसे बिधु सधर मधुर मधुमय माहिं,
मोहि मोहरुख विष विषम बखानिये।
सुन्दरि, सुलोचनि, सुबचनि, सुदति तैसे,
तेरे मुख आखर परुषरुख मानिये[2]।।

आचार्य 'दण्डी' के अनुसार—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २०५, छ०सं० ३६

२- वही, ,, ,, छ०सं० ४०

विरोधोपमा :

शतपत्रं शरच्चन्द्रस्त्वदाननमिति त्रयम् ।
परस्परविरोधीति सा विरोधोपमा मता[1]।।

कमल, शरदृतु का चन्द्रमा और तुम्हारा मुख ये तीनों परस्पर विरोधी हैं, यहां पर विरोधोपमा नामक अलंकार होता है। समानता में विरोध का होना स्वाभाविक है अत: यहां वर्ण्यमान विरोध साम्यपर्यवसायी होकर चमत्कारकारी होता है, अत: विरोधोपमा नाम पड़ा है।

आचार्य केशव के अनुसार—

जहं उपमा उपमेय सों, आपसु माहिं विरोध।
सो विरोध उपमा सदा, बरणत जिन्हें प्रबोध[2]।।

आचार्य केशवदास ने विरोधोपमा का जो उदाहरण दिया है वह आचार्य दण्डी की तुलना में कहीं अधिक सुन्दर और भावप्रवण है।

कोमल कमल, कर कमला के भूषण को,
केशोदास दूषण शरद शशि ठाईं है।
शशि अति अमल अमृतमय मणिमय,
सीता को बदन देखि ताको मलिनाई है।।
सीता को बदन, सब सुख को सदन, जाहि,
मोहत मदन, दुख कदन निकाई है।
आधो पल माधो जू के देखे बिनु सोई शशि,
सीता के बदन कहं होत दुखदाई है[3]।।

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८८, श्लोक ३३
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २०६, छं०सं० ४१
३- वही, ,, ,, छं०सं० ४२

आचार्य `दण्डी` के अनुसार—

मालोपमा :

पूष्ण्यातप इवाह्नीव पूषा व्योम्नीव वासर: ।
विक्रमस्त्वय्यधाल्लक्ष्मी मिति मालोपमा मता[1]।।

जैसे प्रकाश ने सूर्य को लक्ष्मी दी है, सूर्य ने दिन को लक्ष्मी दी है, और दिन ने आकाश को लक्ष्मी दी है उसी तरह पराक्रम ने आपको लक्ष्मी दी है। यह मालोपमा मानी जाती है। जैसे माला में गुँथ गये एक फूल का दूसरे से, दूसरे का तीसरे से सम्बन्ध होता है, उसी तरह इसमें प्रथम वाक्य में अधिकरणतया गृहीत पदार्थ का तदुत्तर वाक्य में कर्तृतया सम्बन्ध होता है, जैसे—`पूष्ण्यातप इव` इस प्रथम वाक्य में अधिकरणतया गृहीत पूषा का तदुत्तरवाक्य— `अह्नीव पूषा` में— कर्तृतया सम्बन्ध हुआ है, इसी प्रकार आगे भी हुआ है अत: इसे मालासाम्य होने के कारण मालोपमा कहते हैं।

आचार्य `केशवदास` के अनुसार—

जो जो उपमा दीजिये, सो सो पुनि उपमेय ।
सो कहिये मालोपमा केशव कविकुल गेय[2] ।।

मालोपमा का जो उदाहरण आचार्य केशवदास ने दिया है वह केशव का अपना है। उसमें उन्होंने भाव या छायानुवाद नहीं किया है—

मदन मोहन ! कहौ रूप को रूपक कैसो ?
मदन बदन ऐसो जाहि जग मोहिये ।
मदन बदन कैसो शोभा को सदन श्याम ?
जैसो है कमल रुचि लोचननि जोहिये ।।

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ६१, श्लोक ४२

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २०६, छ०सं० ४३

कैसो है कमल ? शुभ ! आनन्द को कंद जैसो,
कैसो है मुकुन्द ? चन्द उपमान टोहिये ।
कैसो है जु चन्द वह ? कहिये कुंवर कान्ह,
सुनो प्राण प्यारी जैसो तेरो मुख सोहिये[1]।।

आचार्य केशवदास की सात उपमाओं के नाम आचार्य दण्डी से नहीं मिलते उनके नाम इस प्रकार हैं— भूषणोपमा, दूषणोपमा, विपरीतोपमा, परस्परोपमा, संकीर्णोपमा, लाक्षणिकोपमा, गुणाधिकोपमा ।

इनमें से संकीर्णोपमा तथा विपरीतोपमा आचार्य दण्डी के किसी भेद से नहीं मिलती है। इन दोनों में उपमा के लिए आवश्यक साम्य की प्रतिष्ठा हो ही नहीं पाई है, न जाने क्यों केशवदास ने ये भेद मान लिए हैं। शेष पांच उपमाएं यद्यपि आचार्य दण्डी के भेदों से नाम साम्य नहीं रखतीं परन्तु उनके क्षेत्र दण्डी के भेदों के क्षेत्रों से मिल जाते हैं। नीचे आचार्य केशवदास के भेदों के तथा उनसे मिलता हुआ कार्य करने वाले आचार्य दण्डी के भेदों के नाम दिए जाते हैं—

आचार्य केशवदास	आचार्य दण्डी
परस्परोपमा	अन्योन्योपमा
दूषणोपमा	निन्दोपमा
भूषणोपमा	प्रशंसोपमा
गुणाधिकोपमा	प्रतिषेधोपमा
लाक्षणिकोपमा	चटूपमा

परस्परोपमा :

आचार्य दण्डी द्वारा दिया गया अन्योन्योपमा नामक उपमा भेद

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २०७, छ०सं० ४४

आचार्य केशव का परस्परोपमा नामक उपमा भेद है। आचार्य दण्डी के अनुसार—

तवाननमिवाम्भोजमाम्भोजमिव ते मुखम् ।
इत्यन्योन्योपमा सेयमन्योन्योत्कर्ष शंसिनी[1]।।

तुम्हारे मुख के समान कमल है और कमल के समान तुम्हारा मुख है, इस वाक्य में परस्पर उत्कर्ष प्रतीति की जाती है अत: यह अन्योन्योपमा नाम से प्रख्यात है।

आचार्य केशवदास के अनुसार—

जहां अभेद बखानिये, उपमेय रु उपमान ।
तासों परस्परोपमा, केशवदास बखान[2] ।।

जहां तक आचार्य केशवदास द्वारा दिये गये ` परस्परोपमा ` नाम का सम्बन्ध है वह उचित ही है। उसके औचित्य को नकारा नहीं जा सकता। आचार्य केशव द्वारा दिया गया यह नाम आचार्य दण्डी के नाम से अधिक स्पष्ट है और वह नाम ही अपना लक्षण कहने में समर्थ है।

दूषणोपमा :

आचार्य केशवदास का ` दूषणोपमा ` नामक उपमा भेद आचार्य दण्डी के ` निन्दोपमा ` नामक उपमा- भेद से मिलता है। आचार्य दण्डी के अनुसार निन्दोपमा का लक्षण—

पद्मं बहुरजश्चन्द्र: क्षयी ताभ्यां तवाननम् ।
समानमपि सोत्सेकमिति निन्दोपमा स्मृता[3]।।

कमल में परागरूप धूल भरी पड़ी है, चन्द्रमा कृष्णपक्ष में क्षीण हो जाता है,

---

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - ८१, श्लोक १८
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ० - २०७, छं०सं० ४५
३- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - ८७, श्लोक ३०

उन्हीं दोनों से समता रखता है यह तुम्हारा मुख, फिर भी इसे अपनी रमणीयता पर पूरा गर्व है ? इसे निन्दोपमा कहा गया है।

आचार्य केशव के अनुसार—

जहं दूषण गण बरनिये, भूषण भाव दुराय।
दूषण उपमा होति तहं, बुधजन कहत बनाय[1]।।

आचार्य केशवदास का यह लक्षण उनके उदाहरण से और भी स्पष्ट हो जाता है—

जो कहौं केशव सोम सरोज सुधासुर भृंगन देह दहे हैं।
दाड़िम के फल श्रीफल विद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं।
कोक, कपोत, करी, अहि, केहरि, कोकिल कीर कुचील कहे हैं।
अंग अनूपम वा प्रिय के उनकी उपमा कहं वेई रहे हैं[2]।।

आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया 'दूषणोपमा' नाम आचार्य दण्डी द्वारा दिए गये 'निन्दोपमा' नाम से अधिक उचित लगता है क्योंकि इस अलंकार में उपमानों के दोष बताकर उपमेयों की प्रशंसा की जाती है उसकी निन्दा करके उपमेयों की प्रशंसा नहीं की जाती। जहां तक निन्दा शब्द का प्रश्न है तो इसका प्रयोग वहां होता है जहां समाज किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करता। फिर निन्दा मानव निर्मित वस्तुओं की अथवा स्वभाव की की जाती है प्राकृतिक वस्तुओं की नहीं। जबकि कवि परम्परा में उपमान प्राकृतिक वस्तुएं ही होती हैं। अतः प्राकृतिक वस्तुओं की निन्दा नहीं की जा सकती उसमें केवल दोष ही निकाले जा सकते हैं। अतः केशव द्वारा दिया गया यह नाम उचित ही है।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १९६, छ०सं० १५
२- वही, ,, पृ०- १९७, छ०सं० १६

भूषणोपमा :

आचार्य केशवदास का 'भूषणोपमा' नामक उपमा-भेद आचार्य दण्डी के प्रशंसोपमा नामक उपमा-भेद से मिलता है। आचार्य दण्डी के अनुसार प्रशंसोपमा —

> ब्रह्मणोऽप्युद्भवः पद्मश्चन्द्रः शम्भुशिरोधृतः ।
> तौ तुल्यौ त्वन्मुखेनेति सा प्रशंसोपमोच्यते[1] ।।

कमल ब्रह्मा का जन्मस्थान है, चन्द्रमा को शिव ने मस्तकालङ्कार बनाया है, इस तरह इन दोनों को ही महत्व प्राप्त है, वही कमल और चन्द्रमा तुम्हारे मुख से भी समता प्राप्त करते हैं (अतः उनका महत्व और अधिक हो गया) इसको प्रशंसोपमा कहते हैं।

आचार्य केशवदास का 'भूषणोपमा' —

> दूषण दूर दुराय जहं, बरणत भूषण भाय ।
> भूषण उपमा होति तहं, बरणत सब कविराय[2]।।

'भूषणोपमा' का जो उदाहरण आचार्य केशव ने दिया है वह केशव का अपना है उसमें केशव ने कहीं से प्रभाव ग्रहण नहीं किया है। जहां तक नाम का प्रश्न है वह दोनों ही नाम उचित लगते हैं। भूषणोपमा भी बुरा नहीं है और वह अपने लक्षण को कहने में समर्थ दिखाई देता है।

गुणाधिकोपमा :

आचार्य केशवदास का 'गुणाधिकोपमा' नामक अलंकार आचार्य दण्डी के 'प्रतिषेधोपमा' नामक अलंकार से मिलता है। आचार्य दण्डी के अनुसार

---

१ - काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ० - ८७, श्लोक १३१

२ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ० - १६७, छ०सं० १७

प्रतिषेधोपमा—

न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितुम् ।
कलङ्किनो जडस्येति प्रतिषेधोपमैव सा[1]।।

कलंकी तथा जड़ (मूर्ख- शीतल) चन्द्रमा की क्या शक्ति है कि वह तुम्हारे मुख के साथ बराबरी कर सके, यहां पर प्रतिषेधोपमा नामक अलंकार है।

आचार्य केशवदास के अनुसार गुणाधिकोपमा—

अधिकन हू तें अधिक गुण, जहां बरनियत कोय ।
तासों गुण अधिकोपमा, कहत सयाने लोय[2]।।

` गुणाधिकोपमा ` का जो उदाहरण आचार्य केशवदास ने दिया है वह उनका मौलिक उदाहरण है यहां वे आचार्य दण्डी से प्रभावित नहीं हैं।

वे तुरंग सेत रंग संग एक, ये अनेक,
हैं सुरंग अंग अंग पै कुरंगमीत से ।
ये निशंक यज्ञ अंक वे सशंक केशोदास,
ये कलंक रंक, वै कलंक की कलीत से ।।
वे पिये सुधाहि ये सुधानिधीश के रसै जु,
सांचहू पुनीत ये, सुनीत वे पुनीत से ।
देहिं ये दिये बिना दिये न देहिं वे,
भये न, हैं न, होहिंगे न, इन्द्र इन्द्रजीत से[3]।।

लाक्षणिकोपमा :

आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया ` लाक्षणिकोपमा ` नामक उपमा

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८८, श्लोक ३४
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २००, छ०सं० २३
३- वही, ,, ,, छ०सं० २४

भेद से मिलता है। आचार्य दण्डी के अनुसार चटूपमा—

मृगेक्षणाङ्कं ते वक्त्रं मृगेणैवाङ्कित : शशी ।
तथापि सम एवासौ नोत्कर्षीति चटूपमा[1] ।।

तुम्हारा मुख मृगनेत्र से (एक अंग मात्र से) और चन्द्रमा सर्वाङ्गपूर्ण मृग से ही अंकित है, तथापि अधिक साधन सम्पन्न होकर भी, वह चन्द्रमा मुख के समान ही है, बढ़कर नहीं है, यह चटूपमा नामक अलंकार है।

आचार्य केशवदास के अनुसार लाक्षणिकोपमा—

लक्षण लक्ष्य जु बरनिये, बुधिबल बचन बिलास ।
तासों लाक्षणिकोपमा, कहियत केशोदास[2] ।।

आचार्य केशवदास ने जो उदाहरण दिया है वह आचार्य दण्डी के भावानुसार है परन्तु केशव का उदाहरण आचार्य दण्डी के उदाहरण से अधिक प्रभावशाली बन पड़ा है। इसमें केशव की प्रतिभा स्पष्टत: परिलक्षित है।

वासों मृग अंक कहैं तोसों मृगनैनी सबै,
वह सुधाधर, तुहूं सुधाधर मानिये ।
वह द्विजराज, तेरे द्विजराजी राजै वह
कलनिधि, तुहूं कलाकलित बखानिये ।।
रत्नाकर के हैं दोऊ केशव प्रकाश कर,
अम्बर बिलास, कुवलय हितु मानिये ।
वाके अति सीतकर, तुहूं सीता ! सीतकर,
चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिये[3] ।।

१- काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद : पृ०- ८६, श्लोक ३६
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- २०४, छ०सं० ३७
३- वही, ,, पृ०- २०५, छ०सं० ३८

इस प्रकार आचार्य केशव की बाईस उपमाओं में बीस दण्डी के अनुसार हैं।
आचार्य दण्डी ने भ्रान्तिमान, सन्देह, व्यतिरेक, निश्चय, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों को उपमा - भेद ही मान लिया है। इसमें से कौन- कौन अलंकार दण्डी की उपमा के कौन से भेद हैं, यह नीचे दिया जाता है—

भ्रान्तिमान	:	मोहोपमा
अतिशयोक्ति	:	अद्भुतोपमा
सन्देह	:	संशयोपमा
निश्चय	:	निश्चयोपमा
व्यतिरेक	:	प्रतिषेधोपमा
विशेषोक्ति	:	चटूपमा

आचार्य दण्डी का अनुकरण आचार्य केशव ने भी किया है। ` व्यतिरेक ` और ` विशेषोक्ति ` को छोड़कर आचार्य केशव के उपमा भेदों के अन्तर्गत उपर्युक्त साम्य पर निर्भर रहने वाले अलंकार आ गए हैं।

बहुत स्थलों पर आचार्य केशव ने आचार्य दण्डी से आधार ग्रहण किया है परन्तु मौलिक स्थलों की ` कविप्रिया ` में कमी नहीं है। स्थान- स्थान पर दिए गये लक्षण और उदाहरण आचार्य दण्डी के लक्षण और उदाहरण से अधिक श्रेष्ठ और प्रभावशाली बन गये हैं। ` कविप्रिया ` में ऐसे भी स्थल हैं जहां पर आचार्य केशव ने आचार्य दण्डी का भाव नहीं समझा। कहीं - कहीं अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करने में उसके आधार की रक्षा नहीं हो पाई है। परन्तु ये बातें केशव के ` उपमालंकार ` में ही हों ऐसा नहीं है, उन्होंने प्राय: स्थलों पर ऐसा ही किया है।

` कविप्रिया ` के पन्द्रहवें प्रभाव में यमक का वर्णन किया गया है। आचार्य दण्डी ने इसका बहुत विस्तार किया है। आचार्य केशवदास ने आचार्य दण्डी का अनुकरण किया है परन्तु उतने भेदों के उदाहरण भाषा में बनना कठि

था अत: थोड़े ही भेद करके आचार्य केशव ने काम चला लिया है।

आचार्य दण्डी के अनुसार यमक—

एकद्वित्रिचतुष्पादयमकानां विकल्पन: ।

आदि मध्यान्तमध्यान्तमध्याद्याद्यन्तसर्वत:[१]।।

एक, दो, तीन, चार पादों में रहने वाले यमकों के बहुत भेद हो जाते हैं, जैसे— प्रथमपाद में, द्वितीयपाद में, तृतीय पाद में, चतुर्थ पाद में यमक इस प्रकार एकपाद यमक चार प्रकार के हुए। प्रथम द्वितीय पादों में प्रथम तृतीय पदों में, प्रथम चतुर्थ पादों में, द्वितीय तृतीय पादों में, द्वितीय चतुर्थ पादों में, तृतीय चतुर्थ पादों में यमक, इस प्रकार से द्विपादयमक के छ: प्रभेद हुए। त्रिपादयमक के प्रथम, द्वितीय, तृतीय पादगत, प्रथम द्वितीय चतुर्थ पादगत, प्रथम तृतीय चतुर्थपाद गत, द्वितीय तृतीय चतुर्थ पादगत, इस प्रकार चार भेद हैं। चतुष्पादयमक एक ही प्रकार का है। इस तरह पादयमक के १५ भेद हुए। ऊपर बताए १५ भेदों के— आदि यमक, मध्य यमक, अन्त यमक आदिमध्ययमक, आद्यान्त यमक, मध्यान्तयमक, आदिमध्यान्तयमक नामक सात सात प्रकार होते हैं। इनके योग से १०५ प्रभेद हुए। इन सबके अव्यपेतयमक, व्यपेतयमक, व्यपेताव्यपेतयमक नाम से तीन प्रभेद हुए, इस प्रकार कुल मिलाकर ३१५ भेद होते हैं।

आचार्य केशवदास ने भी आचार्य दण्डी के आधार पर ही ` यमक ` का वर्णन किया है—

पद एकै नाना अरथ जिनमें जेतो बित्तु।

तामैं ताको काढ़िये यमक माहि दै चित्तु[२]।।

१- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ०- २२३, श्लोक २

२- प्रियाप्रकाश (चन्द्रकला) प्रभाव , पृ०- २०६, छं०सं० १

आदि पदादिक यमक सब लिखे ललित चितलाय ।
सुनहु सुबुद्धि उदाहरण केशव कहत बनाय[1] ।।

आचार्य केशवदास ने यमक अलंकार के अव्ययेत और सव्ययेत नामक दो भेद माने हैं—

अव्ययेत सव्ययेत पुनि, यमक बरन दुइ देत ।
अव्ययेत बिनु अंतरहि, अंतर सो सव्ययेत[2] ।।

आचार्य केशवदास ने ` कविप्रिया ) के पन्द्रहवें प्रभाव में यमक अलंकार का विस्तृत वर्णन किया है । उन्होंने ` यमक ` अलंकार और उसके लगभग २१- २२ उपभेदों का वर्णन किया है । परन्तु आचार्य केशव का वर्णन आचार्य दण्डी की तुलना में कम है । आचार्य केशव ने ` यमक ` के उपभेदों के जो उदाहरण दिए हैं वह केशव के अपने हैं उनमें कहीं भी आचार्य केशव आचार्य दण्डी से प्रभावित नहीं दिखाई देते ।

` कविप्रिया ` के सोलहवें प्रभाव में ` चित्रालंकार ` का वर्णन है । आचार्य केशवदास ने चित्रालंकार के वर्णन में कुछ तो आधार आचार्य दण्डी का ग्रहण किया है परन्तु कुछ वर्णन आचार्य केशव के अपने हैं जैसे—आचार्य केशव ने ` चित्रालंकार ` के वर्णन में दोषों के निवारण की बात कही है यह वर्णन ` काव्यादर्श ` में नहीं मिलता ।

अघ, ऊरध बिनु बिंदुयुत, जति, रस हीन अपार ।
बधिर, अंध गन अगन के गनिय न नगन विचार[3] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १५वां प्रभाव, पृ०- २०६, छ०सं० २
२- वही, ,, ,, छ०सं० ४
३- वही, १६वां प्रभाव, पृ०- २१८, छ०सं० २

केशव चित्त समुद्र में इनके दोष न देख ।
अक्षर मोटे पातरे ब, व, ज, य, एकै लेख ।।
अति रति गति मति एक करि, बहु विवेकयुत चित्त ।
ज्यों न होय क्रमभंग त्यों बरणौं चित्र कवित्त[1] ।।

आचार्य केशवदास ने `चित्रालंकार` के अनेक भेदोपभेद का वर्णन किया है। आचार्य दण्डी ने कठिनतम `अर्धभ्रम` और `सर्वतोभद्र` के उदाहरण दिए हैं। चक्रबन्ध, कमलबन्ध, धनुषबन्ध, पर्वतबन्ध, हारबन्ध, डमरूबन्ध, सर्वतोभद्र, कपाटबद्ध चक्र, अश्वगति आदि का वर्णन आचार्य केशव ने किया है। आचार्य दण्डी ने इसे आसान समझकर इनके उदाहरण नहीं दिये हैं।

आचार्य दण्डी के अनुसार— प्राचीन आचार्यों ने स्वर स्थान वर्ण नियमकृत वैचित्र्यमूलक भी कुछ शब्दालंकार स्वीकार किये हैं, उनको कष्टसम्पाद्य कहा है, उन स्वरस्थान वर्ण नियम मूलक कष्टसम्पाद्य शब्दालंकारों में यहां चार स्वर चार स्थान तथा चार वर्ण नियम वाले अलंकारों के ही उदाहरणादि बता रहे हैं, पांच-छः स्वर स्थान वर्णन नियम वाले शब्दालंकार, सुखसम्पाद्य हैं, अतः उनका उदाहरण नहीं दिया है। चतुःप्रभृति का अर्थ है चार स्वर नियम, तीन स्वर नियम, दो स्वर नियम, एक स्वर नियम (स्वर नियम के चार भेद) चार स्थान नियम, तीन स्थान स्वर नियम, दो स्थान नियम, एक स्थान नियम (स्थान नियम के चार भेद) चार वर्ण नियम, तीन वर्ण नियम, दो वर्ण नियम, एक वर्ण नियम, (वर्ण नियम के चार भेद)[2]—

इनमें से केवल वर्ण नियम ही आचार्य केशव ने लिया है। परन्तु इस वर्ण नियम के जो उदाहरण आचार्य केशव ने दिए हैं वह आचार्य केशव के अपने हैं। आचार्य दण्डी वर्ण नियम में चार की संख्या से आगे नहीं गये हैं जबकि आचार्य केशव ने छब्बीस वर्ण से लेकर एक वर्ण तक का वर्णन किया है।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १६वां प्रभाव, पृ०- २१८- २१६, छ०सं० ३-४
२- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद: पृ०- २५८

`कविप्रिया` के तीसरे प्रभाव में आचार्य केशवदास ने काव्य के दोषों का वर्णन किया है। केशव का यह दोष-वर्णन आचार्य दण्डी के `काव्यादर्श` के आधार पर किया गया है। `कविप्रिया` में आचार्य केशव ने सोलह प्रभाव रखे हैं। पहले दो प्रभाव में कवि ने अपने तथा अपने आश्रयदाता के वंशों का सविस्तार वर्णन किया है। तीसरे प्रभाव में काव्य-दोषों का वर्णन किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि केशव ने दोषों के वैज्ञानिक रूप से वर्गीकरण करने का प्रयत्न नहीं किया है वे इन दोषों का सीधे लक्षण बताकर उदाहरण देते चले गये हैं। आचार्य केशव ने सब मिलाकर अठारह दोष माने हैं वे दोष इस प्रकार हैं—

> अंध बधिर अरु पंगु तजि नग्न मृतक मतिशुद्ध।
> अंध विरोधी पंथ को, बधिर सु शब्द विरुद्ध[1]।।

अंध, बधिर, पंगु, नग्न और मृतक ये पांच दोष हुए। इन नामों का उल्लेख संस्कृत के किसी आचार्य ने नहीं किया है, सम्भवतः ये केशव की उद्भावना के फल हैं। `मृतक दोष` आचार्य केशव ने वहां माना है जहां वास्तव में कोई अर्थ न हो, परन्तु जब तक शब्दों का कुछ अर्थ न निकले तब तक काव्य-संज्ञा ही नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में `मृतक दोष` काव्य का दोष नहीं है। अलंकार-रहित कविता को आचार्य केशव ने `नग्नदोष` युक्त माना है। संस्कृत के प्रायः आचार्यों की सम्मति है कि अलंकार काव्य की शोभा वृद्धि में सहायक तो अवश्य होते हैं, परन्तु ये काव्य के अनिवार्य धर्म नहीं हैं। अलंकार की योजना के बिना भी काव्य हो सकता है। यही बात मम्मट ने `अनलंकृति पुनः क्वापि` के द्वारा कही है। आचार्य दण्डी ने भी अलंकारों को काव्य का अनिवार्य अंग नहीं माना है। उनकी अलंकारों की साधारण परिभाषा से ही यह ध्वनि निकलती है। वे कहते हैं—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ०- १५, छं०सं० ७

' काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते ' ।

ऐसी ही आचार्य वामन की सम्मति है । ऐसी अवस्था में आचार्य केशव का यह ' नग्नदोष ' भी व्यर्थ हो जाता है । ' पंगुदोष ' के अन्तर्गत ' छन्दोभंग ' ' यतिभंग ' इत्यादि दोष आ जाते हैं । आचार्य केशव का ' बधिरदोष ' आचार्य दण्डी के ग्राम्यता दोष से मिल जाता है । अन्धदोष वहां माना गया है जहां कवि को कवि सम्प्रदाय में एक प्रकार से मान ली गई बातों का ज्ञान नहीं होता ।

इन दोषों के अतिरिक्त निम्नलिखित तेरह और दोष भी आचार्य केशव ने माने हैं—

अगण, हीनरस, यतिभंग, व्यर्थ, अपार्थ, हीनक्रम, कर्णकटु, पुनरुक्ति, देश विरोध, कालविरोध, लोकविरोध, न्याय विरोध, आगम (शास्त्र) विरोध । इनमें से बहुत से दोष आचार्य दण्डी के अनुसार हैं । दोषों के उदाहरण भी आचार्य केशव ने ' काव्यादर्श ' से अनुवाद करके रख दिए हैं । आचार्य केशव के तथा दण्डी के लक्षण मिलते हैं । व्यर्थ, अपार्थ, देश विरोध, काल विरोध, नीति विरोध तथा आगम विरोध दोष भी आचार्य दण्डी के अनुसार हैं । लक्षण तथा कहीं कहीं उदाहरण भी आचार्य दण्डी से मिलते हैं ।

आचार्य केशव के ' अगण ' को आचार्य दण्डी का ' वृत्तभंग ' मान सकते हैं । आचार्य दण्डी के अनुसार ' वृत्तभंग ' दोष इस प्रकार है—

कामिन बाणा निशाता विमुक्ता मृगेक्षणास्वित्यथागुरुत्वम् ।
मदनबाणा निशिताः पतन्ति वामेक्षणास्वित्ययथालघुत्वम्[1] ।।

भिन्न वृत्त के प्रभेदों में गुरुलघ्वयथास्थिति नामक प्रभेद का उदाहरण है— कामिन इत्यादि । इस श्लोक में छन्दशास्त्रीय नियम विरुद्ध ह्रस्व-दीर्घ वर्ण

१- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ०- २८६, श्लोक १५८

का न्यास किया गया है। इसमें उपजातिवृत्त है, तदनुसार `निशाता:` का द्वितीय अक्षर लघु होना चाहिए, कर दिया गया है गुरु। एवं उत्तरार्द्ध में द्वितीय अक्षर गुरु के बदले लघु कर दिया गया है, यही अयथागुरुत्व और अयथालघुत्व रूप भिन्न वृत्तत्व यहां दोष है।

आचार्य केशवदास के अनुसार अगण दोष—

मगन नगन पुनि भगन अरु, यगन सदा शुभ जानि।
जगन रगन अरु सगन पुनि, तगनहिं अशुभ बखानि[१]।।

आचार्य दण्डी के अनुसार जिस वृत्त में वर्ण कम अथवा अधिक हों, या गुरु की जगह में ह्रस्व, ह्रस्व की जगह में गुरु हो वह भिन्नवृत्त है, इसे अविवर्जनीय जानना चाहिए—

वर्णानां न्यूनताधिक्ये गुरुलघ्वयथास्थिति:।
यत्र तद्भिन्नवृत्तं स्यादेष दोष: सुनिन्दित:[२]।।

आचार्य दण्डी के अनुसार `यतिभंग` दोष इस प्रकार है—

श्लोकेषु नियतस्थानं पदच्छेदं यतिं विदु:।
तदपेतं यतिभ्रष्टं श्रवणोद्वेजनं यथा[३]।।

श्लोक में विश्राम के स्थान निर्दिष्ट हुआ करते हैं, छन्दशास्त्र के आचार्यों ने किस छन्द में कहां-कहां विश्राम हुआ करता है इसका निश्चय कर दिया है, उसी निश्चित विश्राम स्थान को यति कहते हैं, उसी का विचार अगर नहीं हो, अस्थान में ही विश्राम किया गया हो तो यतिभ्रष्ट नामक दोष होता है, वह श्रवणोद्वेगकर होता है।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ०- १६, छ०सं० १६
२- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ०- २८६, श्लोक १५६
३- वही, पृ०- २८४, श्लोक १५२

आचार्य केशव के अनुसार यतिभंग—

और चरण के बरण जहं, और चरण सों लीन ।
सो यतिभंग कवित्त कहि केशवदास प्रवीन[1] ।।

आचार्य केशवदास ने ' यतिभंग ' का जो उदाहरण दिया है वह आचार्य केशव का अपना है उसमें उन्होंने आचार्य दण्डी से सहायता नहीं ली है ।

आचार्य केशवदास का ' व्यर्थ दोष ' आचार्य दण्डी के अनुसार ही है । आचार्य दण्डी के अनुसार व्यर्थ दोष—

एक वाक्ये प्रबन्धे वा पूर्वापरपराहतम् ।
विरुद्धार्थतया व्यर्थमिति दोषेषु पठ्यते[2] ।।

जिस वाक्य अथवा प्रबन्ध में परस्पर विरुद्ध बातें कही जायँ उसे विरुद्धार्थक होने के कारण व्यर्थत्व नामक दोष कहा जाता है ।

आचार्य केशवदास ने भी ' व्यर्थ ' की यही परिभाषा दी है—

एक कवित्त प्रबन्ध में, अर्थ- विरोध जु होय ।
पूरब पर अनमिल सदा, व्यर्थ कहै सब कोय[3] ।।

आचार्य दण्डी ने ' व्यर्थ ' का निम्न उदाहरण दिया है—

जहि शत्रुबलं कृत्स्नं जय विश्वम्भरामिमाम् ।
न च तेनैकोऽपि विद्वेष्टा सर्वभूतानुकम्पिनः[4] ।।

आचार्य दण्डी के इस उदाहरण के आधार पर ही आचार्य केशवदास ने अपना निम्न उदाहरण रखा है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ० २४, छ०सं० ४०
२- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ०- २७६, श्लोक १३१
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ०- २४, छ०सं०४२
४- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ०- २७६, श्लोक १३२

सब शत्रु संहारहु जीव न मारहु सजि योधा उमराव ।
बहु वसुमति लीजै, मो मति कीजै, लीजै आपन दांव[1]।।

आचार्य दण्डी के अनुसार ` अपार्थ ` की परिभाषा—

समुदायार्थशून्यं यत्तदपार्थमितीष्यते ।
उन्मत्तमत्तबालानामुक्तेरन्यत्र दुष्यति[2]।।

जिसमें पद या वाक्य का अर्थ हो, परन्तु समुदाय वाक्य या महावाक्य का अर्थ न हो उसे अपार्थ कहते हैं, अपार्थ वाक्य में सभी पदों के सार्थक रहने पर भी उनका परस्पर सम्मिलित अर्थ नहीं होता है, अत: वह अपार्थ है ।

आचार्य केशवदास ने भी अपार्थ की इसी प्रकार की परिभाषा दी—

अर्थ न जाको समुझिये, ताहि अपारथ जान ।
मतवारो उनमत्त शिशु, के-से बचन . बखान[3]।।

आचार्य दण्डी ने ` अपार्थ ` का निम्न उदाहरण दिया है—

समुद्र पीयते देवैरहमस्मि जरातुर: ।
अमी गर्जन्ति जीमूता हरे रैरावण: प्रिय:[4]।।

वाक्य में अपार्थत्व का उदाहरण है देवै:समुद्र: पीयते । इस वाक्य में सभी पद अर्थ वाले हैं, परन्तु देवों में समुद्र-पान योग्यता के नहीं होने से उनका मिलितार्थ नहीं होता है, अत: यह वाक्य अपार्थ है ।

यह अपार्थ दोष आचार्य केशवदास के ` मृतक ` दोष की आवश्यकता नहीं

----

१ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) तीसरा प्रभाव, पृ० - २४, छ०सं० ४३
२ - काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ० - २७५, श्लोक १२८
३ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) तीसरा प्रभाव, पृ० - २४, छ०सं० ४४
४ - काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ० - २७६, श्लोक १३३

रखता । आचार्य केशव ने अपार्थ का जो उदाहरण दिया है वह आचार्य दण्डी के उदाहरण का अनुवाद है—

पिये तेल नर सिन्धु कहं है अति सज्वर देह ।
ऐरावत हरि भावतो, देख्यो गरजत मेह[१]।।

आचार्य दण्डी का 'अक्रम' दोष आचार्य केशवदास का 'क्रमहीन' दोष है। आचार्य दण्डी के अनुसार अक्रम दोष—

उद्देशानुगुणोऽर्थानामनूद्देशो न चेत्कृत: ।
अक्रमाभिधानं तं दोषमाचक्षते बुधा:[२]।।

जिस क्रम से अर्थों को पहले कहा जाय, उसी क्रम से तत्सम्बन्धित पदार्थों के फिर से कथन में क्रमनामक अलंकार कहा गया है, उसी का विपरीत यह अक्रम नामक दोष है, यदि प्रथमोक्त पदार्थ जिस क्रम से कहे गये हों, तत्सम्बन्धी पदार्थ के कथन में उसी क्रम का अवलम्बन न किया जाय तो यह 'अक्रम' दोष होता है।

आचार्य केशव ने भी 'क्रमहीन' की इसी प्रकार की परिभाषा दी है—

क्रम हो गुणान बखानि के गुणी गनै क्रमहीन ।
सो कहिये क्रमहीन जग, केशवदास प्रवीन[३]।।

आचार्य दण्डी ने अपने 'अक्रम दोष' का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ०- २५, छ०सं० ४५
२- काव्यादर्श तृतीय परिशिष्ट : पृ०- २८१, छ०सं० १४४
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ०- २५, छ०सं० ४६

स्थितिनिर्माण संहारहेतवो जगतामभी ।
शम्भुनारायणाम्भोजयोनयः पालयन्तु वः[1] ।।

जगत् के स्थित - निर्माण और संहार के कारण यह शम्भू नारायण—ब्रह्मा आप लोगों का पालन करें ।

इस उदाहरण में स्थिति- निर्माण संहार का जिस पौर्वापर्य क्रम से कथन हुआ है, उनके कर्ता देवों का भी उसी क्रम से अभिधान होना चाहिए, अर्थात् नारायण - ब्रह्मा शम्भू इस क्रम से कहना चाहिए, तभी यथासंख्य अन्वय हो सकेगा,वैसा नहीं कहा गया है, अतः इसमें अक्रम दोष हुआ ।

आचार्य केशवदास ने अपने क्रमहीन दोष का जो उदाहरण दिया है वह आचार्य दण्डी के उदाहरण का अनुवाद ही है—

जग को रचना कहि कौन करी ।
किहि राखन को जिय पैज धरी ।।
अति कोपि के कौन संहार करै ।
हरि जू हर जू विधि बुद्धि ररै[2] ।।

आचार्य दण्डी ने ' श्रुतिकटु ' को ' यतिभंग ' के अन्तर्गत माना है—

तथापि कटु कर्णानां कवयो न प्रयुञ्जते ।
ध्वजिनी तस्य राज्ञः के । तूदस्तजलदेत्यदः[3] ।।

यति नियमानुकूल होने पर भी यदि श्रुतिकटुत्व हो जाय तो कविगण उसका प्रयोग नहीं करते हैं जैसे— ' केतूदस्तजलदा ' । यहां केतु + उदस्त पदों में

---

१ - काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ० - २८१, श्लोक १४५
२ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) तीसरा प्रभाव, पृ० - ३५, छ०सं० ४७
३ - काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ० - २८६, छ०सं० १५५

सन्धि हो गयी, यतिभङ्ग का नियम नहीं लगा, फिर भी श्रुतिकटुता के कारण वैसा प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

इसका तात्पर्य है सन्धि विकारान्त पद श्रुतिकटुत्व से अस्पृष्ट रहेगा, तब तो वह प्रयोग योग्य है, अन्यथा नहीं अत: यह ' केतूस्तजलदा ' वाला यतिभ्रष्ट ही माना जाएगा।

आचार्य केशव ने ' कर्णकटु ' को ' यतिभंग ' के अन्तर्गत नहीं माना है, बल्कि उसकी कल्पना स्वतन्त्र रूप से की गई है—

कहत न नीको लागई, सो कहिए कटुकर्ण।
केशवदास कवित्त में, भूलि न ताको वर्ण[1]।।

आचार्य दण्डी का ' एकार्थदोष ' आचार्य केशवदास का पुनरुक्ति दोष है। आचार्य दण्डी के अनुसार—

अविशेषेण पूर्वोक्तं यदि भूयोऽपि कीर्त्यते।
अर्थत: शब्दतो वापि तदेकार्थं मतं यथा: [2] ।।

पहले जो कहा गया उसके शब्द या अर्थ को बिना किसी विशेष के दुहराने को ' एकार्थदोष ' कहते हैं। बिना किसी विशेष के पूर्वोक्त वस्तु को शब्द या अर्थ में समता रखने वाले शब्द या अर्थ से दुहराया जाय तो एकार्थत्व नामक दोष होता है।

इसी प्रकार की परिभाषा आचार्य केशवदास ने अपने ' पुनरुक्ति दोष ' की दी है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ० - ४८, छ०सं० ४८

२- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ० - २७७, श्लोक १३५

एक बार कहिये कछू, बहुरि जु कहिये सोय ।
अर्थ होय के शब्द अब, सुनि पुनरुक्ति सुहोय[1]।।

` देशविरोध ` का जो उदाहरण आचार्य केशवदास ने दिया है वह आचार्य दण्डी के उदाहरण से मिलता है— आचार्य दण्डी का उदाहरण इस प्रकार है—

कर्पूरपादपामर्शसुरभिर्मलयानिल: ।
कलिङ्गवनसंभूता मृगप्राया मतङ्गजा[2]।।

कर्पूरवृक्ष के संसर्ग सेसुरभित दक्षिणानिल चल रहा है (इसमें दक्षिणानिल के साथ कर्पूरवृक्ष का सम्पर्क कवि की असावधानता से वर्णित हुआ है, अत: यह देश विरुद्ध है) इसी प्रकार कलिङ्ग वन में उत्पन्न हाथी हरिणों के समान ही छोटे होते हैं— इस उदाहरण में कलिङ्ग के वन में हाथी की उत्पत्ति का वर्णन देश विरुद्ध है, क्योंकि हाथी की उत्पत्ति सिंहल के वनों में प्रसिद्ध है, कलिङ्ग के वन में नहीं ।

इसी से मिलता-जुलता उदाहरण आचार्य केशवदास ने भी दिया है—

मलयानिल मन हरत हठि, सुखद नर्मदाकूल ।
सुबन सघन घनसारमय, तरुवर तरल सुफूल[3]।।

नर्मदाकूल में मलयानिल का होना और उसी सघन वन में कपूर का होना देश विरुद्ध है। मलयगिरि मैसूर में है और कपूर कदलीवन में होता है जो बंगाल में है ।

आचार्य दण्डी के अनुसार ` काल विरोध `—

----

१ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ० - २५, छ०सं० ५०
२ - काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ० - ३५६, श्लोक १६५
३ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ० - २६, छ०सं० ५४

पद्मिनी नक्तमुन्निद्रा स्फुटत्यह्नि कुमुद्वती ।
मधुरुत्फुल्लनिचुलो निदाघो मेघदुर्दिनः[1] ।।

रात में कमलिनी खिलती है, दिन में कुमुदनी विकसित होती है, वसन्त में निचुल तरु खिलते हैं, और ग्रीष्म में आकाश मेघावृत रहता है । यह ` काल-विरोध ` है ।

आचार्य दण्डी के इस उदाहरण की प्रथम पंक्ति का तो आचार्य केशव ने अनुवाद किया है लेकिन द्वितीय पंक्ति आचार्य केशव की अपनी है ।

प्रफुलित नव नीरज रजनि, बासर कुमुद बिशाल ।
कोकिल शरद, मयूर मधु, बरषा मुदित मराल[2]।।

केशव का ` लोक विरोध ` आचार्य दण्डी के ` लोक विरोध ` से नहीं मिलता । आचार्य केशव का लोक विरोध आचार्य दण्डी का ` कला- विरोध ` दोष है । आचार्य दण्डी के अनुसार ` कला विरोध `—

वीरशृङ्गारयोर्भावौ स्थायिनौ क्रोध विस्मयौ ।
पूर्णः सप्त स्वरः सोऽयं भिन्न मार्गः प्रवर्तते[3] ।।

वीररस एवं शृंगार रस के स्थायीभाव क्रोध एवं विस्मय कहे जायं, तो यह नाट्य कला विरुद्धत्व नामक दोष है, क्योंकि ` नाट्यशास्त्र ` के अनुसार वीर—शृंगार के स्थायी भाव उत्साह- रति हैं, क्रोध- विस्मय नहीं ।

निषाद ऋषभ आदि सात स्वर प्रसिद्ध हैं, एकाधिक स्वर का सङ्कीर्णत्व होने पर भिन्न मार्ग नहीं रह जाता, इस उदाहरण में सप्तस्वरसाङ्कर्य होने पर

---

१ - काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ० - २८६, श्लोक १६७

२ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ० - २६, छ०सं० ५६

३ - काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ० - २६०, श्लोक १७०

में भिन्नमार्गत्व स्वीकृत किया गया है, यह कला विरोध नामक दोष है।

इसी प्रकार का उदाहरण आचार्य केशवदास ने अपने ` लोक-विरोध ` के उदाहरण में दिया है—

स्थायी बीर सिंगार के, करुणा घृणा प्रमान।
तारा अरु मंदोदरी, कहत सतीन समान[1]।।

आचार्य दण्डी ने ` न्याय विरोध ` का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

कपिलैरसदुद्भूतिः स्थान एवोपवर्ण्यते।
असतामेव दृश्यन्ते यस्मादस्माभिरुद्भवाः[2]।।

कपिलमतानुगामियों ने ठीक ही असत् से उत्पत्ति का प्रतिपादन किया है (असतों की उत्पत्ति का प्रतिपादन किया है। क्योंकि हम संसार में असतों- दुर्जनों की ही उत्पत्ति देख रहे हैं।

इस उदाहरण में सांख्यमत के विपरीत असत् से उत्पत्ति का प्रतिपादन किया है, अतः यह सांख्य विरुद्ध है।

आचार्य केशवदास ने ` न्याय विरोध ` का जो उदाहरण दिया है वह आचार्य दण्डी से नहीं मिलता है—

पूजौ तीनो बर्ण जग, करि विप्रन सौं भेद[3]।

आचार्य दण्डी का ` आगम विरोध ` इस प्रकार है—

असावनुपनीतोऽपि वेदानधिजगे गुरोः।
स्वभावशुद्ध स्फटिको न संस्कारमपेक्षते[4]।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ०- २६, छ०सं० ५७
२- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ०- २९२, श्लोक १७५
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ०- २७, छ०सं० ५६
४- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ०- २९३, श्लोक १७८

बिना यज्ञोपवीत संस्कार के उस कुमार ने गुरु से सारे वेद पढ़ लिए, स्वभाव-निर्मल स्फटिक को संस्कार की अपेक्षा नहीं होती है।

इस उदाहरण में स्मृतिविरुद्ध दोष है, क्योंकि उपनयन के बाद ही वेदाध्ययन अधिकार स्मृतिसम्मत है, उसके विरुद्ध इसमें लिखा है।

ऐसा ही उदाहरण आचार्य केशव ने भी दिया है—

पुनि लीबो उपबीत हम, पढ़ि लीजै सब बेद[1]

" पहले वेद पढ़ लें तब यज्ञोपवीत लेंगे " ऐसा कहना शास्त्र विरोध है।

आचार्य केशवदास का " बधिर दोष " आचार्य दण्डी के "ग्राम्यतादोष " से मिलता है। आचार्य दण्डी के अनुसार ग्राम्यता दोष इस प्रकार है—

कन्ये कामयमानं मां न त्वं कामयसे कथम्।
इति ग्राम्योऽयमर्थात्मा वैरस्याय प्रकल्पते[2]।।

हे कन्ये, मैं काम से पीड़ित हूं तुम मुझे क्यों नहीं चाहती हो ? इसमें जो ग्राम्य- असभ्यजनव्यवहार्य अर्थ प्रयुक्त हुआ है वह श्रोता के हृदय में वैरस्य— विमुखता को उत्पन्न करता है। इस श्लोक में सर्वप्रथम " कन्या " पद आया है जो लड़की के लिए प्रयुक्त होता है, उसके प्रयोग से बड़ी विरसता आ गई है। इसी प्रकार इसमें प्रयुक्त अर्थ खुलकर किए गये रति- निवेदन के कारण विदग्धजनों के हृदयों में लज्जा की उत्पत्ति करता हुआ विरसता उत्पन्न करता है, अतः यह ग्राम्य है।

आचार्य केशवदास ने शब्द- विरोधी " बधिर " दोष का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ०- २७, छ०सं० ५६

२- काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद : पृ०- ५२, श्लोक ६३

सिद्ध सिरोमणि शंकर सृष्टि संहारत साधु समूह भरी है।
सुन्दर मूरति आतम- भूत की जारि धरीक में क्षार करी है।
शुभ्र विरूप त्रिलोचन सों मति केसवदास के ध्यान अरी है।
बंदत देव अदेव सबै मुनि गोत्रसुता अरधंग धरी है।।[1]

इस छन्द में सिद्ध शिरोमणि और शंकर शब्द कहके साधु- समूह भरी सृष्टि ` संहारत ` हैं, ऐसा नहीं कहना चाहिए था। इन शब्दों के साथ ` पालत ` व ` रक्षत ` शब्द का प्रयोग उचित था। संहार करने के लिए रुद्र, उग्र भैरव इत्यादि शब्द चाहिए, ` शंकर ` तो कल्याणप्रद को कहते हैं। आतमभूत का (आत्मभू, काम) अर्थ ` पुत्र ` भी होता है, अतः यहां इस शब्द का प्रयोग अनुचित है, ` मार ` व ` विषमबाण ` इत्यादि शब्द होना चाहिए था। त्रिलोचन के लिए विरूप शब्द अनुचित जंचता है। ` अरी ` का अर्थ शत्रु भी होता है, अतः अनुचित हैं। ` गोत्रसुता `(पर्वत की पुत्री) का अर्थ सगोत्रवाली कन्या भी भासता है, अतः इसका भी प्रयोग अनुचित जंचता है, यहां ` गिरीशसुता ` होता तो ज्यादा अच्छा रहता।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आचार्य दण्डी का ` ग्राम्यत्व दोष ` आचार्य केशव का ` बधिर दोष ` है।

(ख) अलंकार शेखर का प्रभाव :

` कविप्रिया ` के चौथे प्रभाव से लेकर आठवें प्रभाव का आधार ` अलंकारशेखर ` तथा ` काव्यकल्पलतावृत्ति ` नामक ग्रन्थ है। ` कविप्रिया ` के चौथे प्रभाव में आचार्य केशवदास ने लिखा है कि कवि तीन प्रकार के होते हैं— उत्तम, मध्यम तथा अधम। उत्तम भगवान के विषय में कविता करते हैं, मध्यम

1- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : तीसरा प्रभाव, पृ0- १६, छंसं0 १०

धन, यश इत्यादि के लाभ के लिए मनुष्यों का गुणगान किया करते हैं तथा अधम वे हैं जो लोगों के दोषों का वर्णन करते हैं। आचार्य केशव ने तीन प्रकार की कवि-रीतियां मानी हैं। कुछ सच्ची बातों को झूठ वर्णन करना, कुछ झूठी बातों को सत्य मानकर वर्णन करना तथा कुछ बातों को एक काल्पनिक नियम के अनुसार साम्प्रदायिक ढंग से वर्णन करना। ये ही तीन कवि — रीतियां हैं। यह सम्पूर्ण चतुर्थ प्रभाव आचार्य केशवदास ने आचार्य `केशव मिश्र` कृत `अलंकारशेखर` नामक ग्रन्थ के षष्ठं रत्नम् के प्रथम मरीचि: के आधार पर लिखा है। स्थान-स्थान पर तो स्पष्ट अनुवाद लक्षित होता है। कवियों द्वारा कुछ सच्ची बातों को झूठ और कुछ झूठी बातों को सत्य मान वर्णन की रीति `अलंकारशेखर` में भी कही गई है—

> असतोऽपि निबन्धेन सतामप्यनिबन्धनात्।
> नियमस्य पुरस्कारात् सम्प्रदायस्त्रिधा कवे:[1]।।

आचार्य केशवदास ने इसके आधार पर निम्नलिखित छन्द लिखा है—

> सांचो बात न बरनहीं, झूठी बरननि बानि।
> एकनि बरनै नियम कै, कवि-मत त्रिविध बखानि[2]।।

झूठ को सत्य मानकर वर्णन करना `अलंकार शेखर` में इस प्रकार वर्णित है—

> रत्नानि यत्र तत्राद्रौ हंसाद्यल्पजलाशये[3]।

इस पंक्ति का छायानुवाद `कविप्रिया` में इस प्रकार मिलता है—

१- अलंकार शेखर षष्ठंरत्नम् प्रथम मरीचि: : पृ०- ५६, श्लोक १

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ०- २८, छ०सं० ४

३- अलंकारशेखर : षष्ठम् रत्नम्, प्रथम मरीचि, पृ०- ५६

जहं तहं वर्णत सिन्धु सब, तहं तहं रतननि लेखि ।
सूक्षम अखर हू कहं, केशव हंस विशेषि[1] ।।

पुनः आचार्य केशवदास लिखते हैं—

लेन कहं भरि मूठि तम, सूजनि सियनि बनाय ।
अंगुलि भरि पीवन कहं, चंद्र- चंद्रिका पाय[2] ।।

इसका आधार `अलंकार शेखर` की निम्नलिखित पंक्ति है—

तिमिरस्य तथा मुष्टिग्राह्यत्वं सूचिभेद्यता[3] ।

सत्य को झूठ वर्णित करना अलंकार शेखर में इस प्रकार दिया है—

शुक्लत्वं कीर्तिपुण्यादौ कार्ष्ण्यं चक्रीत्यैधादिषु[4] ।

इसके आधार पर आचार्य केशव ने निम्न पंक्ति लिखी है—

कृष्णपक्ष की जोन्ह ज्यों, शुक्लपक्ष तम तूल[5] ।।

अलंकार शेखर में नियमबद्ध वर्णन का उदाहरण इस प्रकार दिया गया है—

हिमवत्येव भूर्जत्वक् चन्दनं मलये परम् ।
मानसा मौलितो वर्ण्या देवाश्चरणतः पुनः[6] ।।

उपर्युक्त पंक्तियों का छायानुवाद आचार्य केशवदास ने निम्न शब्दों में किया है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव; पृ०- २६, छं०सं० ६
२- वही, ,, ,, छं०सं० ७
३- अलंकारशेखर षष्ठंरत्नम्: प्रथम मरीचि, पृ०- ५६
४- वही,
५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथाप्रभाव, पृ०- २८, छं०सं० ५
६- अलंकारशेखर षष्ठंरत्नम प्रथम मरीचि, पृ०- ५६,६०

वर्णत चंदन मलय हीं, हिमगिरि ही भुजपात ।
वर्णत देवन चरण तें, सिर तें मानुष गात[1] ।।

अलंकारशेखर के अनुसार—

वर्षास्विव शिखिप्रौढिर्मधाविव पिक ध्वनि:[2]।

आचार्य केशवदास ने इसका छायानुवाद निम्न पंक्तियों में किया है—

कोकिल को कल बोलिबो, बरनत हैं मधुमास ।
वर्षा हो हरषित कहैं, केकी केशवदास[3] ।।

अलंकार शेखर के अनुसार—

चिरन्तनस्यापि तथा शिवचन्द्रस्य बालता[4]।

उपर्युक्त पंक्ति का अनुवाद आचार्य केशवदास ने इस प्रकार किया है—

ईश शीश शशि वृद्ध की,बरनत बालक बानि[5] ।

इन सब काव्य की नियमबद्ध बातों का वर्णन ` अलंकारशेखर ` इत्यादि ग्रन्थों में बहुत विस्तार से किया गया है, परन्तु आचार्य केशवदास ने केवल दो चार बातें लिखकर केवल मार्ग दिखा दिया है ।

आचार्य केशवदास ने दो प्रकार के अलंकार माने हैं । ` सामान्य ` तथा ` विशेष ` । ` सामान्यालंकार ` के चार भेद किए गये हैं—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव; पृ० - ३०, छ०सं० ११

२- अलंकारशेखर : षष्ठम्रत्नम् प्रथम मरीचि, पृ० - ६०

३ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ० - ३१, छ०सं० १४

४- अलंकारशेखर : षष्ठम्रत्नम्, पृ० - ६०

५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ० - ३१, छ०सं० १५

सामान्यालंकार को, चारि प्रकार प्रकास ।
वर्ण, वर्ण्य, भू राज श्री, भूषण केशवदास[1]।।

वर्ण : अर्थात् रंग- ज्ञान । इसका वर्णन पांचवें प्रभाव में है । इसमें यह बताया गया है कि कवियों को किन- किन वस्तुओं को किस रंग का वर्णन करना चाहिए ।

वर्ण्य : इसका वर्णन छठे प्रभाव में है । इसमें इस बात की शिक्षा दी गई है कि कौन- सी वस्तुएं किस- किस आकार का वर्णित होनी चाहिए ।

भूमिश्री : इसका वर्णन सप्तम प्रभाव में है । इसमें इस बात की शिक्षा दी गई है कि कवियों को किन- किन प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन करना चाहिए तथा प्रत्येक में किन- किन विशेषताओं के उल्लेख की आवश्यकता है ।

राज्यश्री : इसका वर्णन आठवें प्रभाव में है । इसमें राज्यमंत्री इत्यादि के वर्णन करने की शिक्षा दी गई है । ये प्रकरण आचार्य केशव मिश्र कृत अलंकार शेखर के आधार पर लिखे गये हैं ।

आचार्य केशवदास ने काव्य में सात रंगों के वर्णन की आवश्यकता मानी है और यह बताया है कि कौन- कौन वस्तुएं किस- किस रंग की होनी चाहिए । इस विषय का वर्णन अलंकारशेखर के षष्ठम्रत्नम् के द्वितीय मरीचि में है । आचार्य केशव ने अलंकारशेखर की अपेक्षा इसका विस्तृत वर्णन किया है । अलंकारशेखर में श्वेत वर्णन इस प्रकार दिया गया है—

श्वेतानि चन्द्रशक्राश्वशम्भुनारदभार्गवा: ।
हली शेषाहिशक्रेभौ सिंह सौधशरद्घना: ।।

1- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ0- 34, छ0सं0 3

सूर्येन्दुकान्तिनिर्मोकमन्दार द्रुहिमाद्रय: ।
हिमहासमृणालानि स्वर्गङ्गाभरदाम्भकम् ।
सिकताऽमृतलोभ्राणि गुणकेश्वशर्करा:[1] ।।

इसका आधार ग्रहण करके आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द लिखा है—

कीरति, हरिहय, शरदघन, जोन्ह, जरा, मंदार ।
हरि, हर, हरगिरि, सूर, शशि, सुधा, सौध, घनसार ।।
बल, बक, हीरा, केवरो, कौड़ी करका कांस ।
कुंद, कांचली, कमल, हिम, सिकता, भस्म, कपास[2] ।।

काले रंग का वर्णन `अलंकारशेखर` में संक्षिप्त है जबकि आचार्य केशवदास ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। यहां आचार्य केशवदास अलंकारशेखर से कम प्रभावित लगते हैं। `अलंकारशेखर` में काले रंग का वर्णन इस प्रकार दिया गया है—

शनिद्रुपदजा काली राजपट्टं विदूरजम् ।
विष्णाऽऽकाश कुहूकृष्णाऽऽगुरुपापतमोनिशा: ।।
रसावद्‌मुलकुञ्जारौ मद तापिच्छराक्ष: ।
सीरि चीरिं यमौ रदा: कण्ठ? खञ्जनकेकिनो:[3] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास का निम्न छन्द है—

विंध्य, वृषा, आकाश वसि, अर्जुन, खंजन, सांप ।
नीलकंठ को कंठ, शनि, व्यास, बिसाषी, पाप[4] ।।

१- अलंकारशेखर : षष्ठम्‌रत्नम्, तृतीय मरीचि:, पृ०-
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : पांचवां प्रभाव, पृ०- ३४, छ०सं० ५-६
३- अलंकारशेखर : षष्ठम्‌रत्नम्, तृतीय मरीचि , पृ०- ६६
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : पांचवां प्रभाव, पृ०- ३६, छ०सं०- २०

मधुप, निशा, सिंगाररस, काली कृत्या, कोल ।
अपयश, रीछ, कलंक, कलि, लोचन तारे लोल[१]।।

अरुण वर्णन ` अलंकारशेखर ` में इस प्रकार दिया गया है—

चकोरकोकिलापारावतनेत्रं कपेर्मुखम् ।
तेज: सारसमस्तं च भौमकुङ्कुमतस्काका: ।।
जिह्वीन्द्रगोपखद्योतविद्युत्कुञ्जरबिन्दव: ।

इसके आधार पर आचार्य केशव ने निम्न छन्दों की रचना की है—

कोकिल, चाख, चकोर, पिक, पारावत नख नैन ।
चुंच चरण कलहंस के, फनी कुंदरु रेन[२]।।

आचार्य केशवदास का अरुण वर्णन भी ` अलंकारशेखर ` की अपेक्षा अधिक विस्तृत है । ` अलंकारशेखर ` में पीत वर्णन इस प्रकार दिया गया है—

पीतानि दीपजीवेन्द्रगरुडेश्वरदृग्जटा: ।।
ब्रह्मा वीररसस्वर्णकपिङ्गापररोचना: ।
किञ्जल्कचक्रवाकाधा हरितालं मन:शिला[३]।।

आचार्य केशवदास ने इसके आधार पर निम्न छन्द लिखा है—

हरिबाहन, बिधि हरजटा, हरा, हरद, हरताल ।
चंपक, दीपक, वीररस, सुरगुरु, मधु, सुरपाल[४]।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : पन्द्रहवां प्रभाव, पृ०- ३६, छ०सं० २३
२- वही, ,, ४१ छ०सं० २०
३- अलंकारशेखर : षष्ठमूरत्नम्, तृतीय मरीचि:, पृ० - ६६
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : पन्द्रहवां प्रभाव, पृ०- ३८, छ०सं० १६

' अलंकारशेखर ' में धूम्र वर्णन इस प्रकार दिया गया है—

घूसराणि रजो लूता करभो गृहगोधिका ।
कपोतमूषको दुर्गा काककण्ठखरादयः[१] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द लिखा है—

काककंठ, खर, मूषिका, गृहगोधा, भनि भूरि ।
करभ, कपोतनि आदि दै धूम, धूमरी, धूरि ।।

' अलंकारशेखर ' में केवल पांच रंगों का ही वर्णन मिलता है जबकि आचार्य केशवदास ने सप्त रंगों का वर्णन किया है । नीले रंग का वर्णन और मिश्रित रंगों का वर्णन आचार्य केशवदास का अपना है ।

कविप्रिया के सातवें तथा आठवें प्रभाव का आधार ' अलंकारशेखर ' का षाष्ठमरत्न, द्वितीय मरीचि है । सातवें प्रभाव में प्राकृतिक दृश्यों इत्यादि के वर्णन की परिपाटी बताई गई है । इन प्राकृतिक दृश्यों में केशव ने निम्नलिखित वस्तुओं को माना है—

देस, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल ।
रवि, ससि, सागर, भूमि, के भूषन ऋतु, सब काल[२] ।।

इनमें से प्रत्येक को लेकर यह भी बताया गया है कि किस- किस के वर्णन में किन- किन दृश्यों इत्यादि का उल्लेख करना चाहिए ।

' कविप्रिया ' के आठवें प्रभाव में राजा तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले मंत्री इत्यादि के वर्णन की रीति बताई गई है ।

१- अलंकारशेखर : षाष्ठमरत्नम्, तृतीय मरीचिः, पृ०- ६७

२- कविप्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ६६, छ०सं० १

राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित, दलपति, दूत ।
मंत्री, मंत्र, प्रयान, हय, गय, संग्राम अमूल ।।
आखेटक, जलकेलि पुनि, बिरह, स्वयम्बर जानि ।
भूषित सुरतादिकनि करि, राज्यश्री हि बखानि[1] ।।

इन सबका आधार ' अलंकारशेखर ' का निम्नलिखित श्लोक है—

वर्ण्यश्च राजा देवी च देशो ग्रामः पुरी सरित् ।।
सरोऽब्ध्यरण्योद्यानाद्रिप्रयाणरणवाजिनः ।।
हस्त्यर्कचन्द्रावृतवो विवाहोऽथ स्वयंवरः ।।
सुरापुष्पाम्बुसम्भोग विश्लेषमृगयाऽऽश्रमाः[2] ।।

' अलंकारशेखर ' में देश वर्णन इस प्रकार किया गया है—

देशे बहुखनिद्रव्यपण्यधान्यकरोद्भवाः ।
दुर्गग्राम जनाधिक्य नदी मातृकतादयः[3] ।।

इसके आधार पर कविप्रिया में निम्न छन्द मिलता है—

रतनखानि, पशु, पच्छि, बसु, बसन सुगंध सुबेष ।
नदी, नगर, गढ़, बरनिये भाषा, भूषण देश[4] ।।

' अलंकारशेखर ' के अनुसार नगर वर्णन—

पुरेऽट्टपरिखाप्रप्रतोली तोरणध्वजाः ।
प्रासादाध्वप्रपाऽऽरामा वापी वेश्या सती नदी[5] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : सर्वां प्रभाव, पृ०- ८४, छं०सं० १,२
२- अलंकारशेखर : अष्टमूरत्नम् द्वितीय मरीचिः , श्लोक १- २
३- वही, ,, ,, पृ०- ६२
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : सर्वां प्रभाव, पृ०- ७०, छं०सं० २
५- अलंकारशेखर : अष्टमूरत्नम् द्वितीय मरीचिः, पृ०- ६२

इसके आधार पर कविप्रिया में निम्न छन्द मिलता है—

खाई, कोट, अटा, ध्वजा, बापी, कूप, तड़ाग ।
बारनारि, असती सती, बरनहु नगर सभाग[1] ।।

' अलंकारशेखर ' के अनुसार वन वर्णन—

अरण्ये ऽहिकरिहिंस्रयूथसिंहादयो द्रुमाः ।
काकोलूककपोताद्या भिल्लभल्लूकवादयः[2] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास ने निम्नलिखित छन्द लिखा है—

सुरभि, इभ, बन, जीव बहु, भूत, प्रेत भय भीर ।
भिल्ल भवन, बल्ली बिटप, दव बरनहु मतिधीर[3] ।।

' अलंकारशेखर ' के अनुसार बाग वर्णन—

उद्याने सरणि सर्वफलपुष्पलतादयः ।
पिकालिकेलिहंसाद्याः क्रीडावाप्यध्वगस्थितिः[4] ।।

इसके आधार पर कविप्रिया का निम्न छन्द है—

ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल कलख, मोर ।
बरनि बाग अनुराग स्यों, भंवर भंवत चहुं ओर[5] ।।

' अलंकारशेखर ' के अनुसार गिरि वर्णन—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७०, छ०सं० ४
२- अलंकारशेखर : अष्टमरत्नम्, द्वितीय मरीचिः, पृ० - ६२
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७१, छ०सं० ६
४- अलंकारशेखर अष्टमरत्नम, द्वितीय मरीचिः, पृ०- ६२- ६३
५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७२, छ०सं० ८

शैलेमेघौषधी धातुवंशकिन्नरनिर्भराः ।
शृङ्गपादगुहारत्नवनजीवनधुपत्यकाः[१] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द लिखा है—

तुंग शृंग, दीरघ दरी, सिद्ध सुन्दरी, धातु ।
सुर, नर युत गिरि वर्णिये, औषध, निर्झरपातु[२] ।।

`अलंकारशेखर` के अनुसार सरिता वर्णन—

सरित्यम्बुधियायित्वं वीच्यो वन गजादयः ।
पद्मानि षट्पदा हंसचक्राद्याः कूल शाखिनः[३] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द की रचना की है—

जलचर हय गय जलज तट, यज्ञकुंड मुनिबास ।
स्नान दान पावन नदी, बरनिय केशवदास[४] ।।

उपर्युक्त छन्द का आधार अलंकारशेखर होते हुए भी इसमें आचार्य केशवदास की मौलिकता देखी जा सकती है। नदी में स्नान, दान और उसकी पावनता का उल्लेख `अलंकारशेखर` में नहीं मिलता है।

`अलंकारशेखर` के अनुसार सरोवर वर्णन—

सरस्यम्भोलहर्यम्भोगजाद्यम्बुजषट्पदाः ।
हंसचक्रादयस्तीरोद्यानस्त्री पान्थकेलयः[५] ।।

१- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम्, द्वितीय मरीचिः, पृ०-
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : छठां प्रभाव, पृ०- ७३, छ०सं० १०
३- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम्, द्वितीय मरीचिः, पृ०- ६२
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : छठां प्रभाव, पृ०- ७४, छ०सं० १४
५- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम्, द्वितीय मरीचि , पृ०- ६२

`कविप्रिया` में भी ताल-वर्णन कुछ इसी प्रकार का है—

ललित लहर, बग, पुष्प, पशु सुरभि समीर तमाल ।
करम केलि पंथी प्रगट, जलचर बरनहु ताल[1] ।।

`अलंकारशेखर` में सूर्योदय वर्णन इस प्रकार वर्णित है—

सूर्येऽरुणता रविमणिचक्राम्बुजपथिक लोचनप्रीतिः ।
तारेन्दुदोपकौषधि घूकतमश्चौर कुमुद कुलटार्तिः[2] ।।

कविप्रिया का सूर्योदय वर्णन उपर्युक्त श्लोक के आधार पर ही लिखा गया है—

सूर उदय ते अरुणता पय पावनता होय ।
शंख बेद धुनि मुनि करैं पंथ लगैं सब कोय ।।
कोक, कोकनद शोकहत, दुख कुवलय, कुलटानि ।
तारा, औषध, दीप, शशि, घूक, चोर तम हानि[3] ।।

`अलंकारशेखर` के अनुसार चन्द्रोदय वर्णन—

चन्द्रे कुलटाचक्राम्बुजचौरविरहितमोऽर्तिरौज्ज्वल्यम् ।
जलधिजननेत्रकैरवचकोरचन्द्राश्मदम्पतिप्रीतिः[4] ।।

इस श्लोक के आधार पर आचार्य केशवदास ने चन्द्रोदय वर्णन इस प्रकार किया है-

कोक कोकनद विरहि तम, मानिनि कुलटनि दुःख ।
चन्द्रोदय ते कुवलयनि, जलधि चकोरन सुख[5] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७५, छ०सं० १६
२- अलंकारशेखर : षाष्ठमरत्नम् : द्वितीय मरीचि , पृ०- ६३
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७६, छ०सं० १८, १६
४- अलंकारशेखर : षाष्ठमरत्नम्, द्वितीयमरीचि, पृ०- ६३
५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७७, छ०सं० २१

` अलंकारशेखर ` में आश्रम-वर्णन इस प्रकार है—

आश्रमेऽतिथिपूजैणविश्वासो हिंस्रशान्तता ।
यज्ञधूमो मुनिसुता द्रुसेको वल्कलं द्रुमाः[1] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास ने जो छन्द लिखा है वह इस प्रकार है—

होम धूम युत बरनिये, ब्रह्मघोष मुनिबास ।
सिंहादिक मृगमोर अहि, इभ, शुभ, बैर बिनास[2]।।

कविप्रिया के सातवें प्रभाव के अन्त में आचार्य केशवदास ने ` षट्ऋतु ` का वर्णन किया है । इसका आधार भी ` अलंकारशेखर ` का षष्ठमुरत्नम् का द्वितीय मरीचि ही है ।

` अलंकारशेखर ` के अनुसार बसन्त ऋतु का वर्णन इस प्रकार है—

सुरभौ दोलाकोकिलदक्षिणवातद्रुपल्लवोद्भेदाः ।
जातीतरपुष्पचयाऽऽम्रमञ्जरी भ्रमरझङ्काराः[3] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास का बसन्त वर्णन इस प्रकार है—

बरनि बसंत सपुष्प अलि, बिरहि बिदारन वीर ।
कोकिल कलरव कलित बन, कोमल सुरभि समीर[4] ।।

` अलंकारशेखर ` के अनुसार ग्रीष्म ऋतु वर्णन—

ग्रीष्मे पाटलमल्ली तापसरःपथिकशोषवातोल्काः ।
सक्तुप्रपाप्रपास्त्री मृगतृष्णाम्रादिफलपाकाः[5] ।।

१- अलंकारशेखर : षष्ठमुरत्नम्, द्वितीय मरीचि, पृ०- ६५
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७४, छं०सं० १२
३- अलंकारशेखर : षष्ठमुरत्नम् द्वितीय मरीचि , पृ०- ६४
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७८, छं०सं० २७
५- अलंकारशेखर : षष्ठमुरत्नम्, द्वितीय मरीचि, पृ०- ६४

इसके आधार पर आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द लिखा है—

तातें तरल समीर मुख, सूखे सरिता ताल ।

जीव अबल जल थल विकल, ग्रीषम सफल रसाल[1] ।।

` अलंकारशेखर ` में वर्षा ऋतु का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

वर्षासु घनशिखिस्मयहंसगमना: पङ्कजकन्दलोद्भेदौ ।

जातीकदम्बकेतकझञ्झानिलनिम्नगाहलिप्रीतिः[2] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशव ने वर्षा वर्णन का निम्न छन्द लिखा है—

वर्षा हंस पयान, बक, दादुर, चातक मोर ।

केतकि पुष्प, कदंब जल, सौदामिनि घन घोर[3] ।।

` अलंकारशेखर ` में शरद ऋतु का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

शरदीन्दुरविपटुत्वं जलाच्छताऽगस्त्यहंस वृषदर्पाः ।

सप्तच्छदः सिताभ्राब्जरुचिः शिखिपक्षमदपाता:[4] ।।

इसका आधार ग्रहण कर आचार्य केशव ने शरद ऋतु के सम्बन्ध में निम्न छन्द लिखा है—

अमल अकास प्रकास ससि, मुदित कमल कुल कांस ।

पंथी पितर पयान नृप, शरद सु केशवदास[5] ।।

इस छन्द में आचार्य केशव ने अपेक्षाकृत कम आधार ग्रहण किया है और अपनी

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया)ः ७वां प्रभाव, पृ०- ७६, छ०सं० २६

२- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम्, द्वितीय मरीचि, पृ०- ६४

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ८०, छ०सं० ३१

४- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम्, द्वितीय मरीचि, पृ०- ६४

५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ८१, छ०सं० ३३

मौलिकता का परिचय दिया है। अपने छन्द की द्वितीय पंक्ति में जिन बातों का उल्लेख आचार्य केशवदास ने किया है उसका वर्णन 'अलंकारशेखर' में नहीं मिलता है।

'अलंकारशेखर' के अनुसार हेमन्त एवं शिशिर ऋतु—

हेमन्ते दिनलघुता मरुवकयवबृद्धि शीतसम्पत्तिः।
शिशिरे कुन्दसमृद्धिः कमलहतिर्मा गुडामोदाः[1] ।।

आचार्य केशवदास ने हेमन्त और शिशिर के वर्णन में यद्यपि अलंकारशेखर का आधार ग्रहण किया है परन्तु उनका हेमन्त ऋतु वर्णन 'अलंकारशेखर' की अपेक्षा अधिक सुन्दर है और उसमें केशव की मौलिकता भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है-

तेल, तूल, तांबूल, तिय, ताप, तपन रतिवंत।
दीह रयनि, लघु दिवस सुनि सीत सहित हेमन्त।।
शिशिर सरस मन बरनिये, केशव राजा रंक।
नाचत गावत रैनि दिन, खेलत हंसत निशंक[2] ।।

'कविप्रिया' के आठवें प्रभाव में राजा-रानी, हाथी-घोड़े, युद्ध आदि का जो वर्णन मिलता है उसका आधार 'अलंकारशेखर' का षाष्ठम्रत्नम् का द्वितीय मरीचि और 'काव्यकल्पलतावृत्ति' का प्रथम प्रतान है।
'अलंकारशेखर' ने सम्भवतः स्वयं ये प्रकरण 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से लिए हैं।

'अलंकारशेखर' में राजा में निम्न गुणों का होना माना गया है—

नृपे कीर्तिप्रतापाऽऽज्ञादुष्टशान्तिविवेकिताः।
धर्मं प्रयाणसंग्रामशस्त्राभ्यासनयप्रभाः ।।

1- अलंकारशेखर : षाष्ठम्रत्नम् द्वितीय मरीचि, पृ०- ६४
2- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ८२-८३, छ०सं० ३५, ३८

प्रजापालोऽरिशीलादिनिवासो रिपुन्नुन्यता ।
औदार्यधैर्यगाम्भीर्यैश्वर्यस्थैर्यपिमादय:[१] ।।

लगभग यही गुण आचार्य केशव ने भी राजा में स्वीकार किए हैं—

प्रजा प्रतिज्ञा, पुन्यपन, परम प्रताप, प्रसिद्धि ।
शासन, नाशन शत्रु के, बल विवेक की वृद्धि ।।
दंड, अनुग्रह धीरता, सत्य, शूरता, दान ।
कोष, देश युत वर्णिये, उद्यम, क्षमा निधान[२] ।।

' अलंकारशेखर ' के अनुसार रानी को निम्न गुणों से युक्त होना चाहिए—

देव्यां सौभाग्यलावण्य शीलशृंगारमन्मथा: ।
त्रपाचातुर्यकारिण्यप्रेममानप्रतादय:[३] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशव ने रानी में निम्न गुणों का होना स्वीकार किया है—

सुन्दरि, सुलक्ष, पतिव्रता, शुचि रुचि, शील समान ।
यहि विधि रानी बरनिये सलज्ज सुबुद्धि निधान[४] ।।

कविप्रिया के आठवें प्रभाव में राजकुमार, पुरोहित, दलपति, दूत, मंत्री आदि के गुणों का उल्लेख आचार्य केशव ने किया है । इनका वर्णन अलंकारशेखर में नहीं मिलता । प्रयाण, हाथी, घोड़े, संग्राम, आखेट, जलकेलि, विरह आदि का वर्णन अलंकारशेखर और कविप्रिया दोनों में मिलता है । कविप्रिया में विरह का विस्तार से वर्णन किया गया है जबकि ' अलंकारशेखर ' में इसका बहुत ही संक्षिप्त वर्णन है ।

१- अलंकारशेखर : षष्ठमुरत्नम् द्वितीय मरीचि, पृ०- ६१- ६२
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ०- ८४- ८५, छ०सं० ३-४
३- अलंकारशेखर : षष्ठमुरत्नम् द्वितीय मरीचि, पृ०- ६२
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ०- ८६, छ०सं० ६

'अलंकारशेखर' के अनुसार प्रयाण वर्णन—

प्रयाणे भेरिनिःस्वानकम्पबलधूलयः ।
करभोगाध्य जच्छ्रत्र णिक्शकटवेसराः[1] ।।

आचार्य केशवदास का प्रयाण वर्णन इसी के आधार पर लिखा गया है—

चंवर, पताका, छत्र छवि, दुंदुभि धुनि, बहु यान ।
जल थल मय मुकंप रज, रंजित बरणि पयान[2] ।।

'अलंकारशेखर' में अश्व के निम्नलिखित लक्षणों का उल्लेख मिलता है—

अश्वे वेगित्वमौन्नत्यं तेजः सल्लक्षण स्थितिः ।
खुरोत्खातरजः प्रौढ़ि जातिर्लिपि चित्रता[3] ।।

आचार्य केशवदास ने घोड़े के इन लक्षणों के अतिरिक्त कुछ अन्य गुण भी माने हैं—

तरल, तताई, तेजगति, मुख सुख, लघु दिन देखि ।
देश, सुबेश, सुलक्षणो, बरनहु बाजि बिशेखि[4] ।।

'अलंकारशेखर' के अनुसार हाथी का लक्षण—

गजे सह्ययोधित्वमुच्चता कर्णचापलम् ।
अरिव्यूह विभिदित्वं कुम्भमुक्तामदालयः[5] ।।

इन्हीं लक्षणों का उल्लेख केशवदास ने भी किया है—

१- अलंकारशेखर : षष्ठम्रत्नम्, द्वितीय मरीचिः, पृ० - ६३
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : सातवां प्रभाव, पृ० - ८१, छं०सं० २२
३- अलंकारशेखर षष्ठम्रत्नम् द्वितीय मरीचिः, पृ० - ६३
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : सातवां प्रभाव, पृ० - ८२, छं०सं० २५
५- अलंकारशेखर षष्ठम्रत्नम् द्वितीय मरीचिः, पृ० - ६३

मत्त, महाउत हाथ में, मंद चलनि, चलकर्ण ।
मुक्तामय, इभ कुंभ शुभ, सुन्दर, शूर, सुवर्ण[१] ।।

अलंकारशेखर में युद्ध का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

युद्धे तु वर्मबलवीररजांसि तूर्य—
निर्घातनादशरमण्डपरक्ततन्धः ।
छिन्नातपत्ररथवामरकेतुकुम्भि—
योधाः सुरीवृतभटाः सुरपुष्पवृष्टि[२] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशव ने युद्ध का निम्नवत् वर्णन किया है—

सेना स्वन, सन्नाह, रज साहस, शस्त्र- प्रहार ।
अंग भङ्ग, संघट्ट भट, अंध कबन्ध अपार ।।
केशव बरणहु युद्ध महं, जोगिन गण युत रुद्र ।
भूमि भयानक रुधिरमय, सरवर, सरित, समुद्र[३] ।।

अलंकारशेखर में आखेट का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

मृगयायां च संचारो वागुरा नीलवेषता ।
मृगाधिक्यं मृगत्रासो छिद्रोहो गतित्वरा[४] ।।

आखेट का वर्णन आचार्य केशवदास ने भी किया है परन्तु उन्होंने अलंकारशेखर से प्रभाव ग्रहण नहीं किया है । केशव का काल मुगल बादशाहों का काल था । चूंकि मुगल आखेट के शौकीन हुआ करते थे शायद इसीलिए केशव ने आखेट का

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : सातवां प्रभाव, पृ०- ६३, छं०सं० २७

२- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम् द्वितीयमरीचिः, पृ०- ६३

३- प्रियप्रकाश (कविप्रिया) : सातवां प्रभाव, पृ०- ६४, छं०सं० २६- ३०

४- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम् द्वितीय मरीचिः, पृ०- ६५

इतना विस्तृत वर्णन किया है।

> जुरी, जहरी, बाज बहु, चीते, स्वान, सचान।
> सहर बहेलिया, भिल्लयुत, नील निचोल विधान।।
> बानर, बाघ, बराह, मृग, मीनादिक बन जंत।
> बध, बन्धन, बेधन बरणि मृगया खेल अनन्त[1]।।

'अलंकारशेखर' में 'जलक्रीडा' का वर्णन निम्न शब्दों में मिलता है—

> जलकेलौ सर: कोमश्चक्रहंसापसर्पणम्।
> पद्माम्लानि: पय: क्षोभ: पोडशिरागो भूषणाच्युति:[2]।।

ऐसा ही वर्णन आचार्य केशवदास ने भी किया है—

> सर, सरोज, शुभ, शोभ भनि, हिय सौं प्रिय हिय केलि।
> गहिबो गत भूषनन को, जलचर ज्यों जलकेलि[3]।।

'अलंकारशेखर' के अनुसार 'विरह वर्णन'—

> विरहे तापनिश्वास चिन्तामौनकृशाङ्गता:।
> अब्दसंख्या निशादैर्घ्यं जागर: शिशिरोष्णता[4]।।

विरह का इसी प्रकार का वर्णन आचार्य केशवदास ने भी किया है—

> स्वास, निसा, चिंता बढ़ै, रुदन परेखे बात।
> कारे, पीरे, होत कृश, ताते, सीरे, गात।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ० - ६४, छं०सं० - ३३

२- अलंकारशेखर : षष्ठम्रत्नम् द्वितीय मरीचि:, पृ०- ६४- ६५

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ० - ६६, छ०सं० ३६

४- अलंकारशेखर : षष्ठम्रत्नम् द्वितीय मरीचि:, पृ० - ६५

भूख, प्यास, सुधि, बुधि घटै, सुख, निद्रा, दुति अंग ।
दुखद होत हैं सुखद सब, केशव बिरह प्रसंग[1] ।।

आचार्य केशवदास का ` विरह वर्णन ` ` अलंकारशेखर ` की अपेक्षा अधिक विस्तृत है । आचार्य केशव ने मान, करुणा, प्रवास और पूर्वानुराग नामक चार प्रकार के विरहों का अलग अलग विवेचन किया है जबकि अलंकारशेखर में ऐसा नहीं है ।

अलंकारशेखर में स्वयंवर का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

स्वयंवरे शचीरक्षा मञ्चमण्डपसज्जता ।
राजपुत्री नृपाकाराऽन्वयचेष्टाप्रकाशनम्[2] ।।

इसकी प्रथम पंक्ति का तो केशव ने अनुवाद ही कर दिया है—

शची स्वयंबर रच्छिणी, मंजुल मंच बनाय ।
रूप, पराक्रम, बंश, गुण बरणिय राजा राय[3] ।।

अलंकारशेखर में सुरति वर्णन निम्न शब्दों में मिलता है—

सुरते सात्त्विका भावाः सीत्काराः कुड्मलागता ।
काञ्चीकङ्कणमञ्जीररवो रदनखक्षते[4] ।।

आचार्य केशवदास का सुरति वर्णन ` अलंकारशेखर ` के अनुसार ही है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : नवां प्रभाव, पृ०- ६६, छ०सं० ३८- ३९
२- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम् द्वितीय मरीचिः, पृ०- ६४
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : नवां प्रभाव, पृ०- १००, छ०सं० ४५
४- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम् द्वितीय मरीचिः, पृ०- ६५

सुरति सात्विको भाव भनि, भनित रुनित मंजीर ।
हाव, भाव, बहि अंत रति, अलज सलज्ज शरीर[1] ।।

इस प्रकार चौथे से लेकर आठवें प्रभाव तक की सामग्री केशवदास जी ने केशव मिश्र रचित `अलंकारशेखर` अथवा अमर रचित `काव्यकल्पलतावृत्ति` से ली है। आगे के प्रकरण प्रायः दण्डी के `काव्यादर्श` के आधार पर हैं। परन्तु आगे के प्रकरणों में भी एक स्थल पर इन दोनों ग्रन्थों से सहायता ली गई है। ११वें प्रभाव में आचार्य केशवदास ने `गणना` नामक एक अलंकार माना है। यह वास्तव में कोई अलंकार नहीं है। इसमें आचार्य केशव ने एक से लेकर दस तक की संख्यावाली वस्तुएं गिनाई हैं। इसका वर्णन `अलंकारशेखर` के षाष्ठमुरत्नम् के चतुर्थ मरीचि में है, परन्तु वह वर्णन बहुत संक्षिप्त है। केशवदास जी ने प्रत्येक संख्या के अन्तर्गत अपेक्षाकृत अधिक वस्तुओं का नामोल्लेख किया है। यही प्रकरण `काव्यकल्पलतावृत्ति` के चतुर्थ प्रतान में उठाया गया है तथा इसका बहुत विस्तृत वर्णन किया गया है। `कविप्रिया` में सम्भवतः इसी से सहायता ली गई है। प्रायः सम्पूर्ण वर्णन इस ग्रन्थ से मिल जाता है।

`अलंकारशेखर` के अनुसार `एक` सूचक—

एक ऐन्द्रः करी चाश्वो गजास्यश्शुक्रदृक्[2]।

`कविप्रिया` के अनुसार `एक` सूचक—

एकै आतम, चक्र रवि, एक शुक्र की दृष्टि ।
एकै दसन गणेश को, जानति सिगरि सृष्टि[3] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ०- १०१, छ०सं० ४७
२- अलंकारशेखर : षाष्ठमुरत्नम् चतुर्थ मरीचिः, पृ०- ६७
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १२८, छ०सं० ५

` अलंकारशेखर ` के अनुसार ` दो ` सूचक—

द्वयं पक्षनदी तीरनश्रुतिभुजादिकम्[1] ।।

कविप्रिया में ` दो ` सूचक वस्तुएं कई गिनाई गई हैं परन्तु जो पंक्ति अलंकारशेखर से मिलती है वह इस प्रकार है—

नदी कूल द्वै, रामसुत, पक्ष खड्ग की धार ।

द्वै लोचन, द्विजजन्म, पद, भुज अश्विनीकुमार[2] ।।

` अलंकारशेखर ` के अनुसार ` तीन ` सूचक—

त्रयं कालाग्नि भुवन गङ्गा मार्गेशदृग्गुणाः ।

ग्रीवारेखा महो कोणास्तथा शूल शिखावलो ।।

सन्ध्या पुरः पुष्कराणि रामविष्णुज्वराऽऽग्नयः[3] ।।

आचार्य केशवदास ने ` तीन ` सूचक वस्तुओं का लगभग अनुवाद सा कर दिया है फिर भी वस्तुओं के नाम ` अलंकारशेखर ` की अपेक्षा अधिक हैं—

गंगा मग, गिरीशदृग, ग्रीव रेख, गुणलेखि ।

पावक, काल, त्रिशूल, बलि, संध्या तीनि विशेखि[4] ।।

पुष्कर, विक्रम, राम, विधि, त्रिपुर, त्रिवेणी, वेद ।

तीनि प्राप, परिताप, पद ज्वर के तीन सखेद ।।

` अलंकारशेखर ` के अनुसार ` चार ` सूचक—

१- अलंकारशेखर : षष्ठम्रत्नम्, चतुर्थ मरीचि, पृ०- ६७

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १२८, छं०सं० ७

३- अलंकारशेखर : षष्ठम् रत्नम् चतुर्थ मरीचि, पृ०- ६७

४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १२८, छं०सं० ८,६

चत्वारि वेद ब्रह्मास्य वर्णाब्धिहरिबाहवः ।
स्वदन्तिदन्तसेनाङ्गोपाययामयुगाश्रमाः[1] ।।

इससे मिलती हुई पंक्ति कविप्रिया की इस प्रकार है—

बेद, बदन, बिधि, बारनिधि, हरिबाहन भुजचार ।
सैना, अंग, उपाय, युग, आश्रम बरण बिचारि[2] ।।

' अलंकारशेखर ' के अनुसार ' पांच ' सूचक—

पञ्च पाण्डव रुद्रास्येन्द्रियस्वर्द्रुव्रताश्च्यः ।।
महाभूत महापापमहाकाव्य महामखाः ।
पुराणलक्षणं प्राणानिला वर्गेन्द्रियार्थकाः[3] ।।

' अलंकारशेखर ' की इन पंक्तियों से मिलती हुई ' कविप्रिया ' की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पंडुपूत, इंद्रिय, कवल, रुद्रबदन, गति बाण ।
लक्षण पञ्च पुराण के, पञ्च अंग अरु प्राण ।।
पंचभूत, पातक, प्रगट पंच यज्ञ,-जिय जानि[4] ।

' अलंकारशेखर ' के अनुसार ' षट ' सूचक—

षड् वक्त्रकोणत्रिशिरोनेत्र तर्काङ्गदर्शनम् ।
चक्रवर्ती महासेनवदनानि गुणा रसाः[5] ।।

१- अलंकारशेखर : षष्ठम्रत्नम् चतुर्थमरीचि , पृ०- ६७
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १२८, छं०सं० १०
३- अलंकारशेखर षष्ठम्रत्नम् चतुर्थ मरीचि , पृ०- ६७
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १२९, छं०सं० १२, १४
५- अलंकारशेखर षष्ठम्रत्नम् चतुर्थ मरीचिः, पृ०- ६७

इन्हीं वस्तुओं को आचार्य केशवदास ने भी गिनाया है—

कुलिश कोण षट, तर्क षट, दर्शन, ऋतु, रस, अंग ।
चक्रवर्ति, शिवपुत्र, मुख, मुनि षटराग प्रसंग[1] ।।

` अलंकारशेखर ` के अनुसार ` सात ` सूचक—

सप्त पातालभुवनमुनिद्वीपार्क वाजिनः ।
वाराश्च स्वरराज्याङ्गश्री ह्रिह्निनशिखादयः[2] ।।

इसकी प्रथम पंक्ति का तो आचार्य केशवदास ने लगभग अनुवाद सा कर दिया है—

सात रसातल, लोक, मुनि, द्वीप, सूरहय, बार ।
सागर, स्वर, गिरि, ताल, अरु, अन्न, ईति, करतार[3] ।।

` अलंकारशेखर ` के अनुसार ` आठ ` सूचक वस्तुएं—

अष्टौ योगाङ्गवस्वीशमूर्तिदिग्गजसिद्धयः ।
ब्रह्मश्रुतिव्याकरणादिक्पालाङ्गिकुलादयः[4] ।।

आचार्य केशव ने इसका छायानुवाद इस प्रकार किया है—

योग अङ्ग, दिगपाल, बसु, सिद्धि, कुलाचल चारु ।
अष्टकुली अहि, व्याकरण, दिग्गज, तरुणि विचारु[5] ।।

अलंकारशेखर के अनुसार ` नौ ` सूचक वस्तुएं—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३०, छं०सं० १५
२- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम्, चतुर्थ मरीचिः, पृ०- ६८
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३०, छं०सं० १७
४- अलंकारशेखर : षष्ठमरत्नम् चतुर्थ मरीचिः, पृ०- ६८
५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३१, छं०सं० १६

नवाङ्कदार मूखण्डगृदरावणमस्तका: ।
व्याघ्रीस्तन सुधाखण्डशिवघ्यङ्गरसग्रहा:[१]।।

इन वस्तुओं के अतिरिक्त आचार्य केशवदास ने कुछ अन्य वस्तुओं के नाम भी गिनाए हैं—

अंगद्वार, मूखण्ड, रस, बाधिनि कुच निधि जानि ।
सुधाकुण्ड, ग्रह, नाटिका, नवधा भक्ति बखानि[२]।।

' अलंकारशेखर ' के अनुसार ' दस ' सूचक वस्तुएं—

दश हस्ताङ्गुलीशम्भुबाहुरावणमौलय: ।
कृष्णावतारो दिग्विश्वेदेवाऽवस्थेन्दु वाजिन:[३]।।

केशवदास ने भी इन्हीं वस्तुओं के नाम लिखे हैं—

रावण सिर, श्री विष्णु के, दश अवतार बखानि ।
विश्वेदेवा, दोष दस, दिसा, दशा दर जानि[४]।।

(ग) काव्यकल्पलतावृत्ति का प्रभाव :

' कविप्रिया ' में चौथे प्रभाव से लेकर आठवें प्रभाव तक की सामग्री आचार्य केशवदास जी ने केशव मिश्र रचित ' अलंकारशेखर ' अथवा अमर रचित ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' से भी ली है । अलंकारशेखर ' के कर्ता ने भी ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' से सहायता ली है ।

१- अलंकारशेखर : षष्ठम्रत्नम् चतुर्थ मरीचि:, पृ०- ६८
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३१, छं०सं० २०
३- अलंकारशेखर : षष्ठम्रत्नम् चतुर्थ मरीचि: पृ०- ६८
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३२, छं०सं० २१

आचार्य केशवदास ने काव्य में सात रंगों के वर्णन की आवश्यकता मानी है और यह बताया है कि कौन-कौन वस्तुएं किस-किस रंग की होनी चाहिए इस विषय का वर्णन ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के तृतीय प्रतान में है। छठा प्रभाव वर्ण्यों की आकृति के विषय में है इसका वर्णन ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के चतुर्थ प्रतान में है। सातवें प्रभाव में प्राकृतिक दृश्यों इत्यादि के वर्णन की परिपाटी बताई गई है। इन प्राकृतिक दृश्यों में आचार्य केशवदास ने निम्नलिखित वस्तुओं को माना है—

देश, नगर, ब न, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल।
रवि, शशि, सागर, भूमि के, भूषण ऋतु, सब काल[1] ।।

इनमें से प्रत्येक को लेकर यह भी बताया गया है कि किस-किस के वर्णन में किन-किन दृश्यों इत्यादि का उल्लेख करना चाहिए।

आठवें प्रभाव में राजा तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले मंत्री इत्यादि के वर्णन की रीति बताई गई है। इन सबका आधार ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' का प्रथम प्रतान है। ' कविप्रिया ' के ग्यारहवें प्रभाव में आचार्य केशव ने ' गणना ' नाम का एक अलंकार माना है। यह वास्तव में कोई अलंकार नहीं है। इसमें केशव ने एक से लेकर दस तक की संख्यावाली वस्तुएं गिनाई हैं। यही प्रकरण ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के चतुर्थ प्रतान में उठाया गया है तथा इसका बहुत विस्तृत वर्णन किया गया है। ' कविप्रिया ' में सम्भवतः इसी से सहायता ली गई है। प्रायः सम्पूर्ण वर्णन इस ग्रन्थ से मिल जाता है। ' कविप्रिया ' में ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' से मिलने वाले स्थान इस प्रकार हैं—

आचार्य केशवदास ने ' कविप्रिया ' में कवि रीति का इस प्रकार वर्णन किया है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ० - ६६, छ०सं० १

सांची बात न बरनहीं, झूठी बरननि बानि ।
एकनि बरनै नियम कै, कवि- मत त्रिविध बखानि[1] ।।

केशव के इस छन्द का आधार `काव्यकल्पलतावृत्ति` की निम्न पंक्ति है—

असतोऽपि निबन्धेनानिबन्धेन सतोपि च ।
नियमेन च जात्यादेः कवीनां समयस्त्रिधा[2] ।।

आचार्य केशव ने `सत्य को झूठ कहना` का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

केशवदास प्रकाश बहु, चंदन के फल फूल ।
कृष्ण पक्ष की जौन्ह ज्यों, शुक्ल पक्ष तम तूल[3] ।।

आचार्य केशव के इस छन्द का आधार `काव्यकल्पलतावृत्ति` की निम्न पंक्तियां हैं—

शुक्लत्वं कीर्तिहासादौ कार्ष्ण्यं दुष्कीर्त्यघादिषु ।
प्रतापे रक्त तीक्ष्णत्वे रक्तत्वं क्रोधरागयोः[4] ।।

झूठ को सत्य मानकर वर्णन करने का उदाहरण आचार्य केशवदास ने इस प्रकार दिया है—

जहं तहं वर्णत सिंधु सब, तहं तहं रतननि लेखि ।
सूक्ष्म सरवर हू कहैं, केशव हंस विशेषि[5] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ०- २८, छ०सं० ४
२- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- ३०
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ०- २८, छ०सं० ५
४- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- ३०
५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ०- २६, छ०सं० ६

इसका आधार केशव ने काव्यकल्पलतावृत्ति की निम्न पंक्तियों से ग्रहण किया है—

रत्नादि यत्र तत्राद्रौ हंसाद्यल्पजलाशये ।
जले माथं नभो नद्यामम्भोजाद्यं नदीष्वपि[1] ।।

इसी प्रकार आचार्य केशव का निम्न छन्द भी काव्यकल्पलतावृत्ति की पंक्तियों का अनुवाद है—

लेन कहँ भरि मूठि तम, सूजनि सियनि बनाय ।
अंजुलि भरि पीवन कहँ, चंद्र-चंद्रिका पाय[2] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' की पंक्ति इस प्रकार है—

तिमिरस्य तथा मुष्टिग्राह्यं सूची विभेद्यताम् ।
अञ्जलिग्राह्यता कुम्भोपवाह्यत्वे विधुत्विषः[3] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' में ' नियमबद्ध ' वर्णन इस प्रकार कहा गया है—

भूर्जद्रुम् हिमवत्येव मलये ह्येव चन्दनम्[4] ।।

इसका अनुवाद आचार्य केशव ने निम्न पंक्तियों में किया है—

बरनत चंदन मलय ही हिमगिरि ही भुजपात ।
बरनत देवन चरण ते, सिर ते मानुष गात[5] ।।

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- ३०

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ०- २६, छं०सं० ७

३- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- ३०

४- वही, ,, पृ०- ३०

५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ०- ३१, छं०सं० ११

अन्तिम पंक्ति काव्यकल्पलतावृत्ति में इस प्रकार मिलती है—

मात्मा मौलिनो वर्ण्यो देवाश्चरणात: पुन:[१]।।

इसी प्रकार—

बहुकालजन्मनोऽपि शिवचन्द्रस्य बालता[२]।

उपर्युक्त पंक्ति का अनुवाद आचार्य केशव ने इस प्रकार किया है—

ईश शीश शशि वृद्ध की, बरनत बालक बानि[३]।

आचार्य केशव ने दो प्रकार के अलंकार माने हैं। `सामान्य` तथा `विशेष` सामान्यालंकार के उन्होंने, वर्ण, वर्ण्य, भूमिश्री तथा राज्यश्री नामक चार भेद किए हैं। वर्ण अर्थात् रंग ज्ञान ; इसका वर्णन पांचवें प्रभाव में है। इसमें यह बताया गया है कि कवियों को किन-किन वस्तुओं को किस रंग की वर्णन करना चाहिए। यह समस्त प्रकरण आचार्य केशवदास ने `काव्यकल्पलतावृत्ति` के आधार पर रखा है। काव्यकल्पलतावृत्ति के अनुसार श्वेत वर्णन इस प्रकार है—

रम्भागर्भ पारिजात लोध्रकङ्कोलपादपा:। कार्पासकाशकर्पूर करम्भा रजतं यश:।। निर्मोकचीरडिण्डीरचन्दनं हसितं हिमम्।। दधिप्रकाचूर्णास्थि खटिकास्फटिकाभ्रका:। रेणु: केतकखर्जूर्यौ: कटाक्षा वासभस्मनी। मृणाल-पलिताम्भोदधारेन्दुकरचामरा:। हारोर्णा नभतन्तुमिश्वदंष्ट्रभरदा गुणा:। सिराशर्कराशालिदुग्धगङ्गासुधाजलम्। निर्झर: पारदो हंस बक कैरवकम्बव:।। लतागृहं पुण्डरीककपालश्वेत कुम्भका:। छत्रसिंहध्वज श्वेतगुञ्जाशुक्ति कपर्दिका:

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २७

२- वही, पृ०- ३१

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : चौथा प्रभाव, पृ०- ३१, छ०सं० १५

मुक्ता कुसुमदन्ताभ्रदन्तस्वेदाम्बुबिन्दवः । सूर्येन्दुकान्तकरकसिकताकणसीकराः ।
मालती मल्लिकाकुन्दयूथिकाकुटजादयः ।। एते भारतीप्रभृतयोऽन्येऽपि
श्वेतपदार्थाः परस्परमौचित्यादुपमानत्वं वितन्वन्ति[1]।

इसके आधार पर आचार्य केशव का श्वेत वर्णन इस प्रकार है—

> कीरति, हरिहय, शरद घन, जोन्ह, जरा, मंदार ।
> हरि, हर, हरगिरि, सुर, शशि, सुधा, सौध बनसार ।।
>
> बल, बक, हीरा, केवरो, कौड़ी, करका कांस ।
> कुंद कांचली, कमल, हिम, सिकता, भस्म, कपास ।।
>
> खांड़, हाड़, निर्फर, चंवर, चंदन, हंस मुरार ।
> छत्र, सत्ययुग, दूध, दधि, संख, सिंह, उड़ार ।।
>
> शेष, सुकृति, शुचि, सत्वगुण, संतन के मन हास ।
> सीप, बून, मौंडर, फटिक, खटिका, फेन, प्रकास ।।
>
> शुक्र, सुदर्शन, सुरसरित, वारण बाजि समेत ।
> नारद, पारद, अमलजल, शारदादि सब सेत[2] ।।

`काव्यकल्पलतावृत्ति` में पीले रंग का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

पीतानि ब्रह्मसूर्येन्द्रगरुडेश्वरभृगुजटाः । पद्मनाभो गुरुर्विष्णोश्चक्रं
वीररजोगुणाः।। गिरिजाऽगस्तिरिन्द्राश्वा द्वापरो द्वापराच्युतः । मयानक
रसो वैश्यवर्णधर्मपितृव्रताः ।। वृषभ प्रमुखस्तीर्थकराः गोऽश्च वासराः ।
सुराद्रिः काञ्चनं कांस्यं रीति किञ्जल्कवल्कले ।। परिव्राजकवस्त्राणि
हरितालमनःशिले । हरिद्रारोचना हीरो गन्धकं दीपचम्पके ।। कर्णिकारं

1- काव्यकल्पलतावृत्ति : चतुर्थ प्रतान, पृ० - १४६ - १५०

2- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : पांचवां प्रभाव, पृ० - ३४ - ३५, छं०सं० ५ - ६

सुवर्णाब्जरम्भाकेतकशालय: हरयी रथाङ्गनामा वानर: सारिकाक्रमौ ।। एते न्ये ऽपि पीत पदार्था: परस्परमौचित्यादुपमानं क्रियन्ते[1]।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास ने पीले रंग का वर्णन इस प्रकार किया है—

हरिवाहन बिधि हरजटा, हरा, हरद, हरताल ।
चंपक, दीपक, बीररस, सुरगुरु मधु, चुरपाल ।।

सुरगिरि, भू, गौरोचना, गंधक, गोधनमूत ।
चक्रवाक, मनशिल, सदा द्वापर, बानरपूत ।।

कमलकोश, केशव बसन, केशर, कनक, त्रभाग ।
सारोमुख, चपला, दिवस, पीतर, पीत, पराग[2]।।

'काव्यकल्पलतावृत्ति' में काले रंग की वस्तुओं का वर्णन निम्नवत् है—

कृष्णानि केशव: सीरिवीरचन्द्राङ्कराक्षस: । विन्ध्याञ्जनाद्रि—सुव्रतनेमिनाथौ जिनेश्वरौ ।। धूमकेतुमहापद्मानन्तनागौयमासुरी । सर्प राक्षसशन्यश्च शिवकण्ठघनाशनि: । कलि: कलि हरिद्वैपायनरामधनञ्जया: । शूद्राणां वर्णौ धर्म: पितरश्च तमोगुणा: ।। काली देवी द्रुपदजा राजपट्टो विदूरजम् । विषाम्बरकुहूखड्गागुरु पाप तमोनिशा: ।। धूमकज्जलकस्तूरी—पङ्कं । बहुलदुर्दिने मषीमदसुराधाद्रियमुना साञ्जनाश्रव: ।। मुद्गमाषतिला मुस्तामरिचे वनशाखिनौ । गवलं तालतापिच्छकुलेन्दीवरवल्लय: ।। नीली जम्बूफलगुञ्जा मुखाङ्गारौ खलाजिने । मारिदुर्वचनालीकखला: कृत्या कुकीर्तय: । मारणध्यानदुर्ध्यानकृष्णलेश्या विषद्व्यथा कूर्मौ वराहवृद्वाङ्ग महिषा: पिकषट्पदौ ।। गोलाङ्गूलमुखं हस्ती कण्ठश्चटककेकिनो: । काक:

1- काव्यकल्पलतावृत्ति : चतुर्थ प्रतान, पृ० - १५४ - १५५

2- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : पूर्वा प्रभाव, पृ० - ३८, छं०सं० १६ - १८

पिपीलिका दुर्गापत्तिकण्ठकण्ठिका: ।। मकर: कृष्णाधारस्तु भिल्ला छाया च गोमयम् । रामारोमावली नेत्रपक्ष्मप्ररोममूर्धजा: । रसाषदतद्भ्रमरी कटाक्षादिकर्णीनिका: । एते ऽन्ये ऽपि कृष्णपदार्था: परस्परमौचित्यादुपमानं क्रियन्ते[1] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास ने काले रंग की वस्तुओं का वर्णन इस प्रकार किया है—

विंध्य, वृक्ष, आकाश, असि, अर्जुन, अंजन, सांप ।
नीलकंठ को कंठ, शनि, व्यास, बिसाषी, पाप ।।

राकस, अगर, लंगूरमुख, राहु, छांह, मद, रोर ।
रामचंद्र, घन, द्रौपदी, सिंधु, असुर, तम, चोर ।।

जंबू, जुमना, तैल, तिल, लछमन सरसिज, चीर ।
भील, करी, बन, नरक, मसि, मृगमद, कज्जलनीर ।।

मधुप, निशा, सिंगाररस, काली, कृत्या, कोल ।
अपयश, रीछ, कलंक, कलि, लोचन तारे लोल ।।

मारग अगिनि, किसान, नर, लोम, छोम, दुख, मोह ।
बिरह, यशोदा, गोपिका, कोकिल, महिषी लोह ।।

कांच, कीच, कच, काम, मल, केकी, काक, कुरूप ।
कलह, कुहू, छल आदि दै कारे कृष्ण सरूप[2] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' में अरुण वर्णन इस प्रकार मिलता है—

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : चतुर्थ प्रतान, पृ०- १५१- १५२

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : पूर्वा प्रभाव, पृ०- ३६- ४०, छ०सं० २०- २५

पद्मप्रभां वास्तुपूज्यौ जिनेन्द्रौ नभमानुमान ।। चेता त्रेता हरि: चात्रवर्णधर्मपितृव्रजा: । सन्ध्योल्काचन्द्योविद्युताम्रे विद्रुमकुंकुमे ।। पद्मरागसुरारक्तचन्दनालक्तकद्रवा: युगन्ताधर जिह्वामृग्याघसिन्दूरधातव: ।। हिङ्गुलं मधु रत्नानि स्फुलिङ्गा हस्ति बिन्दव: नखेन्द्रगोपखद्योता: कुक्कुटसाशिखा तथा ।। चकोरसारस पारावत कोकिलदृष्टय: । कियाशो हंस चञ्चवङ्घ्री शुकमर्कटयोर्मुखम् ।। कुसुम्भ किंशुकाशोक जपाबन्धूक पाटला: । पल्लवा दाडिमी पुष्पं बिम्बीकिम्पाकयो: फले ।। गुञ्जा कोक नदं रौद्र रसौ रागघटेष्टिका: । ताम्बूलरागौ मञ्जिष्ठा बज्रघ तनसदाति ।। तेजोलेश्या: पद्मलेश्या: क्रोध: कुद्धपुर्मद: । बश्याकर्षणयोर्ध्यानं सपाकफल मण्डली ।। एवं ऽन्ये ऽपि रक्त पदार्था: परस्परमौचित्यादुपमानं क्रियन्ते[1]।

अपने अरुण वर्णन में आचार्य केशवदास ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' का लगभग अनुवाद सा कर दिया है—

इन्द्रगोप, खद्योत, कुज, केसरि, कुसुम बिशिषि ।
मदिरा, गजमुख, बाल रबि, तांबो, तपाक लेखि ।।

रसना, अधर, दृगंत, फल, कुक्कुलशिखा समान ।
माणिक, सारससीस, शुक, बानर बदन प्रमान ।।

कोकिल, चाष, चकोर, पिक, पारावत नख नैन ।
कुंकुम चरण कलहंस के, पकी कुंदुरु ऐन ।।

जपा कुसुम, दाडिम कुसुम, किंशुक, कंज, अशोक ।
पावक, पल्लव, बीटिका, रंग रुचिर सब लोक ।।

रातो चंदन, रौद्ररस, क्षत्रिय धर्म, मंजीठ ।
अरुण महावर रुधिर, नख, गेरू, संध्या, ईठ[2] ।।

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : चतुर्थ प्रतान, पृ०- १५३- १५४
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : पांचवां प्रभाव, पृ०- ४१- ४२, छं०सं० २८- ३२

धूसर रंग की वस्तुओं का वर्णन `काव्यकल्पलतावृत्ति` में निम्न ढंग से मिलता है—

धूसरा रेणुमण्डूक करभा गृहगोधिका। गर्दभो मूषको दुर्गा काक कण्ठ कपोतका:।। पुलको ऽहि शिखिपिच्छा इयोमाग: करुणो रस:। कपोललेश्यीर्णनामश्कुना: कबरी तथा[1]।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास का धूम्र वर्णन इस प्रकार है—

कालकंठ, खर, मूषिका, गृहगोधा, भनि भूरि।
करभ, कपोतनि आदि दै धूम, धूमरी, धूरि[2]।।

इन पांच रंगों के अतिरिक्त आचार्य केशव ने नील रंग की वस्तुओं तथा मिश्रित वर्णन भी किया है जो कि `काव्यकल्पलतावृत्ति` में नहीं मिलता है। छठें प्रभाव में आचार्य केशवदास ने वर्ण्यालंकार का वर्णन किया है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण वर्णन, आवर्त वर्णन, कुटिल वर्णन, त्रिकोण वर्णन, सुवृत्त वर्णन, तीक्ष्ण वर्णन, गुरु वर्णन, कोमल वर्णन, कठोर वर्णन, निश्चल वर्णन, चंचल वर्णन, सुखद वर्णन, दुखद वर्णन, मन्दगति वर्णन, शीतल वर्णन, तप्त वर्णन, सुरूप वर्णन, क्रूरस्वर वर्णन, सुस्वर वर्णन, मधुरस्वर वर्णन, अबल वर्णन, बलिष्ठ वर्णन, सत्यझूठ वर्णन, मंडल वर्णन, अगति तथा सदागति वर्णन, दानी आदि का वर्णन किया है। इसमें से सम्पूर्ण, आवर्त, त्रिकोण तथा तीक्ष्ण वर्णन काव्यकल्पलतावृत्ति के आधार पर किए गये हैं। शेष वर्णन आचार्य केशवदास के अपने हैं।

`काव्यकल्पलतावृत्ति` में सम्पूर्ण वर्णन निम्न प्रकार से मिलता है—

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : चतुर्थ प्रतान, पृ०- १५५

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ५वां प्रभाव, पृ० - ४२, छ०सं० ३४

सम्पूर्णानिभूषाणि मुखपद्मेन्दुदर्पणाः ।
कपोलकुण्डले ताल सूर्य भाजनगाल्विका:[1] ।।

इसकी प्रथम पंक्ति का अनुवाद करते हुए आचार्य केशव ने सम्पूर्ण वर्णन निम्नवत् किया है—

इतने संपूरण कहत, बरने केशवदास ।
अंबुज, आनन, आरसी, संसत प्रेम प्रकास[2] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' में आवर्त वर्णन इस प्रकार है—

द्वीप: शराव: कंसालकरिश्रवणकर्णिका: ।
कुलालरथ कृष्णानां चक्राणि शाणयन्त्रकम्[3] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशवदास ने निम्न प्रकार से आवर्त वर्णन किया है—

ये आवर्त बखानिये, केशवदास सुजान ।
चकरी, चक्र, अलात अरु आतपत्र, खरसान[4] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के अनुसार त्रिकोण वर्णन—

त्रिकोणान्यथ दम्भोलि शूलेशानदृशौ हलम् ।
सन्ध्यश्च राजद्वारं थ श्रृङ्गाटी कामाद्गीवन्हिमण्डले ।।
करपत्रनिरङ्गाद्रितलत्रोणिस्थपाणय: चतुरश्रङ्ग—
गोचतुररोहिणीशकटानि च[5] ।।

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : चतुर्थ प्रतान, पृ०- १५७

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : छठां प्रभाव, पृ०- ४५, छं०सं० ४

३- काव्यकल्पलतावृत्ति : चतुर्थ प्रतान, पृ०- १६२

४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : छठां प्रभाव, पृ०- ४६, छं०सं० ६

५- काव्यकल्पलतावृत्ति : चतुर्थ प्रतान, पृ०- १६१

इसका आधार ग्रहण कर आचार्य केशवदास ने त्रिकोण का निम्नवत् वर्णन किया है—

शकट, सिंघारो, बज्र, हल, करके नैन निहारि ।
केशवदास त्रिकोण महि, पावककुंड बिचारि[1] ।।

`काव्यकल्पलतावृत्ति` के अनुसार तीक्ष्ण वर्णन—

ववत्राण्यलक भाल भ्रू नखाङ्कुशाङ्कुशाटिका:
कटाक्षेन्द्रधनुर्विधुदर्धचन्द्र हलाङ्कुशा: ।। कुचि चमित्राङ्गुलीतल्पदात्र—
कन्दुकदण्डका:[2]।।

आचार्य केशवदास ने इसके आधार पर तीक्ष्ण और गुरु का एक साथ वर्णन किया है—

नख, कटाक्ष, शर, दुर्वचन, शैलादिक खर जान ।
कुच, नितंब, गुण, लाज, मति, रति, अति गुरु मान[3]।।

`कविप्रिया` के सातवें प्रभाव में आचार्य केशवदास ने प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में किन-किन वस्तुओं का वर्णन करना चाहिए इसका विवेचन किया है। आठवें प्रभाव में राजा तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले मंत्री इत्यादि के गुणों, लक्षणों आदि का वर्णन किया है। `कविप्रिया` का सातवां और आठवां प्रभाव `काव्यकल्पलतावृत्ति` के प्रथम प्रतान के आधार पर लिखा गया है—

`काव्यकल्पलतावृत्ति` के अनुसार—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : छठां प्रभाव, पृ०- ४८, छ०सं० ११
२- काव्यकल्पलतावृत्ति : चतुर्थ प्रतान, पृ०- १६२
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : छठां प्रभाव, पृ०- ५६, छ०सं० १५

राजा ऽमात्यपुरोहितौ नृपवधू राजाङ्गज: सैन्यपी
देशग्रामपुरीसरोऽब्धिसरिदुधानान्यरण्याश्रमा: ।
मन्त्री दूतरणप्रयाण मृगयाश्वैमर्त्विनेन्दूदया वीवाहो
विरह: स्वयंवरसुरापुष्पाम्बुखेला रतम्[1] ।।

इसका आचार्य केशवदास ने निम्न पंक्तियों में अनुवाद किया है—

देश, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता ताल ।
रबि, शशि, सागर, भूमि के, भूषण ऋतु, सब काल[2] ।।
राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित, दलपति, दूत ।
मंत्री, मंत्र, प्रयान, हय, गय, संग्राम अभूत ।।
आखेटक, जलकेलि पुनि, बिरह, स्वयम्बर जानि ।
भूषित सुरतादिकनि करि, राज्यश्री हि बखानि[3] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के अनुसार देश वर्णन—

देशे बहुखनिद्रव्यपण्यधान्यकरोद्भवा । दुर्ग ग्राम जनाधिक्य नदी मातृकतादय:[4] ।।

इसके आधार पर आचार्य केशव का देश वर्णन इस प्रकार है—

रतनखानि, पशु, पंछि, बसु, बसन, सुगन्ध सवेष ।
नदी, नगर, गढ़, बरनिये भाषा, भूषण देश[5] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के अनुसार नगर वर्णन—

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २७
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ६८। छं०सं० १
३- वही, ७वां प्रभाव, पृ०- ८४, छं०सं० १,२
४- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ० २८
५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७०, छं०सं० २

पुरेऽट्टपरिखावप्रप्रतोलीतोरणालया: । प्रासादा-
ध्वप्रयारामवापी वेश्यसतीत्वरी[1]।।

इसका छायानुवाद आचार्य केशव ने निम्न पंक्तियों में किया है—

खाई, कोट, अटा, ध्वजा, बापी, कूप, तड़ाग ।
बारनारि, असती, सती, बरनहु नगर सभाग[2] ।।

`काव्यकल्पलतावृत्ति` के अनुसार वन वर्णन—

अरण्ये हि वराहेभयूथसिंहाक्यो द्रुम: । काकोलूक-
कपोताद्यामिल्लपल्लदवाद्रय:[3]।

आचार्य केशवदास का वन वर्णन `काव्यकल्पलतावृत्ति` के वन वर्णन से नहीं मिलता है—

सुरभी, इभ, बन जीव बहु, भूत प्रेत, भय भीर ।
भिल्ल भवन, बल्ली, बिटप, दव बरनहु मतिधीर[4]।।

`काव्यकल्पलतावृत्ति` के अनुसार उद्यान वर्णन—

उद्याने सरणि: सर्वफलपुष्पलताद्रुमा: ।
पिकालिकेकिहंसाद्या: क्रीडावाप्यध्वगस्थिति:[5]।।

इसका भावानुवाद आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द में किया है—

ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल कलरव, मोर ।
बरनि बाग अनुराग स्यों, भंवर भंवत चहुं ओर[6] ।।

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७०, छ०सं० ४
३- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७१, छ०सं० ६
५- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८
६- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ०- ७२, छ०सं० ८

'काव्यकल्पलतावृत्ति' के अनुसार गिरि वर्णन—

शैले मेघौषधीधातुवंशकिंनरनिर्झराः। शृंगपाद—
गुहारत्नवनजीवनध्युपत्यकाः[1]॥

आचार्य केशवदास ने उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर निम्न छन्द लिखा है—

तुंग शृंग, दीरघ दरी, सिद्ध सुन्दरी धातु।
सुर नर युत गिरि वर्णिये, औषध, निर्झर पातु[2]॥

'काव्यकल्पलतावृत्ति' के अनुसार आश्रम वर्णन—

आश्रमेऽतिथिपूजैणा विश्वासो शिशान्तता।
यज्ञधूमोमुनिसुता द्रुकौ वल्कलद्रुमाः[3] ॥

उपर्युक्त पंक्तियों का आधार ग्रहण कर आचार्य केशव ने आश्रम का वर्णन निम्नवत् किया है—

होम धूम युत बरनिये, ब्रह्मघोष मुनिबास।
सिंहादिक मृग मोर अहि, इम, शुभ, बैर बिनास[4]॥

'काव्यकल्पलतावृत्ति' के अनुसार सरिता वर्णन—

सरित्यम्बुधियायित्वं वीच्यो जलजादरः।
पद्मानि षट्पदा हंस चक्राद्याः कूलशाखिनः[5]॥

आचार्य केशव का सरिता वर्णन काव्यकल्पलतावृत्ति से कुछ भिन्न है। केशव ने

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८
२- प्रियाप्रकाश (कबिप्रिया) : सातवाँ प्रभाव, पृ०- ७३, छं०सं० १०
३- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८
४- प्रियाप्रकाश (कबिप्रिया) : सातवाँ प्रभाव, पृ०- ७४, छं०सं० १२
५- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८

सरिता में जलज, जलचर आदि के अतिरिक्त उसके तट पर यज्ञकुण्ड मुनिवास के साथ- साथ उसमें स्नान, दान तथा उसकी पावनता आदि का भी वर्णन किया है जो ` काव्यकल्पलतावृत्ति ` में नहीं मिलता ।

जलचर, हय गय जलज तट, यज्ञकुंड मुनिवास ।
स्नान दान पावन नदी, बरनिय केशवदास[1] ।।

` काव्यकल्पलतावृत्ति ` में सरोवर वर्णन निम्न प्रकार से मिलता है—

सरस्यम्भोलध्यम्भोगजाद्यम्बुजषट्पदा: ।
हंसचक्रादयस्तीरोद्यानस्त्रीपान्थ केलय:[2] ।।

उपर्युक्त पंक्तियों से प्रभाव ग्रहण कर आचार्य केशव ने ताल का वर्णन निम्नवत् किया है ।

ललित लहर, बग, पुष्प, पशु, सुरभि समीर तमाल ।
करम केलि पंथी प्रगट, जलचर बरनहु ताल[3] ।।

` कविप्रिया ` के आठवें प्रभाव में राजा तथा उससे सम्बन्धित व्यक्तियों के गुणों का वर्णन किया गया है । यह वर्णन भी काव्यकल्पलतावृत्ति के अनुसार ही है । काव्यकल्पलतावृत्ति में राजा को निम्नलिखित गुणों से युक्त होना स्वीकार किया गया है—

नृप विद्या नय: शक्तिर्बलं तस्करताभय: ।
प्रजाशास्ति: प्रजारागो धर्म कामार्थ तुल्यता ।।
प्रयाणरणखड्गादि शास्त्राण्यरिपराजय: ।

---

१ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ० - ७४, छं०सं० १४

२ - काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८

३ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ० - ७५, छं०सं० १६

अग्निनाशोऽग्निशैलादिवासोऽरिपुरशून्यता ।।
मह: श्रीदानकीर्त्याषा गुणौघा इत्यवर्णनम्[1]।

राजा के इन्हीं गुणों का उल्लेख आचार्य केशव ने भी किया है—

प्रजा प्रतिज्ञा, पुन्यपन, परम प्रताप, प्रसिद्धि ।
शासन, नाशन शत्रु के, बल बिबेक की वृद्धि ।।

दंड, अनुग्रह, धीरता, सत्य, शूरता, दान ।
कोष, देशयुत बर्णियै, उद्यम, क्षमा निधान[2]।।

'काव्यकल्पलतावृत्ति' में राजपत्नी के निम्न गुणों का उल्लेख मिलता है—

देव्यां विज्ञान चातुर्यं त्रपाशीलव्रतादय: ।
रूपलावण्यसौभाग्यप्रेमशृङ्गारमन्मथा[3] ।।

आचार्य केशव ने भी राजपत्नी के इन्हीं गुणों का उल्लेख किया है—

सुन्दरि, सुखद, पतिव्रता, शुचि रुचि, शील समान ।
यहि विधि रानी बरनिये सलज सुबुद्धि निधान[4] ।।

'काव्यकल्पलतावृत्ति' में राजकुमार का वर्णन निम्नवत मिलता है—

कुमारे शस्त्र शास्त्र श्री कला बल गुणोच्छ्रया: ।
वाह्याली खुरली राजभक्ति: सुभगतादय:[5] ।।

आचार्य केशवदास का राजकुमार बर्णन काव्यकल्पलतावृत्ति के आधार पर ही हुआ है—

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २७
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) प्वां प्रभाव, पृ०- ८५, छ०सं० ३-४
३- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २७- २८
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : प्वां प्रभाव, पृ०- ८६, छ०सं० ६
५- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८

विद्या विविध बिनोद युत, शील सहित आचार ।

सुन्दर, शूर, उदार, बिभु, बिरनिय, राजकुमार[1] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के अनुसार पुरोहित वर्णन—

पुरोहिते स्मृतिविदा निमित्तापत्प्रतिक्रिया ।

दण्डनीतिज्ञता शुद्धधर्मशीलकुलक्रमा:[2] ।।

आचार्य केशवदास ने ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' का पूरा- पूरा अनुवाद तो नहीं किया है परन्तु तात्पर्य दोनों का एक ही है—

प्रोहित नृपहित, बेद बित सत्यशील, शुचि अंग ।

उपकारी, ब्रह्मण्य, रिजु, जीत्यो जगत अनंग[3] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' में सेनापति का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

सेनापतौ महोत्साह: स्वामिभक्ति: सुधीरमी ।

अभ्यासी वाहने शास्त्रे शस्त्रे च विजयी रणे[4] ।।

आचार्य केशवदास ने दलपति बर्णन में ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' से सहायता तो ली है परन्तु उन्होंने दलपति के कुछ अन्य गुणों (अनालसी, जनप्रिय, जसी आदि) का भी उल्लेख किया है—

स्वामिभक्त, श्रमजित, सुधी सेनापति सु अभीत ।

अनालसी, जनप्रिय, जसी, सुख संग्राम अजीत[5] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कबिप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ०- ८७, छ०सं० ६

२- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८

३- प्रियाप्रकाश (कबिप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ०- ८७, छ०सं० ११

४- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८

५- प्रियाप्रकाश (कबिप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ०- ८८, छ०सं० १३

काव्यकल्पलतावृत्ति के अनुसार दूत वर्णन—

दूते स्वस्वामि तेज: श्री विक्रमोन्नत्यकृद्वच: ।
शत्रु क्षोभकारी चेष्टा धाष्ट्यं दाक्ष्यमभीरुता[1] ।।

इसका अनुवाद आचार्य केशव ने इस प्रकार किया है—

तेज बढ़ै निज राज को अरि उर उपजै छोभ ।
इंगित जानै, समय गुण बरनहु दूत अछोभ[2] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के अनुसार मंत्री वर्णन—

मंत्री भक्तो महोत्साह: कृतज्ञो धार्मिक: शुचि: ।
अकर्कश: कुलीनश्च स्मृतिज्ञ: सत्यभाषक: ।।
विनीत: स्थूललक्ष्यश्चाव्यसनी वृद्धसेवक: ।
अक्षुद्र: सत्व सम्पन्न: प्राज्ञ: शूरोऽचिरक्रिय:[3] ।।

उपर्युक्त पंक्तियों का अनुवाद आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द में किया है—

राजनीति रत, राजरत, शुचि, सर्वज्ञ, कुलीन ।
क्षमी, शूर, यश, शील युत मंत्री मंत्र प्रवीन[4] ।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' में मंत्र तथा मंत्री मति का वर्णन निम्नवत् मिलता है—

मन्त्रे पञ्चाङ्गता शक्ति: षाड्गुण्योपायसिद्धय: ।
उदयास्तमनीयाश्च स्थैर्यान्नित्यादिसूक्तय:[5] ।।

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : नवाँ प्रभाव, पृ० - ८६, छ०सं० १५

३ - काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ० - २७

४ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : नवाँ प्रभाव, पृ०- ८६, छ०सं० १७

५ - काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८

उपर्युक्त पंक्तियों का अनुवाद आचार्य केशवदास ने निम्न छन्द में किया है—

पंचअंग गुण संग षट, विधायुत दशचारि।
आगम संगम निगम मति, ऐसे मंत्र बिचारि[1]।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' में प्रयाण वर्णन निम्नवत है—

प्रयाणे भेरिनिस्वानभूकम्पबलधूलय:।
करभो ष्ट्रध्वजच्छत्र वणिकशकटबेसरा:[2]।।

इसका अनुवाद आचार्य केशव ने निम्नवत किया है—

चंवर, पताका, छत्र छबि, दुंदुभि धुनि, बहुयान।
जल थल मय भूकंप रज, रंजित बरणि प्यान[3]।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के अनुसार अश्व वर्णन—

अश्वे खरखुरोत्खातरज: सल्लक्षणास्थिति:।
गति वेगवती बक्रमास्यं धारा प्रपञ्चनम्[4]।।

आचार्य केशवदास ने अपने ' हय ' वर्णन में ' काव्यकल्पलतावृत्ति ' का आधार तो ग्रहण किया है परन्तु पूरा- पूरा अनुवाद नहीं किया है—

तरल, तताई, तेजगति, मुख सुख, लघु दिन देखि।
देश, सुबेश, सुलक्षणौ, बरनहु बाजि बिशेखि[5]।।

' काव्यकल्पलतावृत्ति ' के अनुसार गज बर्णन—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ष्वां प्रभाव, पृ०- ६०, छं०सं० २०
२- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८, २६
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ष्वां प्रभाव, पृ०- ६१, छं०सं० २२
४- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २६
५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ष्वां प्रभाव, पृ०- ६२, छं०सं० २४

गजे सहृदयोधित्वमुच्चत्वङ्कर्णचापलम् ।
अरिव्यूह विभेदित्वकुम्भमुक्ता मदालिन:[1] ।।

उपर्युक्त पंक्तियों का आधार ग्रहण कर आचार्य केशव ने गज वर्णन इस प्रकार किया है—

मत्त, महाउत हाथ में, मंद चलनि, चलकर्ण ।
मुक्तामय, इभ कुंभ शुभ, सुन्दर, शूर, सुवर्ण[2] ।।

`काव्यकल्पलतावृत्ति` के अनुसार संग्राम वर्णन—

युद्धे तु वर्मबलवीररजांसि तुर्य विश्वासनादशर-
मण्डपरक्तनद: । छिन्नातपत्ररथचामरकेतुकुम्भी
मुक्तासुरी व्रतभटामर पुष्पवर्षा:[3] ।।

आचार्य केशवदास ने अपने संग्राम वर्णन में `काव्यकल्पलतावृत्ति` का आधार तो ग्रहण किया है परन्तु अनुवाद नहीं किया है। आचार्य केशव ने योगिनी और साक्षात् रुद्र को युद्धभूमि में उतारने का वर्णन किया है जो युद्ध की भयानकता को बढ़ा देता है। `काव्यकल्पलतावृत्ति` में ऐसा वर्णन नहीं है—

सेना, स्वन, सन्नाह, रज साहस, शस्त्र- प्रहार ।
अंग भङ्ग, संघट्ट भट, अंध कबन्ध अपार ।।

केशव बरणहु युद्ध महं, जोगिन गण युत रुद्र ।
भूमि भयानक रुधिरमय, सरवर, सरित, समुद्र[4] ।।

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २६

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ० - ६३, छंसं० २७

३ - काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २८

४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ७वां प्रभाव, पृ० - ६४, छ०सं० २९- ३०

'काव्यकल्पलतावृत्ति' के अनुसार आखेट वर्णन—

मृगयायां श्वसंचारो वागुरा नोल्वेषणता ।
मटढक्का मृगत्रास: सिंहयुद्ध: त्वरागति: [1] ।।

आचार्य केशवदास ने अपने आखेट वर्णन में कुछ तो 'काव्यकल्पलतावृत्ति' का अनुवाद किया है और कुछ वर्णन उनके अपने हैं—

जुरी, बहरी, बाज बहु, चीते, स्वान, सचान ।
सहर बहेलिया, भिल्लयुत, नील निचोल बिधान ।।

बानर, बाघ, बराह, मृग, मीनादिक बन जंत ।
बध, बन्धन, बेधन बरणि मृगया खेल अनंत [2] ।।

'काव्यकल्पलतावृत्ति' के अनुसार जलकेलि वर्णन—

जलकेली सर: दोमश्चक्रहंसापसर्पणम् ।
पद्मग्लानिपयोबिन्दुदृगरागा भूषण्च्युति: [3] ।।

'काव्यकल्पलतावृत्ति' के जलकेलि वर्णन से मिलता हुआ वर्णन आचार्य केशव ने भी किया है—

सर, सरोज, शुभ, शोभ मनि, हिय सों प्रिय हिय केलि ।
गहिबो गत भूषनन को, जलचर ज्यों जलकेलि [4] ।।

'काव्यकल्पलतावृत्ति' के अनुसार बिरह वर्णन—

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २६

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ग्वां प्रभाव, पृ०- ६४, क्र०सं० ३२- ३३

३- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २६

४- प्रियाप्रकाश (कबिप्रिया) : ग्वां प्रभाव, पृ०- ६६, क्र०सं० ३६

विरहे तापनिश्वासचिन्ता मौनकृशाङ्गता ।
अब्जशय्या निशादैर्घ्यं जागरः शिशिरोष्णता[१]।।

उपर्युक्त पंक्तियों का अनुवाद आचार्य केशव ने निम्न छन्द में किया है—

स्वास, निसा चिंता बढ़ै, रुदन परैखे बात ।
कारे, पीरे होत कृश, ताते, सीरे गात[२] ।।

परन्तु आचार्य केशव के विरह वर्णन की विशेष बात यह है कि—

दुखद होद हैं सुखद सब, केसव बिरह प्रसंग[३]।

कहकर विरह को बहुत संक्षिप्त में ही अच्छे ढंग से व्याख्यायित कर दिया है। चूंकि विरह चार प्रकार का होता है (मान, करुणा, प्रवास और पूर्वानुराग) अतः आचार्य ने विरह के चार अलग-अलग उदाहरण दिए हैं। जबकि `काव्यकल्पलतावृत्ति` में विरह का उदाहरण नहीं दिया गया है।

`काव्यकल्पलतावृत्ति` के अनुसार स्वयंवर वर्णन—

स्वयंवरे शचीरक्षा मञ्चमण्डपसज्जता ।
राजपुत्री नृपाकारान्वयचेष्टा प्रकाशनम्[४]।।

इसका अनुवाद आचार्य केशवदास ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—

शची स्वयम्बर रक्षिणी, मंडल मंच बनाय ।
रूप पराक्रम, वंश, गुण बरणिय राजा राय[५]।।

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २६

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ०- ६६, छं०सं० ३८

३- वही, पृ०- ३६

४- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २६

५- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ०- १००, छं०सं० ४५

स्वयंवर वर्णन का जो उदाहरण आचार्य केशव ने दिया है वह केशव का अपना है।

` काव्यकल्पलतावृत्ति ` के अनुसार सुरति वर्णन—

सुरते सात्त्विका भावा: सीत्कार: कुड्मलादिता ।
काञ्चीकङ्कणमञ्जीररवो ऽधरनखक्षते[1] ।।

इसका अनुवाद आचार्य केशव ने निम्न छन्द में किया है—

सुरति सात्त्विकी भाव भनि, भनित रुनित मंजीर ।
हाव, भाव, बहि अंत रति, अलज सलज्ज शरीर[2] ।।

आचार्य केशवदास ने ` कविप्रिया ` के पांचवें, छठे, सातवें और आठवें प्रभाव में जिन बातों का वर्णन किया है उनके लक्षण और उदाहरण दोनों दिए हैं। जबकि ` काव्यकल्पलतावृत्ति ` अथवा अलंकारशेखर में लक्षण तो बताए गये हैं परन्तु उनके उदाहरण नहीं दिए गये हैं। अत: उदाहरणों में आचार्य केशव की मौलिकता देखी जा सकती है।

(घ) कुवलयानन्द का प्रभाव :

` कविप्रिया ` के नौवें प्रभाव से लेकर पन्द्रहवें प्रभाव तक काव्य के वास्तविक अलंकारों का वर्णन है, जिनका नाम आचार्य केशवदास ने ` विशेषालंकार ` रखा है। आचार्य केशव ने कुल मिलाकर सैंतीस अलंकार माने हैं। इनमें से कुछ अलंकारों की परिभाषाएं तो ` कुवलयानन्द ` से मिलती हैं लेकिन उनके उदाहरण ` कुवलयानन्द ` से नहीं मिलते।

१- काव्यकल्पलतावृत्ति : प्रथम प्रतान, पृ०- २९- ३०

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ८वां प्रभाव, पृ०- १०१, छ०सं० ४७

' कुवलयानन्द ' में ' स्वभावोक्ति ' अलंकार की परिभाषा निम्नवत मिलती है—

स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनम् ।
कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षैः स्तब्धकर्णैरुदीक्ष्यते[1] ।।

किसी पदार्थ की जाति, गुण, क्रिया के अनुसार उसके स्वभाव का वर्णन करने पर स्वभावोक्ति अलंकार होता है। जैसे चंचल आंखों वाले स्तब्धकर्ण हिरन देख रहे हैं। (यहां हिरणों के स्वभाव का वर्णन होने से ' स्वभावोक्ति ' अलंकार है। आचार्य केशव द्वारा दी गई ' स्वभावोक्ति ' की परिभाषा कुवलयानन्द से मिलती है।

जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज ।
तासों जानि स्वभाव सब कहि बरणत कबिराज[2] ।।

' कुवलयानन्द ' के अनुसार विभावना अलंकार—

विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत् ।
अप्यलाक्षारसासिक्तं रक्तं तच्चरणद्वयम्[3] ।।

जहां प्रसिद्ध कारण के बिना भी कार्योत्पत्ति का वर्णन किया जाय, वहां विभावना अलंकार होता है। जैसे, उस सुन्दरी के चरण लाक्षारस के बिना भी लाल हैं।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई विभावना की परिभाषा ' अप्पय दीक्षित ' की परिभाषा से मिलती है परन्तु ' अप्पय दीक्षित '

१- कुवलयानन्द : पृ० - २६०, श्लोक १६०

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ० - १०३, छं०सं० ८

३- कुवलयानन्द : पृ० - १४२, श्लोक ७७

ने विभावना के छ: प्रकार माने हैं परन्तु आचार्य केशव ने केवल दो प्रकार की ही ` विभावना ` का उल्लेख किया है। आचार्य केशव द्वारा दी गई विभावना की परिभाषा इस प्रकार है—

कारज को बिनु कारणहि, उदौ होत जेहि ठौर।
तासौं कहत विभावना, केशव कवि शिरमौर[1] ।।

` कुवलयानन्द ` में विभावना का जो चौथा प्रकार माना गया है वह आचार्य केशव के दूसरे प्रकार से मिलता है—

अकारणात् कार्य जन्म चतुर्थी स्याद्विभावना।
शङ्खाद्वीणानिनादोऽयमुदेति महदद्भुतम्[2] ।।

जहां प्रसिद्ध कारण से भिन्न वस्तु (अकारण) से भी कार्य की उत्पत्ति हो, वहां चौथी विभावना होती है। जैसे—बड़े आश्चर्य की बात है कि शंख से वीणा की झंकार उत्पन्न हो रही है।

आचार्य केशवदास ने विभावना का जो दूसरा प्रकार माना है उसकी परिभाषा भी कुछ इसी प्रकार है—

कारण कौनहु आनते, कारज होय जु सिद्ध।
जानौ अन्य विभावना, कारण छांड़ि प्रसिद्ध[3] ।।

` अप्पय दीक्षित ` ने जहां हेतुमान् (कार्य) के साथ (कारण) का वर्णन किया जाय, वहां हेतु नामक अलंकार माना है—

हेतोर्हेतुमता सार्धं वर्णनं हेतुरुच्यते।
असावुदेति शीतांशुर्मानच्छेदाय सुभ्रुवाम्[4] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०- १०४, छ०सं० ११
२- कुवलयानन्द : पृ०- १४५, श्लोक ८०
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०- १०५, छ०सं० १३
४- कुवलयानन्द : पृ०- २६६, श्लोक १६७

आचार्य केशव ने हेतु अलंकार की कोई परिभाषा नहीं दी है। सीधे उसके दो प्रकारों का वर्णन किया है—

हेतु होत है भांति द्वै, बरनत सब कबिराय।
केशवदास प्रकास करि, बरनि सभाव अभाव[1]।।

'कुवलयानन्द' के अनुसार 'विरोधाभास' की परिभाषा इस प्रकार है—

आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते।
विनापि तन्वि ! हारेण वक्षोणौ तव हारिणौ[2]।।

जहां दो उक्तियों में आपाततः विरोध दृष्टिगोचर हो (किन्तु किसी प्रकार उसका परिहार हो सके), वहां विरोधाभास अलंकार होता है। जैसे— (कोई नायक नायिका से कह रहा है) हे सुन्दरि, तेरे स्तन हार के बिना भी हार वाले (विरोधपरिहार, सुन्दर) हैं। आचार्य केशव द्वारा दी गई विरोधाभास की परिभाषा 'अप्पय दीक्षित' द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार ही है परन्तु उदाहरण दोनों के भिन्न- भिन्न हैं—

बरनत लगै बिरोध- सो, अर्थ सबै अविरोध।
प्रगट विरोधाभास यह, समझ सबै सुबोध[3]।।

'कुवलयानन्द' के अनुसार विशेषालंकार—

विशेषः ख्यातमाधारं विनाप्याधेय वर्णनम्।
गतेऽपि सूर्ये दीप स्थास्तमश्छिन्दन्ति तत्कराः[4]।।

साधारणतया हम देखते हैं कि कोई भी आधेय किसी आधार के बिना स्थित

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०- १०५, छ०सं० १५
२- कुवलयानन्द : पृ०- १४१, श्लोक ७६
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०- १०६, छ०सं० २२
४- कुवलयानन्द : पृ०- १६६, श्लोक ६६

नहीं रह पाता । कवि कभी-कभी अपनी प्रतिभा से आधार के बिना भी आधेय का वर्णन कर देता है ।

जहां किसी प्रसिद्ध आधार के बिना ही आधेय का वर्णन किया जाय, वहां विशेष अलंकार होता है । जैसे, सूर्य के चले जाने पर (अस्त हो जाने पर) भी उसकी किरणें दीपक में स्थित रहकर अन्धकार का नाश करती हैं ।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गयी विशेषालंकार की परिभाषा अप्पय दीक्षित की परिभाषा से मिलती है । परन्तु उदाहरण नहीं मिलता ।

साधक कारण बिकल जहं होय साध्य की सिद्धि ।
केशवदास बखानिये, सो विशेष परसिद्धि[1] ।।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गयी उत्प्रेक्षालंकार की परिभाषा अप्पय दीक्षित की परिभाषा से नहीं मिलती । साथ ही अप्पय दीक्षित ने उत्प्रेक्षा के कई भेद किए हैं जबकि केशव ने उत्प्रेक्षा के भेदों का उल्लेख नहीं किया है ।

' कुवलयानन्द ' के अनुसार ' आक्षेपालंकार '—

आक्षेपः स्वयमुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात् ।
चन्द्र । संदर्शयात्मानमथवास्ति प्रियामुखम्[2] ।।

जहां स्वयं कही हुई बात का किसी विशेष कारण को सोचकर प्रतिषेध किया जाय, उसे आक्षेपालंकार कहते हैं । जैसे—हे चन्द्र, अपना मुख दिखाओ, अथवा (रहने भी दो) प्रेयसी का मुख है ही ।

इसी प्रकार की आक्षेपालंकार की परिभाषा आचार्य केशवदास ने भी दी है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०- ११०, छं०सं० २४

२- कुवलयानन्द : पृ०- १३७, श्लोक ७२

कारज के आरंभ ही, जहं कीजत प्रतिषेध ।
आक्षेपक तासों कहत, बहु बिधि बरनि सुमेध[1]।।

अप्पय दीक्षित ने आक्षेप अलंकार के दो भेद माने हैं और इन दोनों के पुन: दो - दो भेद किए हैं। इस प्रकार अप्पय दीक्षित के अनुसार आक्षेप के कुल चार भेद हुए।

(१) उक्त विषय	वस्तु का निषेध
	वस्तु कथन का निषेध
(२) वक्ष्यमाण विषय	विशेष्यनिष्ठ रूप में वक्ष्यमाण विषय का निषेध
	अंशान्तर वक्ष्यमाण विषय का निषेध

आचार्य केशव द्वारा किया गया ` आक्षेपालंकार ` का भेद `अप्पय दीक्षित ` के इन भेदों से नहीं मिलता। आचार्य केशव ने ` आक्षेपालंकार ` के नौ भेद माने हैं।

` कुवलयानन्द ` के अनुसार—

आक्षेपोऽन्यो विधौ व्यक्ते निषेधे च तिरोहिते।
गच्छ गच्छसि चेत्कान्त ! तत्रैव स्याज्जनिर्मम[2] ।।

जहां बाह्य से विधि का प्रयोग किया हो तथा उसके द्वारा स्व अभीष्ट निषेध छिपाया गया हो, वहां तीसरे प्रकार का आक्षेप होता है।

इस तीसरे प्रकार का उदाहरण अप्पय दीक्षित ने इस प्रकार दिया है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव, पृ० - ११४, छं०सं० १

२- कुवलयानन्द : पृ० - १४०, श्लोक ७५

अत्रं गच्छेति विधि व्यंक्त: । मा गा इति निषेधस्तिरोहिता ।
कान्तोद्देश्यदेशे निज जन्म प्रार्थनयाऽऽत्ममरणसंसूचनेन गर्भीकृत[1] ।।

इस वाक्य में नायिका ने यह प्रार्थना की है कि उसका जन्म भी उसी देश में हो, जहां प्रिय जा रहा है। इस प्रार्थना के द्वारा नायिका ने अपने मरण की सूचना व्यंजित की है—कि 'तुम्हारे जाने के बाद मेरा मरण अवश्यम्भावी है, तथा इसके निषेध की व्यंजना होती है। 'अप्पय दीक्षित' द्वारा दिए गये इस तीसरे प्रकार के उदाहरण का भाव आचार्य केशव द्वारा दिए गये 'मरणाक्षेप' के उदाहरण के भाव से मिलता है। केशव का उदाहरण इस प्रकार है—

नीके के किवार देहौं द्वार द्वार दरबार,
केशोदास आस पास सूरज न आवैगो ।
छिन में छवाय लैहौं ऊपर अटानि आजु,
आंगन पटाय देहौं जैसे मोहिं भावैगो ।।
न्यारे न्यारे नारिदान मूंदिहौं झरोखे जाल,
जाइहै न पानी, पौन आवन न पावैगो ।
माधव तिहारे पीछे मोपहं मरण मूढ़,
आवन कहत सो घौं कौन पैंडे आवैगो[2] ।।

'कुवलयानन्द' के अनुसार श्लेष वर्णन—

नानार्थसंश्रय: श्लेषो वर्ण्यावर्ण्योभयाश्रित: ।[3]
सर्वदो माधव: पायात् स योऽगं गामदीधरत् ।।

१- कुवलयानन्द : पृ० १४१

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव, पृ०- ११८, छ०सं० १६

३- कुवलयानन्द : पृ०- ६७, श्लोक ६४

जहां वर्ण्य, अवर्ण्य या वर्ण्यावर्ण्य अनेक अर्थों से सम्बद्ध नानार्थक शब्दों का प्रयोग हो वहां श्लेष अलंकार होता है।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई श्लेष अलंकार की परिभाषा ` अप्पय दीक्षित ` की परिभाषा से मिलती है—

दोय तीनि अरु भांति बहु आनत जामें अर्थ।
श्लेष नाम तासों कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ[1]।।

आचार्य केशवदास द्वारा किया गया श्लेष का भेद ` कुवलयानन्द ` के अनुसार नहीं है।

` कुवलयानंद ` के अनुसार ` सूक्ष्मालंकार ` की परिभाषा इस प्रकार है—

सूक्ष्मं पराशयाभिज्ञे तरसाकूतचेष्टितम्।
मयि पश्यति सा केशैः सीमन्तमणिमावृणोत्[2]।।

जहां किसी अन्य व्यक्ति के आशय को जानने वाला उसके प्रति साभिप्राय चेष्टा करे, वहां सूक्ष्म अलंकार होता है।

यहां सीमान्तमणि को बालों से ढंक देना यह उस नायिका की साभिप्राय चेष्टा है, जो अपने उपपति को देखकर उसके संकेत काल विषयक प्रश्न का आशय समझ बैठी है। संकेत काल के प्रश्न का उत्तर देने के लिए वह अन्धकार के समान काले बालों से दीप्त सीमान्तमणि को ढंक देती है। भाव यह है कि ` सूर्य के अस्त होने पर संकेत काल है `।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ` सूक्ष्मालंकार ` की परिभाषा ` कुवलयानन्द ` की परिभाषा से मिलती है।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३५, छ०सं० २६

२- कुवलयानन्द : पृ०- २४८, श्लोक १५१

कौनहु भाव प्रभाव तें, जाने जिय की बात ।
इंगित तें, आकार तें, कहि सूक्ष्म अवदात[१] ।।

` कुवलयानन्द ` में ` सूक्ष्मालंकार ` का जो उदाहरण दिया गया है उसका भाव आचार्य केशवदास के उदाहरण के भाव से मिलता है ।

तिनको उलटो करि आनि दियो केहु नीरज नीर नयो भरिकै ।
कहु काहे ते नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करिकै[२] ।।

आचार्य केशवदास का ` लेशालंकार ` ` अप्पय दीक्षित ` के ` लेशालंकार ` से नहीं मिलता है । अप्पय दीक्षित लेशालंकार वहां मानते हैं जहां दोष तथा गुण को क्रमशः गुण तथा दोष के रूप में कल्पित किया जाता है; जबकि आचार्य केशव के अनुसार कोई घटना या कोई दशा चतुराई से किसी क्रिया द्वारा छिपा लिया जाय जिसे चतुर आदमी भी न समझ सके ।

अप्पय दीक्षित ने जहां दो समान वाक्यार्थों में ऐक्यारोप हो अर्थात् जहां उपमेय वाक्यार्थ पर उपमान वाक्यार्थ का अभेदारोप हो वहां `निदर्शना ` अलंकार होता है, जैसे दानी व्यक्ति में जो सौम्यता है ठीक वही पूर्ण चन्द्रमा में निष्कलङ्कता है । जबकि आचार्य केशवदास ने अच्छे भले काम से भली शिक्षा और बुरे काम से बुरी शिक्षा प्रगट की जाय, उसे निदर्शनालंकार माना है ।

` कुवलयानन्द ` के अनुसार ` अर्थान्तरन्यास ` का वर्णन निम्नवत् है—

उक्तिरर्थान्तरन्यासः स्यात् सामान्यविशेषयोः ।
हनूमानब्धिमतरद्दुष्करं किं महात्मनाम्[३] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५०, छ० ४५

२- वही, छ०सं० - ४६

३ - कुवलयानन्द : पृ० - २०२, छ०सं० १२२

जहां विशेष रूप मुख्यार्थ के समर्थन के लिए सामान्य रूप अन्य वाक्यार्थ का, अथवा सामान्य रूप मुख्यार्थ के लिए विशेष रूप अन्य वाक्यार्थ का प्रयोग किया जाय, वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। उदाहरण के लिए हनुमान समुद्र को लांघ गये हैं, बड़े लोगों के लिए कौन-सा कार्य दुष्कर है।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई 'अर्थान्तरन्यास' की परिभाषा 'कुवलयानन्द' से मिलती है--

> और आनिये अर्थ जहं, औरै बस्तु बखानि।
> अर्थान्तर को न्यास यह, चार प्रकार सुजान[1]।।

आचार्य केशवदास ने अर्थान्तरन्यास के चार भेद किए हैं, जबकि कुवलयानन्द में 'अर्थान्तरन्यास' के भेद नहीं मिलते। 'कुवलयानन्द' के अनुसार व्यतिरेक अलंकार की परिभाषा--

> व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः।
> शैला इवोन्नताः सन्तः किन्तु प्रकृतिकोमलाः[2]।।

यदि उपमान तथा उपमेय में परस्पर विलक्षणता (विशेष) पायी जाय तो वहां व्यतिरेक अलंकार होता है। जैसे--सज्जन पर्वतों के समान उन्नत, किन्तु प्रकृति से कोमल होते हैं।

आचार्य केशव द्वारा दी गई व्यतिरेकालंकार की परिभाषा कुवलयानन्द के अनुसार ही है। परन्तु अप्पय ने उपमान से उपमेय की उत्कृष्टता के साथ-साथ उपमेय की न्यूनता में भी व्यतिरेक अलंकार माना है जबकि अप्पय के इस मत से पण्डितराज जगन्नाथ सहमत नहीं हैं। आचार्य केशव ने भी सहज और

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५६, छ०सं० ६५

२- कुवलयानन्द : पृ०- ८०, श्लोक ५७

युक्त व्यतिरेक के दो भेद किए हैं, परन्तु दोनों में उपमेय की उत्कृष्टता ही प्रदर्शित किया है।

तामे आनि भेद कछु, होयं जु बस्तु समान।
सो व्यतिरेक सुभांति है युक्ति सहज परमान[1]।।

'कुवलयानन्द' में अपह्नुत्यलंकार का लक्षण नहीं दिया गया है सीधे उसके भेदों की चर्चा की गई है और उनके उदाहरण दिए गये हैं। अप्पय दीक्षित ने शुद्धापह्नुति, हेत्वपह्नुति पर्यस्तापह्नुति, भ्रान्तापह्नुति छेकापह्नुति (व्याजोक्ति) कैतवापह्नुति आदि अपह्नुति के छः भेद माने हैं। आचार्य केशवदास ने अपह्नुति के भेद नहीं किये हैं। अप्पय दीक्षित का शुद्धापह्नुति ही आचार्य केशव की अपह्नुति अलंकार कहा जा सकता है—

शुद्धापह्नुतिरन्यस्यारोपार्थो धर्मनिह्नवः।
नायं सुधांशुः किं तर्हि ? व्योमगङ्गासरोरुहम्[2]।।

शुद्धापह्नुति वह अलंकार है, जहां अप्रकृत के आरोप के लिए प्रकृत का निषेध किया जाय अर्थात् जहां प्रकृति धर्म का गोपन (निह्नव) कर अप्रकृत का उस पर आरोप हो। जैसे—यह चन्द्रमा नहीं है तो फिर क्या है ? यह तो आकाशगंगा में खिला हुआ कमल है।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई अपह्नुति अलंकार की परिभाषा—

मन की बात दुराय मुख, औरै कहिये बात।
कहत अपह्नुति सकल कबि, ताहि बुद्धि अवदात[3]।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १६४, छ०सं० ७८
२- कुवलयानन्द : पृ०- २८, श्लोक २६
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १६६, छ०सं० ८१

कुवलयानन्द में वक्रोक्ति अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्याम परार्थ प्रकल्पनम् ।
मुञ्च मानं दिनं प्राप्तं नेह नन्दी हरान्तिके[1] ।।

जहां श्लेष या काकु में से किसी एक के द्वारा अर्थान्तर की कल्पना की जाय वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है ।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ` वक्रोक्ति ` अलंकार की परिभाषा कुवलयानन्द के अनुसार ही है—

केशव सूधी बात में, बरणत टेढ़ो भाव ।
वक्रोकति तासों कहैं, सही सबै कबिराव[2] ।।

` कुवलयानन्द ` का ` प्रस्तुतांकुरालंकार ` आचार्य केशव का ` अन्योक्ति ` अलंकार है ।

प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुतांकुरः ।
किं भृङ्ग ! सत्यां मालत्यां केतक्या कण्टकेद्धया[3] ?

जहां प्रस्तुत वृत्तान्त के द्वारा अन्य प्रस्तुत वृत्तान्त की व्यंजना हो, वहां प्रस्तुतांकुर अलंकार होता है । जैसे, हे भौरे, मालती होते हुए कांटों से घिरी केतकी से क्या लाभ ?

इसी प्रकार की परिभाषा आचार्य केशवदास ने अन्योक्ति अलंकार की दी है—

औरहि प्रति जु बखानिये, कछु और की बात ।
अन्य उक्ति तेहि कहत हैं, बरनत कबि न अघात[4] ।।

१- कुवलयानन्द : पृ०- २५६, श्लोक १५६
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १६८, छ०सं० ३
३- कुवलयानन्द : पृ०- ११५, श्लोक ६७
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १७०, छ०सं० ६

कुवलयानन्द के अनुसार ` विशेषोक्ति ` अलंकार की परिभाषा—

कार्याजनिर्विशेषोक्तिः सति पुष्कलकारणे ।
हृदि स्नेहक्षयो नाभूत् स्मरदीपे ज्वलत्यपि[1]।।

जहां प्रचुर कारण के होते हुए भी कार्योत्पत्ति न हो, वहां विशेषोक्ति अलंकार होता है। जैसे, कामदेव रूपी दीपक के जलते हुए भी हृदय में स्नेहरूपी स्नेह (तेल) समाप्त न हुआ ।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ` विशेषोक्ति ` अलंकार की परिभाषा कुवलयानन्द के अनुसार है, परन्तु उदाहरण कुवलयानन्द से नहीं मिलता है—

विद्यमान कारण सकल, कारज होय न सिद्ध ।
सोई उक्ति बिशेष मय, केशव परम प्रसिद्ध[2]।।

` कुवलयानन्द ` के अनुसार ` सहोक्ति ` अलंकार की परिभाषा—

सहोक्तिः सहभावश्चेद्भासते जन रञ्जनः ।
दिगन्तमगमत्तस्य कीर्तिः प्रत्यर्थिभिः सह[3]।।

यदि दो पदार्थों के साथ रहने का वर्णन चमत्कारी (जनरंजन) हो, तो वहां सहोक्ति अलंकार होता है, जैसे, उस राजा की कीर्ति शत्रुओं के साथ दिगंत में चली गई ।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ` सहोक्ति ` अलंकार की परिभाषा कुवलयानन्द के अनुसार ही है—

हानि बृद्धि शुभ अशुभ कछु, कहिये गूढ़ प्रकास ।
होय सहोक्ति सु साथ ही, बरणत केशवदास[4]।।

१- कुवलयानन्द : पृ०- १४७, श्लोक ८३
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १७२, छ०सं० १४
३- कुवलयानन्द : पृ०- ८२, श्लोक ५८
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १७४, छ०सं० २०

कुवलयानन्द के अनुसार व्याजस्तुति अलंकार—

उक्तिव्याज स्तुतिनिंन्दास्तुतिभ्यां स्तुति निन्दयो: ।
क: स्वर्धुनि विवेकस्ते पापिनो नय से दिवम्[1] ।।

जहां निन्दा अथवा स्तुति के द्वारा क्रमश: स्तुति अथवा निन्दा की व्यंजना (कथन) हो, वहां व्याजस्तुति अलंकार होता है ।

आचार्य केशवदास ने भी ` व्याजस्तुति ` की परिभाषा ` कुवलयानन्द ` की परिभाषा के समान ही दी है—

स्तुति निन्दा मिस होत जहं, स्तुति मिस निन्दा जान ।
व्याजस्तुति निन्दा कहै, केशवदास बखान[2] ।।

` कुवलयानन्द ` के अनुसार पर्यायोक्ति अलंकार—

पर्यायोक्तं तु गम्यस्य वचो भङ्ग्यन्तराश्रयम् ।
नमस्तस्मै कृतौ येन मुधा राहुवधूकुचौ[3] ।।

जहां व्यंग्य अर्थ की बोधिका रीति से भिन्न अन्य प्रकार से भंग्यंतर के आश्रय के द्वारा) व्यंग्य अर्थ की प्रतीति हो वहां ` पर्यायोक्त ` अलंकार होता है ।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गयी ` पर्यायोक्ति ` अलंकार की परिभाषा ` कुवलयानन्द ` की परिभाषा से नहीं मिलती । आचार्य केशव ने ` पर्यायोक्ति ` अलंकार की जो परिभाषा दी है उसे कुछ आचार्य ` प्रहर्षण ` अलंकार मानते हैं—

कौनहु एक अदृष्ट ते, अनही किये जु होय ।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोक्ति सोय[4] ।।

१- कुवलयानन्द : पृ० - १२६, श्लोक ७०
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ० - १७५, छ०सं० २२
३- कुवलयानन्द : पृ० - १२१, श्लोक ६८
४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ० - १७८, छ०सं० २६

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ` युक्त ` अलंकार की परिभाषा ` कुवलयानन्द ` से नहीं मिलती है। केशव का ` युक्त ` अलंकार ` स्वभावोक्ति ` हो गया है।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई समाहित अलंकार की परिभाषा कुवलयानन्द से नहीं मिलती। कुवलयानन्द के अनुसार जहां भाव शान्ति अंग बनकर आये वहां समाहित अलंकार होता है, जबकि आचार्य केशव के अनुसार जो काम अनेक उपाय करने पर भी न होता था, वह अनायास किसी दैवी घटना से हो जाय, ऐसे वर्णन में समाहित अलंकार होता है।

कुवलयानन्द में भी रूपक अलंकार का वर्णन किया है उसके अभेदरूपक तथा ताद्रूप्यरूपक ये दो भेद माने हैं। पुन: इन दोनों भेदों के आधिक्य वर्णन, न्यूनत्व वर्णन तथा अनुभय वर्णन नामक तीन भेद माने हैं, परन्तु आचार्य केशवदास का रूपक- भेद इनसे नहीं मिलता है।

आचार्य केशवदास का ` दीपक ` अलंकार ` कुवलयानन्द ` के दीपक अलंकार से नहीं मिलता है। अप्पय दीक्षित ने आवृत्ति दीपक और उसके तीन भेद स्वीकार किए हैं परन्तु केशव ने दीपक अलंकार के केवल दो भेद मणिदीपक और मालादीपक किया है। मालादीपक का वर्णन अप्पय दीक्षित ने स्वतन्त्र रूप से किया है तथा इसका लक्षण कुछ भिन्न ढंग से दिया है—

दीपकैकावलीयोगान्मालादीपकमिष्यते।
स्मरेण हृदये तस्यास्तेन त्वयि कृता स्थिति:[१]।।

जहां एक साथ दीपक तथा एकावली दोनों अलंकारों की स्थिति हो, वहां मालादीपक होता है।

१- कुवलयानन्द : पृ०- १७६, श्लोक १०७

आचार्य केशवदास ने 'मालादीपक' की परिभाषा 'कुवलयानन्द' से भिन्न ढंग से दी है—

सबै मिलै जहं बरनिये, देश काल बुधिवंत।
मालादीपक कहत हैं, ताके भेद अनंत[१]।।

आचार्य केशवदास का 'परिवृत्त' अलंकार 'कुवलयानन्द' के 'परिवृत्त' अलंकार से नहीं मिलता है। अप्पय दीक्षित के अनुसार जहां सम, न्यून या अधिक पदार्थ, जहां परस्पर एक दूसरे का विनिमय करें, वहां 'परिवृत्त' अलंकार होता है। जबकि आचार्य केशव 'परिवृत्त' अलंकार वहां मानते हैं जहां—

जहां करत कछु औरही, उपजि परत कछु और।
तासों परिवृत्त जानियो, केशव कवि सिरमौर[२]।।

कुवलयानन्द के अनुसार 'उपमा' अलंकार की परिभाषा इस प्रकार है—

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः।
हंसीव कृष्ण! ते कीर्तिः स्वर्गङ्गामवगाहते[३]।।

जहां दो वस्तुओं—उपमान और उपमेय— की समानता से विशिष्ट शोभा अर्थात् दो वस्तुओं के सादृश्य पर आधृत चमत्कार पाया जाय, वहां उपमा अलंकार होता है। जैसे—हे कृष्ण, तेरी कीर्ति हंसिनी की तरह आकाशगङ्गा में अवगाहन कर रही है।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १८८, छ०सं० २७

२- वही, पृ०- १९१, छ०सं० ३९

३- कुवलयानन्द : पृ०- २, श्लोक ६

आचार्य केशवदास द्वारा दी गयी उपमालंकार की परिभाषा ' कुवलयानन्द ' से मिलती है—

रूप शील गुण होय सम, जो क्यौंहू अनुसार ।
तासौं उपमा कहत कबि, केशव बहुत प्रकार[1] ।।

' अप्पय दीक्षित ' ने उपमालंकार में धर्मों के लुप्त होने के आधार पर आठ प्रकार की उपमाएं मानी हैं । आचार्य केशवदास का उपमा भेद ' कुवलयानन्द ' से नहीं मिलता है ।

कुवलयानन्द में वर्णित प्रहर्षणालंकार आचार्य केशव का पर्यायोक्ति अलंकार है ।

उत्कण्ठितार्थसंसिद्धिर्विना यत्नं प्रहर्षणम् ।
तामेवध्यायते तस्मै निसृष्टा सैव दूतिका[2] ।।

जहां किसी यत्न विशेष के बिना ही इच्छित वस्तु की सिद्धि हो जाय वहां प्रहर्षण नामक अलंकार होता है । जैसे, कोई नायक किसी का ध्यान ही कर रहा था कि उसके लिए वही दूतिका भेज दी गई ।

आचार्य केशव द्वारा दी गई पर्यायोक्ति अलंकार की परिभाषा इस प्रकार है—

कौनहु एक अदृष्ट ते, अनही किये जु होय ।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोकति सोय[3] ।।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आचार्य केशवदास ने ' कुवलयानन्द ' से सहायता

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १६३, छं०सं० १

२- कुवलयानन्द : पृ० - २१६, श्लोक १२६

३ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १२वां प्रभाव, पृ०- २६, छं०सं० २६

नहीं ली है, क्योंकि केवल कुछ अलंकारों की ही परिभाषाएं ` कुवलयानन्द `
से मिलती है परन्तु उनके भेद ` कुवलयानन्द ` से नहीं मिलते हैं।

(च) काव्यालंकार का प्रभाव :

आचार्य रुद्रट ने अलंकारों को दो भागों में विभक्त किया है—
(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार। शब्दालंकार के अन्तर्गत उन्होंने वक्रोक्ति,
अनुप्रास, यमक, श्लेष और चित्र आदि अलंकारों की गणना की है। आचार्य
रुद्रट ने अर्थालंकारों के वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष रूप चतुर्विध
अलंकारों का वर्णन किया है। आचार्य केशव द्वारा वर्णित बहुत से अलंकारों
का वर्णन आचार्य रुद्रट ने नहीं किया है। आचार्य केशव के कुछ अलंकारों के
लक्षण आचार्य रुद्रट के लक्षणों से मिलते हैं परन्तु आचार्य रुद्रट द्वारा दिए
गये अलंकारों के उदाहरण से आचार्य केशव के उदाहरण भिन्न हैं। आचार्य
केशवदास का एक भी उदाहरण आचार्य रुद्रट के उदाहरण से नहीं मिलता है।
आचार्य रुद्रट ने स्वभावोक्ति अलंकार का वर्णन नहीं किया है। आचार्य
रुद्रट द्वारा दिया गया विभावना अलंकार का लक्षण इस प्रकार है—

सेयं विभावनाख्या यस्यामुपलभ्यमानमभिधेयम्।
अभिधीयते यतः स्यात्तत्कारणमन्तरेणैव[१] ॥

विभावना—जिसमें लोक में विवक्षित अर्थ जिस कारण से घटित होता है उस
कारण के बिना भी घटित होता बताया जाता है वहां विभावना नामक अलंकार
होता है।

आचार्य केशव ने भी विभावना अलंकार की इसी प्रकार की परिभाषा
दी है—

---

१ - काव्यालंकार नवमोऽध्यायः, पृ० - ३०६, श्लोक १६

कारज को बिनु कारणहि, उदौ होत जेहि ठौर ।
तासों कहत विभावना, केशव कवि शिरमौर[1] ।।

आचार्य रुद्रट ने हेतु अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी है—

बलवति विकारहेतौ सत्यपि नैवोपगच्छति विकारम् ।
यस्मिन्नर्थः स्थैर्यान्मन्तव्योऽसावहेतुरिति[2] ।।

जहां विकार के बलवान कारण होने पर भी वस्तु स्थैर्य के कारण विकृत नहीं होती है उसे अहेतु नामक अलंकार जानना चाहिए । आचार्य केशवदास ने हेतु अलंकार का लक्षण नहीं दिया है, सीधे उसके भेदों की चर्चा की है—

हेतु होत है भांति द्वै, बरनत सब कविराव ।
केशवदास प्रकास करि, बरनि सभाव अभाव[3] ।।

आचार्य रुद्रट ने ` विरोध ` अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी है—

यस्मिन्द्रव्यादीनां परस्परं सर्वथा विरुद्धानाम् ।
एकत्रावस्थानं समकालं भवति स विरोधः[4] ।।

जिस अलंकार में परस्पर सर्वथा विरुद्ध द्रव्य आदि की समकाल में ही एक ही आधार में स्थिति दिखाई जाय उसे विरोध अलंकार कहते हैं ।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई विरोधालंकार की परिभाषा भी इसी प्रकार है—

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०- १०४, छ०सं० ११
२- काव्यालंकार नवमोऽध्यायः, पृ०- ३२५, श्लोक ५४
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ०- १०५, छ०सं० १५
४- काव्यालंकार : नवमोऽध्यायः, पृ०- ३१६, श्लोक ३०

केशवदास विरोध मय, रचियत बचन विचारि ।
तासों कहत बिरोध सब, कविकुल सुबुधि सुधारि[1]।।

` रुद्रट ` के अनुसार ` विरोधाभास ` अलंकार–

स इति विरोधाभासो यस्मिन्नर्थद्वयं पृथग्भूतम् ।
अन्यद्वाक्यं गमयेदविरुद्धं सद्विरुद्धमिव[2] ।।

जहां एक ही वाक्य विरुद्ध न होते हुए भी अन्य पृथक् दो विरुद्ध अर्थों की प्रतीति उत्पन्न करता है वहां विरोधाभास अलंकार होता है ।

आचार्य केशव द्वारा दी गई ` विरोधाभास ` अलंकार की परिभाषा आचार्य रुद्रट की परिभाषा से मिलती है–

बरनत लगै विरोध– सो, अर्थ सबै अविरोध ।
प्रगट विरोधाभास यह, समझत सबै सुबोध[3]।।

आचार्य रुद्रट ने ` विशेषालंकार ` की परिभाषा इस प्रकार दी है–

किंचिदवश्याधेयं यस्मिन्नभिधीयते निराधारम् ।
तादृगुपलभ्यमानं विज्ञेयोऽसौ विशेष इति[4]।।

जहां आधार के विद्यमान होने पर भी किसी वस्तु को निराधार बताया जाता है– वहां इस प्रकार से देखी गयी वस्तु के इस कथन को विशेष अलंकार जानना चाहिए ।

आचार्य रुद्रट ने ` विशेषालंकार ` वहां माना है जहां आधार के होते हुए भी किसी वस्तु को निराधार बताया जाय, जबकि आचार्य केशवदास ने

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ९वां प्रभाव, पृ०- १०७, छं०सं० १९
२- काव्यालंकार:नवमोऽध्याय, पृ०- ३४०, श्लोक २२
३ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ९वां प्रभाव, पृ० - १०९, छं०सं० २२
४ - काव्यालंकार : नवमोऽध्याय:, पृ० - ३०५, श्लोक ५

कार्य के साधक कारण के अपूर्ण होने पर भी, कार्य की पूर्ण सिद्धि को ` विशेषालंकार ` की संज्ञा दी है ।

साधक कारण बिकल जहं, होय साध्य की सिद्धि ।
केशवदास बखानिये, सो विशेष परसिद्धि[1]।।

आचार्य रुद्रट के अनुसार उत्प्रेक्षालंकार—

यत्रातितथाभूते संभाव्येत क्रियाद्यसंभाव्यम् ।
संभूतमतद्वति वा विज्ञेया सेयमुत्प्रेक्षा[2]।।

जहां क्रिया आदि की संभावना के अस्थान वस्तु में भी असम्भव क्रिया आदि की संभावना की जाय अथवा क्रिया आदि से शून्य वस्तु में भी क्रिया आदि की उत्प्रेक्षा की जाय वहां उत्प्रेक्षा अलंकार होता है ।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ` उत्प्रेक्षालंकार ` की परिभाषा आचार्य रुद्रट के अनुसार ही है—

केशव औरै वस्तु में औरै कीजिए तर्क ।
उत्प्रेक्षा तासों कहैं जिनको बुद्धि संपर्क[3]।।

आचार्य केशव द्वारा दी गई ` आक्षेपालंकार ` की परिभाषा आचार्य रुद्रट से नहीं मिलती । आचार्य रुद्रट ` आक्षेपालंकार ` वहां मानते हैं जहां `वस्तु प्रसिद्ध है ` अथवा ` वस्तु विरुद्ध है ` इसलिए एक बार कहे हुए वचन का आक्षेप करके उसकी सिद्धि के लिए उसी के स्वरूप की अन्य वस्तु का जहां उपन्यास किया जाता है । जबकि आचार्य केशवदास कार्य के आरम्भ में ही

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ0- ११०, छं0सं0 २४
२- काव्यालंकार : नवमोऽध्याय:, पृ0- ३०७, श्लोक ११
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ0- ११२, छंसं0 ३०

किए गये प्रतिषेध को ` आक्षेपालंकार ` मानते हैं।

आचार्य रुद्रट ने क्रम अलंकार का ही दूसरा नाम यथासंख्या माना है। परन्तु आचार्य केशव का क्रम अलंकार आचार्य रुद्रट से नहीं मिलता। आचार्य केशव की परिभाषा स्पष्ट नहीं है,पर उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि जिसे आचार्य केशव ने क्रम अलंकार माना है उसे परवर्ती आचार्यों ने ` शृंखला ` या ` एकावली ` नाम दिया है। आचार्य केशव ने जिसे ` गणना ` नाम दिया है आचार्य रुद्रट ऐसा कोई अलंकार नहीं मानते हैं। आचार्य केशव के ` आशिषालंकार ` तथा ` प्रेमालंकार ` का वर्णन भी आचार्य रुद्रट ने नहीं किया है।

श्लेष अलंकार का जो लक्षण आचार्य केशवदास ने दिया है वह आचार्य रुद्रट से मिल जाता है, परन्तु उसके भेद और उदाहरणादि रुद्रट से नहीं मिलता।

वक्तुं समर्थमर्थं सुश्लिष्टाक्लिष्टविविध पद सन्धि।
युग पदनेकं वाक्यं यत्र विधीयेत स श्लेषः[1]।।

अर्थ बताने में सुप्रयोजित कष्ट कल्पना रहित नाना प्रकार के सुबन्त– तिङन्त पदों की सन्धि वाले एक ही प्रयत्न से उच्चारणीय अनेक वाक्यों की जहां रचना की जाती है उसे श्लेष नामक (शब्दालंकार) कहते हैं।

आचार्य केशवदास ने ` श्लेषालंकार ` की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है—

दोय तीन अरु भांति बहु मानत जामें अर्थ।
श्लेष नाम तासों कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ[2]।।

१- काव्यालंकार:चतुर्थोऽध्याय:, पृ० - ८८, श्लोक १

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३५, छ०सं० २९

आचार्य रुद्रट ने श्लेष के भेद करते हुए लिखा है—

> वर्ण पद लिङ्ग भाषा प्रकृति प्रत्यय विभक्ति वचनानाम् ।
> अत्रायं मतिमद्भिर्विधीयमानोऽष्टधा भवति [1] ॥

शब्दालंकार में वर्ण, पद, लिङ्ग, भाषा, प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति और वचन के भेद से रचा जाता हुआ यह (श्लेष (आठ प्रकार का होता है । इसके विपरीत केशवदास ने श्लेष का भेद बताते हुए लिखा है—

> तिन में एक अभिन्न पद, अपर भिन्न पद जानि ।
> श्लेष सुबुद्धि दुभेद के, केशवदास बखानि [2] ॥

आचार्य केशवदास ने श्लेष के पांच और भेद भी बताए हैं जिसे अर्वाचीन आचार्य नहीं मानते हैं—

> बहुरयौ एक अभिन्न क्रिय और भिन्न क्रिय जान ।
> पुनि विरुद्ध कर्मा अपर, नियम विरोधी मान[3] ॥

आचार्य केशवदास का ' सूक्ष्मालंकार ' आचार्य रुद्रट के ' सूक्ष्मालंकार ' से नहीं मिलता । आचार्य रुद्रट के अनुसार— जहां शब्द अपने अर्थ से संबद्ध अयुक्त, किन्तु उपपत्तियुक्त अन्य अर्थ की प्रतीति कराता है वहां सूक्ष्म अलंकार होता है ।

> यत्रायुक्तिमदर्थो गमयति शब्दो निजार्थसंबद्धम् ।
> अर्थान्तरमुपपत्तिमदिति तत्संजायते सूक्ष्मम्[4] ॥

१- काव्यालंकार : चतुर्थोऽध्यायः, पृ०- ८८, श्लोक २

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १४३, छ०सं० ३४

३- वही, पृ०- १४६, छ०सं० ३६

४- काव्यालंकार : सप्तमोऽध्यायः, पृ०- २३७, श्लोक ६८

इसके विपरीत आचार्य केशवदास किसी भाव, चेष्टा या आकार से दूसरे के मन की बात समझ लेने को ' सूक्ष्मालंकार ' मानते हैं।

> कौनहु भाव प्रभाव ते, जानै जिय की बात।
> इंगित तें, आकार तें, कहि सूछम अवदात[1]।।

आचार्य रुद्रट लेशअलंकार वहाँ मानते हैं जहाँ गुण के दोष हो जाने अथवा दोष के गुण हो जाने का कथन होता है (वहाँ) उस प्रकार के कर्म का निमित्त लेश अलंकार होता है।

> दोषी भावो यस्मिन्गुणस्य दोषस्य वा गुणीभावः।
> अभिधीयते तथाविधकर्मनिमित्तः स लेशः स्यात्[2] ।।

इसके विपरीत आचार्य केशव के अनुसार— कोई घटना या कोई दशा चतुराई से किसी क्रिया द्वारा छिपाना, जिससे चतुर आदमी भी न समझ सके— यही ' लेश ' अलंकार है।

> चतुराई के लेश ते, चतुर न समझैं लेश।
> बरनत कवि कोविद सबै ताको केशव लेश[3]।।

आचार्य रुद्रट ने निदर्शना, ऊर्जा तथा रसवत् आदि अलंकारों का वर्णन नहीं किया है। रुद्रट द्वारा दी गई अर्थान्तरन्यास अलंकार की परिभाषा आचार्य केशवदास से नहीं मिलती है। आचार्य रुद्रट जहाँ सामान्य अथवा विशेष अर्थ वाले (उपमेय) धर्मी का कथन करके उसकी पुष्टि के लिए उसके समानधर्म वाले सामान्य अथवा विशेष अर्थ का उपन्यास किया जाता है वहाँ

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५०, छ०सं० ४५

२- काव्यालंकार : सप्तमोऽध्यायः, पृ०- २३८, श्लोक १००

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५१, छ०सं० ४७

अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है ।

धर्मिणमर्थविशेषं सामान्यं वाभिधाय तत्सिद्धयै ।
यत्र सधर्मिकमितरं न्यस्येत्सोऽर्थान्तरन्यासः[1] ।।

इसके विपरीत आचार्य केशवदास के अनुसार और कुछ कहकर और कुछ अर्थ लेना, यही अर्थान्तरन्यास है —

औरे आनिय अर्थ जहं, औरे वस्तु बखानि ।
अर्थान्तरको न्यास यह, चार प्रकार सुजान[2]।।

आचार्य रुद्रट ने ' व्यतिरेकालंकार ' की परिभाषा इस प्रकार दी है—

यो गुण उपमेये स्यात्तत्प्रतिपन्थी च दोष उपमाने ।
व्यस्त समस्तन्यस्तौ तौ व्यतिरेकं त्रिधा कुरुतः[3] ।।

जो गुण उपमेय में हो और उसके विरुद्ध उपमान में दोष हो तो अकेले (केवल दोष या केवल गुण) और साथ- साथ (गुण और दोष दोनों) न्यस्त होकर वे दोनों (गुण और दोष) व्यतिरेक को तीन प्रकार का बनाते हैं ।

आचार्य केशवदास के अनुसार बराबर वाली दो वस्तुओं में कुछ भेद दिखलाना ' व्यतिरेक ' है ।

तामे आनै भेद कछु, होयं जु वस्तु समान ।
सो व्यतिरेक सुभांति है युक्ति सहज परमान[4] ।।

१- काव्यालंकार : अष्टमोऽध्यायः, पृ०- २८८, छं०सं० ७९

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १५६, छं०सं० ६५

३- काव्यालंकार : सप्तमोऽध्यायः, पृ०-२३०, छं०सं० ८६

४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १६४, छं०सं० ७८

आचार्य रुद्रट के अनुसार ` अपह्नुति ` अलंकार की परिभाषा—

अतिसाम्यादुपमेयं यस्यामसदेव कथ्यते सदपि ।
उपमानमेव सदिति च विज्ञेयापह्नुतिः सेयम्[1] ।।

आचार्य रुद्रट अत्यधिक साम्य होने के कारण सत्ता होने पर भी जहां उपमेय की सत्ता का निषेध किया जाता है और उपमान की ही सत्ता की स्थापना होती है उसे ` अपह्नुति ` अलंकार मानना चाहिए । जबकि आचार्य केशवदास अपह्नुति अलंकार वहां मानते हैं जहां मन की बात छिपाकर बहाने के लिए कोई और बात कही जाती है—

मन की बात दुराय मुख, औरे कहिये बात ।
कहत अपह्नुति सकल कबि, ताहि बुद्धि अवदात[2] ।।

आचार्य रुद्रट ने ` वक्रोक्ति ` अलंकार को एक स्वतन्त्र अलंकार के रूप में माना है, जबकि आचार्य केशवदास ने ` उक्ति ` अलंकार के उपभेद के रूप में `वक्रोक्ति` अलंकार को स्वीकार किया है । आचार्य केशवदास के अनुसार—` शब्द सीधे सादे हों पर तात्पर्य में गूढ़ व्यंग्य हो, तो वक्रोक्ति कहते हैं ।

केशव सूधी बात में, बरणत टेढ़ो भाव ।
वक्रोकति तासों कहैं, सही सबै कबिराज[3] ।।

इसके विपरीत आचार्य रुद्रट ने अपने ` काव्यालंकार ` में वक्ता के द्वारा भिन्न अर्थ में कही गई बात का, उत्तर देने वाला पदों को विभक्त कर जहां

१- काव्यालंकार : अष्टमोऽध्यायः, पृ०- २७६, श्लोक ५७

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १६६, छ०सं० ८१

३- वही, ११वां प्रभाव, पृ०- १६८, छ०सं० ३

अविवक्षित अर्थ में व्याख्या करे उसे श्लेष वक्रोक्ति कहा है।

वक्ता तदन्यथोक्तं व्याचष्टे चान्यथा तदुत्तरद:।
वचनं यत्पदभङ्गैर्ज्ञेया सा श्लेषवक्रोक्ति:[1]।।

आचार्य रुद्रट के अनुसार अन्योक्ति—

असमानविशेषणमपि यत्र समानेतिवृत्तमुपमेयम्।
उक्तेन गम्यते परमुपमानेनेति साऽन्योक्ति:[2]।।

जहां उक्त उपमान से विशेषणों के असमान होने पर भी समान वृत्त (क्रिया) वाला उपमेय गम्य होता है वहां अन्योक्ति अलंकार होता है।

आचार्य केशवदास ने भी 'अन्योक्ति' अलंकार की परिभाषा कुछ इसी प्रकार दी है—

औरहि प्रति जु बखानिये, कछु और की बात।
अन्य उक्ति तेहि कहत हैं, बरनत कबि न अघात[3]।।

आचार्य रुद्रट के अनुसार 'सहोक्ति' अलंकार—

भवति यथारूपोऽर्थ: कुर्वन्नेवापरं तथाभूतम्।
उक्ति स्तस्य समाना तेन समं या सहोक्ति: सा[4]।।

अपने सदृश दूसरे अर्थ को घटित करता हुआ जो अर्थ (वस्तु) जिस रूप में होता है उस दूसरे अर्थ के समान इसका कथन जहां होता है वहां सहोक्ति

१- काव्यालंकार : द्वितीयोऽध्याय:, पृ०- ३८, श्लोक १४
२- वही, अष्टमोऽध्याय:, पृ०-२८५, श्लोक ७४
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १७०, छ०सं० ६
४- काव्यालंकार : सप्तमोऽध्याय:, पृ०- १६२, छ०सं० १३

नामक अलंकार होता है। आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ` सहोक्ति ` अलंकार की परिभाषा आचार्य रुद्रट से मिलती है—

हानि वृद्धि शुभ अशुभ कछु, कहिये गूढ़ प्रकास।
होय सहोक्ति सु साथ ही, बरणत केशवदास[1]।।

आचार्य केशवदास द्वारा वर्णित ` व्याजस्तुति ` और ` व्याजनिन्दा ` अलंकार को आचार्य रुद्रट ने व्याजश्लेष अलंकार नाम दिया है—

यस्मिन्निन्दा स्तुतितो निन्दाया वा स्तुति: प्रतीयेत।
अन्याविवक्षितया व्याजश्लेष: स विज्ञेय:[2]।।

जिस वाक्य में विवक्षित स्तुति से प्रासङ्गिक निन्दा अथवा विवक्षित निन्दा से प्रासङ्गिक स्तुति की प्रतीति होती है उसमें व्याजश्लेष अलंकार होता है।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ` व्याजस्तुति ` और ` व्याजनिन्दा` की परिभाषा रुद्रट के ` व्याज श्लेष ` की परिभाषा से मिलती है—

स्तुति निन्दा मिस होत जहं, स्तुति मिस निन्दा जान।
व्याजस्तुति निन्दा बहै, केशवदास बखान[3]।।

आचार्य केशवदास द्वारा वर्णित समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध तथा विपरीतालंकार का वर्णन आचार्य रुद्रट ने नहीं किया है।

आचार्य रुद्रट ने ` रूपक ` अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी है—

यत्र गुणानां साम्ये सत्युपमानोपमेययोरभिधा।
अविवक्षितसामान्या कल्प्यत इति रूपकं प्रथमम्[4]।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १७४, छ०सं० २०
२- काव्यालंकार : दशमोऽध्याय:, पृ०- ३३३, छ०सं० ११
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १७५, छ०सं० २२
४- काव्यालंकार : अष्टमोऽध्याय:, पृ०- २६५, श्लोक ३८

जहां गुणों में साम्य होने पर साधारण धर्म के कथन के बिना उपमान और उपमेय में अभेद की कल्पना की जाती है वहां प्रथम प्रकार का रूपक अलंकार होता है।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई रूपक अलंकार की परिभाषा आचार्य रुद्रट की परिभाषा से मिलती है—

उपमा ही के रूप सों, मिल्यो बरनिये रूप।
ताही सों सब कहत हैं, केशव रूपक रूप[1] ।।

आचार्य केशवदास द्वारा किए गये ' रूपक ' के तीन भेद आचार्य रुद्रट के तीन भेदों से नहीं मिलते हैं।

आचार्य रुद्रट के अनुसार ' दीपक ' अलंकार—

यत्रैकमनेकेषां वाक्यार्थानां क्रियापदं भवति।
तद्वत्कारकपदमपि तदेतदिति दीपकं द्वेधा[2] ।।

जहां अनेक वाक्यों का एक ही क्रियापद अथवा कारक पद होता है वहां (क्रिया दीपक और कारक- दीपक) भेद दीपक अलंकार दो प्रकार का होता है।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ' दीपक ' अलंकार की परिभाषा आचार्य रुद्रट से मिलती है।

दीपक रूप अनेक हैं, मैं बरनौ द्वै रूप।
मणि माला तिनसों कहु, केशव सब कवि भूप[3] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १८३, छ०सं० १२

२- काव्यालंकार : सप्तमोऽध्याय:, पृ०- २२०, श्लोक ६४

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १८६, छ०सं० २२

आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया (रूपक) का भेद आचार्य रुद्रट के भेद से नहीं मिलता है।

आचार्य रुद्रट द्वारा दिया गया ` परिवृत्त ` अलंकार का लक्षण—

युगपद्दानादाने अन्योन्यं वस्तुनोः क्रियेते यत्।
क्वचिदुपचर्यते वा प्रसिद्धितः सेति परिवृत्तिः[1]॥

दो वस्तुओं में परस्पर जहां दान और ग्रहण एक साथ कराया जाता है अथवा प्रसिद्धि के कारण उपचरित होता है वहां ` परिवृत्त ` अलंकार होता है।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई परिवृत्ति अलंकार की परिभाषा आचार्य रुद्रट की परिभाषा से भिन्न है।

जहां करत कछु औरहीं, उपजि परत कछु और।
तासों परिवृत्त जानियो, केशव कबि सिरमौर[2]॥

आचार्य रुद्रट द्वारा दी गई ` उपमालंकार ` की परिभाषा—

उभयोः समानमेकं गुणादि सिद्धं भवेद्यथैकत्र।
अर्थेऽन्यत्र तथा तत्साध्यत इति सोपमा त्रेधा[3]॥

दोनों (उपमान और उपमेय) में समान एक गुण, संस्थान आदि जिस प्रकार उपमान में प्रतीत हैं उसी प्रकार उपमेय में यदि विद्यमान बताए जांय तो इस प्रकार की वह उपमा (वाक्य, समास और प्रत्यय के भेद से) तीन प्रकार की होती है।

आचार्य केशवदास द्वारा दी गई ` उपमालंकार ` की परिभाषा आचार्य रुद्रट की परिभाषा से मिलती है—

१- काव्यालंकार : सप्तमोऽध्यायः, पृ०- २२६, श्लोक ७७

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १६१, छ०सं० ३६

रूप शील गुण होय सम, जो क्योंहू अनुसार ।
तासों उपमा कहत कवि, केशव बहुत प्रकार[1] ।।

आचार्य केशवदास ने उपमा के जो भेद किए हैं वह आचार्य रुद्रट के भेदों से नहीं मिलता ।

आचार्य रुद्रट के अनुसार ` यमक ` अलंकार—

तुल्य श्रुति क्रमाणामन्यार्थानां मिथस्तु वर्णानाम् ।
पुनरावृत्तिर्यमकं प्रायश्छन्दांसि विषयोऽस्य[2] ।।

समान उच्चारण और क्रम वाले परस्पर भिन्नार्थक वर्णों की दुबारा आवृत्ति को यमक कहते हैं । प्राय: छन्द ही इस (यमक) के विषय हैं ।

आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया ` यमक ` अलंकार का लक्षण आचार्य रुद्रट से मिलता है—

पद एकै नाना अरथ जिनमें जेतो वित्तु ।
तामें ताको काढ़िये यमक माहि दै चित्तु[3] ।।

आचार्य केशवदास द्वारा दिये गये ` यमक ` अलंकार के भेद और उसके लक्षण आचार्य रुद्रट के भेद और लक्षणों से नहीं मिलते ।

आचार्य रुद्रट ने ` काव्यालंकार ` के पांचवें अध्याय में ` चित्र ` अलंकार का वर्णन किया है ।

भङ्ग्यन्तरकृततत्क्रमवर्णनिमित्तानि वस्तुरूपाणि ।
साङ्कानि विचित्राणि च रच्यन्ते यत्र तच्चित्रम्[4] ।।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ०- १६३, छं०सं० १
२- काव्यालंकार : तृतीयोऽध्याय:, पृ०- ५१, श्लोक १
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) १५वां प्रभाव, पृ०- २०६, छं०सं० १
४- काव्यालंकार : पंचमोऽध्याय:, पृ०- १२१, श्लोक १

चक्र आदि विचित्र लक्षण से लोक प्रसिद्ध वर्ण (अक्षर) आदि के क्रमरूप निमित्त से स्वनाम चिह्नवाली विचित्र (चक्र) आदि वस्तुओं का जहाँ संस्थान आदि रच दिया जाता है (वहाँ) चित्र नामक अलंकार होता है। इसके भेद बताते हुए आचार्य रुद्रट लिखते हैं—

तच्चक्रखड्गमुसलैर्बाणासन शक्ति शूल हलैः ।
चतुरङ्ग पीठ विरचित रथ तुरग गजादिपदपाठैः ।।
अनुलोम प्रतिलोमैरर्धभ्रममुरज सर्वतोभद्रैः ।
इत्यादिभिरन्यैरपि वस्तु विशेषाकृति प्रभवैः ।।
भेदैर्विभिद्यमानं संख्यातुमनन्तमस्मि नैतदलम् ।
तस्मादेतस्य मया दिङ्मात्रमुदाहृत कवयः[१] ।।

वह चक्र, खड्ग, मुसल, बाणासन, शक्ति, शूल, हल चतुरङ्ग - फलक पर रचे गये रथ, तुरग, गज आदि पदपाठ, अनुलोम, प्रतिलोम, अर्धभ्रम, मुरज, सर्वतोभद्र आदि तथा वस्तुओं की विशेष आकृति से उत्पन्न होने वाले अन्य भेदों के किए जाने पर इसकी गणना करने में हे कवियों में (रुद्रट) समर्थ नहीं हूं। अतएव इसका (मैंने) दिगुन्मीलनमात्र किया है।

इसी प्रकार की असमर्थता आचार्य केशवदास ने भी व्यक्त की है—

केशव चित्र समुद्र में बूड़त परम विचित्र ।
ताके बूंदक के कणों बरनत हौं सुनि मित्र[२] ।।

आचार्य रुद्रट का ` प्रतिलोमानुलोम ` आचार्य केशवदास का ` गतागत ` नामक चित्रालंकार है, परन्तु दोनों कवियों के उदाहरण अलग-अलग है। कमलबंध, चक्रबन्ध, धनुषबन्ध, अर्धभ्रम और सर्वतोभद्र आदि के उदाहरण आचार्य रुद्रट और आचार्य केशवदास दोनों ने दिए हैं, परन्तु दोनों के उदाहरण

१- काव्यालंकार : पंचमोऽध्यायः, पृ०- १२१-१२२, श्लोक २,३,४
२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १६वां प्रभाव, पृ०- २१८, क्र०सं० १

अलग- अलग है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य केशवदास आचार्य रुद्रट से प्रभावित नहीं हैं क्योंकि आचार्य केशवदास द्वारा दी गई अलंकारों की परिभाषाएं और लक्षण आचार्य रुद्रट से नहीं मिलते । जो दो चार अलंकारों के लक्षण यदि मिलते भी हैं तो उन दोनों के उदाहरण बिल्कुल भिन्न हैं । आचार्य केशवदास द्वारा वर्णित बहुत से अलंकारों का उल्लेख ' काव्यालंकार ' में नहीं मिलता है । इसी प्रकार रुद्रट द्वारा वर्णित बहुत से अलंकारों का वर्णन आचार्य केशवदास ने भी नहीं किया है । आचार्य केशवदास ने ' कविप्रिया ' के तीसरे प्रभाव में काव्य दोषों का वर्णन किया है । केशव का यह दोष वर्णन आचार्य रुद्रट के दोषों से मिलते हैं । केशव का ' बधिर दोष ' आचार्य रुद्रट का ' ग्राम्य दोष ' है । इसी प्रकार आचार्य केशवदास का ' आगमविरोध ' आचार्य रुद्रट के ' निरागम दोष ' तथा आचार्य रुद्रट का ' विरस दोष ' आचार्य केशव के ' हीनरस ' से मिलता है ।

(ख) काव्य प्रकाश का प्रभाव :

आचार्य ' मम्मट ' ने ' काव्यप्रकाश ' के सप्तम उल्लास में काव्य दोषों का वर्णन किया है । मम्मट के कुछ दोष आचार्य केशव के दोषों से मिलते हैं । आचार्य मम्मट का श्रुतिकटु आचार्य केशवदास का कर्णकटु है । आचार्य मम्मट का यतिभंग, पुनरुक्त दोष, शास्त्र विरुद्ध, क्रम सम्बन्धी प्रक्रम भंग दोष नीति विरोध आदि दोषों का वर्णन आचार्य केशवदास से मिलता है । इन दोषों के आचार्य मम्मट ने लक्षण नहीं दिए हैं अपितु उदाहरण देकर इन उदाहरणों की व्याख्या की है । उदाहरणों की व्याख्या से स्पष्ट होता है कि ये दोष आचार्य केशवदास के यतिभंग पुनरुक्तदोष,

आगम विरोध, क्रमहीन दोष, नीति विरोध आदि दोषों से मिलते हैं। आचार्य केशवदास के उदाहरण आचार्य मम्मट के उदाहरण से नहीं मिलते अत: कहा जा सकता है कि अपने दोष वर्णन में आचार्य केशवदास ने मम्मट से कोई सहायता नहीं ली है।

आचार्य मम्मट ने ` काव्यप्रकाश ` के नवम् तथा दशम् उल्लास में काव्य के अलंकारों का वर्णन किया है। आचार्य केशवदास ने (कविप्रिया) के पांचवें प्रभाव में अलंकारों के मुख्य रूप से दो भेद माने हैं सामान्य तथा विशिष्ट। इन दो भेदों के आचार्य केशवदास ने पुन: कई उपभेद किए हैं। आचार्य मम्मट ने भी ` काव्यप्रकाश ` के दसवें उल्लास में सामान्य तथा विशिष्ट नामक अलंकारों के उपभेद को माना है परन्तु आचार्य केशवदास के सामान्य तथा विशिष्ट अलंकार आचार्य मम्मट के अलंकारों से नहीं मिलते। आचार्य मम्मट ने ` स्वभावोक्ति ` अलंकार का उल्लेख नहीं किया है। उनके अनुसार विभावना अलंकार की परिभाषा इस प्रकार है—

क्रियाया: प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना[1]।।

(हेतुभूत) क्रिया का प्रतिषेध होने पर भी फल का कथन होना विभावना है।

आचार्य केशवदास ने भी जहां बिना कारण के ही कार्य की उत्पत्ति कही जाय वहां ` विभावना ` अलंकार माना है—

कारज को बिनु कारणहि, उदो होत जेहि ठौर।
तासों कहत विभावना, केशव कवि सिरमौर[2] ।।

परन्तु दोनों आचार्यों द्वारा दिए गये ` विभावना ` अलंकार का उदाहरण एक दूसरे से भिन्न है।

१- काव्यप्रकाश : दशम उल्लास, पृ०- १०२, श्लोक २१

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ९वां प्रभाव, पृ०- १०४, छं०सं० ११

आचार्य मम्मट के अनुसार अलंकार वहीं हो सकता है जहां- जहां कुछ वैचित्र्य या चमत्कार हो, चमत्कार के अभाव में आचार्य मम्मट ने हेतु की अलंकारता भी असम्भव मानी है। जबकि आचार्य केशवदास ने हेतु को अलंकार की मान्यता प्रदान की है।

आचार्य मम्मट ने ` विरोध ` अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है—

विरोध: सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वच:[1]।

(विरोध इति) वास्तव में विरोध का अभाव रहते हुए भी जो दो वस्तुओं का विरोध कथन किया जाता है, वह विरोध नामक अलंकार है। आचार्य केशवदास का विरोधालंकार आचार्य मम्मट से मिलता है—

केशवदास विरोधमय, रचियत बचन बिचारि।
तासों कहत विरोध सब, कविकुल सुबुधि सुधारि[2]।।

आचार्य मम्मट तथा आचार्य केशवदास दोनों ने विरोधालंकार के अन्तर्गत ही ` विरोधाभास` अलंकार भी माना है। आचार्य मम्मट के अनुसार ` विशेषालंकार ` की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

विना प्रसिद्धमाधारमाधेयस्य व्यवस्थिति:।
एकात्मा युगपद्वृत्तिरेकस्यानेकगोचरा ।।
अन्यत्प्रकुर्वत: कार्यं शक्यस्यान्यवस्तुन: ।
तथैव करणं चेति विशेषस्त्रिविध: स्मृत:[3]।।

जहां किसी प्रसिद्ध आश्रय के बिना आश्रित की व्यवस्थिति, अर्थात् विशिष्ट तथा निराधार स्थिति का कथन किया जाय, (वह प्रथम विशेष है) तथा

----

१ - काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ० - ११२

२ - प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ६वां प्रभाव, पृ० - १०७, छ० - १६

३ - काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ० - १८७, श्लोक ४६, ५०

जहां एक ही वस्तु की एक ही काल में या समय में एक ही रूप से अनेक स्थानों पर स्थिति बतलाई जाय (वह द्वितीय विशेष है) एवं जहां कुछ अन्य कार्य करने वाले कर्ता के द्वारा किसी अन्य अशक्य या कठिन कार्य का भी उसी प्रकार सम्पादन किया जाय (वह तृतीय विशेष अलंकार है, इस प्रकार यह) विशेष अलंकार तीन प्रकार का माना गया है।

आचार्य केशवदास ने भी कार्य का साधक कारण अपूर्ण होने पर भी कार्य की पूर्ण सिद्धि को ` विशेषालंकार ` की संज्ञा दी है।

साधक कारण बिकल जहं, होय साध्य की सिद्धि।
केशवदास बखानिये, सो विशेष परसिद्धि[1] ।।

आचार्य मम्मट ने ` विशेषालंकार ` के तीन उपभेद किए हैं परन्तु आचार्य केशवदास ने विशेषालंकार के उपभेदों की चर्चा नहीं की है।

आचार्य मम्मट ने ` उत्प्रेक्षालंकार ` का लक्षण इस प्रकार दिया है--

संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्[2]।

उपमेय की उपमान के साथ एकरूपता या तादात्म्य की जो सम्भावना है,वह ` उत्प्रेक्षा ` नामक अलंकार है। आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया उत्प्रेक्षा का लक्षण आचार्य मम्मट के लक्षण से मिलता है--

केशव औरै बस्तु में और कीजिये तर्क
उत्प्रेक्षा तासों कहैं जिनको बुद्धि संपर्क[3] ।।

दोनों आचार्यों द्वारा दिए गये उदाहरण एक दूसरे से भिन्न हैं।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ९वां प्रभाव, पृ० - ११०, छ०सं० २४

२- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ० - ३४

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ९वां प्रभाव, पृ० - ११२, छ०सं० ३०

आचार्य मम्मट द्वारा दिया गया ` आक्षेपालंकार ` का लक्षण—

निषेधो वक्तुमिष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया ।।
वक्ष्यमाणोक्त विषय: स आक्षेपो द्विधा मत:[1]।

आचार्य मम्मट ने किसी विशेष बात के कहने की इच्छा से कथन योग्य वस्तु के निषेध को ही ` आक्षेप ` अलंकार माना है । जबकि आचार्य केशवदास ने कार्य के आरम्भ में ही किये गये प्रतिषेध को आक्षेप की संज्ञा दी है ।

कारज के आरम्भ ही, जहं कीजत प्रतिषेध ।
आक्षेपक तासों कहत, बहु बिधि बरनि सुमेध[2]।।

आचार्य मम्मट ने अपने ` आक्षेपालंकार ` के वक्ष्यमाण विषय तथा उक्त विषय नामक दो भेद किए हैं जबकि आचार्य केशवदास ने ` आक्षेपालंकार ` के नौ भेद माने हैं । आचार्य मम्मट के अनुसार श्लेष अलंकार—

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृश: ।
श्लिष्यन्ति शब्दा: श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा[3]।।

(वाच्य भेदेन भिन्ना इति) वाच्य भेद से यानी अर्थ भेद से भिन्न भी शब्द कण्ठ तालु आदि के अभिघात में अनुकूल तथा एक ही प्रयत्न होने के कारण एक उच्चारण के विषय बनकर एक दूसरे से मिलते हुए से अपने भिन्न स्वरूप को छिपाकर जो एक रूप से प्रतीत होते हैं, वह श्लेष नाम का शब्दालंकार वर्ण, पद, लिङ्ग, भाषा, प्रकृति, प्रत्यय विभक्ति, वचन आदि के द्वारा आठ प्रकार का होता है । आचार्य केशवदास द्वारा दी गई श्लेष की परिभाषा आचार्य मम्मट से भिन्न है क्योंकि आचार्य केशव दो, तीन या अधिक प्रकार के

१- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- १००, श्लोक २०

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १०वां प्रभाव, पृ०- ११४, छ०सं० १

३ - काव्यप्रकाश : ९वां उल्लास, पृ०- ४६५, श्लोक ८४

अर्थ को श्लेष मानते हैं वहाँ आचार्य मम्मट अपने भिन्न स्वरूप को छिपाकर जो एकरूप से प्रतीत होते हैं उन्हें श्लेष नामक अलंकार की संज्ञा दी है।

दोय तीन अरु भाँति बहु आनत जामें अर्थ।
श्लेष नाम तासों कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ[1]।।

आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया ` श्लेष ` का भेदोपभेद आचार्य मम्मट के भेदोपभेद से भिन्न है।

आचार्य मम्मट ने सूक्ष्म अलंकार का लक्षण निम्नवत् दिया है—

कुतोऽपि लक्षितः सूक्ष्मोऽप्यर्थोऽन्यस्मै प्रकाश्यते[2]।।
धर्मेण केनचिद्यत्र तत्सूक्ष्मं परिचक्षते ।

जिस अलंकार में सहृदय मात्र के द्वारा ज्ञेय भी अर्थ किसी भी ज्ञापक से लक्षित या स्वयं ही उन्नीत होकर किसी भी स्मारक धर्म के द्वारा अपने से भिन्न किसी भी अन्य के प्रति अभिव्यक्त किया जाय, वह सूक्ष्म नामक अलंकार कहा जाता है।

आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया ` सूक्ष्मालंकार ` का लक्षण आचार्य मम्मट के इस लक्षण से भिन्न है। आचार्य केशव सूक्ष्मालंकार वहां मानते हैं जहां किसी भाव, चेष्टा या आकार से दूसरे के मन की बात समझ ली जाय।

कौनहु भाव प्रभाव तें, जानै जिय की बात।
इंगित तें, आकार तें, कहि सूक्षम अवदात[3]।।

आचार्य मम्मट के अनुसार जहां उपपन्न न होता हुआ वाक्यार्थ अथवा पदार्थ

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १३५, छ०सं० २६

२- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- १६०, छ०सं० ३६

३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५०, छ०सं० ४५

का परस्पर सम्बन्ध उपमा की कल्पना कराता हो, वहां ` निदर्शना ` अलंकार होता है ।

अभवन् वस्तु सम्बन्ध उपमापरिकल्पक:[1] ।।

इसके विपरीत आचार्य केशवदास जहां भले काम से भली शिक्षा और बुरे काम से बुरी शिक्षा प्रगट की जाय, उसे निदर्शना अलंकार कहते हैं ।

कौनहु एक प्रकार ते, सत अरु, असत समान ।
करिये प्रगट निदर्शना, समुझत सकल सुजान[2] ।।

आचार्य केशवदास द्वारा वर्णित ` लेश ` अलंकार आचार्य मम्मट के `व्याजोक्ति ` अलंकार से मिलता है । आचार्य मम्मट के अनुसार प्रकट हुए वस्तु के स्वरूप का किसी छद्म से छिपाना ही व्याजोक्ति नामक अलंकार है ।

व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्[3] ।।

आचार्य केशवदास के अनुसार भी कोई घटना या कोई दशा चतुराई से किसी क्रिया द्वारा छिपाना, जिससे चतुर आदमी भी न समझ सके यही ` लेश ` है ।

चतुराई के लेश ते, चतुर न समझै लेश ।
बरनत कबि कोबिद सबै ताको केशव लेश ।।

आचार्य केशवदास का अर्थान्तरन्यास आचार्य मम्मट के अर्थान्तर न्यास से नहीं मिलता है । आचार्य मम्मट के अनुसार जहां साधर्म्य तथा वैधर्म्य से सामान्य या विशेष का अनपे से अन्य द्वारा अर्थात् सामान्य का विशेष द्वारा और विशेष का सामान्य द्वारा समर्थन किया जाय वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार

१- काव्यप्रकाश :दशमउल्लास, पृ०- ६०, श्लोक ११

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १५१, छ०सं० ४६

३- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- १४६, श्लोक ३२

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।

यत्तु सोऽर्थान्तरन्यास: साधर्म्येणेतरेण वा[1]।।

इसके विपरीत आचार्य केशवदास के अनुसार और कुछ कहकर और कुछ अर्थ लेना, यही अर्थान्तरन्यास है ।

और आनिये अर्थ जहं, औरै वस्तु बखानि ।

अर्थान्तर को न्यास यह, चार प्रकार सुजान[2]।।

आचार्य मम्मट के अनुसार उपमान की अपेक्षा अन्य उपमेय का गुण विशेष के द्वारा किया हुआ जो उत्कर्ष है उसे व्यतिरेक नामक अलंकार कहते हैं ।

उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेक: स एव स:[3]।

आचार्य मम्मट का यह लक्षण आचार्य केशव के व्यतिरेक के लक्षण से मिलता है । आचार्य केशवदास भी बराबर वाली दो वस्तुओं में कुछ भेद दिखाने को ` व्यतिरेक ` नामक अलंकार मानते हैं—

तामे आनै भेद कछु, होयं जु बस्तु समान ।

सो व्यतिरेक सुभांति है, युक्ति सहज परमान[4]।।

आचार्य मम्मट ने ` व्यतिरेक ` अलंकार के कुल मिलाकर चौबीस भेद किए हैं । केशवदास द्वारा दिए गये ` व्यतिरेक ` के भेद आचार्य मम्मट से नहीं मिलते । आचार्य केशवदास ने व्यतिरेक के मात्र दो भेद किए हैं ।

आचार्य मम्मट का ` अपह्नुति ` अलंकार आचार्य केशवदास के ` अपह्नुति ` अलंकार से नहीं मिलता है । आचार्य मम्मट जहां प्रकृत (उपमेय) को असत्य बतलाकर अन्य (अप्रकृत उपमान) की सत्यता बतलाई जाती है, वहां अपह्नुति

१- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ० - १०८, श्लोक २३

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ० - १५६, छ०सं० ६५

३- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ० - ८८

४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ० - १६४, छ०सं० ७८

अलंकार मानते हैं—

प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः[1]।

इसके विपरीत आचार्य केशवदास अपह्नुति अलंकार वहां मानते हैं जहां मन की बात छिपाकर बहाने के लिए कोई और बात कही जाती है—

मन की बात दुराय मुख, और कहिये बात।
कहत अपह्नुति सकल कबि, ताहि बुद्धि अवदात[2]।।

आचार्य मम्मट ने 'वक्रोक्ति' अलंकार को 'शब्दालंकार' के अन्तर्गत रखा है। उन्होंने काव्यप्रकाश के नवम् उल्लास में वक्रोक्ति अलंकार की परिभाषा निम्नवत् दी है—

यदुक्तमन्यथा वाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा[3]।।

एक वक्ता के द्वारा किसी अन्य अभिप्राय से कहे गये वाक्य को किसी अन्य श्रोता के द्वारा शब्द से जानने योग्य अर्थान्तर रूप श्लेष अथवा ध्वनि विकार रूप काकु से अन्य अर्थ के रूप में अन्यथा योजन किये जाने पर वक्रोक्ति नामक अलंकार होता है, जिसे श्लेष अथवा काकु से योजित होने पर श्लेष तथा काकु वक्रोक्ति इन दो नामों से दो प्रकार की जानना चाहिए। आचार्य मम्मट ने वक्रोक्ति अलंकार का जो लक्षण दिया है वही लक्षण आचार्य केशवदास ने अपने अन्योक्ति अलंकार का दिया है—

औरहि प्रति जु बखानिये, कछू और की बात।
अन्य उक्ति तेहि कहत हैं, बरनत कबि न अघात[4]।।

१- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०-५४

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १६६, छ०सं० ८१

३- काव्यप्रकाश : नवम्उल्लास, पृ०- ४७५, श्लोक ७८

४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १२वां प्रभाव, पृ०- १७०, छ०सं० ६

परन्तु आचार्य मम्मट द्वारा दिए गये ` वक्रोक्ति ` के भेद और उदाहरण आचार्य केशव से नहीं मिलते । यहां उल्लेखनीय है कि आचार्य केशवदास ने वक्रोक्ति और अन्योक्ति को उक्ति अलंकार के भेद के रूप में स्वीकार किया है जबकि आचार्य मम्मट ने ` वक्रोक्ति ` को एक स्वतन्त्र अलंकार माना है ।

आचार्य केशवदास द्वारा वर्णित ` व्यधिकरणोक्ति ` आचार्य मम्मट का ` असंगति ` अलंकार है । आचार्य मम्मट ने ` असंगति ` अलंकार का वर्णन इस प्रकार किया है—

भिन्नदेशतयाऽत्यन्तं कार्यकारणभूतयोः ।
युगपद्धर्मयोर्यत्र ख्यातिः सा स्यादसंगतिः[1] ।।

जिस अलंकार में कार्य—कारण रूप दो धर्मों का एक ही काल में अत्यधिक भिन्नदेशता से कथन किया जाय, वहां ` असंगति ` अलंकार होता है ।

इसी प्रकार आचार्य केशवदास और का गुण दोष किसी और में प्रगट करना व्यधिकरणोक्ति मानते हैं—

औरहि में कीजै प्रगट, औरहि को गुण दोष ।
उक्ति यहै व्यधिकरण की, सुनत होत सन्तोष[2] ।।

आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया ` व्यधिकरणोक्ति ` के उदाहरण का भाव आचार्य मम्मट के उदाहरण के भाव से मिलता है । आचार्य मम्मट का उदाहरण इस प्रकार है—

यस्यैव व्रणस्तस्यैव वेदना भणति तज्जनोऽलीकम् ।
दन्तक्षतं कपोले वध्वा वेदना सपत्नीनाम्[3] ।।

1- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ0 - 194, श्लोक 38

2- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : 12वां प्रभाव, पृ0- 170, छ0सं0 8

3- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ0 - 193, श्लोक 142

जिसे घाव होता है, उसी को उसकी वेदना भी होती है, इस बात को लोग झूठे ही कहते हैं। दन्तघात नवोढावधू के कपोल पर है, किन्तु वेदना उसकी सपत्नियों को हो रही है। इसी प्रकार का उदाहरण आचार्य केशवदास ने भी दिया है—

आलिंगन अंग अंग पीड़ियत पद्मिनी के,
सौतिन के अंग अंग पीड़नि पिराति है[1]।।

आचार्य मम्मट के अनुसार 'विशेषोक्ति' नामक अलंकार का लक्षण इस प्रकार है—

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः[2]।

अखण्ड कारणों का कथन किए जाने पर भी जहां कार्य या फल का अभाव बतलाया जाय वहाँ विशेषोक्ति अलंकार है। आचार्य केशवदास ने भी विशेषोक्ति अलंकार की परिभाषा आचार्य मम्मट के अनुसार ही दी है—

विद्यमान कारण सकल, कारज होय न सिद्ध।
सोई उक्ति बिशेष मय, केशव परम प्रसिद्ध[3]।।

आचार्य मम्मट ने 'विशेषोक्ति' अलंकार के तीन भेद स्वीकार किए हैं परन्तु आचार्य केशवदास ने 'विशेषोक्ति' के भेद नहीं किए हैं। आचार्य मम्मट के अनुसार 'सहोक्ति' अलंकार—

सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्[4]।।

जहां पर एक ही पद (साकं, सार्धं, सम आदि) सह अर्थ के वाचक शब्दों के

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १२वां प्रभाव, पृ०- १७१, छं०सं० ६
२- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- १०४
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १२वां प्रभाव, पृ०- १७२, छं०सं० १४
४- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- १२१, छं०सं० २६

बल से अनेक अर्थों का वाचक हो वहां सहोक्ति नामक अलंकार होता है।

आचार्य केशवदास की 'सहोक्ति' आचार्य मम्मट के अनुसार ही है—

हानि वृद्धि शुभ अशुभ कछु, कहिए गूढ़ प्रकास।
होय सहोक्ति सु साथ ही, बरणत केशवदास[1]।।

आचार्य मम्मट के अनुसार 'व्याजस्तुति' अलंकार

व्याजस्तुतिर्मुखे निन्दास्तुतिर्वा रूढिरन्यथा।
व्याजरूपा व्याजेन वा स्तुतिः[2]।।

जहां प्रारम्भ में की गई निन्दा या स्तुति परिणाम में उनसे अन्यथा या भिन्न ज्ञात हो (अर्थात् प्रारम्भ की निन्दा स्तुति रूप में तथा प्रारम्भ की स्तुति निन्दा रूप में प्रतीत हो) वहां 'व्याजस्तुति' नामक अलंकार होता है।

आचार्य केशवदास ने भी 'व्याजस्तुति' और 'व्याजनिन्दा' की परिभाषा आचार्य मम्मट के अनुसार ही दी है—

स्तुति निन्दा मिस होत जहं, स्तुति मिस निन्दा जान।
व्याजस्तुति निन्दा कहै, केशवदास बखान[3]।।

आचार्य केशवदास का पर्यायोक्ति अलंकार आचार्य मम्मट से नहीं मिलता है। केशवदास का 'समाहित' अलंकार आचार्य मम्मट का 'समाधि' अलंकार है।

समाधिः सुकरं कार्यं कारणान्तरयोगतः[4]।

जिस अलंकार में आरम्भ किया हुआ कार्य कारणान्तर के योग से सुकर या

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १७४, छ०सं० २०
२- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- ११०
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : ११वां प्रभाव, पृ०- १७५, छ०सं० २२
४- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- १६४

अधिक सरलता के रूप में होता हुआ वर्णित हो, वहां समाधि नामक अलंकार होता है।

आचार्य केशवदास द्वारा दिया गया `समाहित` अलंकार का लक्षण निम्नवत है—

होत न क्योंहू, होय तहं, दैव योग ते काज।
ताहि समाहित नाम कहि, बरणत कबि सिरताज[1]।।

आचार्य मम्मट ने `रूपक` अलंकार की परिभाषा निम्नवत् दी है—

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः[2]।

जो उपमान तथा उपमेय का अभेद है उसे `रूपक` अलंकार कहा जाता है। आचार्य केशवदास द्वारा दी गई `रूपक` अलंकार की परिभाषा आचार्य मम्मट की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार ही है—

उपमा ही के रूप सों, मिल्यो बरनिये रूप।
ताही सों सब कहत हैं, केशव रूपक रूप[3]।।

आचार्य मम्मट ने रूपक अलंकार के तीन भेद किए हैं। आचार्य केशवदास ने भी रूपक अलंकार के तीन भेद किए हैं परन्तु ये भेद मम्मट के अनुसार नहीं हैं।

आचार्य मम्मट के अनुसार `दीपक` अलंकार का लक्षण निम्नवत् है—

सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम्[4]।।

प्रकृत तथा अप्रकृत के (क्रिया आदि) धर्म की एक बार उपस्थिति अथवा अनेक क्रियाओं में कारक की वृत्ति दीपक अलंकार है।

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १८०, छ०सं० १
२- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- ४१
३- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १८३, छ०सं० १२
४- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- ८३, श्लोक १७

आचार्य केशवदास का `दीपक` अलंकार आचार्य मम्मट के अनुसार ही है—

बाच्य क्रिया गुण द्रव्य को, बरनहु करि इक ठौर ।
दीपक दीपति कहत हैं, केशव कवि सिरमौर[1] ।।

आचार्य मम्मट ने दीपक अलंकार के कई भेद किए हैं परन्तु ये भेद (माला दीपक को छोड़कर) आचार्य केशवदास से नहीं मिलते । आचार्य केशव ने दीपक अलंकार के दो भेद किए हैं, परन्तु उन्होंने दीपक अलंकार के अन्य भेद होने की बात को भी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है—

दीपक रूप अनेक हैं, मैं बरनौं द्वै रूप ।
मणि माला तिनसों कहु, केशव सब कवि भूप[2] ।।

आचार्य मम्मट के अनुसार `माला दीपक` का लक्षण इस प्रकार है—

मालादीपकमाद्यं चेद्यथोत्तरगुणावहम्[3] ।

यदि पूर्व पूर्व वस्तु उत्तर उत्तर वस्तु के प्रति गुण धायक हो तो माला दीपक अलंकार होता है । आचार्य केशवदास ने भी `मालादीपक` अलंकार का लक्षण इसी प्रकार दिया है—

सबै मिलि जहं बरनिये, देश काल बुधिवंत ।
माला दीपक कहत हैं, ताके भेद अनंत[4] ।।

आचार्य केशव का परिवृत्त अलंकार आचार्य मम्मट से नहीं मिलता है । आचार्य मम्मट ने `प्रहेलिका` अलंकार का वर्णन नहीं किया है । मम्मट के अनुसार जहां उपमान और उपमेय का परस्पर भेद रहते हुए भी दोनों की गुण, क्रियादि

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १८६, छ०सं० २१

२- वही, छ०सं० २२

३- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- ८४

४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १३वां प्रभाव, पृ०- १८८, छ०सं० २७

रूप एक धर्म के कारण समानता हो वहां उपमालंकार होता है—

` साधर्म्यमुपमा भेदे `[1]

आचार्य केशवदास ने भी रूप, शील और गुण की समता किसी अन्य वस्तु के रूप, शील और गुण से करने को उपमा अलंकार माना है।

रूप शील गुण होय सम, जो क्योंहूं अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि, केशव बहुत प्रकार[2]।।

आचार्य केशवदास द्वारा किए गये उपमा अलंकार के भेद आचार्य मम्मट के अनुसार नहीं हैं। आचार्य केशवदास ने कविप्रिया के ` पन्द्रहवें प्रभाव ` में `यमक ` अलंकार का वर्णन किया है। आचार्य केशव द्वारा दी गई यमक की परिभाषा आचार्य मम्मट से मिलती है। आचार्य मम्मट द्वारा दी गई परिभाषा निम्नवत् है—

अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुति[3]।।

यमकम्

अर्थ रहने पर यदि भिन्नार्थक वर्णों की पहले ही क्रम से स्थिति पुनः श्रुति = श्रवण— अर्थात् आवृत्ति हो तो उसे यमक कहा जाता है।

आचार्य केशवदास के अनुसार भी पद एक से हों, पर अर्थ विभिन्न हों, जिसका जितना ज्ञानबल हो वह उतने अर्थ निकाले, यही यमक है।

पद एकै नाना अरथ जिनमें जेतो बित्तु।
तामें ताको काढ़िये यमक माहि दै चित्तु[4]।।

१- काव्यप्रकाश : दशमउल्लास, पृ०- १

२- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १४वां प्रभाव, पृ० - १६३, छं०सं० १

३- काव्यप्रकाश : नवमउल्लास, पृ०- ४८५

४- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १५वां प्रभाव, पृ० - २०६, छं०सं० १

आचार्य मम्मट ने यमक अलंकार के भेद निम्न आधार पर किये हैं—

प्रथमो द्वितीयादौ,द्वितीयस्तृतीयादौ, तृतीयश्चतुर्थे, प्रथमस्त्रिष्वपीति सप्त[1]।

जब श्लोक का प्रथम पाद या चरण उसके द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ पाद या चरण में आवृत्त होता है उस समय वह क्रमशः मुख, संदंश और आवृत्ति रूप नामों को धारण करता है। अर्थात् प्रथम पाद या चरण द्वितीय पाद या चरण में आवृत्त होने पर मुख नाम, तृतीय पाद या चरण में आवृत्त होने पर संदंश तथा चतुर्थ पाद या चरण में आवृत्त होने पर आवृत्ति नाम धारण करता है।

इसी तरह द्वितीय पाद या चरण तृतीय पाद या चरण में आवृत्त होने पर गर्भ तथा ' संदष्टक ' नाम धारण करता है। अर्थात् द्वितीय पाद तृतीय में आवृत्त होने पर ' गर्भ ' नाम और चतुर्थ में आवृत्त होने पर ' संदष्टक ' नाम धारण करता है। ऐसे ही यदि तृतीय पाद चतुर्थ पाद में आवृत्त हो तो उसे ' पुच्छ ' नाम का यमक कहते हैं और यदि प्रथम पाद द्वितीय तृतीय तथा चतुर्थ तीनों ही पादों में आवृत्त हो तो उनका नाम ' पङ्क्ति ' यमक है। इस तरह पादज यमक के ये शुद्ध सात भेद होते हैं। इन भेदों के भी आचार्य मम्मट ने उपभेद किए हैं।

आचार्य केशवदास ने भी यमक अलंकार के भेदों का आधार आचार्य मम्मट के अनुसार ही माना है, परन्तु आचार्य केशवदास के नाम आचार्य मम्मट के नामों से भिन्न हैं।

आदि पदादिक यमक सब लिखे ललित चितलाय।

सुनहु सुबुद्धि उदाहरण केशव कहत बनाय[2] ।।

१- काव्यप्रकाश : नवमउल्लास, पृ० - ४८७

आचार्य केशवदास ने यमक अलंकार का भेद पाद या चरण के आधार पर तो किया ही है इसके अतिरिक्त भी उन्होंने यमक के भेद को स्वीकार किया है, जो मम्मट से नहीं मिलता—

अव्ययेत सव्ययेत पुनि, यमक बरन दुइ देत।
अव्ययेत बिनु अंतरहि, अंतर सो सव्ययेत[1]।।

आचार्य मम्मट ने और आचार्य केशवदास दोनों ने चित्रालंकार का वर्णन किया है परन्तु आचार्य मम्मट की अपेक्षा आचार्य केशवदास ने चित्रालंकार का वर्णन अधिक विस्तार से किया है। आचार्य केशवदास ने ` सर्वतोभद्र ` आदि के जो उदाहरण दिए हैं वह आचार्य मम्मट से भिन्न है।

आचार्य केशवदास ने ` कविप्रिया ` के तीसरे प्रभाव में काव्य दोषों का वर्णन किया है। यह वर्णन (कुछ दोषों को छोड़कर) आचार्य मम्मट के काव्य दोष वर्णन से भिन्न है। आचार्य मम्मट ने कुछ दोषों के लक्षण दिए हैं और कुछ दोषों को बिना लक्षण बताए ही उदाहरण देकर उसकी व्याख्या कर दी है। जबकि आचार्य केशवदास ने अपने सभी काव्य दोषों के लक्षण दिए हैं। आचार्य केशव के जो दोष आचार्य मम्मट से मिलते हैं उनके उदाहरण आचार्य मम्मट से भिन्न हैं अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आचार्य केशवदास ने अपने दोष वर्णन में आचार्य मम्मट से सहायता नहीं ली है।

आचार्य केशवदास ने ` कविप्रिया ` के पांचवें प्रभाव में अलंकारों को मुख्य रूप से दो भागों— (१) सामान्य तथा (२) विशिष्ट, में विभाजित किया है। इन दोनों भेदों के आचार्य केशवदास ने पुन: उपभेद किए हैं। ये उपभेद ही आचार्य केशवदास द्वारा वर्णित समस्त अलंकार हैं। इसके विपरीत

१- प्रियाप्रकाश (कविप्रिया) : १५वां प्रभाव, पृ०- २०६, छ०सं० ४

आचार्य मम्मट ने मुख्य रूप से अलंकारों के दो भेद शब्दालंकार एवं अर्थालंकार माना है। यद्यपि आचार्य मम्मट ने `काव्यप्रकाश` के दसवें उल्लास में अर्थालंकार के अन्तर्गत सामान्य तथा विशिष्ट अलंकारों का वर्णन किया है तथापि इस वर्णन से आचार्य केशवदास का सामान्यालंकार एवं विशिष्टालंकार का वर्णन एकदम भिन्न है।

`कविप्रिया` के नौवें प्रभाव में आचार्य केशवदास ने विशिष्टालंकार के अन्तर्गत काव्य के वास्तविक अलंकारों का वर्णन किया है। इन अलंकारों में से कुछ अलंकारों का वर्णन आचार्य मम्मट के अनुसार ही है और कुछ अलंकारों के लक्षण आचार्य मम्मट के लक्षण से नहीं मिलता है। आचार्य केशवदास द्वारा वर्णित विभावना विरोध, विशेष, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, सहोक्ति, व्याजस्तुति, रूपक, दीपक, यमक आदि अलंकारों के लक्षण आचार्य मम्मट से मिलते हैं परन्तु व्यतिरेक, रूपक, दीपक, आदि अलंकारों के भेद आचार्य मम्मट के अनुसार नहीं हैं। यमक अलंकार के भेद का आधार आचार्य मम्मट के अनुसार है। परन्तु आचार्य मम्मट ने `अव्ययेत` तथा `सव्ययेत` नामक यमक के भेद नहीं किए हैं, जबकि आचार्य केशवदास ने इन भेदों को स्वीकार किया है। आचार्य केशवदास द्वारा वर्णित आक्षेप, श्लेष, सूक्ष्म, निदर्शना, अर्थान्तर, अपह्नुति, पर्यायोक्ति आदि अलंकार आचार्य मम्मट से नहीं मिलता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आचार्य केशव ने आचार्य मम्मट से सहायता नहीं ली है क्योंकि जिन अलंकारों के लक्षण आचार्य मम्मट से नहीं मिलते उनकी तो कोई बात ही नहीं है जो अलंकार मिलते भी हैं उनके भेद आचार्य मम्मट के अनुसार नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इन अलंकारों के उदाहरण आचार्य केशवदास और आचार्य मम्मट दोनों ने भिन्न-भिन्न दिए हैं।

कविप्रिया की मौलिकता :

आचार्य केशव ने ` कविप्रिया ` में सोलह प्रभाव रखे हैं । पहले प्रभाव में गणेश की वन्दना, नृपवंश वर्णन तथा दूसरे प्रभाव में कवि वंश वृत्त आदि का वर्णन किया है, जिसके वर्णन में कहीं से प्रभाव ग्रहण नहीं किया है । तीसरे प्रभाव में केशव ने काव्य के दोषों का वर्णन किया है । यह दोष वर्णन आचार्य दण्डी के ` काव्यादर्श ` के अनुसार ही है । आचार्य केशव ने कुल मिलाकर अठारह दोष माने हैं । इन दोषों में से अन्ध, बधिर, पंगु, नग्न और मृतक इन पांच दोषों के नामों का उल्लेख संस्कृत के किसी आचार्य ने नहीं किया है, सम्भवत: ये केशव की उद्भावना के फल हैं । इन अलंकारों के नामान्तर में इनकी मौलिकता मान्य है । ` मृतकदोष ` केशव ने वहां माना है, जहां वास्तव में कोई अर्थ न हो, परन्तु जब तक शब्दों का कुछ अर्थ न निकले तब तक काव्य-संज्ञा ही नहीं हो सकती । ऐसी अवस्था में ` मृतकदोष ` काव्य का दोष नहीं है । अलंकार-रहित कविता को केशवदास ने ` नग्नदोष ` युक्त माना है । संस्कृत के प्राय: आचार्यों की सम्मति है कि अलंकार काव्य की शोभा वृद्धि में सहायक तो अवश्य होते हैं, परन्तु ये काव्य के अनिवार्य धर्म नहीं हैं । अलंकार की योजना के बिना भी काव्य हो सकता है । यही बात मम्मट ने ` अनलंकृति पुन: क्वापि ` के द्वारा कही है । दण्डी ने भी अलंकार को काव्य का अनिवार्य अंग नहीं माना है । उनकी अलंकारों की साधारण परिभाषा से भी यह ध्वनि निकलती है । वे कहते हैं—
` काव्यशोभाकरान धर्मानलंकारान् प्रचक्षते ` । ऐसी ही आचार्य वामन की भी सम्मति है । ऐसी अवस्था में आचार्य केशव का यह ` नग्नदोष ` भी व्यर्थ हो जाता है । ` पंगुदोष ` के अन्तर्गत ` छन्दोभंग, ` ` यतिभंग ` इत्यादि दोष आ जाते हैं । आचार्य केशव का ` बधिर दोष ` दण्डी के ` ग्राम्यता दोष ` से मिल जाता है । परन्तु इन दोषों के नामान्तर की मौलिकता तो

हमें माननी ही पड़ेगी ।

`कविप्रिया` के चौथे प्रभाव से लेकर आठवें प्रभाव तक का आधार `अलंकारशेखर` तथा `काव्यकल्पलतावृत्ति` नामक ग्रन्थ है । चौथे प्रभाव में `कविभेदवर्णन`, `कवि रीति वर्णन,` `नियमबद्ध वर्णन,` `सत्य को झूठ,` `झूठ को सत्य` आदि बातों का वर्णन है । इन सभी का आधार `अलंकारशेखर` तथा `काव्यकल्पलतावृत्ति` है । इन ग्रन्थों में इनके उदाहरण नहीं मिलते । केशव के उदाहरण मौलिक हैं । परन्तु इस प्रभाव में आचार्य केशव ने सोलह श्रृंगारों का वर्णन भी किया है जो कि आचार्य केशव की उद्भावना है । सोलह श्रृंगारों का वर्णन अलंकारशेखर आदि में नहीं मिलता ।

पांचवें प्रभाव में सामान्यालंकार के अन्तर्गत आचार्य केशव ने सप्तरंगों का वर्णन किया है । इनमें से पांच रंगों का वर्णन तो `अलंकारशेखर` तथा `काव्यकल्पलतावृत्ति` के अनुसार ही है; परन्तु मिश्रित तथा नीले रंग के वर्णन में आचार्य केशव की मौलिकता देखी जा सकती है । इसके अतिरिक्त इन ग्रन्थों में इन रंगों के उदाहरण नहीं दिए गये हैं, जबकि केशवदास ने सभी रंगों के लिए उदाहरण भी प्रस्तुत किया है । अतः हम यह कह सकते हैं कि इन उदाहरणों में हम केशव की प्रतिभा को स्पष्टतया देख सकते हैं ।

`कविप्रिया` के छठे प्रभाव में `सम्पूर्ण वर्णन`, `आवर्त वर्णन` `त्रिकोण वर्णन,` तीक्ष्ण आदि के वर्णन `काव्यकल्पलतावृत्ति` के अनुसार है परन्तु इन वर्णनों को छोड़कर शेष पूरा प्रभाव आचार्य केशव का मौलिक है । सातवां प्रभाव पूरा का पूरा `अलंकारशेखर` तथा `काव्यकल्पलतावृत्ति` के अनुसार ही है इसमें केशव की कुछ विशेष मौलिकता दृष्टिगोचर नहीं होती । आठवां प्रभाव भी पूरा-का-पूरा इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर ही लिखे गये हैं इस प्रभाव में विरह वर्णन के अन्तर्गत आचार्य केशव

ने ` मानविरह `, ` करुणा विरह,` ` प्रवास विरह,` ` पूर्वानुरागविरह` इन चारों प्रकारों का विस्तृत विवेचन उदाहरण द्वारा किया है यह इन दोनों ग्रन्थों में नहीं मिलता है । इसके अतिरिक्त यह उल्लेखनीय है कि `कविप्रिया` के पांचवें, छठें, सातवें तथा आठवें प्रभाव में आचार्य केशव ने जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं वह उनकी मौलिक उद्भावना के प्रतिफल हैं ।

` कविप्रिया ` के नौवें प्रभाव से पन्द्रहवें प्रभाव तक काव्य के वास्तविक अलंकारों का वर्णन है, जिनका नाम केशव ने ` विशेषालंकार ` रखा है । इन्होंने सब मिलाकर सैंतीस अलंकार माने हैं । इनमें प्राय: अलंकारों के लक्षण और उदाहरण आचार्य दण्डी के काव्यादर्श से मिलते हैं । आचार्य केशव का उत्प्रेक्षा अलंकार आचार्य दण्डी से नहीं मिलता परन्तु यह आचार्य रुद्रट और मम्मट की उत्प्रेक्षा की परिभाषा के अनुसार है । दसवें प्रभाव में आचार्य केशव ने बारहमासा का वर्णन किया है । यह वर्णन आचार्य केशव का अपना है । ग्यारहवें प्रभाव में वर्णित अलंकार ` काव्यादर्श ` के अनुसार ही है । इसके अन्तर्गत केशव ने ` गणना ` अलंकार का जो वर्णन किया है उसका आधार ` काव्यादर्श ` न होकर ` काव्यकल्पलतावृत्ति ` तथा ` अलंकारशेखर ` है ।

बारहवें प्रभाव के अन्तर्गत केशव ने उक्ति अलंकार का वर्णन किया है यह वर्णन किसी भी आचार्य से नहीं मिलता, परन्तु इसके पांच भेद वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति तथा सहोक्ति । इन आचार्यों से मिलते हैं । आचार्य केशव का परिवृत्ति अलंकार का लक्षण इन आचार्यों (दण्डी, मम्मट, रुद्रट) से नहीं मिलता है । पन्द्रहवें प्रभाव के अन्तर्गत यमक अलंकार का वर्णन है । यह वर्णन तो आचार्य दण्डी के ` काव्यादर्श ` के अनुसार ही है परन्तु आचार्य केशव द्वारा दिए गये यमक के भेदों व उपभेदों के उदाहरण आचार्य केशव के मौलिक हैं । उसमें कहीं भी वे आचार्य दण्डी से प्रभावित दिखाई नहीं देते ।

सोलहवें प्रभाव में केशव ने चित्रालंकार का वर्णन किया है। इस वर्णन से पूर्व उन्होंने चित्रालंकार के वर्णन में किन-किन बातों को दोष के अन्तर्गत परिगणित नहीं किया जाता इसका विस्तार से वर्णन किया है। यह वर्णन केशव की मौलिक उद्भावना है। इस प्रभाव में वर्ण नियम वर्णन के आचार्य केशव ने जो उदाहरण दिए हैं वे उनके अपने हैं। आचार्य दण्डी ने चार से आगे पांच-छः स्वर स्थान वर्णन नियम वाले शब्दालंकार, सुखसम्पाद्य है यह कहकर उनके उदाहरण नहीं दिए हैं, जबकि आचार्य केशवदास ने छब्बीस से लेकर एक वर्ण तक का वर्णन किया है। इसी प्रकार केशव का निरोष्ठ वर्णन भी मौलिक है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ` कविप्रिया ` के लेखन में आचार्य केशव ने संस्कृत आचार्यों की पर्याप्त सहायता ली है परन्तु फिर भी उसमें मौलिक स्थलों की कमी नहीं है।

-:o:-

उपसंहार

केशव का रचनाओं में प्राप्त मौलिकताओं का मूल्यांकन

केशव की रचनाओं में प्राप्त मौलिकताओं का
मूल्यांकन

यद्यपि आचार्य केशवदास पर अब तक अनेक शोध-प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं और केशव द्वारा विभिन्न संस्कृत आचार्यों से ग्रहण किए गये प्रभावों तथा उनकी मौलिक उद्भावनाओं का विभिन्न विद्वानों ने यथास्थान उल्लेख भी किया है, परन्तु फिर भी केशव के ग्रन्थों में ऐसे अनेक मौलिक स्थल शेष रह गये जिनका उल्लेख केशव पर लिखे गये अब तक के ग्रन्थों में नहीं हुआ है। 'केशव की काव्यकला' नामक ग्रन्थ में 'कृष्णशंकर शुक्ल' ने कविप्रिया पर आचार्य दण्डी के 'काव्यादर्श', केशव मिश्र कृत 'अलंकारशेखर' तथा अमर के 'काव्यकल्पलतावृत्ति' के प्रभाव का उल्लेख किया है परन्तु यह उल्लेख संक्षिप्त रूप में है। उन्होंने इन प्रभावों का संकेत किया है, परन्तु वास्तविक रूप में केशव इन ग्रन्थों से कितना प्रभावित हैं इसका वर्णन उन्होंने भी नहीं किया है। डा० हीरालाल दीक्षित ने अपनी पुस्तक 'आचार्य केशवदास' में केशव की 'रामचन्द्रिका' में 'प्रसन्नराघव' तथा हनुमन्नाटक से प्रभावित लगभग सभी स्थलों का उल्लेख किया है, परन्तु 'रामचन्द्रिका' के कुछ मौलिक स्थलों का वर्णन उन्होंने भी छोड़ दिया। डा० दीक्षित ने मात्र कुछ मौलिक स्थलों का ही वर्णन किया है। यहां यह उल्लेखनीय है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में केशव की रामचन्द्रिका पर अनर्घराघव के प्रभाव को स्वीकार किया है, परन्तु आचार्य शुक्ल की उस टिप्पणी पर दुर्भाग्यवश ऐसा लिखना पड़ रहा है कि केशव 'अनर्घराघव' से प्रभावित नहीं हैं। डा० दीक्षित ने वाल्मीकि रामायण के रामचन्द्रिका पर प्रभाव का संकेत किया परन्तु उन स्थलों का उल्लेख नहीं किया है।

केशवदास पर डा० विजयपाल सिंह ने दो ग्रन्थ—केशव और उनका

साहित्य तथा केशव का आचार्यत्व, लिखे हैं। केशव का आचार्यत्व नामक ग्रन्थ में डा० सिंह ने ' रसिकप्रिया ' तथा ' कविप्रिया ' नामक ग्रन्थों में विभिन्न संस्कृत आचार्यों से साम्य रखने वाले स्थलों का उल्लेख किया है। परन्तु डा० सिंह इस निर्णय पर पहुंचने में असमर्थ दिखाई देते हैं कि वास्तव में केशव ने आधाररूप में किस ग्रन्थ को स्वीकार किया है। उन्होंने इसके लिए पर्याप्त शोध की आवश्यकता बताकर काम चलाया है। इन सब विद्वानों के अतिरिक्त केशव पर सबसे प्रभावशाली ग्रन्थ डा० किरणचन्द्र शर्मा का ' केशवदास, जीवनी कला और कृतित्व ' है। इस ग्रन्थ में डा० शर्मा ने अन्य विद्वानों की अपेक्षा केशव तथा विभिन्न संस्कृत आचार्यों से साम्य रखने वाले स्थलों का अधिक उल्लेख किया है। परन्तु इन प्रभावों को पढ़कर पाठक एक निश्चित निर्णय पर नहीं पहुंच सकते कि वास्तव में केशव ने आधार रूप में किस आचार्य को ग्रहण किया है। ' रसिकप्रिया ' और ' कविप्रिया ' में वर्णित विषयों पर भिन्न- भिन्न संस्कृत ग्रन्थों में दिए लक्षण प्राय: परस्पर मिलते हैं। ऐसी स्थिति में केशव को संस्कृत के सभी आचार्यों से प्रभावित सिद्ध करने का प्रयास करना एकपक्षीय दृष्टि का परिचायक होगा। इन सभी विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में रसिकप्रिया में शृंगारतिलक के प्रभाव का उल्लेख नहीं किया है। डा० विजयपाल सिंह ने यह शंका अवश्य व्यक्त की है कि शायद केशव रसिकप्रिया में शृंगारतिलक से प्रभावित हैं, परन्तु निश्चित रूप में वह भी इस बात का उल्लेख नहीं कर सके हैं कि केशव रसिकप्रिया में शृंगारतिलक से कितना और कहां प्रभावित हैं। यद्यपि आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रसिकप्रिया पर लिखी गयी अपनी प्रिया प्रसाद तिलक नामक टीका की प्रस्तावना में शृंगारतिलक तथा रसिकप्रिया के मिलने वाले छन्दों की संख्या का उल्लेख किया है, परन्तु बड़े खेद के साथ यह लिखना पड़ रहा है कि शुरू के एकाध छन्द को छोड़कर आचार्य मिश्र द्वारा दर्शाई गई शृंगारतिलक

तथा रसिकप्रिया की छन्द संख्याओं का परस्पर मिलान करने पर उनमें वर्णित विषय एक-दूसरे से मिलते नहीं है। यद्यपि केशव ने रसिकप्रिया में वर्णित विषयों के लक्षण के लिए वास्तविक रूप से शृंगारतिलक का आधार ग्रहण किया है, परन्तु आचार्य मिश्र द्वारा दोनों ग्रन्थों के परस्पर मिलने वाले स्थलों का जो संकेत है वह मिलने वाले स्थलों से भिन्न है। किस आधार पर आचार्य मिश्र ने उन छन्द संख्याओं का उल्लेख किया है कहा नहीं जा सकता। इन विद्वानों की उक्त कमियों को प्रस्तुत प्रबन्ध में यथाशक्य दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के पहले अध्याय में केशव के पूर्व प्रचलित काव्य परम्पराओं का परिचय देते हुए केशव के विभिन्न ग्रन्थों का परिचय दिया गया है। दूसरे अध्याय में मौलिकता के अर्थ एवं स्वरूप का विवेचन है। तीसरे अध्याय में केशव पर पड़ने वाले विभिन्न पुराणों के प्रभाव का वर्णन किया गया है। यद्यपि डा० हीरालाल दीक्षित ने 'पौराणिक ज्ञान' शीर्षक के अन्तर्गत अपने ग्रन्थ 'आचार्य केशवदास' में केशव पर पौराणिक प्रभाव को स्वीकार किया है, परन्तु डा० दीक्षित ने उन पुराणों के नाम तथा उन कथाओं का उल्लेख नहीं किया है जहां केशव पुराणों से प्रभावित हैं। केशव ने रामचन्द्रिका में सर्वाधिक पौराणिक कथाओं का उल्लेख किया है। पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त केशव ने 'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' में मठधारियों की निन्दा की है। इस वर्णन में केशव रामायण के अतिरिक्त स्कन्धपुराण, पद्मपुराण, देवीपुराण आदि से प्रभावित हैं। इन पुराणों के अतिरिक्त केशव विज्ञानगीता में श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीता से भी प्रभावित दिखाई देते हैं।

केशव जब हिन्दी में ग्रन्थ प्रस्तुत करने लगे तब इनके नेत्रों में संस्कृत के

ग्रन्थ नाच रहे थे। इसी से इनके अधिकतर ग्रन्थ संस्कृत को ही आधार बनाकर खड़े हुए। इनके प्रशस्ति-काव्यों में पाण्डित्य संस्कृत का अवश्य झलकता है पर सीधे संस्कृत-ग्रन्थों के आधार पर उनका निर्माण नहीं है। केशव ने संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति को हिन्दी में प्रचलित करने का सराहनीय प्रयास किया है। रामचन्द्रिका को देखने से जान पड़ता है, मानों केशव किसी को पिंगल की पद्धति सिखला रहे हों। पुस्तक के आरम्भ से ही इसका आभास मिलने लगता है। एक वर्ण के छन्द से क्रमश: कई वर्णों के छन्दों तक वर्णन चला चलता है। आगे चलकर वर्णवृत्तों के विभिन्न रूपों का भी कम विस्तार नहीं है। केशव ने इतने अधिक और ऐसे-ऐसे वर्णवृत्तों का प्रयोग किया है जो पिंगल के प्रस्तार से ही जाने जा सकते हैं, साधारणत: जिनका प्रयोग नहीं होता। छन्द प्रयोग के क्षेत्र में केशव की प्रतिभा अद्वितीय है। केशव के पारिवारिक और निजी संस्कार संस्कृत के थे। केशव के युग में भक्ति आन्दोलन और भक्ति-साहित्य 'भाषा' की पूर्ण प्रतिष्ठा कर चुके थे। साहित्य के क्षेत्र में 'ब्रज' और 'अवधी' विशेष रूप से मान्य थीं। प्रतिष्ठित राजवंशों के कारण बुन्देली भी अपना अस्तित्व सम्भाल रही थी। ब्रज और बुन्देली पड़ोसी बोलियां हैं और संरचना की दृष्टि से ये एक-दूसरी से अधिक भिन्न नहीं हैं। केशव ने परिनिष्ठित ब्रज को अपनी काव्य-साधना का माध्यम बनाया। इसमें बुन्देली प्रभावों का आना स्वाभाविक था। इन दोनों को पृष्ठभूमि संस्कृत की मिली। राज-दरबारों में प्रचलित अरबी-फारसी के शब्द किसी दरबारी कवि के काव्य में आए बिना नहीं रह सकते थे। इन सभी स्रोतों से केशव के भाषा रूप आए हैं।

केशव के काव्य में ऐसे अनेक तत्व हैं, जो उनकी स्वच्छन्दता के

परिचायक हैं और भावोन्मेष के पोषक भी। पर अधिकतर उनकी रुझान शास्त्रबद्धता की ही ओर दिखाई देती है। इसमें उनकी पौराणिकता एवं संस्कृतज्ञता भी सहायक हुई है। मिथकों, कवि-समयों तथा वर्णकों से केशव का काव्य संसार आद्यन्त आपूरित है। उसमें प्रतीकात्मकता एवं बिम्बात्मकता भी समाहित है और भावमयता भी। पर अपने काव्य में वे सबसे अधिक उक्तिवैचित्र्य के प्रति अनुरक्त दिखायी देते हैं। रसोक्ति, स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति, उक्ति के ये तीनों प्रकार उनके काव्य में लक्षित होते हैं। उक्तियों के लिए केशव ने बाणभट्ट की कादम्बरी का आधार ग्रहण किया है। रामचन्द्रिका के संवादों के लिए केशव प्रसन्नराघव तथा जयदेव के ऋणी हैं। विज्ञानगीता भी नाटकीय शैली में लिखी गई है। इसके संवादों का आधार प्रबोधचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ है। दरबारी कवि होने के नाते केशव राजनीति के दांव-पेंच एवं वाग्वैदग्ध्य में कुशल हैं। इसी कारण उनके संवाद एक दो को छोड़कर पात्रोपयुक्त नीतिपूर्ण और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अवश्य हैं, किन्तु जब वे एक ही छन्द में कई पात्रों के कथोपकथन को समाविष्ट कर देते हैं तो पाठक उस वर्णन से वंचित रह जाता है जिसकी योजना प्रबन्धकार पात्रों के हाव-भाव तथा अनुभाव को चित्रित करने के लिए करता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के पांचवें अध्याय में केशव द्वारा ग्रहण किए गए दार्शनिक प्रभावों का विवेचन है। केशव के दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण 'विज्ञानगीता' तथा 'रामचन्द्रिका' नामक प्रबन्धों में हुआ है। 'विज्ञानगीता' में प्रतिपादित केशव के दार्शनिक सिद्धान्तों पर भारतीय अद्वैतवाद का प्रभाव दिखाई देता है। इसी प्रकार 'रामचन्द्रिका' में उल्लिखित केशव की राम-भावना पर भी वैष्णव अद्वैतवाद की स्पष्ट छाप

परिलक्षित होती है। केशव के राम परब्रह्म हैं, किन्तु उनके ब्रह्मत्व का आधार कौन-सा दार्शनिक वाद है, इस विषय में उनके ग्रन्थ सर्वथा मौन ही हैं। हां भक्ति के क्षेत्र में वे रामानन्दी सम्प्रदाय से अवश्य प्रभावित जान पड़ते हैं।

केशव की प्रवृत्ति लोकगत सौन्दर्य की अपेक्षा शास्त्रीय सौन्दर्य की ओर अधिक है। फिर भी काव्य परिमाण इतना अधिक है कि लोकोक्तियों और मुहावरों का यथास्थान प्रयोग हो ही गया है। यद्यपि केशव ने प्रबन्ध काव्यों में लोकोक्तियों का प्रयोग किया है, परन्तु उनके रीतिकाव्यों विशेष रूप से रसिकप्रिया में लोकोक्तियों का प्रयोग अधिक है। इसके अतिरिक्त ` रे, ` ` जू ` आदि साधारण बोलचाल के शब्दों के प्रयोग से भी भाषा की सजीवता में वृद्धि हुई है। माई,बीर (सखी), मदू, रानी लड़बावरी जैसे शब्द घरेलू शब्दों और उनकी घनिष्ठता को व्यक्त करते हैं। तत्सम प्रयोग की रूढ़िप्रियता के बीच ऐसे प्रयोग जीवन के स्पन्दन-जैसे लगते हैं।

केशव की रामचन्द्रिका पर ` हनुमन्नाटक ` तथा जयदेव कृत ` प्रसन्नराघव ` का प्रभाव है, इसके अतिरिक्त कुछ वर्णनों का आधार वाल्मीकि रामायण भी है। परन्तु केशव अनर्घराघव से प्रभावित नहीं हैं। यद्यपि रामचन्द्रिका के कुछ प्रकाश हनुमन्नाटक तथा प्रसन्नराघव के आधार पर लिखे गये हैं। कुछ अंश तो कोरे अनुवाद ही हैं। तथापि रामचन्द्रिका में अनेक स्थल ऐसे हैं जहां केशव की मौलिकता स्पष्टतया परिलक्षित होती है। इसके पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध अधिक मौलिक है।

केशव ने अपने रसिकप्रिया नामक ग्रन्थ में नायक-नायिका भेद तथा

शृंगाररस का विशेष रूप से तथा अन्य रसों का संक्षिप्त रूप में वर्णन किया है। केशव के इस ग्रन्थ का आधार `आचार्य` रुद्रभट्ट` का `शृंगारतिलक` नामक ग्रन्थ है। शृंगारतिलक के एकाध विषय को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण विषयों का केशव ने वर्णन किया है। उनके लक्षण तो शृंगारतिलक से मिलते हैं, परन्तु उदाहरणों में केशव ने अपनी मौलिकता एवं कवि प्रतिभा का परिचय दिया है। ये उदाहरण अपने काव्य सौष्ठव तथा माधुर्यता के लिये अपूर्व हैं। केशव ने जाति के आधार पर नायिकाओं का जो भेद किया है वह `अनंगरंग` के आधार पर है। दर्शन के भेदों के लिए केशव ने भूपाल के रसार्णव-सुधाकर का आधार ग्रहण किया है। दम्पति चेष्टा वर्णन के लिए केशव कामसूत्र, अनंगरंग अथवा साहित्य दर्पण से प्रभावित हैं।

विभाव का लक्षण केशव ने विश्वनाथ के आधार पर लिखा है। परन्तु अनुभाव का लक्षण केशव ने अपने ढंग से दिया है। यह लक्षण संस्कृत के किसी भी आचार्य से नहीं मिलता है। केशव ने स्थायीभावों के वर्णन के लिए भरत को आधार रूप में स्वीकार किया है, वहीं सात्विक भावों के लक्षण सभी आचार्यों से मिलते हैं। इसी प्रकार सभी आचार्यों ने व्यभिचारीभावों की संख्या ३३ मानी है, परन्तु केशव ने इसकी संख्या ३४ स्वीकार की है। संस्कृत आचार्यों द्वारा दिए गये अमर्ष, अवहित्था, असूया, सुप्ति, वितर्क और त्रास के स्थान पर केशव ने क्रमशः क्रोध, विषाद, निन्दा, स्वप्न, आशंका और भय शब्दों का प्रयोग किया है। केशव के चौंतीसवें व्यभिचारी `आधि` का किसी भी संस्कृत आचार्य ने उल्लेख नहीं किया है। यह केशव की अपनी परिकल्पना है।

केशव ने हाव की संख्या १३ मानते हुए हेला को भी हाव का भेद स्वीकार किया है। संस्कृत आचार्यों के १० स्वभावज अलंकारों को केशव ने

हाव के भेद के रूप में वर्णित किया है। आचार्य विश्वनाथ ने १८ सात्विक भावों का वर्णन किया है जिसमें एक केशव का " मद " भी है। केशव के बोध हाव का आधार कौन- सा संस्कृत ग्रन्थ है यह पता नहीं चला है। भानुदत्त को छोड़कर संस्कृत के सभी आचार्यों ने अवस्थानुसार आठ प्रकार की नायिकाएं मानी हैं। केशव ने भी ये ही आठ नायिकाओं का वर्णन किया है, परन्तु केशव ने अभिसारिका नायिका के जो भेद तथा उनके लक्षण दिए हैं उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि केशव ने रुद्रभट्ट के शृंगारतिलक को ही आधार रूप में रखा है।

अगम्या नायिकाओं के वर्णन के लिए केशव कामसूत्र के ऋणी हैं। कामशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों के अतिरिक्त अगम्या नायिकाओं का वर्णन संस्कृत के किसी आचार्य ने नहीं किया है। विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन, मान के भेद तथा लक्षण आदि का वर्णन केशव ने शृंगारतिलक के आधार पर किया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि रुद्रभट्ट ने केवल नायिका में " मान " का होना स्वीकार किया है, जबकि केशव ने नायिका के साथ- साथ नायक में भी मान की स्थिति को मानते हुए उसका अलग से लक्षण तथा उदाहरण दिया है। यह केशव की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मान—मोचन के उपायों तथा मान की रीति का वर्णन भी केशव ने शृंगारतिलक के ही आधार पर किया है।

केशव ने सखी वर्णन में कुछ भेद शृंगारतिलक तथा कुछ अनंगरंग से लिए हैं। सखी-जन- कर्म वर्णन, रसों के वर्णन, अनरस वर्णन इन सभी के वर्णन के लिए केशव ने शृंगारतिलक से सामग्री ली है।

केशव की कविप्रिया कविशिक्षा की पुस्तक है, इसमें संस्कृत के अलंकार सम्प्रदाय वाले आचार्यों का अनुगमन है। इसके मुख्य आधार ग्रन्थ हैं—

`काव्यादर्श, ` काव्यकल्पलतावृत्ति ` और ` अलंकारशेखर ` । `कविप्रिया ` के तीसरे प्रभाव में केशव ने काव्य दोषों का वर्णन किया है, यह वर्णन आचार्य दण्डी के काव्यादर्श के अनुसार ही है । केशव द्वारा स्वीकृत १८ दोषों में से अंध, बधिर, पंगु, नग्न और मृतक नामक पांच दोषों के नामों का उल्लेख संस्कृत के किसी आचार्य ने नहीं किया है, सम्भवत: यह केशव की निजी परिकल्पना है ।

कविप्रिया के चौथे प्रभाव में ` कविभेद वर्णन, ` कवि-रीति वर्णन, ` नियमबद्ध वर्णन इन सभी का आधार ` अलंकारशेखर ` तथा ` काव्यकल्पलतावृत्ति ` है । इन दोनों ग्रन्थों में उपरोक्त वर्णनों के उदाहरण नहीं दिए गये हैं, अत: उदाहरणों में केशव की मौलिकता देखी जा सकती है । इस प्रभाव में केशव ने सोलह शृंगारों का वर्णन भी किया है जो इन ग्रन्थों में नहीं मिलता है । इसी प्रकार सातवें प्रभाव में सप्तरंगों के वर्णन के अन्तर्गत मिश्रित एवं नीले रंग का वर्णन केशव का निजी है ।

कविप्रिया के नौवें प्रभाव से पन्द्रहवें प्रभाव में केशव ने वास्तविक अलंकारों का वर्णन किया है, जिसकी संख्या केशव ने ३३ मानी है । इनमें प्राय: अलंकारों के लक्षण और उदाहरण दण्डी के काव्यादर्श से मिलते हैं । केशव का उत्प्रेक्षा अलंकार आचार्य दण्डी से नहीं मिलता, परन्तु यह आचार्य रुद्रट तथा मम्मट के उत्प्रेक्षा के लक्षण से मिलता है । केशव के गणना अलंकार का आधार ` अलंकारशेखर ` तथा काव्यकल्पलतावृत्ति है । बारहमासा का वर्णन केशव ने अपनी प्रतिभा के आधार पर किया है ।

बारहवें प्रभाव में उचित अलंकार का वर्णन किसी भी आचार्य से नहीं मिलता । परन्तु इसके पांच भेद संस्कृत आचार्यों से मिलते हैं । केशव के

यमक अलंकार का वर्णन आचार्य दण्डी के अनुसार है, परन्तु यमक के भेदों, उपभेदों तथा उदाहरणों में केशव की मौलिकता परिलक्षित होती है।

सोलहवें प्रभाव में चित्रालंकार के वर्णन में किन-किन बातों को दोष के अन्तर्गत परिगणित नहीं किया जाता इसका विस्तार से वर्णन किया है। यह वर्णन किसी भी आचार्य से नहीं मिलता। आचार्य दण्डी ने वर्ण नियम के अन्तर्गत १ से ४ तक के वर्णों का उदाहरण दिया है, जबकि केशव ने छब्बीस से लेकर एक वर्ण तक के छन्द का निर्माण किया है। इसी प्रकार केशव का निरोष्ठ वर्णन भी मौलिक है।

इस प्रकार समग्र रूप में विचार करते हुए पूर्व अध्यायों में दिए गये तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निर्णय करना सरल हो जाता है कि संस्कृत आचार्यों से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी केशव में पर्याप्त मौलिकता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के लक्षणों, उदाहरणों अथवा भावों को ज्यों का त्यों ब्रजभाषा में उतार कर रख देना भी एक विशिष्ट प्रतिभा के ही वश की बात है। साधारण प्रतिभा के बलबूते का यह नहीं है। इस अर्थ में भी केशव की प्रतिभा को स्वीकारना ही होगा।

संस्कृत के ग्रन्थ

१- अनंगरंग : कल्याणमल्ल; सम्पा० - जयदेव विद्यालंकार
प्रका० - मेहरचन्द लक्ष्मीदास, लाहौर, १९२७

२- अनर्घराघवम् : मुरारि कवि; व्या० - रामचन्द्र मिश्र
मुद्रक - विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
प्रका० - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
प्रथम संस्करण संवत् २०१७

३ - अलंकारशेखर : केशव मिश्र; निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८९५

४ - उत्तरकाण्डम् : वाल्मीकि; प्रका० - जी०सी० झाला
मुद्रक - महाराजा श्याजी राव,
बड़ौदा यूनिवर्सिटी

५ - कादम्बरी कथामुख : बाणभट्ट; व्या० - तारिणीश झा
प्रका० - रामनारायणलाल बेनीमाधव
कटरा रोड, इलाहाबाद
मुद्रक - विजयकुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस, इलाहाबाद
चतुर्थ संस्करण

६ - कामसूत्र : वात्स्यायन; व्या० - देवदत्त शास्त्री
प्रका० - चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी-१, मुद्रक - विद्याविलास प्रेस
वाराणसी

७ - काव्यकल्पलतावृत्ति : समरचन्द्र; चौखम्बा संस्कृत सीरीज कार्यालय
विद्याविलास प्रेस, बनारस, १९३१

८ - काव्यप्रकाश : मम्मट; विद्याविलास प्रेस, बनारस, सं० - २००८

(९) काव्यमीमांसा : राजशेखर; टीकाकार- डा० गंगासागर राय
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

१० - काव्यादर्श : दण्डी; मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर, १९२५

११ - काव्यानुशासन : हेमचन्द्र; निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४

१२ - काव्यालंकार : रुद्रट; निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०९

१३ - कुवलयानन्द : अप्पयदीक्षित; निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९४७

१४ - चारुदत्तम् : भास; तत्र्वै गणपति शास्त्रिणा, मु० - श्रीधर
पावर प्रेस, १९२२, त्रिवेन्द्रम

१५ - दशरूपकम् : धनंजय; निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४१

१६ - ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धन; टीका- आचार्य विश्वेश्वर

१७ - नाट्यशास्त्र : भरतमुनि; सम्पा०- एवं व्याख्याकार- बाबूलाल शुक्ल शास्त्री
प्रका० - चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक- विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
प्र०सं० - संवत् २०३५

१८ - प्रबोधचन्द्रोदय : श्रीकृष्ण मिश्र; टीका- रामदास दीक्षित
निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१६

१९ - प्रसन्नराघवम् : जयदेव महाकवि; मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स
बनारस, सन् १९४७

२० - बालचरितम् : भास; प्रका०- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक- विद्याविलास प्रेस, वाराणसी, प्र०सं० - १९६१

२१ - योगवाशिष्ठ : वाल्मीकि; प्रथम, द्वितीय, तृतीय भाग
भाषानुवाद - श्री कृष्णपन्त शास्त्री
प्रकाशक - श्री गौरीशंकर गोयनका,
अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी
मुद्रक - श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस

२२- रघुवंशम् : कालिदास; प्रका० - रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद
मुद्रक - श्री आर०बी० सक्सेना, माधो प्रिंटिंग वर्क्स
इलाहाबाद-३, प्र०सं० - १९६१

२३- रसमंजरी :भानुदत्त मिश्र; अनंत पंडित कृत व्यंग्यार्थ, कौमुदी व्याख्या
प्रतिलिपि आत्माराम

२४- रसार्णव सुधाकर : शिङ्गभूपाल, त्रावनकोर गवर्नमेण्ट प्रेस, त्रिवेन्द्रम
अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावली नं० ५०, सन् १९१६ ई०

२५- रामायणम् : वाल्मीकि मुनि; परिमल पब्लिकेशन

२६- वक्रोक्ति जीवितम् : कुन्तक; सम्पा० - एस० के० डे

२७- सुन्दरकाण्डम् : वाल्मीकि; प्रका० - जी०सी०भाला
मुद्रक - महाराजा श्याजी राव
बड़ौदा यूनिवर्सिटी

२८- शृंगारतिलक : रुद्रभट्ट; सम्पा० - डा० आर० पिशल
अनु० - कपिलदेव पाण्डेय
प्रका० - प्राच्य प्रकाशन ७४-ए, जगतगंज,
वाराणसी, मुद्रक - श्री हरिप्रेस वाराणसी
प्रथम संस्करण ।

२९ - शृंगार प्रकाश : भोजदेव; सम्पा० - ए० रंगास्वामी सरस्वती
लॉ प्रिंटिंग हाउस, माउण्ट रोड, मद्रास, १९२६

३० - साहित्यदर्पण : विश्वनाथ; व्या० - श्री शालग्राम शास्त्री
प्रका० - श्री सुन्दरलाल जैन
मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड,
जवाहरनगर, दिल्ली - ७
मुद्रक - श्री जैनेन्द्र प्रेस, बंगलो रोड
जवाहरनगर, दिल्ली -७, षष्ठ संस्करण

३१- हनुमन्नाटक : टीकाकार- रामस्वरूप शर्मा, धर्म पताका
सं० - वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, संवत् १९६० वि०

हिन्दी के ग्रन्थ

१- आचार्य केशवदास : डा० हीरालाल दीक्षित, प्रकाशक- लखनऊ वि०वि०
मुद्रक - रामआसरे कक्कड़
हिन्दी साहित्य प्रेस,
इलाहाबाद, सं० - २०११

२- आचार्य केशवदास कृत विज्ञानगीता : केशवदास; व्या० - डा० किशोरीलाल
परिमल प्रकाशन
१७,एम०आई०जी०,बाघम्बरी
आवास योजना,अल्लापुर
इलाहाबाद
मुद्रक- शान्ति मुद्रणालय
गली नं०-११
विश्वासनगर,दिल्ली
प्रथम संस्करण

३ - अलंकार पियूष : डा० रामशंकर शुक्ल(रसाल) रामनारायण,इलाहाबाद

४ - अंग्रेजी हिन्दी कोश : डा० हरदेव बाहरी, प्रथम संस्करण,सन् १९२९

५ - काव्य निर्णय : आचार्य भिखारीदास; सम्पा० - पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी
द्वितीय संस्करण

६- केशव और उनका साहित्य : डा० विजयपाल सिंह;
प्रका० - राजपाल एण्ड संस,दिल्ली
मुद्रक- हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,दिल्ली,प्र०सं०

७- केशव का आचार्यत्व : डा० विजयपाल सिंह; राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
मुद्रक - शाहदरा प्रिंटिंगप्रेस
दिल्ली, प्रथम संस्करण

८- केशव की काव्यकला : कृष्णशंकर शुक्ल; साहित्य ग्रन्थमाला कार्यालय,
काशी, संवत् २००६ वि०

९- केशवदास : चन्द्रबली पाण्डेय; शक्ति कार्यालय, इलाहाबाद, १९५१

१०- केशवदास—जीवनी, कला और कृतित्व : किरणचन्द्र शर्मा,
गौरीशंकर शर्मा, मैनेजर, भारतीय साहित्य-
मन्दिर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं सुपर प्रेस
पहाड़गंज, नई दिल्ली में मुद्रित १९६१

११- केशव सुधा : डा० विजयपाल सिंह ; प्रका०- राजपाल एण्ड सन्स
कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्र०सं०-१९८६

१२- द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ : सम्पा०- डा० श्यामसुन्दरदास

१३- देव और बिहारी : पं० कृष्णबिहारी मिश्र; गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ
चतुर्थ संस्करण, सं०-२००९ वि०

१४- नन्ददास ग्रन्थावली : नन्ददास; सम्पा०- ब्रजरत्नदास
प्रका०- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक- ह० मा० सप्रे
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबर,
बनारस

१५- पद्माकर पंचामृत : सम्पा०- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

१६- प्रियाप्रकाश : केशवदास; टीकाकार- भगवान "दीन"
प्रकाशक- संजय बुक सेन्टर, के०-३८/९, गोलघर
वाराणसी

१७- ब्रजभाषा साहित्य में नायिका भेद निरूपण : श्री प्रभुदयाल मीतल;
प्रका० - अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन,
मथुरा
मुद्रक- अग्रवाल इलैक्ट्रिक प्रेस
अग्रवाल भवन, मथुरा, ओमप्रकाश बेरी,
हिन्दी प्रचारक

१८- बिहारी का नया मूल्यांकन : डा० बच्चन सिंह; पुस्तकालय मानमंदिर,
वाराणसी -१
मुद्रक- महताब राय
नागरी मुद्रण, (ना०प्र०सभा)
वाराणसी, प्रथम संस्करण

१९ - बिहारी : आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

२० - भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्व : डा० विमलेश कान्ति;
प्रका० - तन्मय अग्रवाल
अलवर (राजस्थान)
मुद्रक- रामाकृष्ण प्रेस, कटरा नील,
चांदनी चौक, दिल्ली -६

२१- मिश्रबन्धु विनोद : मिश्रबन्धु, प्रथम भाग, पंचम संस्करण,
गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, संवत् १९७० वि

२२- महर्षि वात्स्यायन कृत कामसूत्र : वात्स्यायन,
अनु० - कविराज विपिनचन्द्र बन्धु
प्रका० - देवराज वर्मा, किरण पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली
मुद्रक- राज आर्ट प्रेस, दिल्ली
चौथा संस्करण

२३ - रसमीमांसा : रामचन्द्र शुक्ल; सम्पा० - विश्वनाथप्रसाद मिश्र
प्रका० - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

२४- रसिकप्रिया : केशवदास; टीकाकार- विश्वनाथप्रसाद मिश्र
प्रका० - कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी,
वाराणसी,
मुद्रक - बजरंगबली गुप्त " विशारद" आर्यावर्त प्रेस
जालिपादेवी, वाराणसी

२५- रहीम रत्नावली : रहीम; सम्पा० - पं० - मायाशंकर याज्ञिक, तृतीय संस्करण

२६- राधाकृष्ण ग्रन्थावली : सम्पा० - डा० श्यामसुन्दर दास
प्रका० - नागरी प्रचारिणी सभा
काशी

२७- रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता : डा० नगेन्द्र,
गौतम बुक डिपो, दिल्ली, १९४९

२८- रामचन्द्रिका : केशवदास; टीकाकार- लाला भगवानदीन,
प्रका० - रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रथम एवम् द्वितीय भाग, १२वां संस्करण

२९- रामचन्द्रिका में नाटकीय तत्व : रामविनोद तिवारी
प्रका० - गाया प्रकाशन, लखनऊ
मुद्रक - रचना आर्टप्रिंटर्स, प्रथम संस्करण

३० - रामचरितमानस : तुलसीदास; प्रका० - गोविन्द भवन कार्यालय
गीताप्रेस, गोरखपुर
मुद्रक - गीताप्रेस, गोरखपुर

३१- वाल्मीकीय रामायण : वाल्मीकि; अनुवादक- चण्डिकाप्रसाद अवस्थी
प्रका० - नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
मुद्रक - के० डी० सेठ
प्रथम संस्करण- १९३४

३२- विद्यापति : टीकाकार- कुंवर सूर्यबली सिंह
सम्पा० - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
प्रका० - सरस्वती मन्दिर, जतनबर, बनारस

३३ - शिवसिंह सरोज : शिवसिंह सेंगर; सम्पा० - रूपनारायण पाण्डेय
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
सप्तम संस्करण- १६२६

३४ - साहित्य लहरी : सूरदास; भारतेन्दु द्वारा संगृहीत
खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना
प्रका० - रामदीन सिंह

३५- हिततरंगिणी : कृपाराम; सम्पा० - जगन्नाथदास रत्नाकर
भारत जीवन प्रेस, काशी, १६५२

३६- हिन्दी अलंकार साहित्य : डा० ओमप्रकाश

३७- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास : अयोध्यासिंह उपाध्याय;
पुस्तक भण्डार
लहेरिया सराय, पटना
संवत् १६६७

३८- हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य : डा० सत्यदेव चौधरी
हिन्दी अनुसन्धान परिषद्
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के निमित्त
साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड
इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित

३६- हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी,
द्वितीय संस्करण, यू०सी० कपूर एण्ड संस
कश्मीरी गेट, दिल्ली, १६६६

४० - हिन्दी साहित्य का अतीत : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
द्वितीय भाग,
प्रका० - यशोधर मोदी मैनेजिंग डाइरेक्टर
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०) लिमिटेड
हीराबाग, गिरगांव, बम्बई

४१ - हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी;
मुद्रक - ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लि०
वाराणसी - ६१

४२ - हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; नागरी प्रचारिणी
सभा, काशी, सं० - १९९९ वि०

अंग्रेजी के ग्रन्थ

1. New International dictionary Pt. 2nd. : Webster

2. On Wordsworth : James Russal Lowell

3. Selected Essays : T. S. Eliot